M.COM-04

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

वित्तीय प्रबन्ध

M.COM- 04

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

वित्तीय प्रबन्ध
(Financial Management)

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

संयोजक / सदस्य

संयोजक

डॉ. एम.एल. जैन 'मणि'
(पूर्व उपप्राचार्य, विश्वविद्यालय वाणिज्य महाविद्यालय, जयपुर)
परामर्शदाता -वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

- **प्रो. (डॉ.) गिरधर सोरल**
  लेखा एवं सांख्यिकी विभाग
  एम.एल. सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर
- **प्रो. (डॉ.) एन.डी. माथुर**
  ई.ए.एफ.एम. विभाग
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **प्रो. (डॉ.) गोविन्द पारीक**
  उप प्राचार्य, वाणिज्य महाविद्यालय
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **प्रो. (डॉ.) पी.के. शर्मा**
  प्रोफेसर, प्रबन्ध अध्ययन विभाग
  वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
- **डॉ. राजेश कोठारी**
  निदेशक, पोद्दार इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेन्ट
  राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
- **डॉ. आर.एस. अग्रवाल**
  वरिष्ठ व्याख्याता ए.बी.एस.टी.
  राजकीय एस.डी. कॉलेज, ब्यावर

संपादन एवं पाठ-लेखन

संपादक

प्रो. (डॉ.) आर.एस. अग्रवाल
वरिष्ठ व्याख्याता ए.बी.एस.टी.
राजकीय एस.डी. कॉलेज, ब्यावर

पाठ लेखक

- **डॉ. एल.एन. बल्दुवा** (इकाई संख्या1,17, 18)
  सह-आचार्य (बैंकिंग एवं वित्त प्रबन्ध)
  राजकीय एस.डी. कॉलेज, ब्यावर
- **डॉ. अशोक गुप्ता** (इकाई संख्या 2)
  वरिष्ठ व्याख्याता, ए.बी.एस.टी.
  राजकीय वाणिज्य महाविद्यालय, कोटा
- **डॉ. (श्रीमती) मीनू माहेश्वरी** (इकाई संख्या 19)
  आई.सी.डबल्यू.ए. एवं सहायक प्रोफेसर
  कोटा विश्वविद्यालय कोटा (राज.)
- **डॉ. राजकुमार गोधा** (इकाई संख्या 13,1415)
  विभागाध्यक्ष, बैंकिंग एवं वित्त प्रबन्ध विभाग
  राजकीय महाविद्यालय, अजमेर (राज.)
- **डॉ.पी.डी. सिंघल** (इकाई संख्या 6,7,8)
  विभागाध्यक्ष, लेखा एवं सांख्यिकी
  राजकीय पी.जी. महाविद्यालय, बाड़मेर
- **डॉ. प्रेरणा जैन** (इकाई संख्या 9,10,11,12)
  सहायक प्रोफेसर, ए.बी.एस.टी.
  राजकीय महाविद्यालय, अजमेर (राज.)
- **डॉ. पुखराज दाधीच** (इकाई संख्या 3,16)
  वरिष्ठ व्याख्याता
  राजकीय महाविद्यालय, अजमेर (राज.)
- **डॉ. बी.एल. दवे** (इकाई संख्या 4,5)
  पूर्व विभागाध्यक्ष, ए.बी.एस.टी.
  अग्रवाल महाविद्यालय, जयपुर (राज.)

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच	**प्रो.(डॉ.)एम.के. घड़ोलिया**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक(अकादमिक)	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पुनः उत्पादन - जुलाई 2010

सर्वाधिकार सुरक्षित : इस सामग्री के किसी भी अंश की वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है। **व.म.खु.वि. कोटा के लिये कुलसचिव व.म.खु.वि. कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित ।**

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अनुक्रमणिका

इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई -1	वित्तीय प्रबन्ध- एक सिंहावलोकन	6–21
इकाई -2	मुद्रा का समय मूल्य	22–37
इकाई -3	अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय प्रबन्ध	38–66
इकाई -4	परियोजना नियोजन एवं वित्त व्यवस्था	67–80
इकाई -5	परियोजना की संभाव्यता विश्लेषण	81–89
इकाई -6	वित्त के स्रोत	90–120
इकाई -7	पूँजी संरचना : नियोजन	121–145
इकाई -8	पूँजी संरचना के सिद्धान्त	146–166
इकाई -9	पूँजी की लागत	167–195
इकाई -10	उत्तोलक	196–217
इकाई -11	पूँजी बजटन - I	218–253
इकाई -12	पूँजी बजटन - II	254–288
इकाई -13	आय का प्रबन्ध एवं प्रतिधारण नीति	289–304
इकाई -14	लाभांश नीति एवं सिद्धान्त	305–332
इकाई -15	लाभांश निर्णयन एवं नियोजन	333–352
इकाई -16	कार्यशील पूँजी का प्रबन्ध	353–380
इकाई -17	रोकड़ प्रबन्ध	381–413
इकाई -18	स्कन्ध प्रबन्ध	414–450
इकाई -19	प्राप्यों का प्रबन्ध	451–472

इकाई-I : वित्तीय प्रबंध - एक सिंहावलोकन (Financial Management Overview)

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना /परिचय

1.2 वित्तीय प्रबंध का अर्थ

1.3 वित्तीय प्रबंध का विकास

1.4 वित्तीय प्रबंध का उद्देश्य

1.5 वित्तीय प्रबंध का महत्व

1.6 वित्तीय प्रबंध क्षेत्र अथवा कार्य

1.7 मुख्य वित्तीय अधिकारी की परिवर्तित/भूमिका/आधुनिक विचारधारा

1.8 वित्तीय प्रबंध का सम्बन्धित विधाओं से सम्बन्ध

1.9 वित्तीय प्रबंध की सीमाएँ

1.10 निष्कर्ष

1.11 स्वपरख प्रश्न

1.12 उपयोगी पुस्तकें

1.0 उद्देश्य

वित्तीय प्रबंध के अध्ययन करवाने के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार है :-

इस इकाई के सम्पूर्ण अध्ययन के पश्चात् आप निश्चित रूप से समझ सकेंगे-

1. वित्तीय प्रबंध का अर्थ एवं उसका विकास ।
2. वित्तीय प्रबंध के उद्देश्य ।
3. संगठन में प्रधान वित्तीय अधिकारी की भूमिका ।
4. वित्तीय प्रबंध की प्रकृति/कार्य ।
5. लेखांकन एवं सम्बन्धित क्षेत्रों के साथ वित्तीय प्रबंध का सम्बन्ध ।
6. वित्तीय प्रबंध की सीमाएँ ।

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

व्यवसाय आर्थिक विकास का मूल आधार होता हैं जबकि वित्त व्यवसाय का मूल आधार होता हैं । बिना वित्त की उपलब्धता के न तो कोई व्यापार प्रारम्भ हो सकता है और न ही उसका विकास । अत: व्यवसाय की सफलता वित्त के अभाव में अच्छी से अच्छी योजना केवल कागजों पर ही रह जाती हैं। यदि पर्याप्त वित्त के अभाव में किसी योजना को कार्यरूप दे भी दिया जाये तो बाद में उसके संचालन एवं नियंत्रण में अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं एवम् अनेक बार संस्था बीच रास्ते में ही दम तोड़ देती है । अत: स्पष्ट है कि पर्याप्त वित्त के

अभाव में व्यवसाय जीवित नहीं रह सकता तथा बिना प्रभावपूर्ण वित्तीय प्रबंध के कोई व्यवसाय समृद्ध एवं विकसित नही हो सकता हैं । इसके साथ ही यह भी स्पष्ट है, कि व्यावसायिक संगठनों का स्वरूप अव्यक्तिगत होने पर उनकी वित्तीय व्यवस्था करना अधिक कठिन हो जाता हैं । एक उपयुक्त 'वित्तीय प्रबंध' इन जटिलताओं एवं कठिनाइयों का समाधान करता हैं । आधुनिक परिप्रेक्ष्य में तो वित्तीय प्रबंध की भूमिका एवम् दायित्वों में और भी भारी वृद्धि हुई क्योंकि व्यवसाय का स्तर अंतर्राष्ट्रीय एवम् बहु प्रतियोगी होने के कारण भारी मात्रा में वित्त की आवश्यकता होती है । इस परिप्रेक्ष्य में वित्तीय प्रबंध का दायित्व केवल वित्त जुटाना ही नहीं होता बल्कि उपयुक्त लागत पर वित्त को जुटाना होता हैं । स्पष्ट है कि वित्तीय प्रबंध सामान्य प्रबंध में अपना विशिष्ट एवम् महत्वपूर्ण स्थान रखता है ।

उपर्युक्त वर्णित दृश्य को समझने के पश्चात आप यह समझ चुके होंगे कि वित्तीय प्रबंध के अन्तर्गत यह महत्वपूर्ण नहीं है कि किस प्रकार के व्यापार का चयन किया जाये । इस प्रकार वित्तीय प्रबंध कोषों को कुशलता पूर्ण ढंग से प्राप्त करने तथा उसके विभक्तीकरण (Acquisition and allocation) से सम्बन्धित हैं । क्रियात्मक शब्दावली में यह कहा जा सकता है कि यह कोष प्रवाह के प्रबंध से सम्बद्ध है तथा इसमें कोषों को प्राप्त करना, अल्प कालीन तथा दीर्घकालीन कोषों के निवेश का निर्णय करना तथा उपार्जित राशि का स्वामियों में वितरण करना सम्मिलित हैं । दूसरे शब्दों में वित्तीय प्रबंध तीन प्रमुख वित्तीय निर्णयों पर आधारित है:

(1) विनियोग, (2) वित्तीयन तथा, (3) लाभांश ।

1.2 वित्तीय प्रबंध का अर्थ (Meaning of Financial Management)

व्यावसायिक वित्त का सम्बन्ध लाभोपार्जन के उद्देश्य से संचालित किये जाने वाले उपक्रमों की वित्तीय व्यवस्था करने से होता है । अर्थात वित्तीय प्रबंध क्रिया की वह विधि है जिसके द्वारा संस्था के वित्तीय संसाधनों का नियोजन तथा नियन्त्रण किया जाता हैं । यह एक सूत्रबद्ध निर्णयन प्रक्रिया है जो व्यापारिक संगठन की उद्देश्य पूर्ति हेतु सम्पत्तियों को प्राप्त करने, उनका वित्तीयन तथा प्रबंध करने से सम्बन्धित है । यह भी कहा जा सकता है अंशधारियों को वित्तीय पुष्टता प्रदान करने की यह एक सुनियोजित निर्णयन विधि हैं । वित्तीय प्रबंध की रोकड प्रबंध, कोष की प्राप्ति तथा पूंजी की प्राप्ति तथा वितरण प्रबंध का उद्देश्य व्यापार की कीमत को बढ़ाना हैं ।

Raymond Chamber के अनुसार "वित्तीय प्रबंध में वित्तीय उद्देश्यों के लिये वित्तीय संसाधनों को प्राप्त एवं प्रयोग करने सम्बन्धी क्रियाओं के पूर्वानुमान योजकता संगठन निर्देशन संयोजन एवं नियंत्रण को सम्मिलित किया जता है'

Phillipparus विस्तृत परिभाषा इस प्रकार दी है "वित्तीय प्रबंध किसी फर्म के लिये अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन साख को प्राप्त करने तथा वित्तीयन करने के परिणात्मक प्रबन्धकीय निर्णयों से सम्बंधित है। " यह परिभाषा उस स्थिति का वर्णन करती है जो विशिष्ट सम्पत्तियों (या सम्पत्तियों के समूह) के चयन की आवश्यकता तथा विशिष्ट समस्या के आकार तथा प्रगति को बताती है।

वैस्टन एवं ब्राइघम के अनुसार "वित्तीय प्रबंध वित्तीय निर्णय लेने की वह क्रिया हैं जो व्यक्तिगत उद्देश्यों और उपक्रम के उद्देश्यों में समन्वय स्थापित करती हैं ' इस प्रकार वित्तीय प्रबंध को निम्नांकित ढंग से भी वर्णित किया जा सकता है, "यह अल्पकालीन व दीर्घकालीन वित्तीय संसाधनों को प्रभावशाली ढंग से प्राप्त करने तथा उनको यथोचित विनियोजित करने एवम् उनमें नियोजित लाभादायकता प्राप्त करने की विधि है" ।

इस प्रकार वित्तीय प्रबंध के दो पहलू है

1. व्यापारिक उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु कोषों को उपलब्ध करवाना ।
2. प्राप्त कोषों का प्रभावी ढंग से उपयोग करना ।

कोषों की उपलब्धता (Procurement of Funds)

चूंकि कोष विभिन्न स्रोतों से प्राप्त किये जा सकते है, अस्तु व्यापारिक फर्म इसे एक जटिल समस्या समझती है । विभिन्न स्रोतों से प्राप्त होने वाले कोषों की जोखिम, लागत तथा नियंत्रण की दृष्टि से विभिन्न विशेषतायें होती हैं । सामान्यत: व्यावसायिक संस्था की स्थापना पर निम्नांकित तीन साधनों से कोष जुटा सकती है :-

अ) फर्म द्वारा समता अंशों के निर्गमन से प्राप्त किये गये कोष जोखिम की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ हैं क्योंकि समता पूँजी की वापसी (फर्म के विघटन की स्थिति के अतिरिक्त) का कोई प्रश्न ही नही उठता है, किन्तु लागत की दृष्टि से समता पूँजी साधारण कोष प्राप्त करने की सबसे महँगी व्यवस्था है । यह इसलिये है कि वर्तमान ब्याज दर की तुलना में अशंधारी सदैव अधिक लाभांश चाहता है और यह इसलिये भी क्योंकि आय कर को दृष्टि से लाभांश लाभ का वितरण है, जो व्यय के रूप में स्वीकृत नहीं है।

ब) कर लाभ के कारण ऋणपत्र द्वारा कोष एकत्र करने का ढंग अंशपत्रों की तुलना में सस्ता है। कम्पनी के ऋणपत्रधारी को कम्पनी जो ब्याज देती है वह कर मुक्त होता है। इसका संस्था को लाभ मिलता है । लेकिन कठिन समय में भी ऋणपत्रों पर व्याज देना अपरिहार्य है जबकि लाभांश देना आवश्यक नहीं हैं । ऋणपत्रों में अधिकतम जोखिम सन्निहित हैं क्योंकि अनुबन्ध की शर्तो के अन्तर्गत उनका भुगतान करना ही पड़ता हैं, साथ ही कम्पनी को लाभ हो या न हो उन्हें ब्याज का भुगतान करना ही होता है ।

स) पूर्वाधिकार अंशों - इन कोषों पर पूर्व निश्चित दर से लाभांश चुकाना पड़ता है, लेकिन ब्याज की प्रकृति की तरह नही । अर्थात यदि किसी वर्ष संस्था को लाभ नही होता हैं तो उस वर्ष लाभांश घोषित करना आवश्यक नही होता है । अत: वित्तीय प्रबंध को कोषों को प्राप्त करते समय जोखिम लागत तथा नियन्त्रण को ध्यान में रखना ही पडता हैं । कोषों की लागत न्यूनतम स्तर पर रहनी चाहिये ताकि जोखिम तथा नियंत्रण तत्वों में संतुलन रखा जा सके ।

बैंक तथा वित्तीय संस्थाओं से भी कोष प्राप्त किये जा सकते हैं, ये कुछ निश्चित प्रतिबन्धों के साथ कोषों की व्यवस्था करते हैं । ये प्रतिबन्ध क्या प्राप्तकर्ता की अन्य स्रोतों से ऋण प्राप्त करने की स्वतन्त्रता को रोकते हैं । पूँजी बाजार के माध्यम से प्राप्त किये गये स्रोत भी 'अन्तिम उपयोग' (end use) के रूप में प्रयोग में लाये जा रहे हैं । संस्थानों तथा विनियोक्ताओं के माध्यम से प्राप्त किये गये कोषों पर सुरक्षा की दृष्टि से नियन्त्रण

आवश्यक है । उपर्युक्त के अतिरिक्त आज अल्पकालीन माध्यकालीन एवं दीर्घकालीन कोषों को प्राप्त करने के अन्य विभिन्न वित्तीय-पत्र (Financial Instruments) उपयोग में लाये जा रहे हैं जैसे वाणिज्यिक पत्र (Commercial paper) गहन शोध बॉन्ड (deep discount bonds) आदि । वित्तीय प्रबंध को कोषों की उपलब्धता तथा नियामक प्रावधानों के मध्य संतुलन बनाना होता है । वैश्वीकरण के इस प्रतिस्पर्धात्मक परिदृश्य में यह पर्याप्त नही है कि हम वित्त-निर्माण के उपलब्ध साधनों पर ही निर्भर बने रहें अपितु संसाधन जुटाने का कार्य नव-निर्मित मार्गो अथवा वित्तीय उत्पादकों के माध्यम से किया जाये, जो विनियोक्ताओं की आवश्यकता को पूरा कर सके । बहु आयामी विकल्प परिवर्तनीय बॉण्ड (multiple option convertible bonds) को एक उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता हैं । कोष स्वदेशी तथा विदेशी दोनों संस्थाओं से एकत्र किये जा सकते हैं । विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (Foreign Direct Investment FDI) तथा विदेशी संस्थागत निवेश (Foreign Institution Investment FII) विदेशी स्रोतो से कोष एकत्र करने के दो प्रमुख मार्ग हैं । इसके अतिरिक्त अमरीकन निक्षेप रसीद [(American depository receipts(ADR's)] तथा वैश्विक निक्षेप रसीद [(Global depository receipts(GDR's)] के द्वारा भी कोष एकत्र किये जा सकते हैं स्पष्ट रूप से विदेशी विनियोक्ताओं की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर कोष एकत्रीकरण की मशीनरी को विकसित करना पड़ेगा । इस प्रकार पूँजी की उपलब्धता के अन्तर्गत वित्त के स्रोतों का पता लगाना, वित्त स्रोतों का निर्धारण, कोषों को बढ़ाना, लाभ में से लाभांश का वितरण तथा लाभ को रोकना (Retention of profit) अर्थात आन्तरिक कोष निर्माण (Internal fund generation) आते हैं । स्पष्ट है कि आज वित्तीय कोषों को जुटाने के अनेक साधन उपलब्ध होते जा रहे हैं । एक कुशल वित्तीय प्रबंधक को तय करना होता है कि संस्था के लिए भी किस साधन से कितना कोष जुटाया जाये की संस्था की लाभदायकता में वृद्धि हो सके एवम् दीर्घकालीन कार्य क्षमता में सतत् रूप से सुधार हो सके । साथ ही वर्तमान प्रबंध का संस्था के नियंत्रण पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नही पड़े ।

कोषों का प्रभावशाली उपयोग : (Effective Utilisation of Funds)

एक प्रभावशाली कुशल वित्तीय प्रबंधक कोषों के प्रभावशाली उपयोग के लिये भी उत्तरदायी हैं । उसको उन बिन्दुओं की ओर इंगित करना होता हैं जहाँ कोष बेकार पड़े हैं तथा जहाँ कोषों का उचित उपयोग नही हो पा रहा हैं । सभी कोष निश्चित लागत तथा निश्चित जोखिम के आधार पर एकत्र किये जाते है । यदि इन कोषों का उपयोग इस प्रकार नहीं होता है कि इनके एकत्रीकरण की लागत की तुलना में वह अधिक आय उत्पन्न कर सके, तो व्यापार चलाने का उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है । लाभांश-वितरण निर्णय में भी यह महत्वपूर्ण ध्यान देने योग्य बात है । फिर भी कोष को ठीक ढंग से लाभ पूर्ण स्थानों पर विनियोजित करना एक कठिन कार्य है । कोषों का विनियोग इस ढंग से होना चाहिये ताकि कम्पनी अपनी वित्तीय सुदृढ़ आर्थिक स्थिति को बिना खोए इसका श्रेष्ठतम उपयोग कर सके । इस प्रकार स्थायी सम्पत्तियों पर विनियोग किये जाने वाले निर्णयों के वित्तीय प्रभावों का भी सूक्ष्म विश्लेषण होना चाहिए । इसके लिए वित्तीय प्रबंधक को पूँजी बजटन

(Capital Budgeting)की तकनीक का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए । पर्याप्त कार्यशील पूँजी (Working capital) की आवश्यकता भी उसके ध्यान में रहनी चाहिये । उसे यह सुनिश्चित करना होता है कि जब फर्म श्रेष्ठतम कार्यशील पूँजी के स्तर पर होने का लाभ प्राप्त कर रही होती है तो उसे अधिक मात्रा में कच्चे माल, ऋण तथा रोकड़ के रूप में कोषों को रोकना नहीं चाहिये ।

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर वित्तीय प्रबंध की प्रकृति अथवा विशेषताओं को इस प्रकार गिनाया जा सकता हैं :-

1. वित्तीय प्रबंध व्यावसायिक प्रबंध का अभिन्न अंग है ।
2. वित्त कार्य एक सतत् प्रशासनिक प्रक्रिया है क्योंकि वर्तमान में व्यवसाय के सफल संचालन के लिए कोषों के संग्रहण एवम् उनके विवेकपूर्ण उपयोग का दायित्व भी इसके कार्य क्षेत्र में आता हैं ।
3. वित्त कार्य वर्णनात्मक कम तथा वैज्ञानिक एवं विश्लेषणात्मक अधिक है ।
4. प्रबंध के समस्त कार्यकारी क्षेत्रों में वित्तीय प्रबंध मूलतः केन्द्रीयकृत स्वभाव का होता है ।
5. वित्तीय प्रबंध का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक एवम् जटिल होता है । क्योंकि इसमें लेखांकन, पूंजी बजटन अंकेक्षण, लागत नियंत्रण, रोकड, व साख प्रबंध तथा अन्य व्यवहार भी जुडे रहते हैं।
6. वित्तीय प्रंबध सभी प्रकार के निर्माणी तथा सेवा संगठनों में लागू होता है चाहे उनका आकार, प्रकृति, स्वामित्व व नियंत्रण कैसा भी हों ।
7. वित्तीय प्रबंध लेखांकन कार्य से मित्र होता है । मूल रूप से लेखांकन का कार्य समंक संग्रहण करना है जबकि वित्त कार्य निर्णयन के लिए समकों के विश्लेषण से सम्बन्धित है ।
8. वित्तीय प्रबंध कार्य निष्पति का मापक होता है ।
9. वित्तीय प्रबंध उच्च प्रबन्धकों के निर्णय में सहायक होता हैं ।

1.3 वित्तीय प्रबंध का विकास (Evolution of Financial Management)

वित्तीय प्रबंध की अवधारणा के अध्ययन में आपको यह मत जानने की इच्छा निश्चित रूप में हुई होगी कि वित्तीय प्रबंध का विकास कब से हुआ है? वित्तीय प्रबंध का विकास गत 50 वर्षों में हुआ है । वित्तीय प्रबंध के विकास क्रम को तीन चरणों में विभक्त कर सकते हैं । शताब्दी के प्रारम्भ में ही वित्तीय प्रबन्ध के पृथक से अध्ययन की आवश्यकता अनुभव की गयी । विकास क्रम के तीन चरण निम्नवत है:-

पारम्परिक काल (The Traditional Phase):- इस काल में वित्तीय प्रबंध की आवश्यकता केवल आकस्मिक रूप से अनुभव की जाती थी, जैसे फर्म के अधिग्रहण, सम्मिलियन विस्तार तथा समापन आदि के अवसर । संगठन में जब हम वित्तीय निर्णय ले रहे होते थे उस समय भी बाहरी निवेशकों की आवश्यकता को ध्यान में रखा जाता था । जैसे निवेशक बैंक तथा जो व्यापार में धनराशि विनियोजित करते थे ।

संक्रमण काल (The Transitional Phase):- इस काल में वित्तीय प्रबंध जिस दिन प्रतिदिन की समस्याओं का सामना करता था उनको अधिक महत्वपूर्ण माना जाता था । कोषों का विश्लेषण, योजना एवं नियन्त्रण से संबन्धित सामान्य समस्याओं पर इस काल खण्ड में विशेष ध्यान दिया जाता था ।

आधुनिक काल (Modern Phase):- इस काल में भी लगातार विकास क्रम जारी है । वित्तीय प्रबंध के कार्य क्षेत्र में अत्यधिक विस्तार हुआ है । एक कम्पनी का वित्तीय विश्लेषण करना महत्वपूर्ण हो गया हैं । यह विश्लेषण निर्णयन में सहायता करता हैं । इस काल खण्ड में प्रभावी बाजार (Efficient markets) पूँजी बजटन (Capital budgeting), विकल्प मूल्यांकन(option pricing) मूल्यांकन प्रतिमान (Valuation models) से सम्बन्धित विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ हैं तथा वित्तीय प्रबंध से सम्बन्धित विभिन्न क्षेत्रों का विकास हुआ हैं । अब व्यावसायिक वित्त का अध्ययन वर्णनात्मक न रह कर विश्लेषणात्मक हो गया है इसी कारण इस विषय का नाम निगत वित्त' से बदल कर 'प्रबन्धकीय वित्त' या वित्तीय प्रबंध हो गया है ।

1.4 वित्तीय प्रबंध का उद्देश्य (Objectives of Financial Management)

आप इस तथ्य से अच्छी तरह से अवगत होने चाहिए कि बिना स्पष्ट उद्देश्यों के निर्धारण के किसी भी कार्य को कभी भी पूरा नहीं किया जा सकता है । उद्देश्यहीन व्यक्ति रास्ते में भटकता रहता है इसलिए यह कार्यक्षम वित्तीय प्रबंध के लिए आवश्यक है कि उसके सामने कुछ उद्देश्य तथा लक्ष्य हों, क्योंकि उद्देश्यों को ध्यान में रख कर ही यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है, कि कोई वित्तीय निर्णय उचित है अथवा नहीं । यद्यपि वित्तीय प्रबंध के अनेक उद्देश्य बतलाये जा सकते हैं किन्तु हम यहाँ दो उद्देश्यों का विस्तार से अध्ययन करेंगे । ये हैं:-

लाभार्जन अधिकतमकरण (Profit Maximisation)

परम्परागत रूप से यह तर्क दिया जाता है कि कम्पनी का उद्देश्य लाभार्जन है, उसी प्रकार वित्तीय प्रबंध की उद्देश्य भी लाभ को अधिकतम करना हैं । यह स्वयं में गर्भित सत्य है कि वित्तीय प्रबंधक इस प्रकार निर्णय करे फर्म के लाभ अधिकतम हो जायें । इस प्रकार प्रत्येक विकल्प पर यह विचार किया जाता है कि यह अधिकतम लाभ दे रहा है या नहीं लाभों को अधिकत्तम करने के उद्देश्य की उपयुक्तता को निम्नलिखित तर्को के आधार पर न्यायोचित बताया जाता है:-

1 लाभ अधिकतम करना विवेक के आधार पर उपयुक्त हैं ।

2 अधिकतम लार्भाजन आर्थिक कुशलता का सूचक होता हैं ।

3 लाभ अर्जन के आधार पर साधनों का कुशल आंबटन एवं उपयोग हो सकता है ।

4 लार्भाजन प्रेरणा के स्त्रोत होते है ।

फिर भी केवल लाभ को अधिकतम करना मात्र कम्पनी का उद्देश्य नहीं हो सकता है । अत: इस उद्देश्य को सीमित रखना ही उपयुक्त है । यदि लाभ को अनावश्यक ज्यादा महत्व दिया

गया, तो अनेकों समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं । जैसे अधिकतम लाभार्जन के पीछे जोखिम भी संलग्न होती हैं । साथ ही अधिकतम लाभार्जन उद्देश्य बहुत संकीर्णता लिये हुये है । यह सामाजिकता के साथ-साथ कर्मचारियों, उपभोक्ताओं, समाज के हितों को ध्यान में रखने में असमर्थ होता है । यदि इन तत्वों की अवहेलना की गयी तो कम्पनी अधिक समय तक जीवित नही रह सकेगी । सामाजिक एवं चारित्रिक मूल्यों की बलि चढ़ाकर अधिकतम लाभार्जन का विचार अल्प दृष्टि नीति का परिचायक होता हैं ।

धन/मूल्य-अधिकतमकरण (Wealth/Value Maximization)

अब लाभ को अधिकतम करने के स्थान पर फर्म को सम्पदा के मूल्य को अधिकतम करना व्यवसाय का मूल उद्देश्य माना जा रहा है । अत: वित्तीय प्रबंध का उद्देश्य भी फर्म को सम्पदा के मूल्य को अधिकतम करना होता हैं । यह सभी जानते हैं कि अधिकतर कम्पनियां अपने अंशों को स्टॉक मार्केट में बेचती हैं । जनता विनियोग की भांति इन अंशों को खरीदती है । इसका अर्थ यह है कि वह इन अंशों से कुछ वापसी की अपेक्षा करती है । यह वित्तीय प्रबंधक का कर्तव्य है कि अंशधारियों को अंशों पर अच्छा लाभ प्राप्त हो, ताकि अंश बाजार में अंशों की कीमत बढ़े। अंश के मूल्य को प्रभावित करने वाले अनेक तत्व हैं । यदि कम्पनी के विक्रय अधिक हैं तथा उद्योग जगत में कम्पनी का अच्छा नाम है तो कम्पनी के अंशों का मूल्य बढ़ेगा । यदि कम्पनी जोखिम पूर्ण निवेश करती है तो उस पर जनता का विश्वास कम हो जायेगा तथा उसके अंश का मूल्य गिर जायेगा । इसका अर्थ यह हुआ कि वित्तीय प्रबंधक कम्पनी के वित्त सम्बन्धी निर्णयों को प्रभावित करने की शक्ति रखता है । निर्णय ऐसे होने चाहिये, जिससे कम्पनी के अंशों का मूल्य गिरे नहीं । इस प्रकार धन एवं मूल्य को अधिकतम करना वित्तीय प्रबंध का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य हो सकता है ।

सम्पदा के मूल्यन अधिकतम करने का सिद्धान्त परिवर्तित व्यावसायिक परिस्थितियों में निगर्मित उपक्रमों के लिए भी उपयुक्त होता है । यह सिद्धान्त संभावित लाभों के समय मूल्य को मान्यता देता है तथा जोखिम एवं अनिश्चितता का भी विश्लेषण करता है । इस सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न विकल्पों में से सर्वोत्तम विकल्प का चुनाव किया जा सकता है ।

वस्तुत: सम्पदा के मूल्य को अधिकतम करने के सिद्धान्त के निम्न लाभ हैं -

- सम्पदा मूल्य अधिकतम करना एक स्पष्ट कारण है, इसमें भावी रोकड़ प्रवाहों का वर्तमान मूल्य लिया जाता है ।
- यह सिद्धान्त मुद्रा के समय मूल्य पर विचार करता है जिससे रोकड़ प्रवाहों का वर्तमान मूल्य के आधार पर प्रबंध महत्त्वपूर्ण निर्णय ले सकता है ।
- इस सिद्धान्त को सार्वभौमिक स्वीकृति प्राप्त हुई है क्योंकि यह वित्तीय संस्थाओं, स्वामियों, कर्मचारियों तथा समाज सब के हित का ध्यान रखता है ।
- यह सिद्धान्त प्रबंध को सुदृढ़ लाभांश नीति अपनाने का निर्देशन देता है जिससे समता अंशधारियों को अधिकतम प्रत्याय प्राप्त हो ।
- यह सिद्धान्त जोखिम तत्व को विनियोग निर्णयों में आवश्यक महत्व प्रदान करता है ।
- नये उत्पाद प्रक्रिया विकास तथा उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार द्वारा हिस्से में वृद्धि करना।
- आवश्यक एवं उच्च स्तरीय जोखिम से दूर रहना ।

- वित्त पूर्ति में ऋण एवं समता में संतुलन बनाये रखना ।
- संतोषप्रद लाभांश नीति को निरन्तर बनाये रखना ।

सम्पदा अधिकीकरण की श्रेष्ठता (Superiority of Wealth Maximization)

वर्तमान परिवर्तित व्यावसायिक परिस्थितियों में लाभ अधिकीकरण के सिद्धान्त से सम्पदा अधिकीकरण का सिद्धान्त निम्नलिखित कारणों से अधिक उपयुक्त है :-

1. **आय का रोकड़ प्रवाहों में माप :-** इसमें विनियोग से होने वाली आय की माप लेखांकन लाभों के आधार पर न की जाकर रोकड़ प्रवाहों के आधार पर की जाती है । इसलिए आय का माप रोकड़ प्रवाहों में किया जाने के कारण लेखांकन लाभों की अस्पष्टता एवं संदिग्धता समाप्त हो जाती है ।
2. **मुद्रा के समय मूल्य को मान्यता -** यह सिद्धान्त विभिन्न वर्षों में प्राप्त होने वाली सम्भावित आय को एक निश्चित बट्टा दर पर कटौती करके समय मूल्य को भी मान्यता प्रदान करता है ।
3. **जोखिम एवं अनिश्चितता का विश्लेषण** - इसमें जोखिम एवं अनिश्चितता की सीमा का भी विश्लेषण किया जाता है जिसके अनुसार विभिन्न विकल्पों में से सर्वोत्तम विकल्प का चुनाव आसानी से किया जा सकता है ।
4. **अन्य उद्देश्यों के प्रतिकूल नहीं** :- सम्पदा अधिकतम करने का उद्देश्य संस्था के अन्य उद्देश्यों जैसे-बिक्री अथवा बाजार अंश अधिकतम करने से प्रतिकूल नहीं है, बल्कि यह इन अन्य उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता करता है ।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि ' सम्पदा अधिकीकरण का उद्देश्य लाभ अधिकीकरण ' के उद्देश्य से श्रेष्ठ है । इसमें लाभों पर दीर्घकालीन दृष्टिकोण से विचार किया जाता है । किसी भी संस्था के मूल्य का वास्तविक सूचक इसके अंशों का बाजार मूल्य होता है जो प्रति अंश अर्जन, अर्जनों का समय, जोखिम आदि सभी घटकों को परिलक्षित करता है । इस प्रकार सम्पदा अधिकीकरण के उद्देश्य के अनुसार वित्तीय प्रबंध का उद्देश्य दीर्घकाल में कम्पनी के अंशों का बाजार मूल्य अधिकीकरण होना चाहिए । यह कम्पनी की उन्नति एवं अंशधारियों की सम्पदा का वास्तविक दिग्दर्शक है । किन्तु जैसा कि **लॉरेन्स जे.गिटमैन** ने लिखा है, ' लाभ अधिकतम करना भी सम्पदा अधिकीकरण की योजना का अंग हो सकता है । सम्भवत: कभी-कभी इन दोनों उद्देश्यों को एक साथ जारी रखा जा सकता है, किन्तु लाभ अधिकीकरण को कभी भी सम्पदा अधिकतम करने के वृहत् उद्देश्य पर हावी होने की अनुमति नहीं देनी चाहिए।

1.5 वित्तीय प्रबंध का महत्व (Importance of Financial Management)

व्यावसायिक संगठनों में वित्तीय प्रबंध का महत्व पिछले 40-45 वर्षों में अत्यधिक बढ़ गया है । द्वितीय विश्व युद्ध के पूर्व तक प्रबंध की परम्परागत विचारधारा के अनुसार वित्तीय प्रबंध का कार्य संस्था के लिए उचित शर्तों पर पूंजी प्राप्त करना था । परन्तु आधुनिक विचारधारा के अनुसार वित्तीय प्रबंध का कार्य केवल पूंजी प्राप्त करना ही नहीं बल्कि व्यवसाय में पूजी

का अनुकूलतम उपयोग करना भी है । वित्तीय प्रबंध सीमित बजट के अन्तर्गत व्ययों का प्रबन्धन है । इसका अन्तर्गत सर्वप्रथम महत्वपूर्ण मद में राशि व्यय की जाती है, उसके बाद बची राशि से ऋणों का भुगतान किया जाता है और उसके बाद भी यदि कोई राशि बचती है तो उसका इच्छानुसार उपयोग किया जाता है । वित्तीय प्रबंध का अर्थ संगठन क वित्त से सम्बंधित सभी विषयों का प्रबंधन है । यह सिद्धान्त संगठन, परिवार, तथा देश में समान रूप से लागू होता है । हमें आय तथा व्यय के मध्य संतुलन रखना ही होगा ।

हम **कॉटन टैक्सटाइल लिमिटेड** कम्पनी के उदाहरण के द्वारा इसे भलीभाँति समझ सकते हैं । कम्पनी टैकनटाइल बेच कर लाभ कमा रही है । हम अनुमान करे कि कम्पनी की प्रतिमाह 20 लाख रूपये की आय है । यह कम्पनी की आय है । कम्पनी के अनेकों व्यय भी हैं । कम्पनी के प्रमुख व्यय जो कम्पनी की सूची में सम्मिलित हैं - कर्मचारियों को मजदूरी का भुगतान, टैक्सटाइल बनाने के लिये कच्चा माल, बिजली तथा जल के बिल तथा टैक्सटाइल का निर्माण करने वाली मशीनों की मरम्मत । इन सभी का भुगतान प्राप्त आय में से करना है । यदि व्ययों की तुलना में आय अधिक है तो कम्पनी को लाभ होगा । इसके विपरीत यदि आय की तुलना में व्यय अधिक होंगे तो कम्पनी को हानि होगी । यदि क्रम लगातार जारी रहा तो कम्पनी अपनी समस्त सम्पत्तियों से हाथ धो बैठेगी । दूसरे शब्दों में कम्पनी अपनी सम्पत्तियों के साथ-साथ उसके पास निजी जो कुछ भी है उसे खो देगी । इस स्थिति में कम्पनी के कर्मचारियों से कम्पनी छोड़ने के लिये भी कहा जा सकता हैं । इस स्थिति से बचने के लिये कम्पनी को रोकड़ आगत (cash inflows) कम्पनी के अन्दर आने वाले राशि तथा रोकड़ निगम (cash outflows) कम्पनी द्वारा किये जाने वाले विभिन्न व्यय को व्यवस्थित करना होता है । उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि वित्त आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था का जीवन रक्त हैं । यह समस्त क्रियाओं का आधार हैं प्रो हसबैंड एवं डोकरे का यह कथन उल्लेखनीय है "विभिन्न आर्थिक एवं व्यावसायिक गतिविधियों को सूत्र में बांधने के लिए वित्तीय प्रबंध की आवश्यकता होती हैं ।' वस्तुत: वित्त एक ऐसी धुरी है, जिसके आस-पास समस्त व्यावसायिक क्रियाएँ चक्कर लगाती हैं । इसके सफल प्रबंध में समस्त वर्गो तथा पूरी फर्म का जीवन, विकास तथा कल्याण निर्भर है । इस आधार पर वित्तीय प्रबंध के महत्व अथवा उपयोगिता को निम्नांकित शीर्षकों में देखा जा सकता है :-

उपक्रम की सफलता का आधार:- कुशल वित्तीय प्रबंध हानि में चलने वाले उपक्रम को लाभ में बदल सकता है तथा अकुशल वित्तीय प्रबंध लाभ में चलने वाले उपक्रम को नष्ट कर सकता हैं । अत: उपक्रम की सफलता काफी कुछ वित्तीय प्रबंध पर निर्भर करती है ।

वित्तीय प्रबन्ध निर्णयन का केन्द्र बिन्दु होता है सभी निर्णयों के वित्तीय प्रभावों को पूर्वानुमानित करके ही उचित निर्णय लिये जाते है ।

नियोजन समन्वय एवं नियन्त्रण का आधार:- वित्तीय पूर्वानुमानों के आधार पर योजना बनाई जाती है । जिसमें सभी विभागों के कार्यो को समन्वित किया जाता है तथा इसी अनुरूप बजटरी नियन्त्रण लाग किया जाता हैं ।

व्यावसायिक प्रबन्धों के लिए उपयोगिता - क्योंकि जब व्यावसायिक प्रबन्धक वित्तीय प्रबन्ध के सिद्धान्तों से पूर्ण रूप से परिचित हों तब ही संस्था के लिए प्रभावपूर्ण वित्तीय नीति का निर्धारण कर सकने में सक्षम होते है ।

अंशधारियों विनियोक्ताओं एवम् **वित्तीय संस्थाओं** के लिए भी महत्वपूर्ण होते है क्योंकि इन्हें अपनी अपने हितों की रक्षा के लिए उचित वित्तीय ज्ञान होना चाहिए ।

निष्कर्ष रूप में "विभिन्न आर्थिक व व्यावसायिक गतिविधियों को एक सूत्र में बांधने के लिए किसी ऐसे साधन की आवश्यकता होती है, जो उन्हें सुचारू रूप से निर्देशित कर सकें और वित्त ही वह शक्तिशाली साधन है जो इस कार्य को सम्पन्न करता हैं । " इसलिये यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि ' 'वित्त समस्त व्यापार वाणिज्य एवं उद्योग की आत्मा हैं । आधुनिक समय में उद्योग के संयुक्त स्वामित्व का विस्तार, स्वामित्व तथा प्रबन्ध की भिन्नता तथा प्रबन्ध के सामाजिक उत्तरदायित्व में वृद्धि के कारण वित्तीय प्रबंध का महत्व उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा है ।

1.6 वित्तीय प्रबंध का क्षेत्र अथवा कार्य (Scope or Functions of Financial Management)

आइये अब हम देखें कि वित्तीय प्रबंध के कार्य कौन से हैं?

एक व्यावसायिक उपक्रम में वित्तीय प्रबंध के कुछ महत्वपूर्ण दायित्व होते हैं, जिनका निष्पादन विभिन्न कार्यो को सम्पन्न करके किया जाता है जिन्हें वित्त कार्यो के रूप में जाना जाता है । इन्हें वित्त कार्य का क्षेत्र अथवा वित्त कार्य की विषय-सामग्री (Scope or Contents of Finance Functions) भी कहा जाता है । वित्तीय विशेषज्ञों में वित्तीय प्रबंध के इन कार्यो तथा उनके नामों के बारे में मतैक्य नहीं हैं । विभिन्न विशेषज्ञ वित्तीय प्रबंध के भिन्न -भिन्न कार्य बतलाते हैं । तथा एक ही कार्य को विभिन्न नामों से पुकारते है । इनमें से कुछ कार्य निर्णय सम्बन्धी हैं जो सामरिक महत्व के हैं, कुछ कार्य नैत्यिक प्रकृति के हैं जो निर्णयों को कार्य रूप में परिणित करते हैं तथा कुछ अनावर्ती व्यावसायिक क्रियाओं से सम्बन्धित हैं । अत: अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से वित्तीय प्रबंध के इन कार्यो को आने दिये चार्ट अनुसार - (i) प्राथमिक अथवा प्रशासकीय कार्य: (ii) सहायक कार्य तथा (iii) नैत्यिक कार्य में वर्गीकृत किया जा सकता है ।

प्राथमिक अथवा प्रशासकीय वित्त कार्य (Primary or Administrative Finance Functions)

वित्तीय प्रबंधक का यह मुख्य कार्य होता है । प्राथमिक अथवा प्रशासकीय वित्तीय कार्यो से आशय वित्त सम्बन्धी महत्वपूर्ण निर्णय लेने से होता है । इन निर्णयों के लिए युक्तियुक्त नियोजन की आवश्यकता होती है । इसलिए इन निर्णयों को लेने के लिए वित्तीय प्रबंधक में उच्चस्तरीय ज्ञान, चातुर्य एवं अनुभव की आवश्यकता होती है । उपक्रम की अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कोषों की प्राप्ति, उचित आवंटन एवं प्रभावपूर्ण उपयोग तथा लाभ एवं सम्पदा का अधिकीकरण वित्तीय प्रबंध का मुख्य उद्देश्य होता

है । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए निम्नलिखित प्रशासकीय अथवा निर्णयात्मक कार्य करने पड़ते हैं-

1. वित्तीय नियोजन (Financial Planning)

"नियोजन का आशय व्यवसाय के लक्ष्यों अथवा उद्देश्यों के निर्धारण अथवा उपलब्ध विभिन्न विकल्पों में से सर्वोत्तम विकल्प का चयन करने तथा उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए नीतियों एवं कार्यक्रमों के निर्धारण से है । " उपक्रम के संगठन एवं संचालन में वित्तीय योजना की आवश्यकता होती है । वित्तीय नियोजन कार्य में निम्नलिखित तीन कदम उठाये जाते है-

- वित्तीय उद्देश्यों-दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन दोनों का निर्धारण ।
- वित्तीय नीतियों का निरूपण यथा पूंजीकरण पूंजी संरचना, वित्त के स्त्रोत कोषों का विनियोग, लाभांश आदि ।
- कोषों एवं अकुशलता को दूर करने के लिए पुन:नियोजन ।

2. वित्तीय नियंत्रण (Financial Control)

यह वित्तीय प्रबंध का महत्त्वपूर्ण कार्य होता है । इसके अन्तर्गत पूर्ण निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये अधीनस्थ कर्मचारियों को आवश्यक निर्देश व नेतृत्व देना, योजना के अनुसार वित्तीय प्रगति का समय-समय पर नियंत्रण करना तथा विचलन की दशा में आवश्यक सुधार करना शामिल किया जाता है । प्रबंध इस कार्य के लिए बजटरी नियंत्रण पद्धति का प्रयोग करता है ।

3. आवश्यक कोषों की प्राप्ति (Acquisition of Funds)

इसके लिए सर्वप्रथम आवश्यक पूंजी मात्रा का निर्धारण संस्था की सम्पत्तियों (स्थायी, चालू एवं अमूर्त) में विनियोजित की जाने वाली राशि का अनुमान लगाकर किया जाता है । इसके पश्चात् इस पूंजी मात्रा को विभिन्न स्त्रोतों यथा समता अंश, अधिमान अंश, ऋण आदि से प्राप्त करने की व्यवस्था की जाती है । कोषों की व्यवस्था किस स्त्रोत से की जाये, इसका निर्णय पूंजी की लागत की प्रकृति (स्थायी या परिवर्तनशील) तथा कोष की अवधि को ध्यान में रखकर किया जाता है । कोषों की व्यवस्था ने केवल प्रारम्भिक वित्तीय आवश्यकताओं की 'पूर्ति' के लिए की जाती है, बल्कि भविष्य में उपक्रम के विकास, विस्तार तथा एकीकरण योजनाओं के लिए भी करनी पड़ती है ।

4. कोषों का उपयुक्त आबंटन (Allocation of Funds)

कोषों का स्थायी सम्पत्तियों एवम् चालू सम्पत्तियों में आबंटन संस्था की कार्य क्षमता को प्रभावित करता है । अत: उपक्रम नीति के तहत कोषों का आवंटन वित्तीय प्रबंध का मुख्य कार्य होता है । आवंटन प्रक्रिया में लाभदायकता, तरलता एवम् जोखिम में सन्तुलन बना रहना चाहिए ।

5. आय वितरण (Distribution of Income)

इसमें यह तय किया जाता है कि शुद्ध लाभों का कितना भाग नकद लाभांश के रूप में अंशधारियों को वितरित किया जायें, कितना भाग प्रतिधारित अर्जनों के रूप में व्यवसाय

में रखा जाये तथा कितना भाग कर्मचारियों को बोनस एवं लाभभागिता के रूप में वितरित किया जाये । आय वितरण का निर्णय इसका अंशधारियों की सम्पदा पर पड़ने वाले प्रभावों के आधार पर किया जाना चाहिए ।

सहायक कार्य (Subsidiary Functions)

उपर्युक्त वर्णित प्रमुख कार्यो के अतिरिक्त वित्तीय प्रबंधक को निम्नलिखित सहायक कार्यो को भी सम्पादित करना पडता है-

1. **उपयुक्त तरलता स्तर को बनाये रखना**

   उपक्रम के लिए अपने दायित्वों का समय पर भुगतान करने तथा दैनिक कार्यो के सफल निष्पादन हेतु पर्याप्त तरलता बनाये रखना आवश्यक होता है । वित्तीय प्रबंध को उपक्रम की तरलता बनाये रखने के लिए रोकड़, अन्तर्वाह (cash Inflows) तथा रोकड़ बर्हिवाह (cash Outflows) में समन्वय स्थापित करना पड़ता है । इसके लिये वह रोकड़ बजट तथा रोकड़ पूर्वानुमान विधियों का प्रयोग करता है ।

2. **लाभदायकता सम्बन्धी कार्य (Profitability Function)**

   अंशधारियों में अधिकतम लाभांश वितरित करने तथा संस्था की सम्पत्तियों के मूल्य में वृद्धि करने के उद्देश्य से वित्तीय प्रबंधक उपक्रम के लाभों को अधिकतम करने का कार्य करता है। वर्तमान प्रतिस्पर्धात्मक युग में संस्था के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए लाभदायकता को बनाये रखना अत्यन्त आवश्यक होता है । इसके लिये वह लाभ-नियोजन, वस्तुओं एवं सेवाओं का मूल्य निर्धारण, पूंजी लागत की गणना तथा लागत नियंत्रण जैसी तकनीकों का प्रयोग करता है ।

3. **वित्तीय प्रबंध का मूल्यांकन (Evaluation of Financial Management)**

   वित्तीय प्रबंध का यह दायित्व होता है कि वह उपक्रम, की वित्तीय निष्पादन का विश्लेषण करके उसके परिणामों के बारे में संचालक मण्डल को अवगत कराये । इससे त्रुटियों को प्रकाश में लाया जा सकेगा तथा भावी नीतियों और योजनाओं में परिवर्तन सम्भव हो सकेगा। वित्तीय मूल्यांकन में गत वर्ष की प्रगति की तुलना में चालू वर्ष की कार्य निष्पति का समीक्षात्मक विश्लेषण किया जाता है । इसके लिए अन्तर-वर्ष तुलना एवं अन्तर-फर्म तुलना विधियों का प्रयोग किया जाता है । वित्तीय विश्लेषण के लिए वित्त प्रबंधक द्वारा अनुपात विश्लेषण, प्रवृति विश्लेषण, कोष प्रवाह विश्लेषण, रोकड़ प्रवाह विश्लेषण, लागत लाभ-मात्रा विश्लेषण, विचरण आदि अनेक आधुनिक विधियों का उपयोग किया जाता है।

4. **अन्य विभागों से समन्वय (Co–ordination with Other Departments)**

किसी भी उपक्रम की सफलता विभिन्न विभागों की क्रियाओं में समन्वय पर निर्भर करती है । वित्त कार्य व्यवसाय के प्रत्येक कार्य को प्रभावित करता है, अत: वित्त विभाग तथा अन्य विभागों की योजनाओं एवं क्रियाओं में अच्छा समन्वय होना चाहिए । वित्तीय प्रबन्धक का यह कर्तव्य है कि वह उपक्रम में लिये गये विभिन्न निर्णयों में इस प्रकार समन्वय स्थापित कर सके ताकि उनमें एकरूपता आ सके एवं संस्था के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक हो सके।

नैत्यिक या दैनिक वित्त कार्य (Incidental or Routine Finance Functions)

इस वर्ग के अन्तर्गत वित्तीय प्रबंध के वे कार्य आते हैं जो दैनिक प्रकृति के होते हैं । ये कार्य प्रतिदिन निम्न स्तरीय कर्मचारियों जैसे-सहायक लेखापाल, रोकड़िया या लिपिक आदि द्वारा सम्पन्न किये जाते है । इनकी सहायता से उच्च अधिकारियों को वित्तीय निर्णय लेने में सरलता होती है । ये कार्य अन्य निर्णयन कार्यो (Decision making Functions) के पूरक होते हैं । ऐसे कार्यो के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य सम्मिलित किये जाते हैं

- प्रत्येक व्यवहार का लेखा करना ।
- विभिन्न वित्तीय प्रपत्र तैयार करना ।
- नकद शेष की व्यवस्था करना ।
- उधार के व्यवहारों का प्रबन्ध करना ।
- प्रतिभूतियों एवं महत्वपूर्ण वित्तीय प्रपत्रों को सुरक्षित रखना ।
- पैंशन एवं कल्याण योजनाओं का प्रशासन ।
- आन्तरिक अंकेक्षण की व्यवस्था करना ।
- राजकीय नियमनों का पालन करना ।

प्रशासकीय वित्त कार्यो के सम्बन्ध में निर्णय लेने के लिए मुख्य वित्तीय अधिकारी अथवा नियंत्रक ही उत्तरदायी होता है । किन्तु नैत्यिक या दैनिक कार्य निम्न स्तर पर कार्यरत व्यक्तियों द्वारा निष्पादित किये जाते हैं । नैत्यिक कार्यो में मुख्य वित्तीय अधिकारी की संबद्धता कुछ कार्यो जैसे प्रक्रिया नियमों का निर्धारण, प्रयुक्त प्रपत्रों का चयन, मानकों का निर्धारण आदि तक ही सीमित होती है ।

1.7 मुख्य वित्तीय अधिकारी की परिवर्तित/भूमिका आधुनिक विचारधारा (Changing Role and Responsibilities of Chief financial Officer or The modern Approach)

परम्परागत निगम वित्त से निकल कर आधुनिक वित्तीय प्रबंधन को लम्बा रास्ता तय करना पडा है । वित्तीय प्रबंध की परम्परागत विचारधारा जो फर्म के लिए विशेष घटनाओं के समय वित्त संग्रह करने के कार्यो पर बल देती है । उसका दायित्व लेखांकन एवं वैधानिक अंकेक्षण, संसाधन संग्रहण तथा बजट एवं दीर्घकालीन नियोजन तक सीमित था । किन्तु गत कुछ वर्षों में संगणना तकनीक एवं दूरसंचार में तीव्र वृद्धि अर्थव्यवस्था का उदारीकरण, व्यवसाय का वैश्वीकरण, सूचना तकनीक सेवाओं की वैश्विक माँग निगमीय सुशासन, गुणवत्ता आधारित प्रतिस्पर्धा तथा संयुक्त राज्य **अमेरिका में एनरॉन ग्लोबल क्रॉसिंग, टाइको, वर्ल्डकॉम जैसे निगमीय घोटालों** ने मुख्य वित्तीय अधिकारी की भूमिका एवं दायित्वों में महत्वपूर्ण परिवर्तन ला दिये हैं । परिणाम स्वरूप आज के मुख्य वित्तीय अधिकारी को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है जिनमें (i) निगमीय लक्ष्य (ii) वित्तीय प्रक्षेपण (iii) वित्तीय विवरणों का पुनर्रावलोकन (iv) संसाधन प्रबन्ध (v) निगमीय प्रशासन (vi) संविलयन एवं अधिग्रहण पहल तथा (vii) जोखिम प्रबंध प्रमुख हैं ।

आधुनिक विचारधारा के अनुसार वित्तीय-प्रबंधक फर्म की सभी वित्तीय समस्याओं पर विश्लेषणात्मक रूप से विचार करता है तथा यह फर्म के कुल प्रबंध का एकीकृत भाग होता

है । वित्तीय प्रबंध का केन्द्रीय कार्य फर्म के वित्तीय साधनों का विवेकपूर्ण उपयोग करना है । इस कार्य के लिए वित्तीय प्रबंधक को साधनों के उपयोग के सम्भावित लाभों की वैकल्पिक साधनों की सम्भावित लागत से तुलना करनी होती है तथा ऐसे निर्णय लेने होते हैं जिससे साधनों की लागत की तुलना में लाभ अधिकतम हो और फर्म के पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति हो सके । आधुनिक विद्वानों के अनुसार पूँजी का नियोजन, पूँजी का संग्रहण, पूँजी का विनियोजन, आय का प्रबंध आदि कार्यो को वित्तीय प्रबंध में सम्मिलित किया जाता है । वित्तीय प्रबंधक को ही कम्पनी के प्रवर्तन, समापन, पुर्नगठन, संविलयन आदि परिस्थितियों के समय उत्पन्न होने वाली वित्तीय समस्याओं का समाधान करना पड़ता है।

वित्त कार्य की आधुनिक विचारधारा के अनुसार वित्त कार्य में निम्न कार्यो को सम्मिलित किया जाता है:

- उपक्रम की वित्तीय आवश्यकताओं का निर्धारण ।
- उपक्रम के लिए आवश्यक वित्त उपयुक्त साधनों से न्यूनतम संभव लागत पर प्राप्त करना।
- वित्त को विभिन्न सम्पत्तियों में आबंटित करना ।
- आबंटित वित्त का प्रभावी उपयोग एवं नियन्त्रण करना ।
- कोषों के प्रयोग के निष्पादन का मूल्यांकन करना,
- उच्च प्रबंध को आवश्यक प्रतिवेदन समय-समय पर प्रस्तुत करना ।

इस प्रकार आधुनिक के अनुसार वित्त कार्य एक बहुत ही व्यापक कार्य है, जिसमें उपक्रम की समस्त वित्तीय क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है जिससे प्रभावी वित्तीय नियोजन न्यूनतम लागत पर वित्तीय साधनों की प्राप्ति तथा वित्तीय साधनों के अनुकूलतम एवं कुशल उपयोग द्वारा उपक्रम के उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है ।

1.8 वित्तीय प्रबंध का सम्बन्धित विधाओं से सम्बन्ध (Relationship of Financial Management with Related Disciplines)

अब तक की विवेचना से निश्चित रूप से आपका यह मत बना होगा कि वित्तीय प्रबंध की उपयोगिता के कारण उक्त प्रबंध पूर्णत: स्वतंत्र होता होगा अर्थात उसके ऊपर कोई नही होता है । लेकिन वस्तुत: वित्तीय प्रबंधन सम्पूर्ण प्रबंधन के रूप में होता हैं ना कि पूर्णत: स्वतंत्र। यह विस्तृत रूप से अध्ययन की विभिन्न विधाओं एवं क्षेत्रों से सम्बन्धित है जिनके नाम अर्थशास्त्र, लेखांकन, उत्पादन, विपणन तथा परिणात्मक विधियाँ हैं । यद्यपि ये विधायें परस्पर सम्बन्धित हैं, किन्तु इनमें महत्वपूर्ण अन्तर भी होता है । इन सभी विधाओं से उपयुक्त समन्वय पर ही वित्तीय प्रबंधन सफल हो सकता है ।

1.9 वित्तीय प्रबंध की सीमाएँ (Limitations of Financial Management)

अब तक की विवेचना से आप वित्तीय प्रबंध व्यूहरचना के विभिन्न पहलुओं से अच्छी तरह से सराबोर हो चुके होंगे । वित्तीय प्रबंध की अभूतपूर्व भूमिका होने के बावजूद भी इनकी अनेक सीमाएं भी है जो इस प्रकार हैं : -

1. **सभी प्रबंधकीय निर्णयों के वित्तीय प्रभाव जानना कठिन (It is difficult to know the financial effects of various managerial decisions)** एक संस्था में प्रबंधक के लिए सभी कार्यात्मक प्रबन्धकीय निर्णयों के प्रभावों को जानना तथा उन सब में समन्वय स्थापित करना बड़ा कठिन कार्य होता है ।
2. **वित्तीय लेखों पर निर्भर (Based on financial records)** वित्तीय प्रबंध के लिए वित्तीय विश्लेषण एवं विवेचन की अनेक तकनीकें काम में ली जाती हैं, जो वित्तीय लेखों पर आधारित होती हैं । वित्तीय लेखे भूतकाल से सम्बन्धित होते हैं तथा लेखा परम्पराओं एवं नीतियों से प्रभावित रहते हैं । अत: इन पर आधारित वित्तीय निर्णय इन व्याप्त दोषों से ग्रसित रहते हैं।
3. **सम्बन्धित विषयों की कम जानकारी (Lack of knowledge of related subjects)** वित्तीय प्रबंध के राही उद्देश्य तभी प्राप्त हो सकते हैं जबकि वित्तीय प्रबंधकों को प्रबंध, प्रबंध लेखांकन, सांख्यिकी, अर्थशास्त्र, अभियान्त्रिकों आदि की अच्छी जानकारी हो । इनकी जानकारी के अभाव में उच्च प्रबंध सही निर्णय लेने एवं उनके वित्तीय प्रभाव जानने में सक्षम नहीं होगा ।
4. **वस्तुनिष्ठता का अभाव (Lack of objectivity)** वित्तीय प्रबंध पूर्ण रूप से वस्तुनिष्ठ नहीं है । वित्तीय प्रबंध के निर्णय वित्तीय प्रबंधकों के व्यक्तिगत विचारों एवं भावनाओं से प्रभावित होते हैं और जब इनकी मात्रा अधिक हो जाती है तो वित्तीय निर्णय संस्था के लिए अच्छे परिणाम कम एवं बुरे परिणाम अधिक प्रदान करते है ।
5. **विकासशील विषय (Developing Subject)** वित्तीय प्रबंध पूर्ण रूप से विकसित विषय नहीं हैं तथा इसका अभी विकास हो रहा है । अनेक विचारों एवं धारणाओं के बारे में विशेषज्ञ एकमत नहीं है । वित्तीय विश्लेषण एवं निर्वाचन के प्रमाप भी बदल रहे हैं ।
6. **व्ययशील (Expensive)** एक प्रभावशाली वित्तीय प्रबंध का संगठन खड़ा करना बड़ा महँगा कार्य है । अत: छोटे व्यावसायिक प्रतिष्ठान इस भार को वहन नहीं कर पाते हैं । वित्तीय अधिकारी योग्य एवं कुशल होने चाहिए । यदि कोई संस्था योग्यता एवं कुशलता से समझौता करके घटिया संगठन निर्मित करती है तो उसके परिणाम बडे बुरे होते है ।

1.10 निष्कर्ष

वित्तीय प्रबंधन की उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचना से यह निष्कर्ष निकला है कि व्यावसायिक संस्था की सफलता असफलता काफी कुछ सुदृढ़ वित्तीय प्रबंध पर निर्भर करती है । अपार अवसरों की उपलब्धता होने के बावजूद भी यदि वित्तीय प्रबंध अदूरदर्शी एवम् कमजोर हो तो अवसरों का कोई लाभ नही उठाया जा सकता है । इसके विपरीत मजबूत वित्तीय प्रबंधन डूबती हुई नाव को न केवल बचा सकता है बल्कि उसे तैरने योग्य स्थिति में ला सकता है । इसी कारण वित्तीय प्रबंध का महत्व उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा है । सरकार की नीति में आए महत्वपूर्ण परिवर्तन-सार्वजनिक से निजीकरण की और के पीछे मुख्य कारण निजी क्षेत्र का वित्तीय प्रबंधन श्रेष्ठ होना भी है ।

एक बात और स्पष्ट हुई है कि वित्तीय प्रबंध कोई स्वतंत्र आयाम नही है बल्कि विभिन्न विभागों से उचित एवम् सकारात्मक समन्वय रखने पर ही वित्त प्रबंधन सफल होता है ।

1.11 स्वपरख प्रश्न

1. वित्तीय प्रबंध से आप क्या समझते है?
   What do you mean by financial management?
2. वित्त कार्य की परम्परागत विचारधारा क्या है?
   What is traditional approach of finance functions?
3. वित्तीय प्रबंध की प्रकृति को समझाइये ।
   Define nature of financial management.
4. सम्पदा अधिकतम करना लाभ अधिकतम करने से अच्छा उद्देश्य क्यों है?
   Why is the maximizing wealth better goal than maximizing profit?
5. "सुदृढ़ वित्तीय प्रबंध निगमों की समृद्धि की कुंजी है ।" समझाइये ।
   " Sound financial management is the key to the prosperity of corporations" Explain.
6. एक आधुनिक वित्त मुख्य अधिकारी के कार्यो एवं दायित्वों का विवेचन कीजिए ।
   Discuss the tasks and responsibilities of a modern finance manager.

1.12 उपयोगी पुस्तकें

1. G.D Bond: Financial management.
2. I.M Pandey: Financial Management.
3. Khan Jain: Financial Management.
4. Goels & goel: Management Accounting and Financial Management.
5. ओसवाल, दीक्षित: वित्तीय प्रबंध के सिद्धान्त ।
6. अग्रवाल & अग्रवाल: वित्तीय प्रबंध के सिद्धान्त
7. S.N Maheshwari:Financial Management.

इकाई-2 : मुद्रा का समय मूल्य (The Time value of Money)

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 परिचय

2.2 मुद्रा के समय मूल्य का अर्थ

2.3 मुद्रा की समय प्राथमिकता के कारण

2.4 मुद्रा के समय मूल्य का महत्व

2.5 समंजन की तकनीकें

2.6 मितिकाट की तकनीकें

2.7 ब्याज की गणना

2.8 सारांश

2.9 शब्दावली

2.10 स्वपरख प्रश्न /अभ्यास

2.11 व्यावहारिक प्रश्न

2.12 उपयोगी पुस्तकें

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- मुद्रा के समय मूल्य का अर्थ -जान सकें ।
- मुद्रा की समय प्राथमिकता के कारण की जानकारी प्राप्त कर सके ।
- मुद्रा के समय मूल्य का महत्व समझ सकें ।
- समंजन एवं मितिकाट की तकनीकें समझ सकें ।
- ब्याज की गणना करना समझ सकें ।

2.1 परिचय (Introduction)

वित्त प्रबन्धक से कम्पनी के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न समयावधि में होने वाले रोकड़ प्रवाहों से सम्बन्धित निर्णय लेने की अपेक्षा की जाती है, उदाहरण के लिए यदि एक स्थायी सम्पत्ति खरीदी जाती है तो तुरन्त ही रोकड़ बहिर्गमन होगा जबकि रोकड़ अर्न्तप्रवाह एक समय अवधि में ही उत्पन्न होगा । इसी प्रकार यदि बैंक से ऋण लेते हैं तो रोकड़ तो तुरन्त प्राप्त हो जाती है तथा उसको एक समय अवधि के बाद ही वापिस करना होता है । विभिन्न समयों पर ये रोकड़ अर्न्तप्रवाह रोकड़ बहिर्गमन के तुलनीय नहीं होते हैं अर्थात् आज के एक वर्ष के बाद या किसी अन्य अवधि के बाद 'प्राप्त होने वाला एक रूपया वर्तमान में प्राप्त होने वाले एक रूपये से कम मूल्यवान होता है अर्थात् यह कह सकते हैं कि भविष्य में प्राप्त होने वाले एक रूपये का मूल्य वर्तमान काल के एक रूपये से तुलनीय नहीं होगा, लेकिन उनको ब्याज घटक लागू करके तुलनीय बनाया जा सकता है । मूल्य में यह अंतर कुछ अमौद्रिक

कारणों को छोड़कर सामान्यतया ब्याज दर पर निर्भर करती है । वित्त के सिद्धान्त में ब्याज घटक एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा विलक्षण विचारधारा है । इस विचारधारा को मुद्रा के समय मूल्य के रूप में जाना जाता है ।

2.2 मुद्रा के समय मूल्य का अर्थ (Meaning of Time Value of Money)

मुद्रा के समय मूल्य का अर्थ है कि वर्तमान में मिलने वाले एक रूपये का मूल्य भविष्य में मिलने वाले एक रूपये के मूल्य से भिन्न होता है । दूसरे शब्दों में, यही कहा जा सकता है कि भविष्य में प्राप्त होने वाले एक रूपये का मूल्य वर्तमान के एक रूपये से कम होता है। भविष्य के रूपये की तुलना में आज के रूपये के मूल्य की यह प्राथमिकता मुद्रा हेतु समय प्राथमिकता के रूप में जानी जाती है । मुद्रा के समय मूल्य की विचारधारा व्यक्ति व व्यावसायिक गृहों दोनों पर ही समान रूप से लागू होती है ।

2.3 मुद्रा की समय प्राथमिकता के कारण (Reasons of Time Preference of Money)

1. **वर्तमान उपयोग के लिए प्राथमिकता (Reasons of Time Preference of Money)** व्यक्ति हो या व्यावसायिक गृह, अधिकांशत: आवश्यकता को तुरन्त पूरा करने को प्राथमिकता देते हैं ।
2. **जोखिम (Risk)** भविष्य में मुद्रा प्राप्ति में अनिश्चितता एवं जोखिम तुलनात्मक रूप से अधिक रहती है ।
3. **निवेश अवसर से लाभ (Benefit from the investment opportunities)** वर्तमान में मुद्रा होने से उसे विनियोग करके लाभ कमाने का विकल्प होने के कारण वर्तमान मुद्रा को प्राथमिकता देते हैं, जैसे - एक व्यक्ति के पास 10000 रू. अभी है या एक वर्ष बाद मिलेंगे तो वह आज के 10000 रू. को प्राथमिकता देगा क्योंकि वह इसे निवेश करके उस पर ब्याज कमा सकता है ।

2.4 मुद्रा के समय मूल्य का महत्व (Importance of Time Value of Money)

मुद्रा के समय मूल्य की विचारधारा समय के विभिन्न बिन्दुओं पर उत्पन्न विभिन्न राशियों को समय के एक विशेष बिन्दु के समतुल्य मूल्य तक पहुँचने में मदद करती है ।

समय की विभिन्न अवधियों पर उत्पन्न रोकड़ प्रवाह को नीचे दिए गए तो तरीकों में से किसी भी तरीके से तुलनीय बनाया जा सकता है -

1. किसी भविष्य की तिथि को वर्तमान मुद्रा का समंजन करके (By compounding the present money to a future data)
2. भविष्य की मुद्रा को वर्तमान तिथि पर मितिकाट करके (By discounting the future money to present data)

2.5 समंजन की तकनीकें (Techniques of Compounding)

(अ) एक एकाकी रोकड़ प्रवाह का भावी मूल्य (Future value of a single case flow)

एकाकी रोकड़ प्रवाह का भावी मूल्य इस प्रकार ज्ञात किया जाता है

$FV=PV(l+r)^n$

जबकि (Where),PV=Present value of cash flow today.

FV=Future value of n years.

R=Rate of interest per year.

N=No. of year for which compounding is done.

उदाहरण : 1

अंशुमान एक बैंक में 10000 रु. 6 वर्ष के लिए जमा कराता है जहाँ उसे 10% ब्याज मिलता है जिसे वार्षिक तौर पर चक्रवृद्धि किया जाएगा ।

हल : FV $=Pv(l+r)^n$

PV =Rs. 10000, r=10%and n=6years

FV =Rs.10000(1+10%)6

=Rs.10000 x 1.7716

=Rs.17716

$(l+r)^n$की गणना करना अत्यन्त कठिन होता है । विभिन्न संयोजनों के लिए $(l+r)^n$ के गुणित मूल्यों को तालिका के रूप में प्रकाशित किया जाता है । अत: हम इन तालिकाओं का संदर्भ ले सकते हैं । यह मूल्य एक वार्षिकी के चक्रवृद्धि मूल्य की तालिका से लिया गया है । अन्यथा हमें लघुगणक (log) तालिका का उपयोग करना चाहिए ।

ब. एक वार्षिकी का भावी मूल्य (Future value of annuity)

वार्षिकी से आशय समान राशि के अवधिगत रोकड़ प्रवाहों की एक श्रृंखला से है, जैसे - जीवन बीमा प्रीमियम का भुगतान ।

सामान्यतया एक वार्षिकी का भावी मूल्य ऐसे निकालते है

$$FVA_n = A\frac{\left[(1+r)n-1\right]}{r}$$

जबकि (where),FVA = Future value of an annuity which has duration of n year

A=Constant periodic flow.

r=Interest rate per period

n=Duration of the annuity

उपरोक्त सूत्र से यह स्पष्ट है कि एक वार्षिकी का भावी मूल्य विभिन्न चरों यथा, वार्षिकी राशि, ब्याज दर एवं समय अवधि पर निर्भर करता है । अर्थात् इनमें से किसी भी चर के बदलने पर वार्षिकी का भावी मूल्य बदल जायेगा ।

एक प्रकाशित तालिका व्याज की दर तथा समयावधि के विभिन्न संयोजनों के लिए उपलब्ध है ।

2.6 मितिकाट की तकनीकें (Techniques of discounting)

(अ) एक एकाकी रोकड़ प्रवाह का वर्तमान मूल्य ....

एक एकाकी रोकड़ प्रवाह का वर्तमान मूल्य इस प्रकार ज्ञात किया जाता है:

$PV=FV_n[1]n$

(l+r)

जबकी(Where),FV=Future value n years hence.

r=Rate of interest per annum.

n=No.of year for which discounting is done.

भावी मुद्रा का वर्तमान मूल्य जिन चरों पर निर्भर करता है उनमें भावी मूल्य, व्याज की दर तथा समय अवधि शामिल हैं । विभिन्न समयावधि, ब्याज की दर तथा भावी मूल्य के विभिन्न संयोजनों के लिए प्रकाशित तालिकाऐं उपलब्ध हैं ।

ब. एक वार्षिकी का वर्तमान मूल्य (Present value of an annuity)

जब एक समान राशि के कई रोकड़ प्रवाह अनेक वर्षों के लिए मिलते हैं तो वार्षिकी का वर्तमान मूल्य इस प्रकार ज्ञात किया जा सकता है:

$$PVA_n = \frac{A}{(1+r)^1} + \frac{A}{(1+r)^2} + \frac{A}{(1+r)^{n-1}} + \frac{A}{(1+r)^n}$$

$$\frac{[(1+r)^n-1]}{r(1+r)^n}$$

जबकि (Where), ,PVA=Present value of annuity which has duration of n year

r = Constant periodic flow.

n = Discount rate.

2.7 ब्याज गणना (Interest calculations)

मुद्रा का समय मूल्य ज्ञात करने के लिए हम सामान्यतया दो विचारधाराओं को धाराओं में रखते हैं - भावी मूल्य एवं वर्तमान मूल्य ।

दोनों मूल्यों को ज्ञात करने के लिए ब्याज की गणना करना आवश्यक है, ब्याज दर या तो साधारण हो सकती है या चक्रवृद्धि ।

साधारण ब्याज (Simple Interest)

ब्याज की गणना करने के लिए मूलधन (Principal) ब्याज की दर(rate of interest) और समयावधि (term of the lone) को जानना आवश्यक है । मूलधन (Principal) से आशय वो राशि है जो उधार ली गई है, ब्याज दर (rate of interest) वह प्रतिशत दर है जो कि मूलधन पर एक निश्चित समय अवधि के प्रयोग पर ली जाएगी तथा समयावधि से आशय उस अवधि से है जितने समय के लिए मूलधन का प्रयोग किया जाएगा ।

अत: S = P x r x n

जबकि (where,), P = Principal

r = Rate of interest

n = No. of year for which principal is used

उदाहरण: 2

अनुभूति एक राष्ट्रीयकृत बैंक में 10000 रू. 5% वार्षिक की दर से बैंक में जमा कराती है तो उसको एक वर्ष बाद कितना ब्याज मिलेगा?

S = P x r x n

= $10000 \times \frac{5}{100} \times 1$ = Rs.500

कुल राशि को हम मूलधन में व्याज की राशि को जोड़कर निकाल सकते हैं ।

कुल राशि (V) = मूलधन (P) s व्याज (I)

जबकि (मूलधन)V = accumulated value

P=Principal

I= Interest

जोकि, 10000 + 500

कुल राशि = 10500 रूपये

अब अगर कुल राशि दी गई है और हम वर्तमान मूल्य (मूलधन) ज्ञात करना चाहते हैं तो निम्न लिखित सूत्र का प्रयोग करेंगे:

$$P = \frac{V}{(1+r.n)}$$

$$P = \frac{Rs.22000}{(1+0.10x1)}$$

$$= \frac{22000}{1.10} = Rs.\ 20000$$

(चक्रवृद्धि ब्याज (Compound Interest)

चक्रवृद्धि ब्याज से आशय ब्याज पर व्याज प्राप्त करने से है । किसी अवधि के लिए कोई राशि विनियोजित करने पर एक अवधि पर व्याज प्राप्त करके, उस ब्याज को शामिल करके अगली अवधि में उस मूल राशि व ब्याज पर व्याज प्राप्त किया जाता है ।

उदाहरण: 3

20000 रूपये 4 वर्ष के लिए 10% वार्षिक ब्याज दर पर चक्रवृद्धि व्याज से विनियोजित किये जाते हैं । 4 वर्ष बाद मिलने वाली राशि ज्ञात कीजिए?

हल:	वर्ष के आरम्भ जमा की गई राशि (रू.)	व्याज की राशि (रू.)	उस वर्ष की समाप्ति पर राशि (रु)
1.	20000.00	20000 x 0.10=20000.00	22000.00
2.	22000.00	22000 x 0.10=2200.00	24200.00
3.	24200.00	24200 x 0.10=2420.00	26620.00
4.	26620.00	26620 x 0.10=2662.00	29282.00

चक्रवृद्धि ब्याज को हम सूत्र द्वारा ज्ञात कर सकते हैं, अर्थात् साधारण ब्याज के सूत्र को प्रत्येक वर्ष बार-बार प्रयोग करके:

प्रथम वर्ष के लिए $V=P+Pr$

$FVl=P(l+r)$ FOR ONE YEAR

द्वितीय वर्ष के लिए $FV_2=P(l+r)(l+r)$

$FV_2=P(l+r)^2$

n वर्ष के लिए $FV_n=P(l+r)^n$

उदाहरण : 4

20000 रूपये 10% वार्षिक चक्रवृद्धि ब्याज की दर से 4 वर्ष बाद मिलने वाली राशि क्या होगी?

हल : $FV=P(l+r)_n$

$=Rs.2000091+0.10)^4$

$=Rs\ 20000(1.4641)$

$=Rs.29282$

उदाहरण. 5

आशु 100000 रूपये बैंक में 8% वार्षिक चक्रवृद्धि ब्याज की दर से बैंक में जमा कराती है । 5 वर्ष बाद उसकी कीमत क्या होगी?

हल $= FV_n=p(l=r)^n$

$= FV_5RS.100000(1+0.08)^5$

$= Rs.100000\ (1.4693)$

$= Rs.\ 146930$

नोट: अगर हम राशि कई वर्षों के लिए विनियोजित करते हैं तो भावी मूल्य ज्ञात करना काफी कठिन व समय लेने वाला (Time Consuming) होता है, अत: इसके लिए $(l+r)^n$)त हेतु तालिका आगे दी गई है । ध्यान रहे कि तालिका 1 रूपये के मूल्य को दी गई दर (r) एवं ग़ वर्ष (nth year) समाजित करके दी गई है ।

तालिका -1 (Table)

Compound sums of one Rupee

01	1.0100	1.0200	1.0300	1.0400	1.0500	1.0600	1.0700	1.0800	1.0900	1.1000	01
02	1.0201	1.0404	1.0609	1.0816	1.1025	1.1236	1.1449	1.1664	1.1881	1.2100	02
03	1.0303	1.0612	1.0927	1.1249	1.1576	1.1910	1.2250	1.2597	1.2950	1.3310	03
04	1.0406	1.0824	1.1255	1.1699	1.2155	1.2625	1.3108	1.3605	1.4116	1.4641	04
05	1.0510	1.1041	1.1593	1.2067	1.2763	1.3382	1.4026	1.4693	1.5386	1.6105	05
06	1.0615	1.1261	1.1941	1.2653	1.3401	1.4185	1.5007	1.5869	1.6771	1.7716	06
07	1.0721	1.1487	1.2299	1.3159	1.4071	1.5036	1.6058	1.7138	1.8280	1.9487	07
08	1.0829	1.1717	1.2668	1.3686	1.4775	1.5939	1.7182	1.8509	1.9926	2.1436	08
09	1.0937	1.1951	1.3038	1.4233	1.5513	1.6895	1.8385	1.9990	1.1719	2.3580	09
10	1.1046	1.2190	1.3439	1.4802	1.6289	1.7809	1.9672	2.1589	2.3674	2.5937	10
11	1.1157	1.2434	1.3842	1.5395	1.7103	1.8993	2.1049	2.3316	2.5804	2.8531	11
12	1.1268	1.2682	1.4258	1.6010	1.7959	2.0122	2.2522	2.5182	2.8127	3.1384	12
13	1.1381	1.2936	1.4685	1.6651	1.8857	2.1339	2.4098	2.7196	3.0658	3.4523	13
14	1.1495	1.3195	1.5126	1.7317	1.9799	2.2609	2.5785	2.9372	3.3417	3.7975	14
15	1.1610	1.3459	1.5589	1.8009	2.0789	2.3966	2.7590	3.1722	3.6425	4.1773	15
16	1.1726	1.3728	1.6047	1.8730	2.1829	2.5404	2.9522	3.4259	3.9703	4.5950	16
17	1.1843	1.4002	1.6529	1.4479	2.2920	2.6928	3.1588	3.7000	4.3276	5.0545	17
18	1.1962	1.4283	1.7024	2.0258	2.4066	2.8543	3.3799	3.9960	4.7171	5.5596	18
19	1.2081	1.4568	1.7535	2.1069	2.5270	3.0256	3,.6165	4.3157	5.1417	5.1156	19
20	1.2202	1.4860	1.8061	2.1911	2.6533	3.2071	3.8697	4.6610	5.6044	6.7275	20

दाहरण: 6

10000 रूपये प्रारम्भिक विनियोग करने पर कितने वर्ष में 45950 रूपये हो जायेंगे, अगर यह निवेश 10% वार्षिक चक्रवृद्धि ब्याज दर से किया गया हो ।

हल: $FV_n=P(l+r)^n$

Rs. 45950,Rs . $10000(l+r)^n$

$4.5950=(1+0.10)^n$

अब हम 45950 को 10% वार्षिक के खाने (Column) में देखेंगे तो पायेंगे कि n=16 अत: हम 10000 रूपये प्रारम्भिक निवेश करते हैं तो 10% चक्रवृद्धि ब्याज दर से 16 वर्षों में 45950 रूपये हो जायेंगे ।

उदाहरण : 7

कितने प्रतिशत वार्षिक चक्रवृद्धि व्याज दर से 10000 रूपये बढ़कर 25937 रूपये 10 वर्षा में हो जाएंगे?

हल: $FVn = P(l+r)^n$

Rs. 25937,Rs.$10000(l+r)^{10}$

$2.5937 = (l+r)^{10}$

अब हम n=10 को तालिका मूल्य 2.5937 देखेंगे तो पायेंगे कि r=10% खाने में । अत: हम 10% वार्षिक की दर से 10000 रूपये 10 वर्षों में 25937 रूपये हो जायेंगे ।

गैर-वार्षिक अवधि के लिए ब्याज को चक्रवृद्धि करना **(Compounding interest for non–annual periods)** कई बार गज एक वर्ष से कम अवधि पर ही चक्रवृद्धि किया जाता

है, तब चक्रवृद्धि ब्याज के सूत्र एक वर्ष में व्याज कितनी बार चक्रवृद्धि होता है उसी अनुरूप समायोजन किया जाता है । जितनी अधिक बार वर्ष में व्याज चक्रवृद्धि होता है उतनी ही ज्यादा ब्याज की प्रभावित दर (greater effective annual compound rate of interest) होती है । जैसे: अगर ब्याज त्रैमासिक रूप से चक्रवृद्धि होता है तो तीन माह बाद भावी मूल्य होगा-

$$FV_m = P\left[1+\frac{r}{4}\right]$$

यही राशि 6 माह बाद होगी

$$FV_m = P\left[1+\frac{r}{4}\right]\left[1+\frac{r}{4}\right]$$

या $FV_m = P\left[1+\frac{r}{4}\right]^2$

यही राशि 1 वर्ष बाद होगी

$$FV_m = P\left[1+\frac{r}{4}\right]^4$$

अत: कह सकते है कि अगर ब्याज वर्ष में ।m बार चक्रवृद्धि होता है,
तो n वर्षों बाद राशि होगी

$$FV_m = P\left[1+\frac{r}{4}\right]^{mn}$$

वर्ष में ब्याज एक या एक से अधिक बार चक्रवृद्धि हो सकता है । ब्याज की दर सामान्यतया वार्षिक आधार पर दी जाती है 'जिसे कि नामित दर (Norminal Rate) कहते हैं लेकिन जब व्याज वर्ष में एक से अधिक बार चक्रवृद्धि किया जाता है तो वास्तव में प्राप्त होने वाली दर (Effective rate) नामित दर (Nominal rate) से अधिक पड़ती है । वर्ष में एक बार चक्रवृद्धि ब्याज करने पर नामित दर (Effective rate) व प्रभावित दर (Nominal rate) समान होती है ।

अगर हम नामित दर (Normal rate) को r व प्रभावित दर (Effective rate) को j से प्रदर्शित करें तो j व r में निम्नलिखित सम्बन्ध होगा:

$$(1+J) = \left(1+\frac{r}{m}\right)^m \quad \text{या} \quad J = \left(1+\frac{r}{m}\right)^m - 1$$

उदाहरण 8

12% वार्षिक ब्याज दर त्रैमासिक आधार पर चक्रवृद्धि की जाती है तो प्रभावित दर क्या होगी?

हल: $J = \left(1+\frac{0.12}{4}\right)^4 - 1$

= 1.1255 -1

J = 12.55 %

खण्डीय अवधि (fractional periods)

अगर कोई राशि खण्डीय अवधि के लिए चक्रवृद्धि ब्याज से विनियोजित की जाती है तो सामान्यतया उसे खण्ड अवधि पर साधारण ब्याज दिया जाता है जैसे - अगर कोई व्यक्ति 4 वर्ष 6 महीने के लिए वार्षिक आधार पर चक्रवृद्धि ब्याज से राशि विनियोजित करता हो तो 4 वर्षों के लिए चक्रवृद्धि ब्याज मिलेगा तथा शेष 6 माह का साधारण ब्याज दर से ब्याज मिलेगा।

उदाहरण : 9

मौलि बैंक में 10000 रूपये 8% वार्षिक दर से चक्रवृद्धि ब्याज से जमा करता है । उसने यह निश्चित किया कि वह तीन वर्षों तक कोई राशि बैंक से नहीं निकालेगा । 3 वर्ष 6 महीने बाद वह राशि निकालना चाहता है तो उसे कितनी राशि प्राप्त होगी?

हल: $FV_3 = Rs.10000(1.08)^3$

$FV_3 = Rs.10000,(1025971)$

$= Rs.12597.10$

अंतिम 6 माह के लिए =

$FV_{mn} = Rs.12,597.10\ (1+\frac{1}{2}\ 0.08)$

$= Rs.12,597.10(1.04)$

$= Rs.13,100.98$

वर्तमान मूल्य मितिकाटन (Present value discounting)

वर्तमान मूल्य भावी मूल्य के एकदम विपरीत स्थिति है । भावी मूल्य से आशय है कि एक भावी तिथि को कितनी राशि होगी, जबकि वर्तमान मूल्य यह बताता है कि एक निश्चित तिथि को निश्चित मूल्य का वर्तमान में मूल्य क्या है ।

किसी भावी राशि का वर्तमान में मूल्य निकालना ही मितिकाटन (Discounting) कहलाता है ।

उदाहरण : 10

दो वर्ष बाद प्राप्त होने वाले 12100 रूपये 10%' की दर से मितिकाटन करने पर वर्तमान मूल्य क्या होगा?

हल : $PV = FV^n \left[\frac{1}{(1+r)^n}\right]$

$$PV = Rs.12,000\left(\frac{1}{(1+10)^2}\right)$$

$$PV = Rs.\ 10,000$$

वर्तमान मूल्य सारणी (Present value tables)

वर्तमान मूल्य ज्ञात करने के लिए परिकलन प्रक्रिया (Computational work) को आसान बनाने के लिए मितिकाट सारणी (Discount tables) बनाई गई है । इनकी सहायता से वर्तमान मूल्य इस प्रकार ज्ञात करते हैं ।

Present value=Future Sum at period n) (Discount factor for i% per period and n periods)

$PV=(FV_{n)}$ (DF r,n)

वर्तमान मूल्य ज्ञात करने के लिए Table-2 दी गई है । Table-2 एक तरह से Table- 1 का प्रतिलोम (Inverse) है ।

Table-1 में $(l+r)^n$ का मूल्य दिखाया गया है । जबकि Table -2 में $[1/(l+r)^n]$ का मूल्य दिखाया है । किसी भी भावी मूल्य का वर्तमान मूल्य हम इस सारणी की सहायता से सारणी मूल्य को भावी मूल्य से गुणा करके ज्ञात कर सकते हैं ।

तालिका - 2 (Table–2)

Present Value of one rupee due at the end of n Year

n	1%	2%	3%	4%	5%	6%	7%	8%	9%	10%	n
01	.99010	.98039	.97007	.96154	.95238	.94340	.93558	.92593	.91743	.90909	01
02	.98030	.96117	.94260	.92456	.90703	.89000	.87344	.85734	.84168	.82645	02
03	.97059	.94232	.91514	.88900	.86384	.83962	.81630	.79383	.77218	.75131	03
04	.96098	.92285	.88849	.85480	.82270	.79209	.76290	.73503	.70843	.68301	04
05	.95147	.90573	.86261	.82193	.78353	.74726	.71299	.68058	.64993	.62092	05
06	.94204	.88797	.83748	.79031	.74622	.70496	.66634	.63017	.59627	.56447	06
07	.93272	.87056	.81309	.75992	.71068	.66506	.62275	.58349	.54703	.51316	07
08	.92348	.85349	.78941	.73069	.67684	.62741	.58201	.54027	.50187	.46651	08
09	.91434	.83675	.76642	.70259	.64461	.59190	.54393	.50025	.46043	.42410	09
10	.90529	.82035	.74409	.67556	.61391	.55839	.50835	.46319	.42241	.38554	10
11	.89632	.80426	.72242	.64958	.58468	.52679	.47509	.42888	.38753	.35049	11
12	.88745	.78849	.70138	.62460	.55684	.49627	.44401	.39711	.25553	.31683	12
13	87866	.77303	.68095	.60057	.53032	.46884	.41496	.36770	.32618	.28961	13
14	.86996	.75787	.66112	.57747	.50507	.44230	.38782	.34046	.29925	.26333	14
15	.86135	.74301	.64186	.55526	.48102	.41726	.36245	.31524	.27454	.23939	15
16	.85282	.72845	.62317	.53391	45811	.39365	.33873	.29189	.25187	.21763	16
17	.84438	.71416	.60502	.51337	.43630	.37137	.31657	.27027	.24107	.19784	17
18	83602	.70016	.58739	.49363	.41552	.35034	.29586	.25025	.21199	.17986	18
19	.82774	.68643	.57029	.47464	.39573	.33051	.27651	.23171	.19449	.16351	19
20	.81954	.67297	.55367	.45639	.37689	.31180	.25842	.21455	.17843	.14864	20

उदाहरण : 11

10 वर्षा बाद मिलने वाले 10000 रूपये का वर्तमान मूल्य ज्ञात कीजिए, अगर मुद्रा का समय मूल्य 10% वार्षिक है?

हल: यहाँ हम तालिका-2 की सहायता लेंगे ।

n=10 और r =10% के खाने में हम $(1,(1+0.10^{10}]$ का मूल्य 0.38554 है, इस मूल्य को सूत्र में रखेंगे तब

PV = Rs. 10,000 (0.38554)

= Rs. 3,855.40

एक वार्षिकी का भावी मूल्य (Compound value of an annuity)

इसे हम निम्नांकित सूत्र की सहायता से ज्ञात कर सकते हैं ।

$$FV_a = \left[A \sum_{t=1}^{N} (1+r)^t \right]$$

जबकि (where),FV_a = The future value of the annuity at the end of the nth years

A = The annuity value deposited at the end of each year
r = The annual compound interest rate
n = The number of years for which the annuity will last

उदाहरण : 12

हनी 10000 रूपये प्रतिवर्ष तीन वर्षों तक वार्षिकी चुकाता है इस वार्षिकी पर 8% वार्षिक ब्याज मिलता है, तो बताइए कि तीन वर्षों बाद कितनी राशि प्राप्त होगी?

हल :FV_a = Rs. 10,000$(1+0.08)^{2}$ + Rs.10,000(1+0.08)+ Rs.10,000
= rs.10,000$(1.08)^2$ + Rs.10,000(1.08)+ Rs.10,000
= Rs.11,664 + Rs.10,800 + 10,800+Rs310,000
= Rs.32,464

पूर्वगणित समंकित वार्षिकी तालिका (Precalculated Compound Annuity Table)

पूर्वगणित समंजित वार्षिकी तालिका-उ में दिया गया है । इसकी सहायता से हम 1 रूपये प्रतिवर्ष n वर्षा तक वार्षिकी चुकाने पर एक निश्चित ब्याज से उन वर्षों के समाप्त होने पर मूल्य ज्ञात किया जा सकता है ।

उदाहरण. 13

5000 रूपये प्रतिवर्ष 3 वर्षों तक वार्षिकी चुकाने पर 8% ब्याज दर से 3 वर्षों बाद प्राप्त राशि होगी ।

हल : तालिका-3 की सहायता से इसका सारणी मूल्य 3.2464 है । अत:

Fv_a=rs.5000 x 3.2464
Rs.16232

कई बार हमें यह भी ज्ञात करना होता है कि निश्चित वर्षों तक प्रतिवर्ष वार्षिकी चुकाने पर एक निश्चित राशि प्राप्त करने हेतु प्रतिवर्ष कितनी राशि चुकानी होगी?

उदाहरण : 14

10% वार्षिक ब्याज से 10 वर्षा बाद 100000 रूपये प्राप्त करने हेतु प्रतिवर्ष कितनी राशि चुकानी होगी?

हल

$$Rs.\ 1,00,000 = A \sum_{t=1}^{10} (1+0.10)$$

$$Rs.\ \frac{1,00,000}{15,937} = A$$

A = Rs 6274.70

अत: प्रतिवर्ष 627470 रूपये 10 वर्षा तक 10% वार्षिक ब्याज दर से जमा कराने पर

100000 रूपये प्राप्त होंगे ।

तालिका - 3 (Table-3)

Annuity Compound Factor

Period	Percent (t)									
n	1%	2%	3%	4%	5%	6%	7%	8%	9%	10%
1	1.000	1.000	1.000	1.000	1.000	1.000	1.000	1.000	1.000	1.000
2	2.010	2.020	2.030	2.040	2.050	2.060	2.070	2.080	2.090	2.100
3	3.030	3.060	3.091	3.122	3.153	3.184	3.215	3.246	3.278	3.310
4	4.060	4.122	4.184	4.246	4.310	4.375	4.440	3.506	4.573	4.641
5	5.101	5.204	5.309	5.416	5.526	5.637	5.751	5.867	5.985	6.105
6	6.152	6.308	6.468	6.633	6.802	6.975	7.153	7.336	7.523	7.716
8	8.286	8.583	8.892	9.214	9.549	9.897	10.260	10.637	11.028	11.436
9	9.369	9.755	10.159	10.583	11.027	11.491	11.978	12.488	13.021	11.759
10	10.462	10.950	11.464	12.006	12.578	13.181	13.816	14.847	15.193	15.937
11	11.567	12.169	12.808	13.486	14.207	14.972	15.784	16.645	17.560	18.531
12	12.683	13.412	14.192	15.026	15.917	16.870	17.888	18.977	20.141	21.384
13	13.809	14.680	15.618	16.627	17.713	18.882	20.141	21.495	22.953	24.523
14	14.947	15.974	17.086	18.292	19.599	21.015	22.550	24.215	26.019	27.975
15	16.97	17.293	18:599	20.024	21.579	23.276	25.129	27.152	29.361	31.772
16	17.258	18.639	20.157	21.825	23.657	25.673	27.888	30.324	33.003	35.950
17	18.430	20.012	21.762	23.698	25.840	20.213	30.840	33.750	36.974	40.545
18	19.615	21.412	23.414	25.645	28.132	30.906	33.999	37.450	41.301	45.599
19	20.811	22.841	25.117	27.671	30.539	33.760	37.379	41.446	36.018	51.159
20	22.019	24.297	26.870	29.778	33.066	36.786	40.995	45.762	51.160	57.275

एक वार्षिकी का वर्तमान मूल्य(Present value of an annuity)

इसे इसी अध्याय में पूर्व में समझाया जा चुका है । अब आप इसे निम्नांकित उदाहरण की सहायता से अच्छी तरह समझ पायेंगे ।

उदाहरण 15

एक विनियोजक को अगले तीन वर्षों में वर्ष के अंत में 10000 रूपये प्रतिवर्ष वार्षिकी के रूप में प्राप्त होते हैं तथा बट्टा दर (Discount rate) 10% है तो बताइए इन वार्षिकी का वर्तमान मूल्य क्या होगा?

हल:

$$PV = Rs\,10,000\left(\frac{1}{1+0.10}\right) + Rs.\ 10,00\left(\frac{1}{(1+0.10)^2}\right) + Rs.\ 10,00\left(\frac{1}{(1+0.10)^3}\right)$$

= Rs. 9090.90 + Rs. 8264.50 + 7513.20

= Rs. 24868.60

अत: इस वार्षिकी का वर्तमान मूल्य 24868.60 रूपये हैं ।

वार्षिकी की वर्तमान मूल्य की पूर्वसंगणित तालिकाऐं (Precalculated persent value of annuity tables)

वार्षिकी की वर्तमान मूल्य ज्ञात करने की प्रक्रिया को सरल बनाने के लिए बनाई गई तालिका-4 दी गई है ।

इस तालिका की सहायता से वार्षिकी का वर्तमान मूल्य इस प्रकार निकाल सकते हैं ।

$$PV_a = ADF_{rn} \times \text{Annuity Payment}$$

जबकि: (Where), ADF_{rn} = Annuity discount factor.

उदाहरण: 16

पिछले उदाहरण को तालिका की सहायता से हल कीजिए ।

हल वार्षिकी राशि 10000 रूपये, n = 3,r = 10

अब हम n=3 और r=10 के खाने में तालिका-4 में देखेंगे तो इसका मूल्य 2.48686 है

अत: इसे सूत्र द्वारा हल करेंगे -

$$PV_a = Rs.10,000\ (2.48686)$$
$$= Rs.24,868.6$$

तालिका-4 (Table –4)

Present Value of Rupee per Year for n Years

n	1%	2%	3%	4%	5%	6%	7%	8%	9%	10%	n
01	.99010	.98039	.97007	.96154	.95238	.94340	.93558	.92593	.91743	.90909	01
01	.9901	.9804	.9701	.9615	.9524	.9434	.9356	.9259	.9174	.9091	01
02	1.9704	1.9416	1.9135	1.8831	1.8594	1.8334	1.8080	1.7833	1.7591	1.7355	02
03	2.9410	2.8839	2.8286	2.7751	2.7233	2.6730	2.6243	2.5771	2.5313	2.4868	03
04	3.9020	3.8077	3.7171	3.6299	3.5459	3.4657	3.3872	3.3121	3.2397	3.1699	04
05	4.8535	4.7134	4.5897	4.4518	4.3295	4.2123	4.1002	3.9927	3.8866	3.7908	05
06	5.7955	5.6014	5.4172	5.2421	5.0757	4.9173	4.7665	4.6229	4.4859	4.3553	06
07	6.7282	6.4720	6.2302	6.0020	5.7863	5.5824	5.3893	5.2064	5.0329	4.8684	07
08	7.6517	7.3254	7.0196	6.7327	6.4632	6.2098	5.9713	5.7466	5.5348	5.3349	08
09	8.5661	8.1522	7.7861	7.4352	7.1078	6.8017	6.5152	6.2469	5.9852	5.7590	09
10	9.4714	8.9825	8.7302	8.1109	7.7217	7.3601	7.0236	6.7101	6.4176	6.1446	10
11	10.3677	9.7868	9.2526	8.7604	8.3064	7.8868	7.4987	7.1389	6.8052	6.4951	11
12	11.2552	10.5753	9.9539	9.3850	8.8632	8.3838	7.9427	7.5361	7.1607	6.8137	12
13	12.1338	11.3483	10.6349	9.9856	9.3935	8.8527	8.3576	7.9038	7.4869	7.1034	13
14	13.0038	12.1062	11.2960	10.5631	9.8986	9.2950	8.7454	8.2442	7.7861	7.3667	14
15	13.8651	12.8492	11.9379	11.1183	10.3796	9.7122	9.1079	8.5595	8.0607	7.6061	15
16	14.7180	13.5777	12.5610	11.6522	10.8377	10.1059	9.4466	8.8514	8.3125	7.8237	16
17	15.5624	14.2918	13.1660	12.1656	11.2740	10.4772	9.7632	9.1216	8.5436	8.0215	17
18	16.3984	14.9920	13.7534	12.6592	11.6895	10.8276	10..591	9.3719	8.7556	8.2014	18
19	17.2281	15.2684	14.3237	13.1339	12.0853	11.1581	10.3556	9.6036	8.9501	8.3649	19
20	18.0457	16.3514	14.8774	13.5903	12.4622	11.4699	10.5940	9.8181	9.1285	8.5136	20

उदाहरण. 17

एक विनियोजक को निम्नलिखित राशि के रोकड़ प्रवाह होते हैं । इन राशियों का वर्तमान मूल्य ज्ञात कीजिए अगर बट्टा दर (Discount rate) 20 %. हो?

	1	2	3	4	5
रोकड़ प्रवाह (रूपये)	200000	400000	-60000	1000000	800000

हल: इसमें तालिका की सहायता से सभी रोकड़ प्रवाहों का वर्तमान मूल्य करेंगे फिर सभी धनात्मक प्रवाहों (Positive flow) को जोड़कर उसमें से ऋणात्मक प्रवाह (Negative flow) को घटाकर वर्तमान मूल्य ज्ञात हो जाएगा ।

PV = (Rs.2,00,000)(.83333) + (RS.4,00,000)(.69494)–(Rs.6,00,000(.57870) + (Rs.1,00,000)(.48225) + (Rs.8,00,000)(.40188)

=Rs.1,66,666 + RS.2,77,776–Rs.2,77,776–Rs.3,47,220 + Rs.4,82,250 + Rs.3,21,504

= Rs.9,00,976

2.8 सारांश (Summary)

विभिन्न समयावधि में होने वाले रोकड़ प्रवाहों को संस्था को निर्णय लेना होता है । वर्तमान में मिलने वाले एक रूपये का मूल्य भविष्य में मिलने वाले एक रूपये के मूल्य से भिन्न मिलने से तुलनीय नहीं होता जिसे ब्याज घटक लागू करके तुलनीय बनाया जा सकता है । यही मुद्रा के समय मूल्य की विचारधारा है । मुद्रा की समय प्राथमिकता के कारणों में वर्तमान उपयोग के लिए प्राथमिकता, जोखिम तथा निवेश अवसर से लाभ को शामिल किया जाता है । समय की विभिन्न अवधियों पर उत्पन्न रोकड़ प्रवाह को दो तरीकों यथा किसी भविष्य की तिथि को वर्तमान मुद्रा का समंजन करके तथा भविष्य की मुद्रा को वर्तमान तिथि पर मितिकाट करके किसी का भी उपयोग करके तुलनीय बनाया जा सकता है ।

समंजन की तकनीकों में एक एकाकी रोकड़ प्रवाह का भावी मूल्य तथा एक वार्षिकी का भावी मूल्य शामिल करते हैं मितिकाट की तकनीकों में एक एकाकी रोकड़ प्रवाह का वर्तमान मूल्य तथा एक वार्षिकी का वर्तमान मूल्य ज्ञात करना शामिल करते हैं । ब्याज की गणना में साधारण ब्याज, चक्रवृद्धि ब्याज, गैर वार्षिक अवधि हेतु -ब्याज को चक्रवृद्धि करना, खण्डीय अवधि, आदि का अध्ययन करते हैं ।

2.9 शब्दावली (Glossary

मुदा का समय मूल्य : आज प्राप्त एक रूपये का मूल्य भविष्य में मिलने वाले एक रूपये के मूल्य से अलग होना ।

वार्षिकी: समान राशि के अवधिगत रोकड़ प्रवाहों की एक श्रृंखला

नामित दर: सामान्यतया वार्षिक आधार पर दी जाने वाली ब्याज की दर

मितिकाटन: किसी भावी राशि का वर्तमान में मूल्य निकालना

2.10 स्वपरख प्रश्न/अभ्यास (Self Assessment/Exercise)

1. मुद्रा के समय मूल्य से क्या आशय है?
2. मुद्रा का समय मूल्य क्यों होता है? तथा वर्तमान मूल्य, मुद्रा के समय मूल्य से किस प्रकार सम्बन्धित है?

3. साधारण ब्याज व चक्रवृद्धि ब्याज में अंतर बताइए ।
4. किसी भावी राशि के वर्तमान मूल्य से क्या आशय है? वर्तमान मूल्य और चक्रवृद्धि ब्याज की गणना किस प्रकार सम्बन्धित है?
5. अगर चक्रवृद्धि ब्याज की दर बारम्बारता (Frequency) वर्ष में बढ़ा दी जाए तो प्रभावित ब्याज दर पर क्या असर पड़ेगा?
6. वार्षिकी से क्या आशय है?

2.11 व्यावहारिक प्रश्न (Practical Questions)

1. अगर ब्याज की दर 8% वार्षिक चक्रवृद्धि है तो 20 वर्ष बाद 500000 रूपये प्राप्त करने के लिए आज कितनी राशि जमा करानी होगी?
2. आज की कितनी राशि 20 वर्षा बाद मिलने वाली 20600 रूपये के बराबर है, अगर ब्याज की दर 8% वार्षिक है तो अर्द्धवार्षिक रूप से चक्रवृद्धि होती है?
3. अशुमालि लि. प्रतिवर्ष एक बैंक खाते 1000 रूपये जमा कराता है, 5 वर्षा की समाप्ति पर कुल जमा राशि का आधा निकाल लेता है, अब वह 2000 प्रतिवर्ष 5 वर्षों तक जमा कराता है । अब वह कुल राशि को 15वे वर्ष की समाप्ति पर निकाल लेता है । अगर उसे बैंक खाते में जमा 5% ब्याज मिलता है तो बताइए वह (अ) 5 वें वर्ष की समाप्ति पर कितनी राशि निकालेगा (ब) 15वे वर्ष की समाप्ति पर कितनी राशि निकालेगा ।
4. 8 वर्षों तक प्रतिवर्ष 10000 रूपये बीमा प्रीमियम चुकाए जाते हैं अगर ब्याज की प्रभावित दर 12% हैं तो कुल बीमा प्रीमियम का वर्तमान मूल्य बताइए ।
5. एक वार्षिकी आज से लेकर 6 वर्षों तक प्रतिवर्ष 10000 रूपये की दी जाती है इस वार्षिकी का 10% चक्रवृद्धि ब्याज से वर्तमान मूल्य ज्ञात कीजिए ।
6. ब्याज की प्रभावित दर (Effective rate) ज्ञात कीजिए यदि - (अ) 8%' ब्याज जो अर्द्धवार्षिक रूप से चक्रवृद्धि होती हो (ब) 8% ब्याज जो त्रैमासिक रूप से चक्रवृद्धि होती हो । (स) 8% ब्याज जो मासिक रूप से चक्रवृद्धि होती है ।
7. अशोक को अपनी पुत्री के विवाह हेतु 10 वर्षों बाद 1000000 रूपये की आवश्यकता होगी, अगर ब्याज की दर 10% वार्षिक चक्रवृद्धि है तो बताइए उसे प्रतिवर्ष कितनी राशि जमा करानी चाहिए?
8. निम्नलिखित स्थितियों में बताइये कि 5000 रूपये बढ़कर कितनी राशि हो जाएगी: (अ) 5 वर्षों के लिए 12% ब्याज दर जो वार्षिक रूप से चक्रवृद्धि होती हो, (ब) 5 वर्षों के लिए 12% ब्याज दर जो अर्द्धवार्षिक रूप से चक्रवृद्धि होती हो, (स) 5 वर्षों के लिए 12% ब्याज दर जो त्रैमासिक रूप से चक्रवृद्धि होती हो । (द) 5 वर्षों के लिए 12% ब्याज दर जो मासिक रूप से चक्रवृद्धि होती हो ।

9. शिवांश एक कॉलेज विद्यार्थी है, जो छात्र ऋण से 24000 रूपये 9%. ब्याज दर, जो वार्षिक चक्रवृद्धि होती है, से व्यय लेता है । अगर वह 3000 रूपये प्रतिवर्ष ऋण चुकाता है तो बताइए वह कितने वर्षों में ऋण चुका देगा?

10. निम्नलिखित रोकड़ प्रवाहों से वर्तमान मूल्य ज्ञात कीजिए यदि व्याज 8% है जो वार्षिक रूप से चक्रवृद्धि होती है ।

वर्ष	1	2	3	4	5
रोकड़ प्रवाह (रूपये में)	20000	80000	80000	80000	60000

2.12 व्यावहारिक प्रश्न (Practical Questions)

1. Bhalla. V. K : Financial management and Policy , Anmol Publication, New Delhi.
2. Maheshwari,S.N :Financial Management, Sultan Chand & Sons, New Delhi.
3. Pandey,I.M : Financial Management , Vikas Publishing House Pvt.Ltd. New Delhi.

इकाई-3 : अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय प्रबंध (International Financial Management)

इकाई की रूपरेखा.

3.0 उद्देश्य

3.1 परिचय

3.2 बहु राष्ट्रीय पूंजी बजटिंग निर्णयन

3.3 पूँजी की लागत

3.3.1 ऋण पूँजी की लागत

3.3.2 समता अंशों की लागत

3.3.3 अधिमान अंश पूँजी की लागत

3.3.4 प्रतिधारित अर्जनों की लागत

3.4 बहु राष्ट्रीय कार्यशील पूँजी का प्रबन्ध

3.5 अन्तर्राष्ट्रीय वित्त स्रोत

3.5.1 बाह्य व्यापारिक उधार

3.5.2 युरो निर्गमन

3.6 सारांश

3.7 शब्दावली

3.8 स्वपरख प्रश्न

3.9 व्यावहारिक प्रश्न

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

आपने पूर्व इकाइयों में वित्तीय प्रबन्ध से सम्बन्धित विभिन्न आयामों को पढा । इस इकाई में हम विभिन्न आयामों को अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ में देखेंगे । आज विश्व एक ग्लोबल ग्राम बन गया है । बहु राष्ट्रीय निगमों एवं अन्य उपक्रमों का लेनदेन पूरे विश्व में संचालित हो रहा है। अलग अलग राष्ट्रों में अलग अलग मुद्रायें एवं विभिन्न वित्तीय संस्थायें कार्य कर रही है । अत: हमें इस पाठ के अध्ययन द्वारा यह ज्ञात होगा कि अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं, अन्तर्राष्ट्रीय विभिन्न मुद्राओं, बहु राष्ट्रीय निगमों के संदर्भ में वित्तीय प्रबन्ध की विभिन्न तकनिकों के प्रयोग से बेहतर वित्त प्रबन्ध कैसे कर सकते हैं ताकि अंशधारियों की पूंजी का अधिकतमीकरण (maximisation) हो सके ।

3.1 परिचय

इस इकाई में हम अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय प्रबन्ध की व्याख्या विशेषत: विदेशी, निगमों के बहु राष्ट्रीय पूंजी बजटिंग निर्णयों, पूंजी लागत, कार्यशील पूंजी तथा अन्तर्राष्ट्रीय वित्त के प्रमुख

स्त्रोतों के संदर्भ में करेंगे । वित्तीय प्रबन्ध के सिद्धान्त मोटे रूप में जो दर्शीय कम्पनी या फर्म पर लागू होते है वे ही विदेशी फर्मो या बहु राष्ट्रीय निगमों पर लागू होते हैं । परन्तु हम इस इकाई में वित्तीय निर्णय लेने में अन्तर्राष्ट्रीय निगमों के संदर्भ में देशीय फर्म की तुलना में अन्तर सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करेंगे । इकाई के प्रथम खण्ड में बहु राष्ट्रीय पूंजी बजटिंग निर्णयों के संबन्ध में विवेचन करेंगे द्वितीय खण्ड में पूंजी लागत, तृतीय खण्ड में कार्यशील पूंजी सम्बन्धी विवेचन किया गया है । चतुर्थ खण्ड में भारत में प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय वित्तस्त्रोतों का अध्ययन किया गया है । पंचम खण्ड में बाह्य वाणिज्य व लेनदारी एवं युरो निर्गमन इन दो प्रमुख स्त्रोतों का अध्ययन किया गया है ।

3.2 बहु राष्ट्रीय पूंजी बजटिंग निर्णयन :- प्रकृति. समस्यायें एवं महत्व

विदेशी पूंजी बजटिंग सम्बन्धी निर्णय लेने में देशी फर्मो की तुलना बहु राष्ट्रीय निगमों को मित्र भिन्न प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पडता हैं अन्तर्राष्ट्रीय फर्मो को कई अलग जोखिमों जैसे - विनिमय दर सम्बन्धी जोखिमों, निष्क्रिय कोषों, विदेशी कर प्रावधानों, राजनैतिक जोखिमों, तथा देशी एवं विदेशी परियोजना सम्बन्धी व्यावसायिक जोखिमों को वहन करते हुए अपने आपको स्थापित करना है । इन सब संयुक्त जोखिमों के बावजूद बहु राष्ट्रीय स्थापित निगमों द्वारा विदेशों में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश एवं सहयोगी संस्थायें स्थापित करने में तेजी की प्रवृति देखी जा रही है । बहु राष्ट्रीय निगमों के लिए इसके लिए कई अभिप्रेरणायें (motivation) उपलब्ध है । जैसे :- (i) विदेशी विनियोग के लिए लागत में अन्तर एक महत्वपूर्ण घटक हैं । (ii) ऐसे विनियोग के लिए दूसरा घटक कर सम्बन्धी छूट है । (iii) वित्तीय विविधीकरण भी इसमें एक अभिप्रेरणा है । विदेशी पूंजी बजटिंग निर्णयन देशी पूंजी बजटिंग निर्णयन की तुलना में अधिक जोखिमपूर्ण एवं कठिनाईयों भरा है । अत: विदेशी पूंजी निवेश के प्रस्तावों का मूल्यांकन करने के लिए अर्थ-पूर्ण एवं समरूप मापदण्डों के आधार पर इन प्रस्तावों की समीक्षा की जानी चाहिए ।

प्रमुख विचारणीय बिन्दु

बहु राष्ट्रीय निगम या अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसायिक कम्पनी को किसी भी देश में निर्यात करने की अपेक्षा उसी देश में सहयोगी (subsidary) संस्था स्थापित करने के प्रस्ताव पर विचार करने से पूर्व कई महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर विचार कर उस प्रस्ताव की वित्तीय व्यवहार्यता (financial ability) परखनी होती है । महत्वपूर्ण बिन्दु निम्न हैं :-

i. **वृद्धीमान नगद वहिर्वाह** (Incremental cash out flow) विदेशी विनियोग प्रस्ताव पर निर्णय करने से पूर्व उस प्रस्ताव को क्रियान्वित करने में होने वाले सभी स्थायी एवं परिवर्तनशील खर्चा पर होने वाले नगद बहिर्वाह (cash out flow) पर विचार करना होगा। जिस देश में बहु राष्ट्रीय निगम की सहयोगी संस्था स्थापित करनी है उस देश की मुद्रा में इस संस्था को स्वतंत्र रूप से अपने खाते एवं वित्तीय विवरण पत्रों को तैयार करना होगा । सहयोगी संस्था को इन वित्तीय विवरणों के आधार पर नकद बहिर्वाह (cash flow) एवं नकद अन्तर्वाह की तुलना कर वृद्धीमान अन्तर्वाह (cash flow) की अधिकता के आधार पर ही विनियोग प्रस्ताव पर निर्णय निर्भर करेगा ।

   जोडे नगद बहिर्वाह cash out flow निम्न आकडों के आधार पर निकाला जा सकता हैं:

जोडे : प्रस्तावित प्लान्ट एवं उपकरण की लागत

जोडे : जहाजरानी खर्चे, तटकर, स्थानीय परिवहन आदि

जोडे :प्लान्ट व उपकरण स्थापित करने की लागत

जोडे :अतिरिक्त कार्यशील पूंजी की आवश्यकता

जोडे :तकनीक स्थानान्तरित करने की लागत

जोडे :स्टाफ को प्रशिक्षण देने की लागत

घटायें:विक्रय से प्राप्ति (यदि वृद्धीमान प्लान्ट उपकरण तकनीक को प्रतिस्थापित (Replacement) किया जाता है

ii. **कर पश्चात् वृद्धिमान नगद अन्तर्वाह** (incremental cash flow after taxes(CFAT) किसी भी विदेशी व्यावसायिक संस्था स्थापित करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि उस विनियोग से उसे कितनी कर पश्चात् नगद अन्तर्वाह प्राप्त हो रहा है । शुद्ध या वृद्धीमान नगद अन्तर्वाह ज्ञात करने के लिए उत्पादित माल बेचने से होने वाली राशि में से सभी प्रकार की लागतें, खर्चे, एवं कर घटाने होते है । विदेशी पूंजी बजटिंग निर्णय लेने में कई जोखिमें वृद्धीमान रहती है अत: निर्णय इस बात पर ही है कि वृद्धिमान नगद अन्तर्वाह का वृद्धिमान बहिर्वाह पर आधिक्य कितना है? वृद्धीमान नगद अन्तर्वाह की गणना करने के लिए वृद्धीमान कुल नगद अन्तर्वाह एवं वृद्धीमान नगद में अन्तर करने के लिए निम्न बिंदुओं पर विचार करना होगा ।

अ. विद्यमान निर्यातित बिक्री में कमी (Loss of Existing export sale) :

बहुराष्ट्रीय निगम या कम्पनी जब कोई विदेशी विनियोग प्रस्ताव के अन्तर्गत किसी देश में नये उत्पाद निर्मित कर बिक्री करना चाहता है जो उस विदेशी कम्पनी द्वारा जो पूर्व में उस देश में निर्यात किया जा रहा था वह निर्यातित बिक्री नये उत्पाद के कारण बन्द हो जायेगी । यह जो निर्यात के रूप में बिक्री कम हुई है उस की पूर्ति उस नये उत्पाद की बिक्री पूर्व निर्यात मात्रा से निर्यात मात्रा के अधिक बढाने पर ही लाभ हो सकता हैं । इसके लिए उसे बाजार की प्रतिस्पर्धा से भी सामना करना पडेगा । अत: नये विनियोग प्रस्ताव पर निर्णय लेने से पूर्व यह भी ध्यान में रखना होगा कि नया उत्पाद लाने से नगद में जो विद्यमान निर्यात की जाने वाली बिक्री के जरा में जो नगद अर्न्तवाह कम हुआ है उसकी न केवल क्षतिपूर्ति हो जायेगी अपितु बिक्री से प्राप्त नगद अन्तर्वाह पूर्व में निर्यात से होने वाले अर्न्तवाह से अधिक है तभी विदेशी विनियोग प्रस्ताव सक्षम होगा।

ब. **बिक्री का सृजन** (creation of sale): विदेशी विनियोग प्रस्ताव को व्यावहार्य बनाना इस बात पर भी निर्भर करता है कि विदेशी कम्पनी को अपनी बिक्री बढाने के लिए नये नये क्षेत्र खोजने होंगे । यह नई बिक्री बढाने में जितनी सफल होगी उतना ही नगद अन्तर्वाह बढेगा जिससे जो विद्यमान निर्यात घटने से जो बिक्री कम होगी उसकी भरपाई संभव हैं ।

स. **अवसर लागत** (opportunity cost) : यह वह लागत है जो किसी साधन को उसके वैकल्पिक प्रयोग से प्राप्त हो सकती है । नये विनियोग प्रस्ताव पर विचार करते समय अवसर लागत को भी ध्यान में रखना होता हैं । जैसे जो जमीन फैक्ट्री के लिए उपयोग

में ली जायेगी उसका वर्तमान में जो व्यापार में प्रचलित कराया है वह ही उसकी अवसर लागत मानकर परियोजना की लागत की गणना की जा सकती हैं ।

द. **स्थायी उपरिव्यय** (fixed overheads): नकद बहिर्वाह (cash out flow) का गणना करते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि ऐसे उपरिव्यय जो विद्यमान परियोजना में हो रहे हैं उन्हें प्रस्तावित परियोजना की गणना करते समय सम्मिलित नहीं करेंगे । केवल ऐसे उपरिव्यय जो प्रस्तावित परियोजना के कारण बढे हैं उन्हें ही लागत में सम्मिलित किया जायेगा ।

य. **फीस एवं रायल्टी** (fees & royalities): प्रस्तावित परियोजना में ऐसी फीस एवं रायल्टी को भी सम्मिलित नहीं करेंगे जो पूर्व से ही दी जा रही थी । जैसे विधि सलाह लागत, प्रशिक्षण लागत आदि । यह लागत पैतृक संस्था पूर्व में ही वहन करती थी ।

व. **अमूर्त लाभों का लेखा** (Accounting is Intengible profit): नगद अन्तर्वाह में केवल मूर्त लेनदेन ही सम्मिलित होते हैं परन्तु अमूर्त लाभों का बिक्री एवं नगद अन्तर्वाह पर अनुकूल प्रभाव पडता हैं विदेशी बहु राष्ट्रीय निगमों की गुणवत्ता, सेवा में शीघ्रता, उच्च ग्राहक संतुष्टि, लम्बी अवधि प्रतिस्पर्धात्मक अनुभव जैसे अमूर्त लाभ प्राप्त होते हैं । यद्यपि इनका लेखा संभव नहीं है परन्तु इनका अप्रत्यक्ष प्रभाव बिक्री बढाने में अवश्य पडता हैं। सारांश में यह स्पष्ट होता है कि विदेशी विनियोग प्रस्ताव चाहे वे नवीन सहयोगी संस्था स्थापित करने या स्थापित संस्था के विस्तार, आधुनिकीकरण या विविधीकरण का प्रस्ताव हो, पूंजी बजटिंग का विश्लेषण करने में वृद्धीमान नगद अन्तर्वाह (कर पश्चात) की भूमिका ही महत्वपूर्ण होती हैं । इसकी पर्याप्त मात्रा ही निर्णय लेने में मार्गदर्शक होती है ।

इस एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है

उदाहरण सं 1

एक यू.एस बहु राष्ट्रीय निगम भारत में एक सहयोगी संस्था स्थापित करना चाहती है । यह कम्पनी पूर्व में अपना माल भारत में निर्यात करती थी ।

परियोजना की प्रारम्भिक लागत (प्लांट एवं उपकरण स्थापित करने की लागत) 600 मिलियन यू.एस. डालर का अनुमान है । कार्यशील पूंजी की लागत 75 मिलियन यू.एस. डालर का अनुमान है निगम हास की स्टेट लाईन विधि का प्रयोग करती है ।

वर्तमान में यह 2 मिलियन इकाईयां प्रतिवर्ष निर्यात करती है । प्रति इकाई लागत 100 मिलियन यू.एस. डालर है इसमें से परिवर्तनशील लागत 60 यू.एस. डालर प्रति इकाई है ।

फर्म का वित्त प्रबन्धक परियोजना की लागत सम्बन्धी निम्न अनुमान (यू.एस. डालर में) लगता है ।

i. उत्पादन एवं बिक्री की परिवर्तनशील लागत 30 प्रति इकाई ।
ii. अतिरिक्त स्थायी लागत 40 मिलियन प्रतिवर्ष ।
iii. भारत में स्थापित संयत्र की उत्पादन एवं बिक्री क्षमता 5 मिलियन इकाईयां प्रतिवर्ष।
iv. संयत्र का जीवनकाल 5 वर्ष अपशिष्ट मूल्य शून्य ।

v. फर्म की विद्यमान कार्यशील पूंजी 2 मिलियन इकाईयों के लिए $10 मिलियन है

vi. यदि भारत में यह सहयोगी संस्था नहीं स्थापित हुई तो प्रतिस्पर्धा को देखते हुए 1.5 मिलियन इकाईयों की बिक्री कम होने की संभावना है ।

vii. निगम कर की दर 35 प्रतिशत हैं । यह निगम 1 20% प्रत्याय दर अपने विनियोग पर चाहती है।

viii. विनिमय दर स्थिर रहेगी ।

इन सूचना आने के आधार पर इस बहुराष्ट्रीय निगम का सहयोगी संस्था स्थापित करने के संस्था में वित्तीय व्यावहार्यता की सलाह देनी है ।

हल :

वित्तीय व्यावहार्यता विश्लेषण (मिलियन में)

i. वृद्धीमान नगद बहिर्वाह

Incremental cash out flow:

संयत्र एवं उपकरण लागत	
Cost of plant & machinery	$600
जोडे - अतिरिक्त कार्यशील पूंजी	
Add: Aditional working capital	
($75 million–release of existing working capital	65
$10 million)	665

ii. वृद्धिमान नगद अर्न्तवाह (कर पश्चात)

Inere matal cash inflow after tax (CFAT):

अ. सहयोगी संस्था द्वारा अर्जित (समय 1 वर्ष से 5 वर्ष तक)

बिक्री से आय (5 मिलीयन युनिट x $ 100)		
घटायें -लागतें :		
परिवर्तनशील लागत 5 मिलीयन युनिटस x 30 $ = 150	= 150	
अतिरिक्त स्थायी लागतें =	= 40	
हास ($600 मिलीयन 5 वर्ष)	= 120	310.0
आयकर से पूर्व		190.0
घटायें :- कर (35%)		66.5
कर पश्चात् आय 123.5		123.5
जोडे :- हास		120.0
		243.5

वृद्धीमान कर पश्चात् नगद अन्तर्वाह CFAT समय (1-4)

(5 वां वर्ष) 243 .5

जोडे :- कार्यशील पूंजी की पुर्नप्राप्ति,	65.0	308.5
a. निर्यात से आय (समय 1-5)		
बिक्री से आय (2 मिलीयन ईकाईयां x $ 100)	200	
घटायें : परिवर्तनशील लागतें (2 x 60)	120	
अंशदान (कर पूर्व)	80	
घटायें: कर (35%)	28	
कर पश्चात् अंशदान	52	
स. वृद्धीमान नगद अन्तर्वाह (सहयोगी के कारण)		
CFAT (अ - ब)		
($ 2435 - $ 52) =	191.5	

शुद्ध वर्तमान मूल्य (NPV) ($ मिलियन) का निर्धारण

वर्ष	**वृद्धीमान नगद अर्न्तवाह** CFAT	**वर्तमान मूल्य घटक**		**कुल वर्तमान मूल्य**
1-4	191.5	X	3.037 =	581.59
5 (191.5 5.65)	256.5	X	0.567 =	145.44
सकल वर्तमान मूल्य				727.03
घटायें :- वृद्धिमान नगद बहिर्वाह				665.00
शुद्ध वर्तमान मूल्य				62.03

सिफारिश :शुद्ध वर्तमान मूल्य क्योंकि धनात्मक है अत: इस परियोजना को क्रियान्वित की सिफारिश की जाती हैं ।

स्वतंत्र सहयोगी कम्पनी का वृद्धिमान नगद अन्तर्वाह (कर पश्चात] (Cash in Flow After Tax of Independent Subsidiary Company (CFAT)

मूल अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनी जब किसी देश में अपनी सहयोगी कम्पनी खोलती है । तब मूल फर्म एवं उस भी सहयोगी फर्म के रोकड़ अन्तर्वाह की गणना में अन्तर होता हैं । यह दो देशों के बीच कर सम्बन्धी प्रावधानों विनिमय दर, मुद्रा स्फीति एवं ब्याज दरों की भिन्नता के कारण होता है । मूल फर्म अपनी सहयोगी फर्म से प्रबन्ध फीस, तकनीकी हस्तांतरण फीस व उत्पाद से रायल्टी के रूप में राशि वसूल करती है । इस कारण सहयोगी फर्म की वास्तविक लाभदायिकता इन भुगतानों के कारणों कम हो पाती है । सहयोगी फर्म को अपनी वृद्धिमान नगद अन्तर्वाह को उस देश की मुद्रा में व्यक्त करना होता है जहां वह स्थित है । सहयोगी संस्था को वास्तविक लाभदायिकता निकालने के लिए निम्नानुसार मदों को जोड़ना/घटाना होगा।

बिक्री से आय

घटाये : परिवर्तनशील लागतें

अतिरिक्त स्थायी लागतें

मूल फर्म द्वारा लगाई गई प्रबन्ध फीस

मूल फर्म द्वारा लगाई गई रायल्टी

हास

कर पूर्व अर्जित आय

घटायें : कर

कर पश्चात् अर्जित आय

जोडें :- हास

वृद्धिमान नगद अन्तर्वाह (CFAT)

जोडें :- अपशिष्ट मूल्य प्लान्ट के अन्तिम जीवनकाल में

जोडें :- कार्यशील पूंजी की वसूली (अन्त में)

मूल कम्पनी का नगद अन्तर्वाह (Cash inflows to the part Company)

मूल संस्था के लेखे अलग तैयार करते हैं जबकि सहयोगी संस्था के लेखे जिस देश में स्थित है उस देश की मुद्रा में तैयार किये जाते हैं । मूल कम्पनी की लाभदायिकता में सहयोगी संस्था के प्राप्त लाभांश, ब्याज, रायल्टी प्रबन्ध फीस, ऋण पुर्न अदायगी एवं विनिमय दरों में परिवर्तन संबंधी गणनाओं को भी सम्मिलित कर वास्तविक लाभदायिकता ज्ञान की जाती है । इसका प्रारूप निम्नानुसार हो सकता हैं ।

विवरण	वर्ष (1——2———— n)
लाभांश प्राप्ति	
जोडे :- ब्याज की प्राप्ति	
प्रबन्ध फीस की प्राप्ति	
रायल्टी की प्राप्ति	
अन्तिम नगद प्रवाह	

(सभी प्रकार के शुद्ध कर) प्लान्ट प्रतिस्थापन से प्राप्त राशि, कार्यशील पूंजी की पुर्न अदायगी, विनिमय नियन्त्रण के कारण अप्रदत्त रोके गये कोष)

जोडें :- ऋण की पुर्न अदायगी

नगद लाभों में वृद्धि (मूल कम्पनी के अन्य उत्पादों के निर्यातों में वृद्धि के कारण) घटायें: नगद लाभों में कमी (मूल कम्पनी के निर्यातों व विक्रय में कमी के कारण) विदेशी कम्पनी को विनियोगों प्रस्ताव संबंधी निर्णय -से पूर्व न केवल मौद्रिक लाभों को ही देखना चाहिए अपितु कुल अमौद्रिक अमूर्त लाभों (अन्तर्राष्ट्रीय बाजार का ज्ञान, प्रतिस्पर्धी क्षमता अन्य उत्पादों के निर्यातों में वृद्धि आदि) को भी ध्यान में रखकर पूंजी विनियोग निर्णय लेना चाहिए ।

अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनी को विदेशी विनियोग प्रस्ताव संबंधी निर्णय लेने में निम्न जोखिमों पर सावधानी पूर्वक विचार कर लेना चाहिए ।

i. लाभ को स्वदेश लौटाना (Repartriation of profit):

सहयोगी कम्पनी जो बिक्री द्वारा कर पश्चात् शुद्ध लाभ कमाती है । उस लाभ को मूल कम्पनी को लौटाना चाहती है । परन्तु इस लाभ को लौटाने में कई विदेशी मुद्रा संबंधी

कानूनी प्रावधानों की रूकावटें रहती हैं । विशेषकर जो "मंहगी मुद्रा' (hard currency) के संबंध में पूर्णत: रूकावटें विद्यमान हैं । इसके कारण मूल कम्पनी के कोष प्रवाह रूक जाता है जो कम्पनी की लाभदायिकता पर विपरीत प्रभाव डालती है । इसका समाधान के लिए बहु राष्ट्रीय निगम कई अन्य वास्तविक तरीके अपनाकर इन कोषों में से राशि अपने यही मंगवाने का प्रयास करती है । कम्पनी सहयोगी कम्पनी से प्रबन्ध की फीस, रायल्टी, ऋण की पुर्नअदायगी, तकनीकी हस्तांतरण एवं सलाह की फीस आदि नाम से राशि वसूल कर लेती है । कई बार मूल कम्पनी -सहयोगी कम्पनी को अपने व्यवसाय के विस्तार के लिए पुन: यह कोष उपयोग में लाने की राय दे देती है ताकि सहयोगी संस्था अपने व्यवसाय को ओर आगे बढ़ाकर अधिक लाभ अर्जित कर सके ।

ii. विनिमय दर संबंधी जोखिमें

विनिमय में उच्चावचन होता रहता हैं जब एक देश की मुद्रा का दूसरी देश की मुद्रा के बदले अधिमूल्यन होता है या अवमूल्यन होता है तो विनियोग से प्राप्त नगद अन्तर्वाह का वर्तमान मूल्य भी प्रभावित होता हैं ।

उदाहरण के लिए 47 रू. =$ डालर का मूल्य है तथा विनिमय दर में परिवर्तन के कारण दूसरे वर्ष से 5 वर्ष तक का रूपये के मूल्य में 2% का अवमूल्यन कर दिया है जो ऐसी दशा में 2 से 5 वर्ष के मूल्य विनिमय दर निम्नानुसार होगी

वर्ष	रू.
2	47.94(Rs.47.00 x 1.02)
3	48.90(Rs.47.94 x 1.02)
4	49.88(Rs.48.90 x 1.02)
5	50.87(Rs.49.88 x 1.02)

उपरोक्त परिवर्तन के कारण 2 से 5 वर्ष के मध्य जो कर पश्चात् नगद अन्तर्वाह जो सहयोगी संस्था को प्राप्त हुआ उसका डालर में मूल्य कम हो जायेगा अर्थात् विनियोग प्रस्ताव की शुद्ध वर्तमान मूल्य पूर्व से कम हो जायेगा । अत: यह विनिमय दर के उच्चावचन के कारण हुआ है । इस बात पर पूंजी बजटिंग निर्णयन में विचार करना आवश्यक है ।

iii. स्वामित्व हरण एवं राजनैतिक जोखिमें (expro priation and other poltical risk)

विदेशी कम्पनियां किसी भी देश में विदेशी विनियोग प्रस्ताव पर विचार करते समय उस देश की राजनैतिक एवं न्यायिक व्यवस्था पर भी विचार करती है । कई बार ऐसी सरकारें सत्ता में आ जायें जो विदेशी विनियोग पर कठोर नियंत्रण एवं करों में वृद्धि कर दे तो विदेशी कम्पनियों की लाभदायिकता या विनियोग पर जोखिमें बढ़ सकती है । अत: बहु राष्ट्रीय निगम सभी देशों को राजनैतिक स्थिति के अनुसार वर्गीकृत करती है जिन देशों में स्थायी सरकारें हैं जिनके सिद्धान्त विदेशी विनियोग के अनुकूल है वहां ही विदेशी विनियोग प्रस्ताव को क्रियान्वित करती है । जहां प्रजातंत्र नहीं है या सरकारें अस्थिर है वहां यह जोखिम अधिक होती हैं स्पिरियो ने इस संबंध में तीन तरीके सुझायें हैं (i) विनियोग की पुर्नअदायगी अवधि न्यूनतम हो (ii) विनियोग की वांछित प्रत्याय की दर

में वृद्धि होती हो (iii) समायोजित नगद प्रवाह की स्थिति ये सभी में विनियोग की जोखिमों को दर्शाती हैं ।

3.3 पूंजी की लागत (cost of capital)

विदेशी विनियोग प्रस्ताव के लिए दीर्घकालीन वित्त के स्त्रोतों की पूंजी लागत भार युक्त औसत लागत पर आधारित हैं पूंजी की लागत की गणना करते समय न केवल निगम कर संबंधी प्रावधान को समायोजित किया जाता है परन्तु विदेशी विनिमय दर की जोखिमों तथा स्वदेश लौटाने योग्य लाभ पर कर संबंधी जोखिमों को भी समायोजित करना होगा । दीर्घकालीन पूंजी के अलग अलग स्त्रोतों के लिए अलग अलग स्त्रोतों के लिए अलग विधियों से पूंजी की लागत की गणना निम्नानुसार की जायेगी ।

1.3.1 ऋण की लागत :- (Cost of Debt)

बहु राष्ट्रीय निगम की सहयोगी फर्म जिस देश में स्थित है वहां उधार लेती है तो उधार की लागत की गणना उसी प्रकार की जाती है जैसे देशी फर्म द्वारा की जाती है । ऋण की लागत की गणना निम्न सूत्र द्वारा की जाती है ।

$$col = \sum \frac{col}{(1+kd)} + \frac{copn}{(1+\mathrm{kd})\,\mathrm{n}}$$

यहां col = ब्याज का नगद बहिर्वाह (cash out flow of short out Yr.1–n)

cop = परिपक्व होने पर मूल राशि का पुर्नभुगतान

(Principal of Payment in the year of Maturity)(+=n)

Clo=प्रभावी अंर्तवाह Effective Cash in below

kdl = कर पश्चात श्रम की लागत (ब्याज)

kdn = ऋण पत्रों की शोधन पर प्रीमियम एवं कोष के रूप में प्रवर्तन लागत (Floating cost)

उदाहरण :- अमेरिका की बहु राष्ट्रीय निगम भारतीय सहयोगी अपने विनियोग आवश्यकता के लिये 100 मिलियन 10% ऋण पत्र 8 वर्ष की परिपक्वता अदायगी के लिए जारी करती है । ब्याज का भुगतान प्रतिवर्ष किया जायेगा परिपक्वता अवधि 8 वर्ष के अन्त में 4 प्रतिशत प्रीमियम पर ऋण पत्रों का शोधन किया जायेगा । प्रर्वतन (Floting Cost) लागत 2% का अनुमान है । भारत में इन प्रावधानों के अन्तर्गत प्रथम वर्ष में प्रर्वतन लागत (Floting cost) एवं जिस वर्ष प्रिमियम का भुगतान करना है, के पूर्ण शोधन की अनुमति है । निगम कर की दर 35 प्रतिशत है । भारतीय सहयोगी की प्रभावी ऋण लागत का निर्धारण कीजिये ।

हल - $\mathrm{col} = \sum^{8} \frac{col_1}{+=l\left(l+k_d\right)^{l}} + \frac{cop_8}{\left(l+ka\right)^{8}}$

i. Col= वर्ष 1 से 8 में ब्याज का नगद बर्हिवाह जिसमें कर लाभ का समायोजन कर लिया है । (Rs 100×0.10×0.65) = 6.50 मिलियन

ii. cop_8= परिपक्वता तिथि (8 वर्ष के अंत में) पर मूलधन का पुर्नभुगतान (Rs 100 मिलियन + 4 % प्रीमियम) +रू 4 मिलियन घटाये कर लाभ (रू 4 मिलियन × 0.35) = रू 1.40 मिलियन

= रू 100+4-1.40 मिलियिन

= रू 102.6 मिलियन

Clo= कर एवं प्रवर्तन लागत (Floating Cost) समायोजन पश्चात प्रभावी नगद अर्न्तवाह की गणना निम्न है:-

ऋण पत्रों की जमा राशि

घटाये: प्रवर्तन लागत पर कर लाभ

प्रभावी नगद प्राप्ति

i. ब्याज की लागत (कर पश्चात्)

ii. ऋण पत्रों के शोधन पर प्रीमियम के कारण प्रवर्तन लागत (Floating cost) बढेगी जैसे रूपये 102.6 मिलियन - 98.70 रूपये= 3.9 मिलियन । इस प्रकार ब्याज की लागत 6.5% अधिक होगी क्योंकि रू. 3.9 मिलियन यह लागत लगभग 4% होगी जो 8 वर्षों, में विभक्त करने पर 0.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष लागू होगी । इस प्रकार प्रभावी व्याज दर 6.5 + 0.5 = 7.0 प्रतिशत होगी । इस दर को वर्तमान मूल्य के आधार पर समायोजित कर नगद का वर्तमान मूल्य भी निकालना ऋण की लागत (Kd) की गणना छत Kd = 8% यदि विदेशी कम्पनी अपनी विनियोग आवश्यकता के लिये फण्ड अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से जुटाती है तो ऐसी दशा में नगद बर्हिवाह (Cash Out Flew) को विनिमय दर में हुए परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए नगद प्रवाह को समायोजित करना होगा।

विदेशी मुद्रा एवं देशी मुद्रा (जिस देश में सहयोगी कम्पनी स्थापित है) के बीच विनिमय दर में हुए परिवर्तन का समायोजन करना होता है । यह देशी मुद्रा विदेशी मुद्रा की तुलना में महंगी या सस्ती दोनों हो सकती है । देशी मुद्रा का मूल्य विदेशी मुद्रा में घटता है तो सहयोगी कम्पनियों को देशी मुद्रा में भुगतान पहले से अधिक करना होगा इसके विपरीत देशी मुद्रा महंगी हो जाए तो विदेशी मुद्रा के बदले देशी मुद्रा में भुगतान (ब्याज एवं ऋण पुर्नभुगतान पर कम करना होगा) अत: नगद अर्न्तवाह एवं शुद्ध नगद बर्हिवाह को बाजार में प्रचलित विनिमय दर के अनुसार समायोजित कर ही वास्तविक ऋण की लागत की गणना की जाती है ।

संक्षेप में एक वित्त प्रबन्धक को ऋण की लागत की गणना करते समय महत्वपूर्ण तत्वों जैसे विनिमय दर, ब्याज दर, निगम कर, परिवर्तन लागतें, मूल एवं ब्याज की अदायगी अवधि एवं तरीके आदि पर पूर्ण विचार कर इन्हें लागत में समायोजित करना चाहिये फिर इस लागत की तुलना आन्तरिक प्रत्याय की दर से करने के पश्चात् ऋण प्रस्ताव पर निर्णय लेना चाहिये।

3.3.2 समता अंशों की लागत (Cost of equity Capital)

समता अंशों की लागत दिये जाने वाले लाभांश के रूप में व्यक्त होता है । समता अंशों की गणना लागत के दो दृष्टिकोण के आधार पर की जा सकती है :-

अ. **लाभांश दृष्टिकोण** : इस दृष्टिकोण के आधार पर समता अंशों पर लागत की गणना इच्छित प्रत्याय की दर के आधार पर की जाती है । क्योंकि प्रत्याय की दर के आधार पर ही लाभांश

की दर घोषित की जाती है । समता अंश की लागत की दर वह दर होती है जो भावी लाभांश का वर्तमान मूल्य से बट्टा कर अंशों के वर्तमान मूल्य के बराबर करती है । सूत्र के रूप में: -

$$Po(l-f)=\sum_{T=1}^{n}\frac{D_1(l+g)^{t-1}}{(l+k_{e)}{}^{t}}$$

P_0 = समता अंश का वर्तमान बाजार मूल्य

g= लाभांश में प्रत्याशित वृद्धि

D_1 = वर्तमान लाभांश प्रति अंश

f= प्रवर्तन लागत बाजार कीमत (प्रतिशत में)

उदाहरण :

भारतीय सहयोगी संस्था के संदर्भ में निम्न सूचनाएं दी गई हैं :-

i. वर्तमान लाभांश 2 रू. प्रति अंश

ii. वर्तमान बाजार 75 रू. मूल्य प्रति अंश

iii. लाभांश में मिश्रित वृद्धि दर प्रतिशत निम्नानुसार है :-

वर्ष दर % में

1-5 वर्ष	15
7-10 वर्ष	10
11 वर्ष एवं आगे	5

लाभांश भुगतान वृद्धि अनुपात को स्थिर मानते हुए अंश की लागत की गणना कीजिए।

हल :

निम्न सूत्र का प्रयोग करते हुए गणना की जायेगी -

$$Po(l-f)=\sum_{T=1}^{n}\frac{D_1(l+g)^{t-1}}{(l+k_{e)}{}^{t}}$$

$$Rs.75=\frac{Rs.2(1.15)^{t+}}{(I+Ke)^{t}}+\sum_{T=6}^{10}\frac{1DS(1.10)^{+5}}{(I\ +\ Ke)^{t}}+\sum_{7=11}^{00}\frac{D10(1-05)^{+10}}{(I+Ke)^{t}}$$

उपरोक्त समीकरण को हल करने पर अंश पूंजी की लागत (Ke) 9.5 प्रतिशत है ।

ब. पूंजी सम्पत्ति मूल्यन मॉडल दृष्टिकोण (Capital assets pricing Model (CAPM)) इस विधि में तीन बातें महत्वपूर्ण है ।

i. अंश पूंजी की लागत उस दर के प्रत्याय दर के समान होनी चाहिए जिसमें किसी प्रकार की जोखिम न हो । (सरकार के दीर्घकालीन ट्रेजरी बॉड पर मिलने वाली आय के समान ही प्रत्याय दर होनी चाहिए ।)

ii. बाजार में प्रत्याय दर (यह भारत में पोर्टफोलियो पर जो स्टॉक विपणी (Exchange) द्वारा दर्शायी आय की दर के समान होती है ।)

iii. अविविधीकरण या व्यवस्थित जोखिम के आधार पर बिटा (Deta) द्वारा मापित आय सूत्र द्वारा -Ke = Rf+b(Rm-Rf)

Rf = बिना जोखिम विनियोग पर प्रत्याय की दर

R_m =बाजार में प्रचलित पोर्टफोलियो पर प्रत्याशित प्रत्याय की दर

b= बीटा गुणांक

$$b = \frac{Co\ varience(R_m XR_{f)}}{V\ Arience\ R_{ml}}$$

सी.ए.पी.एम विधि इस विचार पर अंश पूंजी की लागत की गणना करती है कि "अधिक जोखिम-अधिक अंश पूंजी लागत" पर आधारित है ।

3.3.3 अधिमान अंश पूंजी की लागत (Cost of Preference share capital)

इसमें लाभांश की दर पूर्व निश्चित होती है । अधिमान अंशों की लागत ऋण पूंजी लागत की तरह ही की जाती है । अन्तर यह है कि कम्पनी को लाभ की दशा में ही अधिमान अंशों को लाभांश दिया जाता है जबकि ऋण पर व्यय पूर्व में निर्धारित दर पर देना आवश्यक है । अधिमान अंशों पर दिया जाने वाला लाभांश आयकर अधिनियम के आधार पर स्वीकार्य व्यय नहीं होने से कर के लाभ का समायोजन नहीं किया जाता । अत: इनकी लागत कर पश्चात् ज्ञात की जाती है ।

सूत्र रूप में -

$$Po(l-f) = \sum_{T=1}^{n} \frac{DP_1}{(1+Kp)^1} + \frac{Pn}{1+(KP)^n}$$

Po=अधिमान अंशों की विक्रय मूल्य.

F =प्रवर्तन लागत का Po से प्रतिशत

DP=अधिमान अंशों पर लाभांश का भुगतान

Pn= परिपक्व अवधि पर अधिमान अंशों पुर्न भुगतान

n= परिपक्वता की अवधि

उदाहरण:

एक अमेरिकन कम्पनी की भारत में सहयोगी फर्म 100रू. के 12% प्रतिशत पूर्शाधेंकारी अंश निर्गमित करती है । यह 8 वर्ष के अंत में शोधन 'योग्य है । प्रत्यर्वतन लागत (Floatation cost) 4 % है । निगम कर 35 प्रतिशत है । अधिमान अंशों पर लागत की गणना कीजिए:

हल: $$Rs.96 = \sum_{T=1}^{8} \frac{Rs.11.83}{(I+Kp)^1} + \frac{Rs.100}{(I+Kp)^8}$$

नगद बहिर्वाह का निर्धारण (वर्ष 1-8)

लाभांश भुगतान रू.	रु.12.00
घटाये प्रर्वतन लागत Flotation Cost पर कर लाभ	
(4/8 वर्ष ¾ R_s 0-5@35%)	0.175

प्रभावी लाभांश या नगद बहिर्वाह 11.825

इस प्रकार प्रभावी लाभांश भुगतान की दर 12 प्रतिशत न होकर वर्तमान मूल्य 12 प्रतिशत से 13 प्रतिशत के मध्य निश्चित होता है ।

वर्तमान मूल्य का निर्धारण

(12 प्रतिशत या 13 प्रतिशत)

वर्ष	**प्रभावी नगद बहिर्बाह**	**P/v Factors**		**कुल वर्तमान मूल्य**	
		12%	13%	12%	13%
1-8	रु 11.825	4.968	4.799	रु 58.71	रु 56.75
8	रु 100.00	0.040	0.376	40.04	37.60

$$Kp = 12\% + \frac{(98 \times 79 - Rs96 = 2.79)}{(98.79 - 94.35 = 4.44)}$$

=12%+0.63%=12.63%

उपरोक्त उदाहरण में सहयोगी फर्म भारत में स्थित है तथा यही से अपनी अंश पूंजी ग्रहण की तथा लाभांश एवं परिपक्वता पर भुगतान भी रूपये में भारत में किया ।

यदि यह सहयोगी कम्पनी अपनी अंश पूँजी विदेशों से प्राप्त करे तो उस देश की मुद्रा में ही गणना की जायेगी । ऐसी दशा में विनिमय दर में होने वाले परिवर्तन को भी अधिमान अंशों की लागत की गणना करने में समायोजित करना होगा । विनिमय दर में परिवर्तन से देश की मुद्रा का मूल्य विदेशी मुद्रा की तुलना में घट भी सकता है तथा वृद्धि भी हो सकती है । दोनों ही प्रभावों को समायोजित कर ही वास्तविक लागत की गणना की जाती है ।

3.3.4 प्रतिधारित अर्जनों की लागत (Cost of Retained earnings)

अंशधारियों को प्रतिवर्ष कम्पनी को हुए लाभ को पूर्णरूपेण लाभांश के रूप में नगद में वितरित न कर उसका एक भाग कम्पनी अपने यहाँ धारित कर लेती है । इस प्रकार प्रतिवर्ष कम्पनी को कोषों की प्राप्ति प्रतिधारित अर्जनों से हो पाती है । यद्यपि- प्रत्यक्ष रूप से कम्पनी को इन कोषों पर कोई लागत नहीं चुकाई जाती परन्तु यदि यह कोष प्रतिधारित न कर अंशधारियों को नगद राशि के रूप में वितरित कर दिया जाता तो अंशधारी इस लाभांश की राशि को कही विनियोजित कर अपनी आय में वृद्धि करते । अत: प्रतिधारित अंशों पर लागत एक प्रकार से अवसर लागत के रूप में गणना की जाती है । यदि यह कोष वैकल्पिक प्रयोग में विनियोजित किये जाते तो जो आय इन कोषों के विनियोजनक से प्राप्त होती है वह ही इनकी लागत मानी जाती है । परन्तु क्योंकि यदि यह कोष अंशधारियों को लाभांश के रूप में वितरित कर दिये जाते तो उन्हें इस लाभांश पर आयकर चुकाना होता अत: यह आयकर की दर को प्रतिधारित अर्जनों की लागत में से घटाया जाना चाहिए । इसी प्रकार अंशधारियों को यदि लाभांश नगद में चुका दिया जाता है तो इस लाभांश की राशि को विनियोजित करने के लिए दलाली या अन्य व्यय करना होता अत: ऐसे व्यय को भी समायोजित कर प्रतिधारित अर्जनों में से घटाया जाना चाहिए । लाभांश वितरण के कारण अंशधारियों को पूंजीगत लाभ भी प्राप्त होता है । क्योंकि अंशों का बाजार मूल्य में वृद्धि हो जाती है । अत: पूंजीगत लाभ पर जितना आयकर

चुकाना होता है उतनी राशि प्रतिधारित अंशों की लागत में से घटानी होगी । इन उपरोक्त समायोजन के बाद ही वास्तविक लागत की गणना की जाती है ।

$$Kr. = \frac{D(l - Ti)(l - B)}{Mp(l - T_c)}$$

Kr.= प्रतिधारित अर्जनों की लागत

D = यदि यह कोष प्रतिधारित नहीं किया जाता तो नगद में वितरित लाभांश दर

T_i.= अंशधारी की व्यक्तिगत आयकर की दर

B = प्राप्त लाभांश के विनियोजन पर देय दलाली

T_c = अंशधारी पर लाग पूंजी लाभ पर आयकर की दर

MP= प्रति अंश बाजार मूल्य

उदाहरण

निम्न संमकों से एक विदेशी फर्म की प्रतिधारित अर्जनों पर लागत की गणना कीजिए

प्रति अंश लाभांश	रू. 15
व्यक्तिगत आय कर की दर	20%
अंश का बाजार मूल्य	110रु
लाभांश के विनियोजन पर दलाली	2%

हल:-

$$Kr. = \frac{D(1 - ti)(l - B)}{MP} \times 100$$

$$\frac{15 \times (1 - 0.20)(1 - 0.02)}{110} \times 100$$

$$\frac{15X\ 0.80\ X\ 0.98\ X\ 100}{110} = 10.7\%$$

सम्पूर्ण (Overall) लागत की गणना सभी की अलग-अलग के अलावा सभी स्त्रोतों की सम्पूर्ण लागत भारित औसत लागत (Weighter Average Cost) के आधार पर गणना की जाती है । भार का आधार पुस्तक मूल्य पर आधारित होता है ।

लागत की गणना करते समय इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि जो लागत आती है उसका वर्तमान मूल्य क्या है अत: नगद कोष अन्तर्वाह का वर्तमान मूल्य निकालने के लिए नगद अन्तर्वाह (Cash In flow) की राशि बट्टा दर से ह्रासित कर यह देखना होता है कि यदि बट्टा दर से ह्रासित करने के बाद भी प्रत्याय की दर बट्टा युक्त लागत से अधिक है तो माना जायेगा कि विनियोजन से लाभ अधिक प्राप्त हो रहा है । ऐसे विनियोग प्रस्तावों को चालू रखना आवश्यक है ।

3.4 बहु राष्ट्रीय कार्यशील पूँजी प्रबन्ध (Multinational Working Capital management)

बहु राष्ट्रीय निगमों के कार्यशील पूँजी के प्रबन्ध का वही उद्देश्य है जो एक देशी फर्म का होता है । कार्यशील पूँजी व्यवसाय में पर्याप्त रूप से उपलब्ध है इसकी मात्रा आवश्यकता से न अधिक होनी चाहिए न कम । कार्यशील पूँजी प्रबन्ध में निम्न तीन प्रबन्ध सम्मिलित है ।

I. .नगद प्रबन्ध (Cash Management)

कार्यशील पूंजी के प्रबन्ध में नगद का प्रबंध एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है । फर्म को दैनिक आवश्यकता एवं अन्य भुगतानों के लिए प्रतिदिन अपने यहां नगद की मात्रा उपलब्ध रहनी चाहिए । माल के पुर्तिकर्ताओं, कर्मचारियों एवं बैंक को नियमित भुगतान नगद राशि से ही संभव है ।

पर्याप्त नगद राशि से गई लाभ होते है । जैसे - 1. के माल के पूर्ति कर्ताओं व लेनदारों के साथ अच्छे सम्बन्ध बने रहते है । 2. बैंकर्स के साथ अच्छे सम्बन्ध होने से वित्त की कोई समस्या आने पर उसका तुरन्त नगद की प्राप्ति अच्छी साख के कारण ही सम्भव है । 3. अच्छी साख के कारण फर्म को माल अनुकूल शर्तों पर उपलब्ध होता है । साख की अच्छी स्थिति के कारण उधार प्राप्त करने में किसी प्रकार की समस्या नही होती । तथा 4 नगद छूट का लाभ प्राप्त होता है । अधिक मात्रा में नगद वित्त की लागत को बढ़ा देता है । अत: पर्याप्त नगद राशि स्वयं यह बैंक खातों में जमा रहनी चाहिए ताकि समय-समय पर देय भुगतानों का निपटाया किया जा सकता है ।

देशी फर्म के साथ विदेशी फर्म नगद राशि की पर्याप्त मात्रा रखने के लिए निम्न व्यूह रचना (Strategies) अपनाती है।

1. देनदारों से शीघ्र राशि संग्रहित की व्यवस्था करना; इसके लिए लाक बाक्स प्रणाली तथा इलेक्ट्रोनिक नगद हस्तान्तरण (Electronic cash transfer) अपनाई जाती है ।
2. जहाँ नगद अधिक उपलब्ध है उसे उस क्षेत्र में जहाँ इसकी आवश्यकता है उसे तुरन्त वहाँ पहुँचाने को व्यवस्था करना (यह नेट प्रणाली व करेन्सी सेन्टर द्वारा संभव है।) बहु राष्ट्रीय निगमों जिसकी सहयोगी फर्म कई देशों में स्थित होती है, नगद राशि का शीघ्र हस्तान्तरण नेट प्रणाली एवं करेन्सी सेन्टर की सहायता से ही संभव है । करेन्सी सेन्टर व नेट प्रणाली की उपयोगिता निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट है ।

उदाहरण :

एक यू.एस. बहु राष्ट्रीय निगम जिसकी तीन सहयोगी एक भारत, दूसरी फ्रांस, तथा तीसरी इग्लैण्ड में है । यह बहु राष्ट्रीय निगम अपनी सहयोगी फर्मों के साथ नगद का प्रबंध नेटिग प्रणाली एवं करेन्सी सेन्टर के माध्यम से करती है । प्रत्येक सहयोगी फर्म प्रतिमाह के प्रथम दिन अपनी रिपोर्ट करेन्सी सेन्टर को देता है जिसमें फर्म की लेनदारों उपलब्ध नगद की मात्रा, तथा भावी नगद आवश्यकता सम्बन्धी विवरण भेजती है । यह सेन्टर माह की 5 तारीख को विनिमय दर के आधार पर शुद्ध देयताओं

(Net Paying) की जानकारी सहयोगी फर्म को देता है । साथ ही सहयोगी नगद आधिक्य हो तो करेन्सी सेन्टर को भेजते है । यदि नगद की कमी है तो इसकी पूर्ति स्थानीय बैंक से अधिविकर्ष लेकर करते है ।

इन तीन सहयोगी फर्मों की नगद सम्बन्धी सूचनाए 01 जनवरी 2008 को निम्नानुसार है।

सहयोगी	अन्य सहयोगी उपलब्धता	कोष की की आवश्यकता	माह में कोष
भारत (रु)	[6,000,000 यू. के. सहयोगी को Ft. 8,000,000 फ्रांस के सहयोगी को	रु. 200000000	रु. 40,000,000
इग्लैण्ड (पौंड/ स्टरलिंग)	रु 65,000000 भारत की सहयोगी संस्था को Ft. 20,000000 फ़्रांस को	E100000	E4,000,000
फ्रांस (फ्रेंक)	रु.300000000 भारतीय कम्पनी को 4,000,000 इंग्लैण्ड कम्पनी को	Ft.100000000	Ft.40,000.000

1 जनवरी 2008 को तत्काल (Spot) विनिमय दर निम्नानुसार है ।

$1 = 48.00 Rs.
[1 = $1.60
$1 = Ft 7.00

a. सहयोगी तीनों कम्पनियों के लिए नेटिंग सिस्टम का प्रारूप बनाये ।
b. मार्च में करेन्सी सेन्टर के पास विनियोग के लिए कुल कितना कोष उपलब्ध है ।
c. कौन सी सहयोगी कम्पनी ने अधिविकर्ष का उपयोग किया ।

हल:

करेन्सी सेन्टर ने उक्त सूचनाओं के आधार पर अलग-अलग मुद्राओं का मूल्य तत्काल (Spot) विनिमय दर के आधार पर यू.एस. डालर में निम्नानुसार व्यक्त किया । दूसरी कम्पनियों को कितनी राशि देनी है या लेनी है, को भी प्रदर्शित किया है:

सहयोगी कम्पनी	भारती सहकारी	यू.के. सहयोगी	फ्रांस सहयोगी	कुल देय राशि (डालर में)
भारतीय	.....	9,60,000	1,142,856	
यू.के	1,354,166	.....	2,857,142	4,211,308
फ़्रेंच	6,250,000	6,400,000	.....	1,2650,000
कुल प्राप्त राशि (डालर में)	7,604,166	16,000,000	3,999,998	.....

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट हो रहा है कि भारतीय एवं फ्रेंच सहयोगी कम्पनियों के कुल लेनदार देनदारी से अधिक है। यू.के. कम्पनी में कुल देनदार देय राशि (लेनदारों) से अधिक है । अत: भारतीय एवं फ्रेंच कम्पनियों ने यु.के कम्पनी को पोण्ड स्टलिगं में भुगतान किया । फ्रेंच कम्पनी

को घाटा हुआ अत: इसे स्थानीय बैंकों से अधिविकर्ष लेना पड़ा । यू.के. एवं भारतीय कम्पनियों के पास नकद कोष अधिशेष है जिसे केन्द्र में स्थानान्तरित किया । इस राशि को सेन्टर द्वारा बाजार में प्रतिभूतियों में विनियोग किया गया ।

II. उधार प्रबन्ध (Credit management)

बहु राष्ट्रीय कम्पनियों का व्यापार पूरे विश्व में फैला हुआ है । अपनी बिक्री को बढ़ाने या निर्यात को बढ़ाने के लिए कई बार उधार सरल शर्तों पर उपलब्ध कराई जाती है परन्तु यह कई बार उधार देना काफी जोखिम पूर्ण रहता है । विशेषकर अविकसित एवं विकासशील देशों में लोगों की आय की न्यूनता के कारण उधार का भुगतान समय पर नहीं करते । कई बार यह उधार डूबत ऋण में सम्मिलित होने के कारण विदेशी कम्पनी को घाटा उठाना पडता है । अत: उधार देते समय निम्न बातों की सावधानी रखनी चाहिए :-

i. उधार देते समय देनदारों की साख एवं वित्तीय स्थिति एवं ऐतिहासिक व्यावसायिक स्थिति का पुनरावलोकन एवं पूर्ण छानबीन करनी चाहिए ।

ii. उधार देने से पूर्व उस देश की सभी कानूनों एवं प्रक्रियाओं का पूर्ण अध्ययन कर उसी अनुसार दस्तावेजों की पूर्ण पूर्ति कर लेनी चाहिए ताकि न्यायालय से पूर्ण सहयोग मिल सके ।

iii. उधार देने से यदि ऋण की पूर्ण अदायगी समय पर न हो रही है तो समय रहते ऐसे मामले न्यायालय एवं सरकार की सहायता लेकर समझौता द्वारा शीघ्र निपटा लेने चाहिए ।

iv. उधार देने से यदि बिक्री उतनी नहीं बढ़ रही है जिससे लाभ में वृद्धि से अधिक डूबत ऋण की आशंका, हो तो ऐसी उधार की शर्तों को कठोर बनाकर उधार आशंका रोक देनी चाहिए।

v. नगद बिक्री बढ़ाने हेतु नगद छूट देना अधिक सार्थक होता है ।

देनदारों से लगातार एवं नियमित सम्पर्क रखना चाहिए ।

इन सब बातों का ध्यान रखकर कम्पनी अपनी बिक्री बढ़ाने के साथ साथ उधार दी गई राशि का भी समय समय पर पूर्ण भुगतान प्राप्त करने के लिए सदैव सतर्क एवं प्रयत्नशील रहना चाहिए ।

III. स्कन्ध प्रबन्ध (Inventory Management)

स्कन्ध पर्याप्त मात्रा में होना चाहिए तभी माल का निर्माण कार्य लगातार जारी रह सकता है । इसी प्रकार निर्मित माल का स्टॉक भी पर्याप्त मात्रा में होना चाहिए ताकि बिक्री लगातार बाजार में बनी रहे । अपर्याप्त स्टॉक या स्टॉक की आवश्यकता से अधिक मात्रा भी संस्था के लिए हानिप्रद स्थितियां पैदा करती है । विदेशी कम्पनियों को देशी कम्पनियों की तुलना में स्टॉक प्रबन्ध के सम्बन्ध में कुछ भिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है । क्योंकि बहु राष्ट्रीय निगमों की सहयोगी कम्पनियां पूरे विश्व में फैली हुई है माल का निर्माण कहीं पर हो रहा है एवं उसकी पूर्ति दूर-दूर विश्व के सभी भागों में करनी पड़ती है, अत: स्टॉक कम होने से उसकी पूर्ति करने में समय एवं लागत अधिक आती है । अत: स्टॉक की निर्धारित मात्रा सदैव बनी रहे इसका प्रबन्ध करना चाहिए । बहु राष्ट्रीय निगमों को निम्न स्थितियों को स्टॉक का प्रबन्ध करते समय ध्यान रखनी होती है ।

i. यदि सहयोगी कम्पनी जिस देश में स्थित है वहां मुद्रा प्रसार तेजी से हो रहा है तो ऐसी दशा में अधिक स्टॉक लाभप्रद रहता है क्योंकि उसके मूल्यों में बढ़ोतरी होती रहती है

। परन्तु स्टॉक की परिवहन लागतें, ब्याज दरें, व्ययों में वृद्धि अधिक बढ़ जाने के कारण बढ़ा हुआ लाभ समाप्त हो सकता है । अत: बहुराष्ट्रीय निगमों को अधिक स्टॉक रखने से पूर्व लागत लाभ विश्लेषण कर उचित स्टॉक की मात्रा तय करनी चाहिए । अस्थिर राजनैतिक स्थितियों एवं सरकार की विदेश नीति सम्बन्धी जोखिमों को भी देखकर निर्णय लेना चाहिए ।

ii. विदेशी सहयोगी कम्पनी को जब जहां बाजार में वस्तुओं की पूर्ति करनी है, वहां से दूर स्थित होती है, तो ऐसी दशा में बाजार में बढ़ी हुई मांग के अनुसार माल की पूर्ति करने में विलम्ब होता है । अत: स्टॉक को कम्पनी मुख्यालय, एवं बाजार के निकट स्टॉक में रखना चाहिए एवं स्टॉक जिसे कार्यशील स्टॉक कहेंगे जो बाजार के निकट हो तथा सुरक्षित स्टॉक दूर भी रखा जाना चाहिए । जहां पर स्टॉक को सम्पत्ति मानकर विदेशी कम्पनियों पर टैक्स लगाया जाता है वहां यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि 31 दिसम्बर एवं 31 मार्च वर्ष के अंत में स्टॉक कम रखना हितकर होता है । क्योंकि जिससे सम्पत्ति कर की मात्रा कम हो सकती है ।

iii. अन्त में, बहुराष्ट्रीय निगमों को अग्रिम विनिमय दर, उसके उच्चावचनों, तटकर एवं अतटकर रूकावटों सम्बन्धी प्रावधानों एवं सहयोगी कम्पनी के स्टॉक के आवागमन में आने वाली सभी बाधाओं को पूर्व नियोजित कर इनकी लागतों एवं जोखिमों को कम करने की व्यवस्था करनी होती है । विकासशील देशों में ये प्रावधान ओर भी कठोर होते है अत: इन देशों में विदेशी कम्पनी को जोखिमें अधिक वहन करनी होती है ।

3.5 अन्तराष्ट्रीय वित्त स्रोत (International sources of finance)

3.5.1 बाह्य व्यापारिक उधार (External Commercial Borrowings) ECBS

भारतीय कम्पनियों को अपने व्यापार को बढ़ाने के लिए बाह्य व्यावसायिक साख लेने की अनुमति है । यह अनुमति सरकार द्वारा निर्धारित नियमों एवं प्रक्रियाओं के दायरे में प्रदान की जाती है । बाह्य व्यापारिक साख के अन्तर्गत व्यापारिक बैंको के ऋण, खरीददारों / पुर्तिकर्ताओं की साख, सुरक्षित उपकरण जैसे - परिवर्तनशील दर के नोट, स्थायी दर बॉड्स, अधिकृत निर्यात साख,संस्थाओं द्वारा प्रदत्त साख, निजी क्षेत्रों को अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय साख संस्थाओं (आई.एपफ.सी, एडीबी व सीडीसी) से प्राप्त व्यापारिक उधार आदि । अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय बाजारों की स्थिति में उदारीकरण नीतियों के कारण काफी सुधार एवं वृद्धि देखने को मिलती है । सरकारों द्वारा इस सम्बन्ध में समय समय पर नीतियों एवं प्रक्रियाओं में आवश्यकताओं परिवर्तन किया जाता है । बाह्य व्यापारिक साख के सम्बन्ध में वर्तमान में प्रमुख मार्गदर्शक तत्व निम्न है:

I. नीति (policy)

भारत सरकार ने भारतीय कम्पनियों को बाह्य व्यापारिक उधारे प्राप्त करने की अनुमति प्रदान की है । ये कम्पनियां अपने व्यापार के विस्तार करने या नये विनियोग के लिए बैंको, निर्यात साख एजेन्सियों, उपकरणों के पुर्तिकर्ताओं, विदेशी सहयोगियों, विदेशी अंश

पूजी रखने वाले, अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी बाजार, आदि से उधार ले सकते हैं । अपरिचित स्त्रोतों द्वारा बाह्य व्यापारिक साख प्राप्त करने की अनुमति नहीं है । सरकार प्रमुख रूप से यह साख आधारभूत संरचनाओं, निर्यात या प्रमुख क्षेत्र के विकास एवं संवर्द्वन हेतु ही साख प्राप्त करती है । सार्वजनिक वित्तीय संस्थायें भी बाह्य उधार के साथ ऐसे प्रस्तावों को सहायता प्रदान करते है । यद्यपि ट्रस्ट व अलाभ प्राप्त करने वाले संगठन बाह्य व्यापारिक साख प्राप्त नहीं कर सकते । विशेष आर्थिक क्षेत्र (सेज) यह साख प्राप्त कर सकते है ।

II. बाह्य व्यापारिक उधार की औसत परिपक्वता (Average Maturities for ECB's)

अ.100 प्रतिशत निर्यात करने वाली इकाई के अलावा सभी क्षेत्रों में परिपक्वता की अवधि 3 वर्ष से 5 वर्ष है।

ब.20 मिलियन डालर तक उधार लेने वाले संयन्त्र को न्यूनतम 3 वर्ष तक परिपक्वता अवधि होती है 20 मिलियन से अधिक की दशा में यह अवधि 5 वर्ष हो सकती है ।

स.निर्यात उन्मुख इकाईयों को दशा में यह अवधि 3 वर्ष होती है ।

द. मार्च 2002 से सेज सम्बन्धी इकाईयों को 3 वर्ष से कम अवधि की परिपक्वता पर बाह्य व्यापारिक साख प्रदान की जाने लगी है । बैंक सामान्यतया "अकेला खड़े आधार" पर यह साख प्रदान करते हैं अर्थात् एक अकले अपने आधार पर एक सेज विकसित किया हो ऐसी कम्पनी/फर्म को साख प्रदान करने में बैंक एवं अन्य वित्तीय संस्थायें अधिक आगे आती है । भारतीय रिजर्व बैंक इन सब पर सम्पूर्ण निगरानी रखता है ।

III. यूएस.डी. 100 मिलियन योजना (USD 100 Million scheme)

सभी कम्पनियाँ या संस्थाओं को बाह्य व्यापारिक साख के रूप में 100 मिलियन डालर 3 वर्ष के लिए प्राप्त करने की अनुमति है । यह कोष सामान्य निगम सम्बन्धी उद्देश्यों के लिए होते है । इनका उपयोग शेयर बाजार (Stock Markets) एवं वास्तविक सम्पदा में करना वर्जित है । इस योजना में यह कोष आवश्यकतानुसार 3 वर्ष के लिए बढा सकते है । इसके लिए स्वीकृति का अधिकार रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया को भारत सरकार ने प्रदत्त किया है ।

निर्यातक/विदेशी विनिमय लाभकर्त्ता : ऐसे निगम जिनके पास विदेशी विनिमय लाभकर्त्ता है वे ई.एस.बी.एस. (ESBS) को अपने पिछले तीन वर्षों के औसत निर्यात की मात्रा के तीन गुना वृद्धि कर सकते हैं परन्तु यह अधिकतम राशि दो सौ मिलियन डालर से अधिक नही हो सकती है । इस बढ़ी हुई राशि का उपयोग शेयर बाजार एवं वास्तविक सम्पत्तियों में नही कर सकते ।

IV. अधःसंरचना परियोजना (Infrastructure Projects)

ऐसी कम्पनियों जो अधः संरचना(Infrastructure) परियोजना के कार्यों में संलग्न है । उन्हें 200 मिलियन युएस डालर तक ई.एस.बी.एस. (ESBS) को बढ़ाने की अनुमति है । इस बढ़ी हुई राशि का उपयोग ऐसी कम्पनियों के अंश के रूप में विनियोग करके किया जा सकता है।

V. दीर्घकालीन उधारें (Long Term Borrowings)

दीर्घकालीन इसीबीज (ESBS) से संबंधित महत्वपूर्ण बातें निम्न है:

1. इनकी अधिकतम अवधि 8 वर्ष हो सकती हैं इससे अधिक लम्बी अवधि को बढ़ाने के लिए रिजर्व बैंक/ भारत सरकार से पूर्व अनुमति अनिवार्य हैं ।
2. इससे प्राप्त राशि का उपयोग शेयर बाजार एवं वास्तविक सम्पत्तियों में विनियोग नही किया जा सकता है ।
3. विकास वित्तीय संस्थायें इस स्रोत से जो कोष बढ़ाते है उन पर यह अधिकतम सीमा लागू नही हो सकती है ।
4. दीर्घकालीन ऋण उपकरण के अन्तर्गत कोई भी "put" या " cell" का विकल्प सम्मिलित नही होता है ।
5. ऐसे निगम जो सामान्य कोष में वृद्धि करने के लिए इस उपकरण का उपयोग करते हैं उन्हें परियोजना मूल्यांकन प्रतिवेदन संलग्न करने की आवश्यकता नही है ।
6. निगम ऐसे उधार एफ. आर. एन. के माध्यम से बढ़ाते है । बॉड निर्गमन, परिपक्वता अवधि एवं ब्याज का विस्तार पूर्व मार्गदर्शन के अनुसार ही कर सकते है ।

VI. अन्तिम उपयोग (End Use)

इसीबीज (ESBS) का उपयोग अन्य किसी भी उद्देश्य के लिए निवेश किया जा सकता है । परन्तु इसका निवेश वास्तविक सम्पत्तियों (Real– estate) एवं पूंजी बाजार (capital market) में नहीं किया जा सकता है । इसका उपयोग सार्वजनिक उपक्रमों के विनिवेश (disiuustment) के लिए निर्धारित शर्तों के अनुसार किया जा सकता है । निर्धारित शर्तों के अधीन इस राशि को विदेशों में स्थित बैंकों में भी जमा कराया जा सकता है ताकि अच्छे विनियोग प्रस्ताव आने पर उनमें इसका प्रयोग किया जा सके । लेकिन इसकी निम्न शर्तें हैं

अ. इस जमा खाते में बिना पूर्व अनुमति के राशि डेबिट नही की जा सकती है ।

ब. इस राशि का उपयोग भारत में कोष या अकोष आधारित आशंका के लिए नहीं किया जा सकता ।

स. इस राशि का भुगतान पूर्तिकर्ताओं को उचित दस्तावेजों के अधीन पूर्व शर्तों के अनुसार ही किया जा सकता है । रिजर्व बैंक को निम्न सूचनायें अवश्य देनी होती है;

i. बैंक व शाखा का नाम
ii. खाता खोलने की अवधि
iii. उधार देने वाले अथवा उधार लेने वालों का नाम
iv. रिजर्व बैंक की स्वीकृत संख्या व दिनांक, रिजर्व बैंक पंजीकरण संख्या
v. ऋण का उद्देश्य व
vi. ऋण की राशि ।

इसीबीज (ESBS) द्वारा प्राप्त कोषों का उपयोग उसी में होना चाहिए जिस उद्देश्य से ये उधार ली गई है । इस सम्बन्ध में सभी शर्तें एवं मार्गदर्शन जो रिजर्व बैंक द्वारा प्राप्त होते है उनका कठोरता से पालन अनिवार्य है ।

VII. इसीबीज (ESBS) नई परियोजना के लिए अधिकृत

ऐसी नई परियोजनायें या अधः संरचना (Infrastructure)से संबन्धित है तथा परियोजना की व्यवहार्यता की जांच बैंक या वित्तीय संस्था द्वारा की गई है । ऐसी परियोजना की कुल लागत का 50 प्रतिशत कोष इसीबीज (ESBS) से जुटाया जा सकता है । शत-प्रतिशत निर्यातान्मुख परियोजनाओं को यह 60 प्रतिशत इसीबीज (ESBS) स्वीकृति की जा सकती है । अधः संरचना में रेलवे, ऊर्जा दूरसंचार, सड़क, पूल, बन्दरगाह, औद्यौगिक पार्क तथा शहरी अध:संरचना जैसे -पानी की पूर्ति, सेनेटरी एवं सीवरेज परियोजनायें सम्मिलित होनी है ।

VIII. परियोजना वित्त पर ब्याज दर (Interest rate for project financing)

सामान्य इसी बीज (ESBS) पर ब्याज की सीमा की अनुमति LIBOR/OS ट्रेजरी के फैलाव से अधिक होती है । इस दर में लोचशीलता बाजार की स्थिति व परियोजना की प्राथमिकता के आधार पर प्रदान की जाती है । ऋण की मात्रा को अधीनस्थ एवं उच्च वरीयता के आधार पर विभक्त की जाती है । अधीनस्थ उधार जो 50 प्रतिशत तक हो सकती है, पर उच्च ब्याज दर प्रदत्त होती है । ब्याज का भुगतान उसी मुद्रा में होता है जिस मुद्रा में उधार प्राप्त किया है ।

IX. संरचनात्मक बाध्यता (Structured obligations)

निगम द्वारा लिये गये इसीबीज (ESBS) के सम्बन्ध में विदेशी विनिमय दर एवं देशी मुद्रा के मूल्य में परिवर्तन सम्बन्धी जोखिम विद्यमान रहती है । इसके लिए अन्तराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं वित्त के साथ निम्न बाध्यताएँ जोड़ देती है:

अ. ऋण अदायगी में चूक होने पर विदेशी बैंक जिसने ऋण की गारन्टी दी है उसे चूक मूलधन एवं ब्याज सहित उस देश की प्रचलित विनिमय दर के आधार पर राशि चुकानी होती है ।

ब. रिजर्व बैंक से फेमा (FEMA) के अन्तर्गत अनापत्ति लेनी आवश्यक है ।

स. रिजर्व बैंक एवं सेबी (SEBI) से नये अंशा/ऋणपत्र जारी करने से की अनुमति प्राप्त कर ली है ।

द. गारन्टी फीस/कमीशन/अन्य खर्चे भारतीय कम्पनी की दशा में रूपये में होगे यह 3 प्रतिशत से अधिक रूपये के रूप में नही हो सकते हैं ।

य. परियोजना प्रारम्भ करने सम्बन्धी सभी अन्य आवश्यक स्वीकृतियाँ पूर्व में प्राप्त कर लेनी चाहिए ।

र. चूक ब्याज दर 2 प्रतिशत, मूल ब्याज दर से अधिक नही होनी चाहिए ।

X. अन्य शर्तें (other Terms and Conditions)

अ. **प्रतिभूति (Securities)** प्रतिभूति के रूप में गांरटी विदेशी बैंकों द्वारा प्रदत होनी चाहिए न कि एक भारतीय निगम किसी भारतीय बैंक से गांरटी दिलवाने तथा उसकी काउन्टर गारंटी विदेशी बैंक प्रदान कर दे । ऐसा करने की स्वीकृति नही है ।

ब. **फेमा** (FEMA) के अन्तर्गत अनुमति (Approval under FEMA)

भारत सरकार के वित्त मंत्रालय के आर्थिक मामले विभाग के इसीबीज (ESBS) प्रभाग से अनुमति प्राप्त होने के बाद रिजर्व बैंक से फेमा (Foreign Exchange management Act) के तहत स्वीकृति के बाद ही आगे की कार्यवाही संभव है । इस सम्बन्ध में अनुवर्तन की कार्यवाही रिजर्व बैंक द्वारा की जाती है ।

स. **अल्पकालीन ऋण** (Short Term Loan) इसीबीज (ESBS) के सम्बन्ध में परिपक्वता की अवधि 3 वर्ष या इससे अधिक होती है जिसकी स्वीकृति डी इ ए (Department of economic Affairs) द्वारा दी जाती है । 3 वर्ष से कम अवधि के अल्पकालीन ऋण रिजर्व बैंक के मार्गदर्शन से संभव है ।

द. **अनुमोदन की वैधता** (Validity Approval) अनुमोदन की वैद्यता छः माह तक होती है । ऊर्जा परियोजना के सम्बन्ध में यह अवधि 1 वर्ष है । दूर संचार की दशा में यह 9 माह है । इस अवधि में वृद्धि की अनुमति सामान्यता नही होती है ।

य. **इसीबीज का पूर्व भुगतान** (Pre–payment of ESBS)

दूसरे सम्बन्ध में निम्न शर्तें है:

i. बकाया राशि का 100 प्रतिशत पूर्व भुगतान की अनुमति दी जाती है ।

ii. पूर्व भुगतान के लिए निगम के पास दो विकल्प होते है: (अ) सरकार की पूर्व अनुमति लेकर सम्पूर्ण इसीबीज (ESBS) की अवशिष्ट अवधि जो 1 वर्ष तक हो सकती है, का भुगतान अनुमति अवधि में किया जा सकता है एवं (ब) इसीबीज (ESBS) की कुल बकाया राशि का 10 प्रतिशत भुगतान, जोकि केवल ऋण अवधि में एक बार किया जा सकता है ।

इन दोनों विकल्पों में भुगतान की अवधि 15 दिन या अगले ब्याज देय तिथि जो कि पहले हो होती है ।

iii. वर्तमान विदेशी ऋण का पुर्नवित्त

वर्तमान देय ऋण- की अदायगी के लिए ऋण लेकर इसका भुगतान ऋण की स्थिति, बकाया राशि एवं अन्य शर्तों पर निर्भर करता है । सामान्यता यह निगमों को स्वीकृत नही दी जाती है ।

र. **दायित्व प्रबंध (Liability management)** विदेशी ऋण के भुगतान सम्बन्धी जोखिमों का व्यवस्थित रूप से निपटारा करते समय भारत सरकार एवं रिजर्व बैंक सम्बन्धी मार्गदर्शनों एवं प्रक्रियाओं को ध्यान में रखना चाहिए ।

3.5.2 युरो निर्गमन (Euro Issues)

यह अन्तर्राष्ट्रीय वित्त करने का दूसरा महत्त्वपूर्ण उपकरण है । 1991 के बाद से भारतीय अर्थव्यवस्था में उदारीकरण, वैश्वीकरण एवं निजीकरण अपनाया गया । तब से भारतीय निगमों को उनकी प्रतिभूतियों को युरो बाजार में जारी कर अपने कोषों को बढ़ाने की स्वीकृति समय-समय पर प्रदान की गई । युरो निर्गमन में दीर्घकालीन दो महत्त्वपूर्ण प्राथमिक उपकरण (Instruments) प्रचलित है । (i) विदेशी मुद्रा बांड (Foreign Currency

Bonds(FCCBS))(ii) वैश्विक निक्षेपित रसीदे (Global Depository Receipts(GDRS) या अमेरिकन निक्षेपित रसीदें (American Depository Receipts (ADRS) एफ.सी.सी.बी एक प्रकार का ब्रांड होता है जो किसी अनिवासी द्वारा विदेशी मुद्रा में अभिदत्त होता है । यह किसी भारतीय कम्पनी के साधारण अंशों में पूर्ण रूप में या आशिक रूप में परिवर्तित कर दिया जाता है । यह एक प्रकार से ऋण उपकरण के रूप में प्रयोग में लाया जाता है । जी.डी.आर/ए०डी.आर० एक ऐसा उपकरण होता है जो निक्षेपित (Depository) रसीद या प्रमाण पत्र के रूप में भारत के बाहर ओवरसीज निक्षेपित बैंक (ODB) द्वारा सृजित होता है जो अनिवासी विनियोग कर्ताओं को निर्गमन करने वाली किसी कम्पनी के अंशों के रूप में जारी किये जाते है । इस प्रकार भारतीय कम्पनियाँ जी.डी.आर०/ ए० डी.आर. उपकरण द्वारा एप.सी.सी.बी०/ECCBS साधारण अंशों का निर्गमन कर विदेशी मुद्राएं प्राप्त करती है । युरो निर्गमन के सम्बन्ध में रिजर्व बैंक/भारत सरकार द्वारा समय-समय पर निर्देश जारी किये जाते है । युरो निर्गमन सम्बन्धी मुख्य बिन्दु निम्न है:

अ. पात्रता (Eligibility) निर्गमित कम्पनी द्वारा परिवर्तित बॉड्स या साधारण अंशों के निर्गमन द्वारा जी.डी.आर /ए०डी०आर० के माध्यम से कोष वृद्धि करने के लिए भारत सरकार के वित्त व आर्थिक मामले मंत्रालय से पूर्व अनुमति लेनी अनिवार्य है । इस प्रकार के निर्गमित अंश/बॉड्स भारत में सूचीबद्ध हो सकते है या नही भी परन्तु विदेशों में ये सूचीबद्ध हो सकते हैं जिनका क्रय-विक्रय जी.डी.आर/ए.डी.आर० मार्केट में करने का अंशधारियों को आशंका होती है । ये उपकरण अमेरिका, लंदन, जर्मन, सिंगापुर व जापान के नियामक प्राधिकरण द्वारा अनुमोदित किये जाते हैं । ऐसे अंश/ बॉड्स निर्गमन सम्बन्धी नियम सरकार द्वारा जारी किये जाते हैं ।

ब. **निर्गमन संरचना (Issue Structure)** जी०डी०आर. /एफ.सी.सी.बी. शेयर/बॉड्स को किसी विदेशी मुद्रा में परिवर्तित किया जा सकता है । किसी निर्गमन के अग्रणी प्रबंधक द्वारा निर्गमन की निम्न मुख्य बातें तय की जाती है :

i. निजी या सार्वजनिक संग्रहण ।
ii. जी.डी.आर./ए.डी.आर. की निर्गमन संख्या ।
iii. निर्गमन कीमत ।
iv. एफ०सी०सी०बी० पर देय ब्याज की दर ।
v. एफ.सी.सी.बी की परिवर्तित कीमत, कूपन दर एवं परिवर्तनशीलता के विभिन्न विकल्पों की कीमत ।

स. सूचना प्रौद्योगिकी/सेवा कम्पनी द्वारा जी.डी.आरस. /ए.डी.आरस.का निर्गमन (Issue of GDRSeADRS by ITE services Companies)

भारतीय कम्पनियाँ जो सूचना प्रौद्योगिकी तथा सेवा क्षेत्र में संलग्न है वे गैर निवासियों तथा अपनी स्थायी कर्मचारियों को साधारण अंशों के बदले जी.डी.आरस/ए.डी.आरस. के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिए योग्य है । इस सम्बन्ध में शर्तें एवं मार्गदर्शन समय समय पर सरकार द्वारा जारी किये जाते हैं उसका ध्यान रखना होता है । भारतीय

कम्पनियाँ जो भारत में पंजीकृत हैं तथा जिनका पिछले 03 वर्षों का 80 प्रतिशत व्यापार निम्न क्षेत्रों से प्राप्त होता है, इन कम्पनियों के साधारण अंश को जी.डी०आरस./ए.डी.आरस. के लिए प्रस्ताव रखा जाता है । ये क्षेत्र हैं : (1) सूचना प्रौद्योगिकी (2) औषध निर्माण (Pharmaceuticals) (3) जैव-प्रौद्योगिकी (Biotechnology) (4) ज्ञान आधारित क्षेत्र (knowledge Based Sector) (5) ऐसी कम्पनियों जिनको निर्यात से प्राप्त होने वाली आय 100 करोड़ या अधिक है ।

द. कम्पनी द्वारा जारी निर्गमन में विदेशी विनियोग की सीमा (Limits of foreign Investment in the Issuing Company)

कम्पनी द्वारा जारी साधारण अंश और एफ०सी.सी.बीज. जो जी.डी.आरस./ए.डी.आरस. के बदले जारी किये जाते हैं। इनको प्रत्यक्ष विदेशी निवेश माना जाता है । विदेशी निवेश कम्पनी द्वारा प्रदत्त पूंजी के 51 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकता है । यह सीमा विदेशी संस्थागत विनियोगकर्त्ताओं पर लागू नहीं होती ।

य. **सूचियन (listing) :** जी.डी.आरस/ए.डी.आरस. विश्व के सभी स्टॉक एक्सचेन्ज में सूचियन हो सकता है । अनिवासी व्यक्तियों को शेयर का स्वतन्त्र रूप से हस्तान्तरण किया जा सकता है । इस सम्बन्ध में फेमा (FEMA) एवं प्रत्यक्ष निवेश नीति सम्बन्धी प्रावधान लागू होते हैं ।

र. **हस्तान्तरण एवं शोधन:** अनिवासी अंशधारी अपने जी.डी.आरस./ए.डी.आरस. को हस्तान्तरित करने एवं उनका नियमानुसार शोधन करने के लिए स्वतंत्र है यह हस्तान्तरण अनिवासी व्यक्ति को किया जाता है । इस सम्बन्ध में एक्सचेंज प्रबंध विनिमय, 2000 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए ही इनका विक्रय या शोधन संभव है ।

ल. **विदेशी मुद्रा रूपान्तरण बॉड पर कराधान (Taxation on foreign Currency Conver Bonds)** बॉड पर देय बाजार पर 10 प्रतिशत दर से कर स्रोत पर कटौती की जाती है । जबकि बशर्ते कि ब्रांड का रूपान्तरण की प्रक्रिया पूर्ण नही हुई है । एक गैर निवासी विनियोगकर्त्ता द्वारा दूसरे गैर निवासी व्यक्ति को एफ०सी०सी०बीज० की हस्तान्तरण करता है इस पर पूंजीगत लाभ पर कोई कर की कटौती नही की जायेगी ।

व. **आयकर (Income tax)** आयकर अधिनियम के अनुसार लाभांश से हुई आय पर 10 प्रतिशत कर की कटौती स्त्रोत पर की जाती है । गैर निवासी विनियोगकर्ता आय कर अधिनियम के अनुसार पूंजीगत लाभ पर कर की छूट दी गई है ।

अ. **सम्पति कर एवं उपहार कर** : सम्पत्ति कर अधिनियम 1957 के अनुसार गेरनिवासी विनियोगकर्त्ता के लिए शेयर या जी०डी०आर०/ए.डी.आर० पर किसी प्रकार का सम्पति कर या उपहार कर देय नही होता है ।

3.6 सारांश

1. अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय प्रबंध के अन्तर्गत बहुराष्ट्रीय बजटिंग सम्बन्धी निर्णयन पूंजी की लागत, कार्यशील पूंजी एवं अन्तर्राष्ट्रीय वित्त के स्रोतों का अध्ययन सम्मिलित है ।

2. बहुराष्ट्रीय निगमों के लिए विदेशों में विनियोग करने की अभिप्रेरणा में लागत अन्तर, वित्तीय विविधीकरण तथा कर प्रावधानों में अन्तर प्रमुख है ।
3. विदेशी पूंजी व बजटिंग निर्णयन में कई प्रकार की जोखिम विद्यमान होती है । जैसे - विनिमय दर जोखिम, अधिग्रहण जोखिम, निष्क्रिय कोष, विदेशी कर प्रावधान एवं राजनैतिक जोखिम प्रमुख है ।
4. किसी भी विदेशी निवेश प्रस्ताव पर निर्णय करने के पूर्व यह देखा जाता है कि नये निवेश से शुद्ध नगद अन्तर्वाह (कर-पश्चात) (CFAT) में वृद्धि की दर कितनी है । यह लागत से अधिक होने पर ही प्रस्ताव को वित्तीय रूप से सक्षम माना जाता है ।
5. नये उत्पाद या नये विनियोग के कारण जो वर्तमान निर्यात था बिक्री में जो कमी हुई उससे जो हानि हुई इसे नगद अन्तर्वाह में से घटाकर देखना होगा ।
6. नये प्रस्ताव पर विचार करते समय यह भी देखा जाना चाहिए कि जो साधन वर्तमान में लगे हुए है उनकी अवसर लागत कितनी है । इस अवसर लागत से अधिक आय का विकल्प होने पर ही विनियोग सक्षम माना जाता है ।
7. विनियोग निर्णय लेते समय यह भी देखा जाना चाहिए कि विदेशी फर्म की सहयोगी जिस देश में स्थित है वही कर के प्रावधान अलग हो सकते हैं, ऐसे ही विनिमय दर और ब्याज दर में अन्तर होता है । अत: सहयोगी फर्म एवं अभिभावक फर्म दोनों स्तर पर शुद्ध नगद अन्तर्वाह की स्थिति की गणना कर देखना चाहिए ।
8. निवेश निर्णय में पूंजी की लागत भी महत्वपूर्ण घटक है । अत: भारयुक्त औसत लागत के आधार पर दीर्घकालीन स्रोत-अंश पूंजी, अधिमान अंशपूंजी, ऋणपत्र, प्रतिधारित अर्जनों पर लागत की गणना कर सही उपकरण द्वारा ही कोष प्राप्त करने का निर्णय लिया जाता है ।
9. प्रतिधारित अर्जनों की लागत, अस्पष्ट लागत है जबकि अन्य लागतें स्पष्ट लागतें होती है । स्पष्ट लागत वह बट्टा दर है जो वृद्धिमान शुद्ध. अर्न्तवाह को वृद्धिमान शुद्ध बाह्यर्वाह दोनों को बराबर करती है ।
10. अन्तर्राष्ट्रीय वित्त के संदर्भ में नगद प्रवाह को विदेशी विनिमय जोखिम, परिवर्तनशील लागतों, निगम करों के प्रावधानों व हस्तान्तरण लागतों का समुचित समायोजन करना चाहिए ।
11. प्रतिधारित अर्जनों की लागत की गणना अवसर लागत के आधार पर की जाती है । इसी प्रकार के व्यवसाय में अन्यत्र लगे कोष से होने वाली आय ही इसकी लागत मानी जाती है ।

    सूत्र = Kr.=Re(I-wt)(I-f)
12. अंश पूंजी की लागत लाभांश दृष्टिकोण के आधार पर पूँजी सम्पत्ति की मत मॉडल (CAPM) के आधार पर गणना की जाती है

    सूत्र – $Po(l-f)=\sum_{T=1}^{n}\frac{D_1(l+g)^{t-1}}{(l+k_e)^t}$

13. अलग-अलग स्थितियों एवं जोखिमों के कारण एक बट्टा दर के स्थान पर समायोजित वर्तमान मूल्य दृष्टिकोण के अपनाना चाहिए ।
14. नगद प्रबंध के लिए बहु राष्ट्रीय निगम सभी सहयोगी फर्मों से यह अपेक्षा करती है कि नगद राशि अधिक होने की दशा में तुरन्त उसे वहाँ हस्तान्तरित करनी चाहिए जहाँ उसकी आवश्यकता है । इसके लिए नेटिंग प्रणाली एवं मुद्रा केन्द्र का प्रयोग किया जाता है ।
15. उधार का प्रबंध करते समय यह देखा जाता है कि डूबत ऋण व संदिग्ध ऋणों की मात्रा न्यूनतम हो यह दर वृद्धिमान लाभ की दर से कम होनी चाहिए ।
16. स्कन्ध प्रबंध करते समय बहु राष्ट्रीय निगम कार्यशील स्टॉक एवं सुरक्षित स्टॉक दोनों की मात्रा एवं निर्धारित विभिन्न स्थानों पर रखना चाहिए ।
17. भारत सरकार ने भारतीयों निगमों को बाह्य वाणिज्यिक उधार (ECBS) द्वारा अपने कोष बढ़ाने की छूट दी है। इसके सम्बन्ध में भारत सरकार समय समय पर प्रावधानों में परिवर्तन करती है ।
18. निगमों द्वारा ब्याज दर एवं विनिमय दरों में उच्चावयन जोखिम के लिए रिजर्व व आर्थिक मामलात मंत्रालय भारत सरकार से पूर्व अनुमति लेकर अग्रिम समझौते किये जा सकते है ।
19. भारतीय निगम युरो बाजार से भी कोष प्राप्त कराने के लिए विदेशी मुद्रा ब्राँड (RCCBS(एवं वैश्विक निक्षेपित रसीदें (GDRS) का उपयोग करते हैं ।
20. जी.डी.आरस./ए.डी.आरस. का आशय किसी कम्पनी द्वारा निर्गमित साधारण अंश या एफ.सी.सी.बीज. के बदले गैरनिवासी द्वारा जमा रसीदों या अन्य प्रमाणपत्रों आधार पर ओवरसीज निक्षेपति बैंक (ODB) द्वारा सृजित उपकरण होते है इस सम्बन्ध में भारत सरकार एवं रिजर्व बैंक द्वारा प्रावधान जारी किये जाते है ।

3.7 शब्दावली 1.

i.	MNC	Multinational Corporation	बहु राष्ट्रीय निगम
ii.	.CFAT	Cash Flow After Tax	कर पश्चात् नगद प्रवाह
iii.	.CAPM	Capital Assets Pricing Model	पूँजी सम्पदा की मत प्रारूप
iv.	APV	Adjusted Present Value	समायोजित वर्तमान मूल्य
v.	IFC	International Financial Corporation	अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय निगम
vi.	ADB	Asian Development Bank	एशियाई विकास बैंक
vii.	.ECBS	External Commercial Borrowing	बाह्य वाणिज्यिक उधारे
viii.	.FCCBS	Foreign Currency Bonds	विदेशी मुद्रा बॉड्स
ix.	GDRS	Global Depository Receipts	वैश्विक निक्षेपित रसीदें
x.	ADRS	American Depository Receipts	अमेरिकन निक्षेपित रसीदें
xi.	DEA	Departments of Economics affairs	आर्थिक मामलात विभाग

xii. FM	Ministry of Finance	वित्त मंत्रालय
xiii. GOL	Govt. of India भारत	सरकार

3.8 स्वपरख प्रश्न

1. बहुराष्ट्रीय पूंजी बजटिंग क्या है?
   What is Multinational Capital Budgeting?
2. वृद्धिमान नगद अन्तर्वाह एवं वृद्धिमान नगद बहिर्वाह समझाइए ।
   Explain tucrematal cash in flow and tucrematal cash out flow.
3. कर पश्चात नगद अन्तर्वाह (CFAT) क्या है?
   What is cash in flow after tax?
4. अन्तर्राष्ट्रीय वित्त की प्रमुख जोखिमों का वर्णन कीजिए ।
   Explain Main risk of International Finance.
5. पूंजी की लागत समझाइए ।
   Explain Cost of capital.
6. ऋण की लागत की गणना कैसे की जाती है? उदाहरण सहित समझाइए?
   Explain Cost of Capital
7. समता अंश पूंजी की लागत एवं पूर्वाधिकार अंशों की लागत की गणना में अन्तर बताइए ।
   Differentiate the cost of equity share cost and Preference share cost.
8. प्रतिधारित अर्जनों की लागत क्या है? समझाइए ।
   Explain the retain earning cost
9. अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय प्रबन्ध में कार्यशील पूंजी के प्रबन्ध सम्बन्धी मुख्य बातें समझाइए ।
   Explain main points of working capital as an in international financial management.
10. अन्तर्राष्ट्रीय वित्त के स्रोतों में बाह्य व्यापारिक उधारों (ECSB) का महत्व समझाइए ।
11. वित्तीय स्रोतों के रूप में युरों निर्गमन की प्रमुख बाते समझाइए । निम्न पर टिप्पणी लिखिए
    i. विदेशी मुद्रा बॉड्स (FCCBS)
    ii. वैश्विक निक्षेपित रसीदें (GDRS)
    Write Short Notes on:
    i. i.Foreign Currency Bonds (FCCBS)
    ii. ii.Globel Depository Receipts (GDRS)

3.9 व्यवहारिक प्रश्न

1. एक युएस बहुराष्ट्रीय कम्पनी भारत में एक नया उत्पाद प्रारम्भ करने के लिए प्लान्ट स्थापित करने का विचार कर रही है । प्लान्ट की लागत 2 लाख रू. है । प्लान्ट का जीवनकाल 5 वर्ष का अनुमान है । प्लान्ट पर हास 25 प्रतिशत की दर से अपलेखित मूल्य पर लगाया जाता है ।

   अवशिष्ट मूल्य 20,000 रू होगा । उत्पाद की बिक्री 8 रू प्रति यूनिट के हिसाब से होगी स्थायी लागत प्रतिवर्ष 50,000 रू तथा परिवर्तनशील लागत 4 रू प्रति इकाई होगा । 75,000 इकाईयाँ प्रतिवर्ष निर्माण एवं बिक्री करने का अनुमान है। भारत में निगम कर

की दर 35 प्रतिशत हैं । यह कम्पनी परियोजना की पूँजी की लागत 20 प्रतिवर्ष का अनुमान लागती है । अतिरिक्त कार्यशील पूंजी का अनुमान 1,00,000 रू की आवश्यकता होगी। युएस कम्पनी प्रतिवर्ष 100 प्रतिशत प्रत्यार्वतन (Repatriation) की अनुमति है । 10 प्रतिशत रोकने (Withholding) की दर है । क्या कम्पनी को भारत में यह प्लान्ट स्थापित करना उचित होगा ।

स्पॉट एवं प्रत्याशित (Expected) विनिमय की दर निम्नानुसार है:

स्पॉट (spot)		Rs 50$
वर्ष के अन्त में	1	50
	2	50
	3	52
	4	52
	5	52

संकेत सिफारिश : NPV (Net Present Value) धनात्मक है अत: युएस कम्पनी को यह प्लान्ट भारत में लगाना उचित रहेगा।

2. एक भारतीय कम्पनी अपनी सहयोगी फर्म युएस में स्थापित करना चाहती है । इसकी प्रारम्भिक परियोजना की लागत 200 मिलियन यूएस डालर है । कार्यशील पूंजी का अनुमान 20 मिलियन डालर है । यह कम्पनी हास की सीधी रेखा पद्धति को अपनाती है ।

   इस कम्पनी के वित्त प्रबन्धक को इस परियोजना के संदर्भ में निम्न सूचनाएं उपलब्ध है ।

   i. परिवर्तनशील लागत (उत्पादन एवं विक्रय) 125 प्रति इकाई हास डालर है ।
   ii. स्थायी लागत -15 यूएस डालर
   iii. प्लान्ट द्वारा उत्पादित एवं विक्रय की पाने वाली इकाईयों की संख्या 25 मिलियन इकाईयाँ है ।
   iv. विक्रय मूल्य 50 डालर प्रति इकाई
   v. प्लान्ट का जीवनकाल 5 वर्ष का अनुमान है । अवशिष्ट मूल्य शून्य है ।
   vi. भारतीय कम्पनी को निगम कर 40 प्रतिशत की दर से चुकाता है ।
   vii. इच्छित प्रत्याय की दर 12 प्रतिशत है ।
   viii. दोनों देशों के बीच विनिमय की वर्तमान दर रू 48 / US डालर है रूपये का प्रतिवर्ष 3 प्रतिशत की दर से अवमूल्यन अगले 5 वर्ष में होगा ।

सहयोगी कम्पनी का वृद्धिमान नगद प्रवाह का 70 प्रतिशत भाग स्वदेश ले जाने की अनुमति है । शेष भाग 5 वर्ष के अन्त में ले जा सकती है । रोकने पर कर की दर 10 प्रतिशत रोके गये कोष का विनियोग US में करने पर 4 प्रतिशत की दर से आय बिना कर होने का अनुमान हैं भारत में कोई कर का दायित्व नही होगा आप इस परियोजना की व्यवहार्यता ज्ञात कीजिए।

संकेत: क्योंकि शुद्ध वर्तमान मूल्य (NPV) धनात्मक है अत: परियोजना स्थापित करनी की सिफारिश की जाती है ।

3.10 संदर्भ ग्रंथ

1. Spero Allain b: Financial Management
2. Van James C: Finical Management and polices
3. Emery,D.R. and John D Finery : Corporate Financial Management
4. Porterfield,J.T.S: Investment Decisions and capital cost.
5. Brigham E F and J F Houston: Fundamentals of financial Management
6. I.M. Panday: Financial management
7. M.Y.Khan & P.K. Jain: Management Accountancy.

इकाई-4 : परियोजना नियोजन एवं वित्त व्यवस्था (Project Planning and Financing)

इकाई की रूपरेखा:

4.0 उद्देश्य

4.1 परियोजना - अर्थ, उद्देश्य, लक्षण, परियोजना के अन्तर्सम्बन्धित मुख्य चरण

4.2 परियोजना नियोजन - परियोजना प्रतिवेदन तैयार करने से पूर्व कार्य, परियोजना से सम्बन्धित विशिष्ट प्रस्ताव

4.3 परियोजना प्रतिवेदन - लक्षण, प्रारूप

4.4 परियोजना की पूँजी व्यवस्था - दीर्घकालीन पूँजी, कार्यशील पूँजी, पूँजी प्राप्त करने के स्त्रोत।

4.5 पूँजी की लागत

4.6 सारांश

4.7 स्वपरख प्रश्न

4.8 उपयोगी पुस्तकें ।

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के सम्पूर्ण अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:-

i. परियोजना का अर्थ, उद्देश्य, लक्षण, नियोजन, महत्व से परिचित हो सके ।

ii. परियोजना नियोजन के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकें ।

iii. परियोजना प्रतिवेदन के प्रारूप में सम्मिलित होने वाली बाते जान सकें ।

iv. परियोजना की पूँजी व्यवस्था समझ सकें ।

v. परियोजना की पूँजी लागत ज्ञात करना सीख सकें ।

4.1 परियोजना (Project)

परियोजना का अर्थ (Meaning of Project)

परियोजना शब्द का अर्थ 'योजनाबद्ध कार्य' हैं । सरल शब्दों में किसी भी कार्य को करने से पूर्व उस कार्य की योजना तैयार करने एवं योजना के अनुरूप कार्य सम्पन्न करने की प्रतिबद्धता को परियोजना कहते है । सामान्यत: व्यवहार में अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर ऐसी परियोजनाएँ देखी जा सकती हैं । परियोजनाएँ अल्पकालीन उद्देश्यों एवं/अथवा दीर्घकालीन उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु तैयार की जाती हैं । राजनैतिक संगठनों, सामाजिक संगठनों, शैक्षणिक संगठनों, श्रम संगठनों, धार्मिक संगठनों एवं व्यावसायिक संगठनों की परियोजनाओं के उद्देश्य, पृथक-पृथक होते हैं । विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, संयुक्त राष्ट्र संघ की परियोजनाओं के उद्देश्य एवं विभिन्न राष्ट्रों की सरकारों की परियोजनाओं के उद्देश्यों में समानता होना आवश्यक नहीं है । प्रत्येक संगठन अपने तात्कालिक एवं सामरिक हित के अनुरूप परियोजना तैयार करता है । जहाँ व्यावसायिक संस्थाएँ अपने व्यावसायिक हितों के अनुरूप

परियोजनाओं का चयन करती हैं वहाँ सरकार अपने राष्ट्रीय हितों के अनुरूप परियोजनाओं का चयन करती है ।

परियोजना के उद्देश्य (Obectives of Project)

किसी व्यावसायिक संस्था के प्रबन्धकों का मूलभूत उद्देश्य व्यावसायिक संस्था में किये गये विनियोजन पर अधिकतम प्रत्याय प्राप्त करना होता है । एक व्यवसायिक संस्था के प्रबन्धकों का संस्था की सम्बन्धित परियोजना पर न्यूनतम विनियोग कर उस पर उच्चतम प्रत्याय प्राप्त करने का उद्देश्य होता है अथवा वे अधिकतम विनियोग कर संस्था के कार्य क्षेत्र में उच्चतम वृद्धि (Growth) एवं विस्तार (expansion) प्राप्त करने हेतु परियोजना का नियोजन हैं । प्रत्येक प्रबन्धकीय निर्णय, नीति एवं योजना का उद्देश्य सामान्यत: परिस्थितियों के अनुसार व्यवसायिक संस्था हेतु उपयोगी परियोजना में विनियोजन कर उच्चतम प्रत्याय दर प्राप्त करना होता हे । ये परिस्थितियाँ निम्नलिखित हो सकती हैं

अ. नवीन तकनीक के विकास के कारण विद्यमान उत्पादन/विक्रय /वितरण विधियों के प्रतिस्थापन, विस्तार एवं नवीन क्रियाओं को प्रारम्भ करने की आवश्यकता

ब. प्रतियोगियों द्वारा आर्थिक अवसरों के दोहन हेतु अपनाई गई विशिष्ट कार्य योजनाओं के परिणामस्वरूप उत्पन्न परिस्थितियों के दुष्प्रभावों से निपटने तथा बाजार परिस्थितियों को अनुकूल बनाने की आवश्यकता;

स. विशिष्ट स्थानीय, प्रान्तीय, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति कर लाभ उठाने हेतु परियोजना ।

द. विशिष्ट स्थानीय, प्रान्तीय, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु राज्य द्वारा प्रस्तावित प्रोत्साहनों का लाभ उठाने हेतु परियोजना ।

प्रत्येक परियोजना किसी विशिष्ट उद्देश्य से जुड़ी होती है तथा इसे पूंजीगत परियोजना/पूंजी विनियोजन/पूंजीगत व्यय समझना चाहिए । एक पूंजीगत परियोजना पर व्यय इस आशा से किया जाता है कि इससे निश्चित समय तक प्रत्याशित लाभ प्राप्त होगा । परियोजना पर व्यय तथा परियोजना से आय का स्वतन्त्र रूप से अनुमान लगाकर लागत एवं लाभ का तुलनात्मक विश्लेषण किया जा सकता है ।

परियोजना के लक्षण (Characteristics of Project)

उपर्युक्त विवरण के आधार पर परियोजना के लक्षणों (विशेषताओं) को निम्न बिन्दुओं के रूप में इंगित किया जा सकता है :-

अ. प्रत्येक परियोजना का स्पष्ट उद्देश्य होता है ।

ब. परियोजना अल्पकालीन अथवा दीर्घकालीन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु होती है ।

स. परियोजना की अवधि उद्देश्यानुसार निर्धारित होती है ।

द. परियोजना की पूंजीगत लागत होती है ।

य. भावी लाभ/आगम की प्रत्याशा परियोजना का मुख्य कारक है ।

र. सम्बन्धित परियोजना पर व्यय एवं प्रत्याशित आगम का स्वतन्त्र अनुमान करना संभव होता है ।

ल. गैर-व्यवसायिक संस्थाओं को भी परियोजनाएँ होती हैं । इन संस्थाओं की परियोजनाओं के उद्देश्य उनकी आवश्यकता के अनुसार होते हैं ।

(व) व्यवसायिक संस्थाओं की परियोजनाओं का उद्देश्य न्यूनतम विनियोजन कर अधिकतम प्रत्याय अर्जित करना होता है ।

परियोजना के अन्तर्सम्बन्धित मुख्य चरण (Inter-related Broad Phases of Project)

परियोजना से सम्बन्धित मुख्य चरण निम्नलिखित होते हैं :-

i. नियोजन (Planning)

ii. विश्लेषण (Analysis)

iii. चयन (Selection)

iv. वित्त व्यवस्था (Financing)

v. क्रियान्वयन (Implementation)

vi. पुनर्मूल्यांकन (Review)

4.2 परियोजना नियोजन (Project planning)

परियोजना का प्रथम चरण उसका नियोजन करना है । पूंजीगत परियोजना के इस चरण का सम्बन्ध प्रस्तावित विशिष्ट विनियोजन व्यूहरचना की अभिव्यक्ति करना तथा परियोजना प्रस्ताव की प्रथमदृष्टया अच्छाई-बुराई, गुण-अवगुण, लाभ-हानि का आभास करना है । परियोजना नियोजन के अन्तर्गत मोटे रूप से परियोजना के क्षेत्रों/प्रकारों में विनियोग तथा स्वरूप की रूपरेखा की अभिव्यक्ति होती है । परियोजना की प्रारम्भिक अभिव्यक्ति से दो उद्देश्यों का मोटे रूप से मूल्यांकन होता है, (i) क्या प्रथम दृष्ट्या परियोजना में विनियोग करना लाभप्रद रहेगा, जो कि परियोजना की सम्पूर्ण उपादेयता की विस्तृत जांच-पड़ताल की सार्थकता के निर्णय का आधार होगा, तथा (ii) परियोजना के उन पहलुओं का आभास होगा जिनकी विशेषतः गहन जाँच-पड़ताल करने की आवश्यकता होगी ।

परियोजना प्रतिवेदन (Project Report)

परियोजना से सम्बन्धित आवश्यक सूचनाओं एवं उनके विश्लेषण से ज्ञात हु ए तथ्यों का विवरण परियोजना प्रतिवेदन कहलाता है । प्रत्येक परियोजना के सम्बन्ध में निर्णय लेते समय परियोजना प्रतिवेदन में शामिल तथ्य आधार होते हैं। परियोजना प्रतिवेदन तैयार करने से पूर्व अनेक कार्य करने होते हैं जिन पर समय, श्रम एवं धन व्यय करना पड़ता है। परियोजना प्रतिवेदन तैयार करने की लागत को परियोजना-पूर्व का व्यय माना जाता है क्योंकि यह व्यय परियोजना लागत का भाग नहीं होता है । परियोजना प्रतिवेदन विस्तृत एवं गहन अनुसंधान से प्राप्त तथ्यों को एकत्रित, सूचीबद्ध, विश्लेषित एवं परस्पर सम्बन्धित कर तैयार किया जाता है ।

परियोजना प्रतिवेदन तैयार करने से पूर्व कार्य (Functions Prior to Drafting of Project Report)

परियोजना प्रतिवेदन तैयार करने से पूर्व परियोजना से जुड़े हुए निम्न पहलुओं से सम्बन्धित सूचनाओं का संग्रहण एवं विश्लेषण करना होता है :-

अ. बाजार एवं मांग विश्लेषण (Market and Demand Analysis)

व. तकनीकी विश्लेषण (Technical Analysis)

स. वित्तीय/अनुमान / प्रक्षेपण (Financial Estimatese Projections)

द. आर्थिक/सामाजिक लागत-लाभ विश्लेषण (Economic Social Cost - Benefit Analysis))

अ. **बाजार एवं माँग विश्लेषण**: बाजार एवं माँग विश्लेषण से तात्पर्य है. (i) उत्पाद/सेवा की कुल बाजार माँग का अनुमान लगाना, तथा (ii) कुल बाजार माँग में व्यवसायिक संस्था के संभावित अंश का अनुमान लगाना । बाजार में उत्पाद/सेवा की मांग से सम्बन्धित तथ्यों से ही व्यवसायिक संस्था को अपनी परियोजना की सफलता एवं असफलता का आभास होता है । बाजार मांग की सूचना ग्राहकों से प्रत्यक्ष जानकारी, प्रतियोगी संस्थाओं के विक्रय समंक, मध्यस्थों से सम्पर्क एवं उद्योग व्यापार संघों द्वारा परिकलित /अनुमानित मांग के आधार पर की जाती है । इन सूचनाओं के विश्लेषण के आधार पर बाजार मांग में व्यवसायिक संस्था के उत्पाद /सेवा का हिस्सा अनुमानित किया जाता है ।

ब. **तकनीकी विश्लेषण:** तकनीकी विश्लेषण का उद्देश्य दो तथ्यों से सन्तुष्ट होना है: (i) परियोजना के लिये आवश्यक संसाधन (आदा) यथा सामग्री, ईंधन, रसायन, श्रम आदि उपलब्ध हैं / हो पायेंगे कि नहीं, तथा (ii) क्या परियोजना हेतु तकनीकी आवश्यकताएँ अर्थात् सरकारी नीतियाँ, संयन्त्र एवं मशीनरी, उत्पादन तकनीक, पेटेन्ट /तकनीकी सहयोग की उपलब्धता /संभावना, पर्यावरण, परियोजना प्रारम्भ करने की वैधानिक समय सीमा आदि सम्बन्धी संभावनाएँ उपलब्ध हैं अथवा नहीं । इसके साथ ही यह भी जानकारी करना आवश्यक है कि विद्यमान परियोजनाओं, उत्पादों, समझौतों पर इस परियोजना का क्या प्रभाव पड़ेगा तथा इस परियोजना के पश्चात भविष्य की परियोजनाओं की क्या स्थिति बनेगी ।

स**. वित्तीय अनुमान/ वित्तीय प्रक्षेपण:** परियोजना के वित्तीय पहलुओं का प्रक्षेपण करना अत्यावश्यक है क्योंकि अन्ततः वित्तीय अनुमान के आधार पर ही परियोजना की स्वीकृति /अस्वीकृति का निर्णय लिया जाता है । वित्तीय प्रक्षेपण से तात्पर्य परियोजना पर पूंजीगत व्यय (परियोजना लागत) की राशि, परियोजना लागत की वित्तीय व्यवस्था के स्रोत, परियोजना के उत्पादन एवं विक्रय के अनुमान, उत्पादन लागत, अतिरिक्त कार्यशील पूंजी का अनुमान, रोकड़ प्रवाह का प्रक्षेपण तथा प्रक्षेपित लाभ एवं चिट्ठा होता है ।

परियोजना की लागत में परियोजना हेतु भूमि एवं भवन एवं कार्यस्थल का विकास /विस्तार, संयन्त्र एवं मशीनरी तथा उनकी स्थापना से सम्बन्धित लागत, परियोजना से सम्बन्धित तकनीक एवं अभियान्त्रिक सेवाओं की फीस, अतिरिक्त कार्यालय संयन्त्र,

फर्नीचर, वाहन आदि की लागत तथा अतिरिक्त कार्यशील पूंजी एवं आकस्मिकताओं के लिये वित्तीय संसाधनों का अनुमान लगाया जाता है ।

परियोजना की स्थापना एवं क्रियान्वयन की अवधि के व्ययों के अतिरिक्त परियोजना प्रारम्भ होने के पश्चात् संभावित उत्पादन एवं विक्रय के अनुमानों एवं उत्पादन लागत के अनुमानों के आधार पर प्रक्षेपित लाभ एवं रोकड़ प्रवाह के अनुमान लगाये जाते हैं । उत्पादन की मात्रा का अनुमान लगाते समय संयन्त्र एवं मशीनरी की उपलब्ध क्षमता के उपयोग, एक अथवा एक से अधिक पालियों में उत्पादन योजना, तथा उत्पादन हेतु कार्य दिवसों का अनुमान लगाया जाता है । इसी प्रकार विक्रय की मात्रा एवं विक्रय राशि का अनुमान लगाने हेतु बाजार मांग में हिस्सा, प्रतियोगी मूल्य, विज्ञापन एवं विक्रय संवर्द्धन एवं वितरण कार्यक्रमों के प्रभावों आदि का प्रक्षेपण करना होता है ।

द. **आर्थिक एवं सामाजिक लागत-लाभ विश्लेषण :** परियोजना का आर्थिक एवं सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण करना सम्बन्धित परियोजना को सरकार एवं समाज से मान्यता एवं सहयोग प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करता है । आर्थिक-सामाजिक लागत-लाभ विश्लेषण का उद्देश्य परियोजना का मूल्यांकन सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था एवं समाज की दृष्टि से करना है । इस विश्लेषण में यह ज्ञात करने की चेष्टा की जाती है कि परियोजना के सकारात्मक एवं नकारात्मक पहलू क्या हैं जो सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था एवं समाज को प्रभावित करेंगे । परियोजना के सकारात्मक प्रभावों में यह ज्ञात किया जाता है कि परियोजना से कितने व्यक्तियों को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रोजगार प्राप्त होगा तथा परियोजना के कारण परियोजना स्थल पर सड़क, जल, विद्युत, सन्देशवाहन, व्यापार, वाणिज्य, शिक्षा, प्रशिक्षण, बैंक, बीमा, परिवहन सहित विभिन्न आधारभूत सुविधाओं का कितना विकास होगा । परियोजना के नकारात्मक पहलुओं में दुर्घटनाएँ, सामाजिक वातावरण को क्षति तथा कानून एवं व्यवस्था, पर्यावरण, महँगाई, कृषि भूमि, जल संसाधन, छोटे स्तर के व्यापार आदि पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभावों का ज्ञान किया जाता है । परियोजना के कारण केन्द्रीय, प्रान्तीय, स्थानीय सरकारों की आय में वृद्धि तथा सरकारी अनुदान एवं सुविधाओं पर व्यय का भी आकलन किया जाता है । परियोजना के सकारात्मक पहलुओं को सामाजिक/ आर्थिक लाभ एवं नकारात्मक पहलुओं को सामाजिक /आर्थिक लागत के रूप में समझते हुए परियोजना के शुद्ध सामाजिक आर्थिक मूल्य को आधार मानते हुए परियोजनाका मूल्यांकन किया जाता है । उपर्युक्त तथ्यों सम्बन्धी आर्थिक /सामाजिक लाभों का पलड़ा बहुत अधिक भारी होने एवं इन लाभों का वितरण आर्थिक रूप से कमजोर एवं पिछड़े क्षेत्रों के पक्ष में होने पर परियोजना को सरलता से सामाजिक स्वीकृति प्राप्त हो जाती है ।

परियोजना से सम्बन्धित विशिष्ट प्रस्ताव (Project related specific proposals)

परियोजना से सम्बन्धित संग्रहित सूचनाओं के विश्लेषण के आधार पर परियोजना प्रतिवेदन में वर्णित करने हेतु विभिन्न वैकल्पिक प्रस्तावों को तैयार करना होता है । इन प्रस्तावों में से प्रमुख प्रस्ताव निम्न बिन्दुओं से सम्बन्धित होते है :

1. **परियोजना का स्थान (Location of Project)** : परियोजना स्थल का चुनाव मांग विश्लेषण, सरकारी प्रोत्साहन विश्लेषण एवं सामाजिक एवं आर्थिक सहभागिता विश्लेषण

के आधार पर किया जाता है । परियोजना के चयन के सम्बन्ध में वेबर का सिद्धान्त मार्गदर्शक है । वेबर के सिद्धान्त के अनुसार उत्पादन प्रक्रिया के कारण यदि तैयार हुए माल का वजन उस माल को तैयार करने में प्रयुक्त कच्ची सामग्री, ईंधन आदि के वजन की तुलना में पर्याप्त रूप से कम हो तो परियोजना का स्थान कच्ची सामग्री एवं ईंधन के समीप रखना आर्थिक रूप से अधिक लाभप्रद रहता है । यही कारण है कि चीनी के कारखाने गन्ना उत्पादक क्षेत्रों के समीप स्थापित किये जाते हैं । ठीक इसी प्रकार लौह एवं इस्पात के कारखाने लौह-अयस्क, मैंगनीज, कोयला आदि उत्पादक क्षेत्रों के समीप रखे जाते हैं । इसके विपरीत शीघ्र नष्ट होने वाले उत्पादों के कारखाने उनके बाजार के समीप रखे जाते हैं । अपेक्षाकृत हल्के परन्तु टिकाऊ उत्पादों जैसे प्लास्टिक, बिजली के उपकरण, खिलौने आदि के कारखानों की स्थापना सामान्यत: निर्मित माल के बाजार की समीपता के आधार की जाती है । सीमेंट, रसायनिक खाद आदि वजनी उत्पादों के कारखानों का स्थल बंजर भूमि, कच्चे माल की समीपता, रेलवे साइडिंग, सुगम सड़क परिवहन की सुविधा को आधार मानते हुए ऐसी सुविधाओं के समीप स्थान का चयन किया जाता है । उपर्युक्त तथ्यों पर आधारित परियोजना की भावी परिचालन लागत का तुलनात्मक विश्लेषण करने के पश्चात् ही परियोजना स्थल का चयन किया जा सकता है ।

2. **संयन्त्र एवं मशीनरी का आकार एवं क्षमता (Size and Capacity of Plant and machinery) :** परियोजना के लिये आवश्यक संयन्त्र एवं मशीनरी के आकार एवं क्षमता का अनुमान लगाना आवश्यक है । बड़े आकार एवं अधिक क्षमता वाले संयन्त्र एवं मशीनरी की लागत अधिक होती है तथा उसके परिचालन हेतु स्थायी प्रकृति के व्यय भी अधिक होते हैं । परन्तु वृहत आकार में उत्पादन करने पर प्रति इकाई उत्पादन लागत कम बैठती है । अत: बाजार मांग में व्यवसायिक इकाई का हिस्सा तथा निकट भविष्य में मांग में वृद्धि होने की संभावना होने पर ही अधिक क्षमता वाले संयन्त्र एवं मशीनरी का चयन करना ठीक रहता है । बाजार मांग काम होने, निरन्तर नई तकनीक विकसित होने की संभावना होने, तथा फैशन एवं ग्राहक रूचि में निरन्तर परिवर्तन होने की संभावना की परिस्थिति में वर्तमान /प्रत्याशित मांग से थोड़ी बहुत अधिक क्षमता वाले संयन्त्र एवं मशीनरी का निर्णय करना ठीक रहता है । अत: बाजार की प्रकृति एवं तकनीक के पूर्वानुमान के आधार पर संयन्त्र एवं मशीनरी के आकार एवं क्षमता का निर्णय लिया जा सकता है ।

3. **विभिन्न उत्पादन स्तरों पर लागत अनुमान (Estimation of Cost at various levels of Production):**संयन्त्र एवं मशीनरी की उपलब्ध सामान्य क्षमता के जिस स्तर पर उत्पादन करने पर प्रति इकाई लागत न्यूनतम होती है उस उत्पादन स्तर को सर्वोत्तम उत्पादन स्तर की संज्ञा दी जाती है । परन्तु उपलब्ध उत्पादन क्षमता का वास्तविक उपयोग स्तर बाजार मांग पर निर्भर करता है । बाजार मांग में व्यावसायिक संस्था अपना हिस्सा बढ़ाने के लिये विज्ञापन, उत्पाद की किस्म में सुधार, विक्रय प्रोत्साहन/संवर्द्धन आदि विधियों का सहारा लेती है अथवा विक्रय मूल्य को घटा सकती है । विभिन्न उत्पादन स्तरों पर उत्पाद /सेवा उपलब्ध कराने की लागत तथा उस स्तर

पर विक्रय करने हेतु उत्पाद /सेवा के संभावित विक्रय मूल्य की परस्पर तुलना कर उत्पादन स्तर का निर्धारण किया जाता है ।

4. **परियोजना पर दीर्घकालीन विनियोजन राशि का अनुमान (Estimation of long-term Investment on Project):** परियोजना पर दीर्घकालीन सम्पत्तियों यथा भूमि, भवन, संयन्त्र, मशीनरी, उपकरण, वाहन, रेलवे साइडिंग आदि पर व्यय होने वाली संभावित राशियों का अनुमान लगाना होता है । पूंजीगत व्ययों पर परियोजना. के प्रारम्भिक काल तथा भविष्य में विस्तार आदि के लिये कब एवं कितनी राशि की आवश्यकता होगी का भी पूर्वानुमान किया जाना उचित रहता है ।
5. **परियोजना के सम्बन्ध में वांछित अतिरिक्त कार्यशील पूंजी का अनुमान (Estimation of Desired Incremental Working Capital):** परियोजना हेतु अतिरिक्त कार्यशील पूंजी की आवश्यकता का भी अनुमान लगाया जाना आवश्यक होता है । कार्यशील पूंजी का अनुमान सावधानी से लगाया जाना चाहिए । कार्यशील पूंजी की कमी के कारण परियोजना से लाभ प्राप्त होने की संभावना संदिग्ध हो जाती है ।
6. **परियोजना की वित्त व्यवस्था (Funding of project) :** परियोजना हेतु आवश्यक दीर्घकालीन विनियोजन के विभिन्न स्रोतों यथा समता अंश पूंजी, अधिमान अंश पूंजी, ऋण पत्र, दीर्घकालीन ऋण आदि का उचित संयोजन तय करना होता है ताकि व्यवसायिक संस्था की पूंजी प्राप्त करने की लागत (Cost of Capital) न्यूनतम रहे । परियोजना हेतु विदेशी मुद्रा की आवश्यकता पूर्ति हेतु अमेरिकन डिपॉजटरी, ग्लोबल डिपॉजटरी, फॉरन करेन्सी बान्ड, यूरो बॉन्ड का निर्गमन एवं विदेशी ऋण पर भी विचार किया जाना चाहिए।
7. परियोजना का प्रबन्धन कौशल (Managerial Skill of Project) : किसी भी परियोजना की सफलता अन्ततः प्रबन्धकीय कौशल पर निर्भर करती है । अतः परियोजना की प्रकृति के अनुसार तकनीकी रूप से कुशल एवं अनुभवी प्रबन्धकों एवं तकनीशियनों की व्यवस्था की उपलब्धता का भी ध्यान रखना आवश्यक है ।

4.3 परियोजना प्रतिवेदन के लक्षण एवं महत्व (Characteristics and Importance of Project Report)

जैसा पूर्व में वर्णित किया जा चुका है कि परियोजना प्रतिवेदन तैयार करने पर समय, धन एवं श्रम लगाना परियोजना पर पूर्व-विनियोग है । इस प्रतिवेदन को तैयार करने हेतु आर्थिक, सामाजिक, तकनीकी, वाणिज्यिक एवं प्रबन्धकीय पहलुओं की गहन अनुसंधान करना आवश्यक है । परिष्कृत एवं जटिल तकनीक एवं अत्यधिक वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता होने के कारण परियोजना से जुड़े समस्त पहलुओं का गहन अध्ययन करना आवश्यक है । निम्नलिखित परिप्रेक्ष्य में प्रत्येक परियोजना का प्रतिवेदन तैयार करना आवश्यक है :

अ. निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अग्रिम योजना बनाना आवश्यक है : (i) निष्पादन उद्देश्य; (ii) विपणन उद्देश्य; (iii) परिचालन उद्देश्य, (iv) तकनीकी उद्देश्य; (v) वित्तीय उद्देश्य;

(vi) वैयक्तिक उद्देश्य; (vii) संगठन उद्देश्य; (viii) अन्तिम उत्पाद उद्देश्य; ix) ग्राहक सन्तुष्टि उद्देश्य, एवं (x) सामाजिक उद्देश्य ।

ब. उपर्युक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये आवश्यक समंकों का समुचित विश्लेषण एवं मूल्यांकन कर सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन करना पड़ता है ताकि वांछित परिणाम प्राप्त किये जा सकें । प्रयास किया जाना चाहिए कि वांछित उद्देश्यों का मापन इस प्रकार किया जाये कि उनका मिलान वास्तव में प्राप्त उद्देश्यों से किया जा सके ।

स. श्रम, शक्ति, उपकरण, वित्त, प्रबन्ध एवं तकनीकी सीमाओं की पहचान कर उसी अनुरूप परियोजना तैयार की जानी चाहिए ।

द. परियोजना के लिये वित्त प्रदाता परियोजना प्रतिवेदन में वर्णित तथ्यों की सत्यता एवं संभाव्यता से सन्तुष्ट होने पर ही परियोजना के लिये आवश्यक वित्त की व्यवस्था होगी।

य. परियोजना का क्रियान्वयन परियोजना प्रतिवेदन के अनुसार किया जाता है । अत: परियोजना प्रतिवेदन तार्किक एवं विस्तृत रूप में तैयार किया जाता है । उचित है कि परियोजना से सम्बन्धित क्रियाओं का रोकड़ प्रवाह विवरण, क्रियाओं के विश्लेषण, क्रियाओं की क्रमबद्धता एवं क्रियाओं पर लगने वाले समय, श्रम, एवं धन का कार्यक्रम चित्र (PERT/CPM Network) परियोजना प्रतिवेदन में दे देना चाहिए ।

परियोजना प्रतिवेदन का प्रारूप (Format of Project report)

परियोजना प्रतिवेदन का कोई निर्धारित प्रारूप नहीं है परन्तु सामान्यत: परियोजना प्रतिवेदन की निम्न विषय वस्तु होती है :

i. परियोजना से सम्बन्धित उद्योग, अर्थव्यवस्था में उस उद्योग का महत्व, विद्यमान व्यवसायिक इकाइयों की उत्पादन क्षमता, बाजार मांग, परियोजना के लिये व्यवसायिक संस्था की अनुज्ञा-पत्र के अनुसार स्वीकृत (Licensed) क्षमता, सरकारी नीति, निर्यात संभावनाएँ आदि का विवेचन होता है ।

ii. आगामी 5 वर्षों में परियोजना के उत्पाद/सेवा की मांग एवं पूर्ति का आकलन दिया होता है ।

iii. परियोजना के उत्पाद/सेवा के लिये कच्ची सामग्री की उपलब्धता की जानकारी प्रत्येक कच्ची सामग्री के लिये दी जाती है ।

iv. परियोजना के उत्पाद/सेवा हेतु विभिन्न उत्पादन प्रक्रियाओं आदि का विवरण ।

v. तकनीक एवं तकनीशियों की आवश्यकता एवं उपलब्धता का आकलन ।

vi. परियोजना स्थल का विवरण एवं उस स्थल पर परियोजना लगाने के तुलनात्मक लागत लाभदायकता का विवरण

vii. परियोजना के लिये चयनित संयन्त्र, मशीनरी एवं उपकरणों की क्षमता ।

viii. परियोजना के लिए शक्ति, जल, परिवहन, संचार, बैंक, बीमा, मरम्मत आदि की सुविधाओं का विवरण।

ix. अवशिष्ट उत्पादों के निष्पादन की व्यवस्था ।

x. परियोजना के लिये भूमि, भवन, संयन्त्र एवं मशीनरी को प्राप्त एवं स्थापित करने की समयबद्ध योजना।

xi. परियोजना की लागत

भूमि की लागत

भवन निर्माण/क्रय की लागत

संयन्त्र एवं मशीनरी की लागत

उपकरण, वाहन आदि की लागत

xii. परियोजना हेतु अनुज्ञा प्राप्त करने, कानूनी समझौते करने, आवश्यक वित्त व्यवस्था करने सम्बन्धी व्यय ।

xiii. परियोजना हेतु वित्त प्राप्त करने के विभिन्न स्रोतों से प्राप्त होने वाली राशि ।

xiv. वित्त व्यवस्था की पूंजी लागत ।

xv. सर्वोत्तम उत्पादन क्षमता एवं उसे प्राप्त करने की समयावधि ।

xvi. उत्पादन एवं विक्रय लागतें ।

xvii. परियोजना के प्रथम पांच वर्षों का रोकड़ प्रवाह विवरण ।

xviii. तकनीकी एवं वित्तीय संभाव्यता का विस्तृत विवेचन ।

xix. परियोजना के लिये आवश्यक तकनीकी एवं कुशल पेशेवर व्यक्तियों एवं प्रबन्धकों के स्तर, अनुभव एवं गत सफलताओं का विवेचन ।

अनेक विद्वानों के अनुसार परियोजना प्रतिवेदन तैयार करना ही परियोजना कहलाता है ।

4.4 परियोजना की पूंजी व्यवस्था (Project Financing)

अंश पूंजी एवं ऋण पूंजी के मुख्य स्रोतों से आपभलीभाँति परिचित हैं फिर भी संक्षेप में इनका वर्णन किया गया है

1. **समता अंश (Equity Share):** समता अंश पूंजी कम्पनी की स्वामित्व पूंजी का प्रतिनिधित्व करती है तथा समता अंशों के धारक कम्पनी के लाभ एवं जोखिम के हिस्सेदार होते हैं । समता अंशों के निम्न विशिष्ट लक्षण होते हैं

   अ. **आय पर अवशिष्ट दावा (Residual Claim to Income**) अर्थात् कम्पनी की आय में समस्त बाह्य ऋणदाताओं एवं अन्य दावेदारों एवं अधिमान अंशधारियों के दावों का निपटारा करने के पश्चात् शेष रही आय पर समता अंशों के धारकों का हक होता है । इस शेष रही आय में से कितनी राशि का समता अंशधारियों को नकद में वितरण किया जाए इसका प्रस्ताव कम्पनी के संचालक मंडल द्वारा किया जाता है । समता अंशधारी संचालक मंडल द्वारा प्रत्येक वर्ष प्रस्तावित लाभांश से अधिक लाभांश को प्राप्त करने के लिये अधिकारी नहीं होते हैं । संचालक मंडल द्वारा कम्पनी की भावी आवश्यकताओं, भावी रोकड़ प्रवाहों, भावी लाभों आदि को ध्यान रखते हुए समता अंशधारियों के लिये उपलब्ध लाभों में से पर्याप्त राशि व्यवसाय में पुनर्विनियोग हेतु रख ली जाती है तथा शेष राशि ही समता अंशधारियों में लाभांश के रूप में वितरित

की जाती है । संचालक मंडल द्वारा ऐसा करने से कम्पनी की वित्तीय स्थिति सुदृढ़ बनती है, भावी परियोजनाओं के लिये वित्तीय प्रबन्धन में सहायता मिलती है और कम्पनी के लाभों में वृद्धि होती है ।

ब. **बोनस अंश** : कम्पनी के संचालक मंडल द्वारा एकत्रित लाभों एवं संचयों में से समय-समय पर समता अंशधारियों को अंशों का निःशुल्क आबंटन किया जाता है जिन्हें बोनस अंश निर्गमन कहा जाता है ।

स .सम्पत्तियों पर अवशिष्ट दावा (Residual Claim on Assets) : कम्पनी के समापन की स्थिति में समापक कम्पनी की समस्त सम्पत्तियों के विक्रय से प्राप्त राशि में से समस्त बाह्य (लेनदार, ऋणदाता, ऋणपत्रों के धारक) दावेदारों एवं अधिमान अंशों के धारकों के दावों का निपटारा करने के पश्चात् अवशिष्ट समस्त राशि कम्पनी के समता अंशधारियों को वितरित करता है ।

द. नियन्त्रण का अधिकार (Right to Control): समता अंशधारी कम्पनी के वास्तविक स्वामी होते हैं तथा इन्हें कम्पनी के परिचालन को नियन्त्रित करने का वैधानिक अधिकार होता हैं । अपने इस वैधानिक अधिकार का उपयोग करने हेतु समता अंशधारी अपने प्रतिनिधि चुनते हैं जिन्हें संचालक कहते हैं । समस्त संचालकों के समूह को संचालक मंडल कहते हैं । संचालक मंडल समता अंशधारियों के प्रतिनिधि के रूप में कम्पनी का संचालन करता है । समता अंशधारियों को उनके द्वारा धारित समता अंशों की प्रदत्त पूंजी के अनुपात में मताधिकार होता है । कम्पनी अधिनियम 1956 में वर्णित विशिष्ट परिस्थितियों में संचालक मंडल को कम्पनी के परिचालन आदि कार्यों के लिए समता अंशधारियों की सभा बुलाकर सामान्य अथवा विशेष प्रस्ताव पारित कराना आवश्यक है ।

य. **हकशफा (Premptive Right) :** समता अंशधारियों को कम्पनी अधिनियम 1956 की धारा 81 के अनुसार यह वैधानिक अधिकार है कि कम्पनी भविष्य में जब कभी भी और अंशों का निर्गमन करे, कम्पनी सर्वप्रथम अपने विद्यमान समता अंशधारियों को इन प्रस्तावित अंशों को अनुपात में क्रय करने का विकल्प दे । इस प्रकार विद्यमान समता अंशधारियों के धारा 81 में वर्णित अधिकार को हकशफा (Premptive Right) कहते हैं । मान लीजिए एक समता अंशधारी 3 प्रतिशत समता अंशों का धारक है तो कम्पनी द्वारा प्रस्तावित अंशों के 3 प्रतिशत के बराबर अंश क्रय करने का विकल्प उस विद्यमान अंशधारी को देना होता है । विद्यमान अंशधारी की इच्छा पर यदि विद्यमान अंशधारी को कम्पनी द्वारा किये गये विकल्प वाले प्रस्तावित अंशों में से समस्त अथवा कुछ अंश अन्य व्यक्ति को आवंटित करवाना चाहे तो कम्पनी उस अन्य व्यक्ति को विद्यमान अंशधारी की इच्छानुसार अंश आबंटित करेगी ।

र. **सीमित दायित्व (Preference Shares):** सैद्धान्तिक रूप से समता अंशों के धारकों की स्वामित्व जोखिम होती है परन्तु कानून समता अंशधारियों का दायित्व उनके द्वारा धारित कम्पनी के समता अंशों में किये गये विनियोजन से उत्पन्न अधिकतम दायित्व

(अर्थात् उनके द्वारा धारित समता अंशों पर प्रदत्त पूंजी एवं अवशेष रही अयाचित पूंजी) तक सीमित है ।

2. **अधिमान अंश (Preference Shares) :** अधिमान अंश दीर्घकालीन पूंजी प्राप्त करने का एक अद्वितीय प्रकार का स्रोत है । इसके कुछ लक्षण समता अंश से मेल खाते हैं जबकि अन्य लक्षण ऋणपत्र से मेल खाते हैं । इस प्रकार यह समता अंश एवं ऋणपत्र का सम्मिश्रित अर्थात् संकर (Hybrid) स्वरूप है । इसके प्रमुख लक्षण निम्न प्रकार हैं:-

अ. **आया/सम्पत्ति पर पूर्व दावा (Prior Claim on Income/Assets):** समता अंशों की तुलना में अधिमान अंशों को लाभांश प्राप्त करने की प्राथमिकता है तथा कम्पनी के समापन पर भी अधिमान अंशों के दावे का निपटारा समता अंशों को भुगतान करने से पूर्व होता है ।

ब. **संचयी लाभांश (Cumulative Dividend)** किसी वर्ष कम्पनी में हानि होने अथवा अपर्याप्त लाभ होने पर यदि कम्पनी अधिमान अंशों पर लाभांश का भुगतान नहीं करती है तो संचयी अधिमान अंशों पर बकाया लाभांश संचयी होता जाता है तथा भविष्य में समता अंशधारियों को किसी भी प्रकार का भुगतान करने से पूर्व संचयी लाभांश का भुगतान संचयी अधिमान अंशों के धारकों को करना होता है ।

स. **शोधनीयता (Redemability)** : अधिमान अंशों का जीवनकाल सीमित/निश्चिता/पूर्व निर्धारित होता है तथा जीवनकाल समाप्त होने की तिथि को अधिमान अंशों के धारकों को निर्गमन की शर्तों के अनुसार उनकी राशि लौटानी होती है जिसे अधिमान अंशों का शोधन कहते हैं । भारत में कम्पनी अधिनियम 1956 की धारा 80 के अनुसार अधिकतम 20 वर्ष की अवधि में शोधनीय अधिमान अंश निर्गमित हो सकते हैं ।

द. **स्थिर लाभांश (Fixed Dividend) :** अधिमान अंशों के अंकित मूल्य (par value) / प्रदत्त मूल्य (Paid–up Value) पर पूर्व निर्धारित दर से प्रतिवर्ष लाभांश देय होता है । इसलिए अधिमान अंशों को स्थिर आय प्रतिभूति कहा जाता है ।

य. **परिवर्तनशीलता (Convertibility) :** अधिमान अंश पूर्ण अथवा आशिक रूप से समता अंशों में परिवर्तनीय हो सकते हैं ।

र. **मताधिकार (Voting Right):** सामान्यत: अधिमान अंशों के धारकों को मताधिकार नहीं होता है । भारत में संचयी अधिमान अंशों पर लगातार दो वर्ष तक लाभांश भुगतान न करने पर तथा असंचयी अधिमान अंशों पर लगातार गत 6 वर्षों में तीन बार अथवा उससे अधिक बार लाभांश का भुगतान न करने पर जब तक लाभांश उपरोक्त अवधि के लिये बकाया रहता है उस अवधि में अधिमान अंशों के धारकों को भी मताधिकार होता है।

ल. **अवशिष्टभागी अधिमान अंश (Participating Preference Shares) :**

अवशिष्टभागी अधिमान अंशों के धारकों को स्थिर दर से अधिमान लाभांश एवं समता अंशों के धारकों को अन्तर्नियमों में वर्णित दर से लाभांश का भुगतान करने के पश्चात् यदि कोई लाभ अवशिष्ट रहे तो उस अवशिष्ट लाभ में से निर्गमन की शर्तों के अनुसार अवशिष्ट भागी अधिमान अंशों के धारकों को अतिरिक्त लाभांश प्राप्त करने का अधिकार होता है।

3. **ऋणपत्र/बॉण्ड/नोट्स (Debentures/Bonds/Notes)** : ऋणपत्र, बॉण्ड, नोट्स दीर्घकालीन प्रतिज्ञा पत्र होते हैं जिन पर निर्गमन की शर्तों के अनुसार स्थिर दर से सामायिक ब्याज चुकाना होता है तथा निर्गमन की शर्तों के अनुसार ऋणपत्रों की अवधि के पूर्ण होने पर एकमुश्त अथवा प्रतिवर्ष किश्तों में शोधन करना होता है । सामान्यत: ऋण पत्र 3 से 10 वर्ष की अवधि के लिये निर्गमित किये जाते हैं । ऋणपत्रों को पूर्व निर्धारित परिपक्वता तिथि पर शोधन करने हेतु प्रतिवर्ष शुद्ध लाभों में से निश्चित राशि ऋणपत्र शोधन संचय/ कोष में स्थानान्तरित करनी होती है जिसे व्यवसाय से बाहर प्रतिभूतियों में विनियोजित किया जा सकता है । आयकर अधिनियम के अनुसार ऋण पत्रों इत्यादि पर देय ब्याज स्वीकृत व्यय होने के कारण प्रभावी व्याज (कर-पश्चात) की दर ही कम्पनी के लिये पूंजी की लागत की गणना करने हेतु विचारणीय होती है । ऋणपत्रों को समय से पूर्व शोधन करने के सम्बन्ध में सेबी के दिशा-निर्देशों के अनुसार (Call/Put Option) विकल्प दिया जा सकता है ।
4. **अवितरित लाभ (Retained Earning)** : जैसा पूर्व में वर्णन किया जा चुका है कम्पनी अपने समता अंशों के धारकों के लिये उपलब्ध लाभ में से प्रतिवर्ष पर्याप्त राशि संचयों /कोषों में स्थानान्तरित करती है अथवा लाभ-हानि नियोजन खाते में शेष रखती है जिनका उपयोग कम्पनी कार्यशील पूंजी अथवा नवीन परियोजनाओं पर विनियोजन करने अथवा विद्यमान परियोजनाओं के विस्तार/पुनर्स्थापना करने में करती है । एकत्रित लाभ /संचय की राशि समता अंशधारियों के लिये उपलब्ध लाभों का अवितरित लाभ होता है अत: इसकी लागत समता अंशों की लागत के समान समझी जाती है ।
5. **दीर्घकालीन ऋण (Long Term Loans)** परियोजनाओं की मध्यमकालीन (3 वर्ष से 10 वर्ष तक) अवधि की वित्तीय आवश्यकता की पूर्ति वित्तीय संस्थानों से अवधि ऋण (Term Loan) से की जाती है । तीन से पांच वर्ष की अवधि के लिये ऋण व्यापारिक बैंकों से भी प्राप्त किया जा सकता है । अवधि ऋण पर ब्याज एवं पुनर्भुगतान के लिये कम्पनी ऋण प्रदाता संस्थाओं से विचार-विमर्श कर समझौता करती है । सामान्यत: अवधि ऋण प्रस्तावित परियोजना अथवा कम्पनी की वर्तमान सम्पत्तियों की जमानत पर प्राप्त किया जाता है ।

4.5 पूंजी की लागत (Cost of Capital)

कम्पनी के स्वयं के पास उपलब्ध एकत्रित लाभों एवं संचयों (Accumulated/Retained Profit and Reserves) को छोड़कर पूंजी कोष के अन्य समस्त स्रोतों की स्पष्ट लागत (Explicit Cost) होती है । एकत्रित लाभों एवं संचयों की अस्पष्ट लागत (Implicit Cost) होती है । प्रत्येक स्रोत की पृथक-पृथक लागत को विशिष्ट लागत (specific Cost) कहते हैं तथा समस्त स्रोतों की सामूहिक लागत को पूंजी की लागत अथवा पूंजी की भारित औसत लागत कहा जाता है । पूंजी की लागत का परिकलन पृथक् अध्याय (पूंजी की लागत नामक अध्याय) में किया गया है ।

पूंजी की सीमान्त लागत (Marginal Cost of Capital)

विचाराधीन परियोजना के लिये विशेष रूप से जिन-जिन स्रोतों से जितने-जितने कोष प्राप्त किये जाते हैं उनके आधार पर परिकलित पूंजी की लागत को पूंजी की सीमान्त लागत कहा जाता है ।

परियोजना नियोजन एवं पूंजी की लागत (Project Planning and Cost of Capital)

यह ज्ञात करना आवश्यक है कि किसी परियोजना का नियोजन करते समय सम्बन्धित परियोजना के संभावित रोकड अन्तर्प्रवाहों एवं बाह्य-प्रवाहों को अपहारित (Discounting) कर परियोजना का शुद्ध वर्तमान मूल्य परिकलित करने हेतु पूंजी की भारित औसत लागत का परिकलन कम्पनी के विचाराधीन परियोजना से पूर्व कम्पनी की पूंजी संरचना को आधार मानकर लिये जाये अथवा विचाराधीन परियोजना की प्रस्तावित पूंजी कोष व्यवस्था को आधार लिया जाए । विद्वानों ने इन दोनों विकल्पों पर गहन मनन एवं अध्ययन कर यह विचार व्यक्त किया है कि विद्यमान पूंजी संरचना के बाजार मूल्य को आधार मानते हु ए भारित औसत पूंजी की लागत को परियोजना के नियोजन हेतु अपहारित दर के रूप में उपयोग में लेना चाहिए । उनकी इस राय का आधार यह है कि कम्पनी की सम्पदा को अधिकतम करने के उद्देश्य से परियोजना का नियोजन किया जाता है अर्थात् विचाराधीन परियोजना की न्यूनतम प्रत्याय कम्पनी की विद्यमान सम्पदा को बनाये रखने हेतु अवश्य होनी चाहिए ।

4.6 सारांश

परियोजना नियोजन करने हेतु आवश्यक है कि (i) परियोजना से उत्पन्न उत्पाद/सेवा की बाजार मांग होनी चाहिए; (ii) आवश्यक कच्ची सामग्री, श्रम, पूंजी, ईंधन, प्लांट एवं मशीनरी, तकनीक, लाइसेन्स आदि उपलब्ध होने चाहिए; तथा (iii) परियोजना की वित्तीय आवश्यकता एवं लाभदायिकता का विश्लेषण एवं मूल्यांकन करने हेतु परियोजना

अवधि के रोकड़ प्रवाह विवरण से परियोजना का शुद्ध वर्तमान मूल्य परिकलित करना चाहिए। किसी परियोजना का चयन करने हेतु आवश्यक है कि विचाराधीन परियोजना से कम्पनी की सम्पदा (Wealth) में कमी नहीं हो जाए इस बात का ध्यान रखना चाहिए । परियोजना का उद्देश्य कम्पनी की सम्पदा में अधिकतम वृद्धि करना होता है अत: ।विचाराधीन विभिन्न परियोजनाओं में से सर्वाधिक लाभप्रद परियोजना का चयन करना चाहिए ।

4.7 स्व परीक्षा प्रश्न (Self Examination Questions)

1. परियोजना से क्या तात्पर्य है? परियोजना के लक्षण बताइए ।
2. परियोजना प्रतिवेदन में किन-किन तथ्यों को शामिल किया जाता है?
3. परियोजना प्रतिवेदन का महत्व बताइए ।
4. परियोजना की वित्त व्यवस्था किन स्रोतों से की जाती है?
5. पूंजी की लागत से क्या तात्पर्य है? इसका परिकलन किस प्रकार किया जाता है?
6. सीमान्त भारित पूंजी की लागत से क्या तात्पर्य है?

4.8 उपयोगी पुस्तकें

1. B.B Goel : Project Management, Deep & Deep, New Delhi.

2. M. Mohison : Project Planning and Control, Vikas, New Delhi.
3. 3.S.K Ghosh : Projects Planning Control, New Delhi Central Book Agency (P) Ltd. Kolkatta.

इकाई-5: परियोजना की संभाव्यता विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 परियोजना संभाव्यता विश्लेषण का अर्थ
5.2 परियोजना प्रतिवेदन एवं परियोजना संभाव्यता विश्लेषण
5.3 परियोजना संभाव्यता विश्लेषण के स्तर
5.4 परियोजना संभाव्यता विश्लेषण के प्रमुख पहलू
5.5 निष्कर्ष
5.6 स्वपरख प्रश्न
5.7 उपयोगी पुस्तकें

5.0 उद्देश्य

i. परियोजना संभाव्यता विश्लेषण का अर्थ जान सकेंगे ।
ii. परियोजना प्रतिवेदन का संभाव्यता विश्लेषण करना जान सकेंगे ।
iii. संभाव्यता विश्लेषण के विभिन्न स्तर जान सकेंगे ।
iv. संभाव्यता विश्लेषण के प्रमुख पहलू जान सकेंगे ।

5.1 परियोजना संभाव्यता विश्लेषण का अर्थ (Meaning of Project Feasibility Analysis)

किसी भी परियोजना के सम्बन्ध में निर्णय लेने के लिये आवश्यक है कि परियोजना का क्रियान्वयन व्यावहारिक रूप से संभव है तथा व्यवसायिक संस्था, समाज एवं अर्थव्यवस्था के लिये उसकी उपादेयता है । परियोजना की व्यवहारिक रूप से संभावना एवं उपादेयता की जांच-पडताल करने को ही परियोजना संभाव्यता कहते हैं । सरल शब्दों में परियोजना से जुड़े विभिन्न बिन्दुओं की सभी दृष्टिकोणों से गहन छानबीन करने के कार्य को परियोजना संभाव्यता विश्लेषण कहते हैं । अन्य शब्दों में परियोजना के उद्देश्यों, आवश्यक संसाधनों, रोकड़ बहिर्प्रवाहों, रोकड अन्तर्प्रवाहों, तकनीकी पहलुओं, प्रबन्धकीय कौशल, परियोजना के स्थान आदि की आलोचनात्मक समीक्षा करना परियोजना संभाव्यता विश्लेषण करना कहलाता है । यह सर्वविदित है कि प्रत्येक व्यवसायिक संस्था का उद्देश्य सम्बन्धित व्यवसायिक संस्था की सम्पदा में अधिकतम वृद्धि करना होता है परन्तु यह उद्देश्य तब ही प्राप्त किया जा सकता है जब उस संस्था द्वारा ऐसी परियोजनाओं की पहचान की जायें जो कि व्यवहारिक रूप से सम्भव एवं लाभप्रद हो । यह भी सर्वविदित है कि प्रत्येक परियोजना की सफलता उस परियोजना से उत्पन्न हो सकने वाली जोखिम एवं लाभदायकता का एकमुश्त आकलन करने से ज्ञात तथ्यों के आधार पर लिये गये निर्णय पर निर्भर करती हैं ।

5.2 परियोजना प्रतिवेदन एवं परियोजना संभाव्यता विश्लेषण (Project Report and Project Feasibility Analysis)

परियोजना प्रतिवेदन में परियोजना का संक्षिप्त विवरण, परियोजना के उद्देश्य, परियोजना के स्थान, संयन्त्र एवं मशीनरी, कुशल एवं अकुशल श्रम, पूंजीगत एवं परिचालन व्यय, माल एवं सेवाओं के विक्रय से आगम, प्रबन्ध कौशल, आवश्यक तकनीक की उपलब्धता आदि के सम्बन्ध में अनुमान वर्णित होते हैं तथा उनके आधार पर परियोजना की उपादेयता के सम्बन्ध में तार्किक प्रतिवेदन होता है ।

परियोजना संभाव्यता विश्लेषण परियोजना प्रतिवेदन में वर्णित उपर्युक्त सहित विभिन्न बिन्दुओं की पुन: छानबीन करने का कार्य है । परियोजना संभाव्यता विश्लेषण व्यवसायिक संस्था स्वयं अपने स्तर पर कर सकती है अथवा इसके लिये निष्पक्ष एवं योग्य पेशेवर विश्लेषकों की सेवाएँ ले सकती है । यदि व्यवसायिक संस्था विचाराधीन परियोजना की वित्तीय व्यवस्था वित्तीय संस्थाओं से ऋण अथवा सहभागिता के रूप में करना चाहती है तो वित्त प्रदाता संस्थाएँ भी अपने स्तर पर स्वतन्त्र रूप से परियोजना की संभाव्यता का विश्लेषण कर सकती हैं ।

5.3 परियोजना संभाव्यता विश्लेषण के स्तर (Stages of Project Feasibility)

एक कम्पनी की परियोजना संभाव्यता विश्लेषण के निम्नलिखित तीन स्तर होते हैं :-

अ. स्वयं कम्पनी द्वारा परियोजना संभाव्यता विश्लेषण: कम्पनी के प्रवर्तक / प्रबन्धन परियोजना के सफलतापूर्वक क्रियान्वयन की संभाव्यता का अपने स्तर पर विश्लेषण कर परियोजना की व्यवहारिकता एवं उपादेयता के बारे में सन्तुष्ट होना चाहते हैं । कम्पनी स्तर पर संभाव्यता विश्लेषण इस दृष्टिकोण से किया जाता है कि क्या परियोजना के क्रियान्वयन से परियोजना पर किये जाने वाले विनियोग पर वांछित प्रत्याय दर अर्जित होगी । इस विश्लेषण में कम्पनी प्रबन्धन परियोजना से सम्बन्धित समस्त आवश्यक संस्थानों की उपलब्धता, उनकी सीमितता एवं कठिनाइयों का आकलन करती है तथा परियोजना से प्राप्त हो सकने वाली संभावित आगमों का सावधानीपूर्वक अनुमान लगाती है । इसके साथ ही सरकारी नीतियों, नियमों, कानूनों के अनुरूप सरकारी अनुज्ञा, सहायता, बाधाओं की भी समीक्षा करती है । उपर्युक्त समीक्षाओं के पश्चात् कम्पनी द्वारा औपचारिक संभाव्यता विश्लेषण प्रतिवेदन तैयार कर संचालक मंडल एवं / अथवा उच्च प्रबन्धकों से परियोजना का अनुमोदन करवाया जाता है ।

ब. वित्तीय संस्थानों द्वारा परियोजना संभाव्यता विश्लेषण : परियोजना संभाव्यता विश्लेषण के पश्चात् कम्पनी के प्रर्वतकों / प्रबन्धकों द्वारा अनुमोदित परियोजना प्रतिवेदन उन वित्तीय संस्थाओं को प्रेषित किया जाता है जिनसे परियोजना हेतु वित्त प्राप्त किये जाने की योजना हैं । सम्बन्धित वित्तीय संस्थाओं द्वारा परियोजना की संभाव्यता का विश्लेषण करते समय परियोजना क्रियान्वयन हेतु वित्तीय आवश्यकता, परियोजना की अवधि, परियोजना अवधि में विभिन्न समयों पर रोकड़ अन्तर्वाह, परियोजना के क्रियान्वयन हेतु

उपलब्ध तकनीकी एवं प्रबन्धकीय कौशल, सरकारी नीतियों आदि की समीक्षा की जाती है । इस समीक्षा के आधार पर ऋण-समता अनुपात, ऋण शोधन क्षमता, परियोजना से जुड़ी स्थायी सम्पत्तियों यथा भूमि एवं भवन की प्रतिभूति आदि का विशेष ध्यान रखा जाता है । इस विश्लेषण के आधार पर ही वित्तीय संस्थाएँ वित्त प्रदान करने की स्वीकृति प्रदान करती है ।

स. **सरकारी एजेन्सियों द्वारा परियोजना संभाव्यता विश्लेषण** : किसी परियोजना के आर्थिक एवं सामाजिक लाभ एवं लागत के तुलनात्मक विश्लेषण के आधार पर केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार एवं स्थानीय सत्ताओं द्वारा परियोजना की अनुमति दी जाती है । विभिन्न स्तरों पर कार्यरत एवं अधिकृत विभिन्न सरकारी एजेन्सियाँ यह छानबीन करती है कि विचाराधीन परियोजना देश के विभिन्न कानूनों, नियमों एवं दिशा-निर्देशों के अनुरूप है अथवा नहीं । विचाराधीन परियोजना से समाज के किन-किन वर्गों को कितना-कितना लाभ-हानि होगा एवं उसके आधार पर परियोजना की सामाजिक लागत होने का अनुमान लगाया जाता है । परियोजना देश के प्राकृतिक स्रोतों का कितना विदोहन करेगी तथा पर्यावरण पर नकारात्मक क्या एवं कितना प्रभाव पड़ेगा? सरकार / सरकारी एजेन्सियों द्वारा सामाजिक एकता, राष्ट्रीय सुरक्षा, प्रतिस्पर्धा, रोजगार, सामाजिक समरसता, विदेशी मुद्रा भण्डार, भौगोलिक विषमता, आय एवं सम्पत्ति का वितरण, बचत, विनियोग आदि पर पड़ने वाले अच्छे-बुरे प्रभावों की समीक्षा की जाती है । उपर्युक्त प्रभावों के आधार पर परियोजना के लिये अनुज्ञा देने अथवा नहीं देने का निर्णय सरकार द्वारा किया जाता है । सरकार द्वारा परियोजना की संभाव्यता की जाँच करने का उद्देश्य सरकारी प्राथमिकताओं के अनुरूप उद्योग, व्यवसाय, परिवहन, सन्देश वाहन, बैंकिंग, बीमा, शिक्षा, प्रशिक्षण, अनुसंधान ,आदि के विकास एवं विस्तार को प्रोत्साहित करना होता है।

5.4 परियोजना संभाव्यता विश्लेषण के प्रमुख पहलू (Main Aspects of Project Feasibility Analysis)

परियोजना संभाव्यता का विश्लेषण मुख्यतया निम्न पहलुओं से सम्बन्धित होता है :

1. परियोजना के परिभाषित उद्देश्यों की संभाव्यता
2. परियोजना की तकनीकी संभाव्यता
3. परियोजना की वित्तीय संभाव्यता
4. परियोजना की वाणिज्यिक संभाव्यता
5. परियोजना की प्रबन्धकीय क्षमता संभाव्यता
6. परियोजना की वातावरण, पर्यावरण एवं ऊर्जा प्रबन्धन संभाव्यता
7. परियोजना की आर्थिक संभाव्यता

1. **परियोजना के परिभाषित उद्देश्यों का संभाव्यता विश्लेषण (Feasibility Analysis of Defined Objectives of Project) :** परियोजना संभाव्यता विश्लेषण परियोजना प्रतिवेदन में परिभाषित परियोजना उद्देश्यों के प्राप्त होने की संभाव्यता का विश्लेषण करने

का तात्पर्य परियोजना द्वारा जिन विशिष्ट उत्पादों अथवा सेवाओं के विक्रय के अनुमानित / प्रयोजित लक्ष्यों को प्राप्त हो सकने की संभावना वर्णित की गई है उनकी संभाव्यता का विश्लेषण करना है । इस विश्लेषण हेतु बाजार में सम्बन्धित उत्पादों / सेवाओं की भावी बाजार माँग, तथा वर्तमान में विद्यमान इकाइयों की उपलब्ध उत्पादन क्षमता के आकड़े स्वतन्त्र रूप से बाजार, ग्राहकों, प्रतियोगियों, मध्यस्थों एवं उद्योग विशेष की इकाइयों की एसोसिएशन आदि से प्राप्त कर परियोजना प्रतिवेदन में दर्शाये हुए आकड़ों से तुलना करना है । तत्पश्चात् विचाराधीन परियोजना के लिये बाजार माँग में संभावित अंश का परिकलन करना है । इस विश्लेषण से विश्लेषक यह अनुमान लगाता है कि विचाराधीन परियोजना के आर्थिक उद्देश्य सफलीभूत होंगे अथवा नहीं होंगे ।

2. **परियोजना की तकनीकी संभाव्यता विश्लेषण (Analysis of Technical Feasibility of Project) :** परियोजना की तकनीकी संभाव्यता के विश्लेषण करने के दो उद्देश्य होते हैं:
   i. परियोजना तकनीकी रूप से सम्भव है तथा इस परियोजना हेतु चयनित स्थान पर तकनीकी विशेषज्ञ एवं अन्य आवश्यक तकनीकी सुविधाएँ उपलब्ध हैं / होंगे अथवा नहीं ।
   ii. परियोजना के क्रियान्वयन हेतु आवश्यक संयन्त्र एवं मशीनरी, उपकरण, कच्ची सामग्री, ईंधन आदि परियोजना की सम्पूर्ण अवधि में उपलब्ध होंगे अथवा नहीं । तकनीकी ज्ञान, अनुभव, नवीनतम उत्पादन विधियाँ, विदेशी तकनीक की संभावना, डिजाइन, साँचे आदि की उपलब्धता एवं उनको उपयोग करने की कुशलता रखने वाले योग्य तकनीशियन, डिजाइनर आदि की उपलब्धता से सन्तुष्ट होना आवश्यक है ।

3. परियोजना की वित्तीय संभाव्यता विश्लेषण (Analysis of Financial Feasibility) : परियोजना की वित्तीय संभाव्यता का विश्लेषण करने का उद्देश्य इस तथ्य से सन्तुष्ट होना है कि परियोजना की दीर्घकालीन एवं चालू कार्यशील पूंजी की आवश्यकता की पूर्ति के पर्याप्त स्रोत उपलब्ध हैं तथा इन स्रोतों के सम्मिश्रण का अनुपात उचित है । परियोजना की पूंजी संरचना में ऋण समता अनुपात उपयुक्त रखा गया है तथा पूंजी की लागत बहुत ऊँची नहीं है । परियोजना के परिचालन से रोकड़ अन्तर्वाह परियोजना के वित्त प्रदाताओं की सेवा करने एवं परियोजना की भावी विकास, विस्तार, पुनर्स्थापना आदि के लिए पर्याप्त होंगे । परियोजना की प्रारम्भिक वित्तीय आवश्यकता के लिए पर्याप्त स्रोतों की उपलब्धता के साथ ही वित्त प्रदाताओं के दावों का निपटारा करने के लिये पर्याप्त रोकड़ अन्तर्वाह की संभावना ज्ञात करने हेतु परियोजना की वित्तीय संभाव्यता का विश्लेषण करना अनिवार्य है ।

अ. वित्तीय संभाव्यता का विश्लेषण करते समय प्रथम तथ्य यह ज्ञात करना चाहिए कि परियोजना के लिये कितने वित्त की आवश्यकता होगी । यह ज्ञात करने हेतु संभाव्यता विश्लेषक को स्वतन्त्र रूप से निम्नलिखित मदों हेतु वित्तीय आवश्यकता अनुमानित करनी चाहिए:

i. परियोजना हेतु भूमि, भवन, संयन्त्र एवं मशीनरी, तथा अन्य विविध स्थायी मूर्त-अमूर्त सम्पत्तियों हेतु वित्त;

ii. मुद्रा स्फीति एवं अन्य कारणों से अतिरिक्त वित्त की आवश्यकता;

iii. परियोजना के प्रारम्भ होने से पूर्व होने वाले व्यय;

iv. परियोजना के प्रारम्भिक व्यय एवं पूंजी निर्गमन के सम्बन्ध में व्यय;

v. अतिरिक्त कार्यशील पूंजी की आवश्यकता ।

संभाव्यता विश्लेषक द्वारा स्वतन्त्र से परिकलित उपर्युक्त मदों हेतु वित्तीय आवश्यकता का मिलान परियोजना प्रतिवेदन में इन मदों पर दर्शाई गई अनुमानित राशि से करना चाहिए तथा यदि इन राशियों के अनुमानों में सार्थक अन्तर हो तो अनुमानों में यथोचित संशोधन करना आवश्यक हो जाता है ।

ब. यदि परियोजना के लिये आवश्यक वित्त की व्यवस्था अंश निर्गमन द्वारा करना प्रस्तावित हो तो संभाव्यता विश्लेषक को इस तथ्य की जांच करनी चाहिए कि व्यवसायिक संस्था नियमानुसार अंश पूंजी निर्गमित कर सकती है तथा इस सम्बन्ध में उसने आवश्यक अनुमति प्राप्त कर ली है अथवा अनुमति प्राप्त करने हेतु आवश्यक कदम उठा लिये हैं । अंश निर्गमन द्वारा वित्त की व्यवस्था करने की स्थिति में यह जाँच करनी चाहिए कि प्रस्तावित दीर्घकालीन पूंजी में समता अंश पूंजी एवं अधिमान अंश पूंजी का अनुपात उचित रखा गया है । अधिमान अंशों पर लाभांश की दर प्रचलित बाजार ब्याज दर से बहुत ऊंची नहीं रखी गई है । अधिमान अंशों के शोधन की शर्तें व्यवसायिक संस्था के हितों के विरूद्ध नहीं है । अंश पूंजी के निर्गमन की सफलता हेतु निर्गमन मैनेजर, मर्चेन्ट बैंकर, अभिगोपक आदि व्यक्तियों / संस्थाओं की भी छानबीन करनी चाहिए ।

स. यदि परियोजना की पूर्ण अथवा आशिक वित्त व्यवस्था ऋण पूंजी अर्थात् ऋणपत्रों के निर्गमन एवं दीर्घकालीन संस्थागत ऋण से करने की योजना है तो व्यवसायिक संस्था की ऋण लेने की क्षमता, क्रेडिट रेटिंग, सेबी एवं अन्य नियामक सत्ताओं के दिशा-निर्देशों के आधार पर विश्लेषण करना चाहिए । यदि विदेशी ऋण से परियोजना का वित्त पोषण करना प्रस्तावित हो तो भारतीय रिजर्व बैंक एवं वित्त मंत्रालय के निर्देशों की पालना हो सकने की पुष्टि करनी चाहिए ।

द. ऋण-समता अनुपात में सन्तुलन की सन्तुष्टि करना आवश्यक है । परियोजना की पूंजी संरचना में ऋण-समता अनुपात 1:1 (अर्थात् ऋण पूंजी एवं अंशधारियों का कोष बराबर-बराबर) उचित समझा जाता है तथा किसी भी परिस्थिति में ऋण-समता अनुपात 1.5:1 (अर्थात् ऋण पूंजी की राशि अंशधारियों के कोष से डेढ़ गुनी) से अधिक नहीं होना चाहिए । 3 वर्ष से अधिक अवधि पश्चात् शोधनीय अधिमान अंशों को अंशधारियों के कोष में शामिल तथा अन्य अधिमान अंशों को ऋण में शामिल कर ऋण-समता अनुपात परिकलित करना चाहिए ।

य. लाभदायिकता विवरण एवं परिचालन रोकड़ प्रवाह विवरण का विशेष रूप से विश्लेषण करना आवश्यक हैं । परियोजना के उत्पाद / सेवा का उत्पादन प्रारम्भ होने की तिथि

के पश्चात् के कम से कम तीन वर्षों के प्रायोजित लाभ विवरण (Projected Profit Statement) एवं प्रायोजित रोकड़ प्रवाह विवरण (Project Cash flow Statement) में दर्शाये हुए परिचालन लाभ एवं परिचालन से शुद्ध रोकड़ अन्तर्वाह के आधार पर परियोजना की पूंजी की लागत चुका सकने की क्षमता का अध्ययन करने के पश्चात् ही परियोजना की लाभदायिकता के सम्बन्ध में मानस बनाना चाहिए ।

र. ऋण की सुरक्षा का अध्ययन करना आवश्यक है । ऋणपत्रधारी एवं दीर्घकालीन ऋण प्रदान करने वाली संस्थाएँ अपने ऋण की सुरक्षा से संतुष्ट होने पर ही परियोजना के लिये ऋण प्रदान करने को सहमत होते हैं । अत: परियोजना की मूर्त स्थायी सम्पत्तियाँ यथा भूमि, भवन, संयन्त्र एवं मशीनरी में विनियोजित की जाने वाली राशि के बराबर अथवा उससे कम राशि ऋण पूंजी के रूप में प्राप्त करने की योजना को प्राथमिकता देनी चाहिए ।

4. परियोजना की वाणिज्यिक संभाव्यता विश्लेषण (Analysis of Commercial Feasibility of Project): परियोजना की सार्थकता का माप प्रतियोगी बाजार व्यवस्था में परियोजना से उत्पन्न उत्पाद एवं / अथवा सेवा की सफलता है । यदि परियोजना से एक से अधिक उत्पाद अथवा सेवाओं का सृजन होता है तो प्रत्येक उत्पाद / सेवा के लिये प्रतियोगिता वातावरण भिन्न-भिन्न भी हो सकता है । परियोजना की वाणिज्यिक संभाव्यता के विश्लेषण हेतु निम्न छानबीन करनी चाहिए:

अ. विक्रय एवं उत्पादन की मात्रा के अनुमान : विक्रय एवं उत्पादन परस्पर निर्भर होते हैं । अत: इन दोनों का एक साथ अनुमान लगाना उपयुक्त रहता है । प्रत्येक उत्पाद के उत्पादन एवं विक्रय का ब्योरा पृथक-पृथक तैयार करना चाहिए तथा संयन्त्र एवं मशीनरी का अधिकतम उपयोग हो सके इस तथ्य को ध्यान में रख कर उत्पादन / विक्रय के लक्ष्य निर्धारित होने चाहिए । संयन्त्र एवं मशीनरी की उपलब्ध क्षमता का अधिकतम उपयोग संभव करने हेतु समयबद्ध लक्ष्य प्राप्त करने का कार्यक्रम होना आवश्यक है तथा यह समयबद्ध लक्ष्य दो-तीन वर्ष में ही प्राप्त करना उचित समझा जा सकता है । उत्पादन एवं विक्रय के अनुमानों की समीक्षा करते समय (i) स्थापित क्षमता, (ii) कार्य दिवस, (iii) कार्य घण्टे / पालियाँ, (iv) प्रतिदिन उत्पादन मात्रा, (v) वार्षिक उत्पादन विक्रय मात्रा, (vi) प्रतिवर्ष उत्पादन क्षमता के उपयोग का प्रतिशत आदि अनुमानों की संभाव्यता की जांच करनी होती है ।

व. उत्पादन लागत का अनुमान : प्रत्येक उत्पाद / सेवा की उत्पादन लागत का अनुमान लगाना चाहिए । उत्पादन लागत हेतु प्रत्यक्ष सामग्री लागत, अप्रत्यक्ष सामग्री लागत, प्रत्यक्ष श्रम लागत, अप्रत्यक्ष श्रम लागत एवं कारखाना उपरिव्यय का सावधानीपूर्वक अनुमान लगाना आवश्यक है । उचित है कि सर्वप्रथम प्रत्यक्ष सामग्री, प्रत्यक्ष श्रम एवं प्रत्यक्ष व्यय के प्रति इकाई मात्रा एवं लागत अनुमान लगाये जाएं तथा उनसे अनुमानित उत्पादन मात्रा से गुणा कर सामग्री की मात्रा, श्रम घण्टों, मशीन घण्टों ईंधन आदि की आवश्यकता परिकलित की जाए एवं उनकी उपलब्धता का अनुमान

लगाया जाए। मुद्रा प्रसार का ध्यान रखते हुए विभिन्न वर्षों के लिए इनके संभावित मूल्यों का अनुमान लगाना चाहिए एवं इन मूल्यों पर उपलब्धता के सार्थक अनुमान लगाये जाए ।

स. विक्रय मूल्य का अनुमान : बाजार प्रतियोगिता, प्रतियोगी मूल्य, ग्राहकों की क्रय शक्ति, रूचि, स्थानापन्न माल की उपलब्धता, माल की किस्म, विक्रय प्रतिनिधियों एवं विक्रय विभाग की कार्यकुशलता, उत्पाद के विविध उपयोग आदि तथ्यों के विश्लेषण के आधार पर परियोजना के उत्पादों / सेवाओं के प्रत्याशित विक्रय मूल्य का अनुमान लगाना चाहिए तथा विक्रय मूल्य एवं बेचे जाने वाले माल की विक्रय लागत की तुलना कर अनुमानित लाभदायिकता (परिचालन लाभ) की राशि ज्ञात की जानी चाहिए । यदि परियोजना से संभावित परिचालन लाभ पूंजी की लागत से अधिक होने का निश्चित विश्वास हो तो परियोजना को वाणिज्यिकता संभाव्यता के आधार पर स्वीकार किया जा सकता है ।

5. परियोजना की आर्थिक संभाव्यता का विश्लेषण (Analysis of Economic Feasibility of Project) : परियोजना की आर्थिक संभाव्यता का विश्लेषण निम्नलिखित तीन पद्धतियों से किया जाना चाहिए :-

अ आर्थिक प्रत्याय दर (Economic Rate of Return)

ब. घरेलू संसाधन लागत (Domestic)

स. प्रभावी संरक्षण दर (Effective Rate of Projection)

अ. आर्थिक प्रत्याय दर: आर्थिक प्रत्याय दर से आशय उस अपहारित दर (Discount Rate) से है जिस दर से अपहारित करने पर परियोजना के अनुमानित जीवनकाल में अर्थव्यवस्था / समाज को प्राप्त होने वाले प्रत्याशित लाभों का वर्तमान मूल्य परियोजना की आर्थिक / सामाजिक लागत के बराबर होता है । जहाँ निजी क्षेत्र की परियोजनाओं का उद्देश्य निजी परियोजना के स्वामियों की सम्पदा में वृद्धि करना होता है वहाँ समाज एवं अर्थव्यवस्था की दृष्टि से परियोजना से समाज की सम्पदा में वृद्धि करना है । परियोजना की लाभदायिकता का आकलन परियोजना के प्रवर्तकों 7 स्वामियों की सम्पदा में वृद्धि करने की दृष्टि से सामान्यतया परियोजना के बाजार मूल्य पर लाभ एवं लागत को आधार बनाया जाता है । परन्तु अर्थव्यवस्था / समाज की दृष्टि से परियोजना की लाभदायिकता का आकलन समाज की दृष्टि से परियोजना की लागत एवं समाज की दृष्टि से परियोजना के लाभ के आधार पर किया जाता हैं । अत: छाया लागत (Shadow Cost) एवं छाया मूल्य (Shadow Price) के आधार पर परियोजना के शुद्ध आर्थिक लाभों की गणना की जाती है । छाया लागत/ छाया मूल्य परियोजना की वास्तविक सामाजिक लागत एवं सामाजिक मूल्य कहलाते हैं । छाया लागत एवं छाया मूल्य से तात्पर्य परियोजना में लगने वाली लागत एवं परियोजना से प्राप्त उत्पादों / सेवाओं का मूल्य अन्तर्राष्ट्रीय अर्थात् आयात/ निर्यात मूल्य के बराबर लेकर आर्थिक प्रत्याय दर का परिकलन किया जाना है । विद्युत, भूमि, भवन इत्यादि जिन संसाधनों

का आयात / निर्यात मूल्य ज्ञात नहीं हो सकता है उन्हें लेखा पुस्तकों के आधार पर ज्ञात किये गये लागत/ मूल्य पर लिया जाता है । व्यवहार में किसी विशिष्ट परियोजना की सीमान्त सामाजिक लागत एवं सीमान्त सामाजिक लाभों का परिकलन करना जटिल कार्य है ।

व. प्रभावी संरक्षण दर : प्रभावी संरक्षण दर की गणना करने का उद्देश्य यह है कि निर्माणी उद्योग में किस उत्पादन स्तर पर संरक्षण दिया गया है । उत्पाद का घरेलू मूल्य देश में लगने वाले विभिन्न करों, मात्रात्मक नियन्त्रणों एवं सरकारी अनुदानों से प्रभावित होते हैं । परियोजना के उत्पादों की घरेलू लागत सामग्री, ईंधन, पानी, परिवहन आदि पर करों में छूट अथवा अनुदान एवं परियोजना हेतु ऋण पर ब्याज आदि की छूट की राशि से प्रभावित होती है । अत: परियोजना के उत्पादों की सबलता (संरक्षण) विदेशों से आयात करने पर समान उत्पादों के मूल्यों से तुलना करने पर ही ज्ञात हो सकती है । अत: यदि परियोजना के उत्पाद / सेवा से सकल मूल्य वृद्धि (Gross Value Added) आयातित माल के मूल्य से अधिक हो तो ऐसी परियोजना देश की अर्थव्यवस्था एवं समाज के हित में होती है ।

6. **परियोजना की सामाजिक स्वीकार्यता संभाव्यता (Analysis of Social Acceptance Feasibility of Project) :** परियोजना को सामाजिक स्वीकार्यता तब ही मिलती है जब परियोजना से समाज को आवास, परिवहन, चिकित्सा, बैंकिंग, सन्देशवाहन, शिक्षा, प्रशिक्षण, रोजगार के अतिरिक्त साधन उपलब्ध होने की संभावना हो तथा विद्यमान कृषि, व्यवसाय, उद्योग, यातायात, आवास, विद्युत सुविधाओं, रोजगार, सामाजिक परिवेश आदि पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़े अथवा न्यूनतम पड़े । यदि परियोजना से समाज को सम्भावित प्राप्त लाभों की तुलना में सम्भावित कष्ट अधिक होने की संभावना हो तो समाज के विभिन्न वर्ग परियोजना का विरोध करेंगे एवं परियोजना के क्रियान्वयन एवं दीर्घकाल तक सफलतापूर्वक संचालन में बाधाएँ आयेगी ।

7. **परियोजना की वातावरण, पर्यावरण एवं ऊर्जा प्रबन्धन संभाव्यता विश्लेषण (Analysis of Environment, Ecology and Energy Management of Project)**: परियोजना से उत्पन्न अपशिष्टों के कारण प्रदूषण एवं पर्यावरण को क्षति से बचाव तथा जल एवं ऊर्जा के कुशल प्रबन्धन जैसे बिन्दुओं का गहन अध्ययन कर परियोजना के पर्यावरण आदि पर पड़ने वाले दूरगामी प्रभावों की समीक्षा करना अत्यावश्यक है ।

8. **परियोजना की प्रबन्धकीय कौशल की संभाव्यता विश्लेषण (Analysis of Managerial Competence Feasibility of Project)** : परियोजना की सफलता अन्तत: प्रबन्धकों की योग्यता, कुशलता एवं कुशाग्रता पर निर्भर करती है । अत: प्रबन्धकों की शिक्षा, प्रशिक्षण, अनुभव, पिछला प्रबन्धकीय सफलता रिकार्ड आदि की गहन छानबीन करनी चाहिए । इसके साथ ही प्रवर्तकों द्वारा वित्तीय अंशदान, तकनीकी सहभागिता समझौतों एवं विदेशी फर्मों से लिये जाने वाले पेटेन्ट, सलाह एवं तकनीकों की विस्तृत एवं सार्थक जानकारी प्राप्त करनी चाहिए । उत्पादन, विपणन एवं वित्तीय प्रबन्धन के लिये नियुक्त किये जाने

वाले विशेषज्ञों के विवरण एवं उनकी सहमति की शर्तों के सम्बन्ध में भी विश्लेषण करना चाहिए।

5.5 निष्कर्ष

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि परियोजना संभाव्यता विश्लेषण में परियोजना के प्रवर्तकों की क्षमता एवं योग्यता, परियोजना की तैयारी, परियोजना की सफलता की संभाव्यता, वित्तीय संभाव्यता, वाणिज्यिक संभाव्यता, सामाजिक एवं आर्थिक संभाव्यता एवं पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों की उचित छानबीन के आधार पर यह निर्णय करना चाहिए कि परियोजना का क्रियान्वयन किया जाए अथवा नहीं किया जाए ।

5.6 स्व परख प्रश्न

1. परियोजना संभाव्यता शब्द से क्या तात्पर्य है?
2. परियोजना की वित्तीय संभाव्यता के अन्तर्गत किन-किन बिन्दुओं पर विचार करना चाहिए?
3. परियोजना की आर्थिक एवं सामाजिक संभाव्यता से आपका क्या तात्पर्य है?
4. परियोजना की संभाव्यता का विश्लेषण किन-किन व्यक्तियों/संस्थाओं द्वारा किया जाता है?

5.7 उपयोगी पुस्तकें

1. H.P.S.Pahaw Project Reports and Appraisals Bharat Law House Ltd. New Delhi.
2. F. Cherunieum : Business Planning Himalaya New Delhi
3. B.B.Goel : Project Management Deep & Deep New Delhi.

इकाई - 6 : वित्त के स्त्रोत (Sources of Finance)

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 व्यवसाय की वित्तीय आवश्यकता

6.3 वित्त के स्त्रोतों का वर्गीकरण

6.4 दीर्घकालीन वित्त के स्त्रोत

6.4.1 स्वामित्व पूँजी

6.4.2 ऋण पूँजी

6.5 मध्यकालीन वित्त के स्त्रोत

6.5.1 व्यापारिक बैंक

6.5.2 सार्वजनिक या जन निक्षेप

6.5.3 पट्टा वित्त

6.5.4 सेतु वित्त

6.6 अल्पकालीन वित्त के स्त्रोत

6.6.1 बाह्य स्त्रोत

6.6.2 आन्तरिक स्त्रोत

6.7 सारांश

6.8 शब्दावली

6.9 स्व-परख प्रश्न

6.10 उपयोगी पुस्तकें

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :-

- वित्त का अर्थ और महत्व समझ सके
- व्यवसाय की वित्तीय आवश्यकताओं के प्रकार जान सके
- वित्त के स्त्रोतों के वर्गीकरण के आधार समझ सके
- दीर्घकालीन वित्त के विभिन्न स्त्रोतों की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकें
- मध्यकालीन वित्त के विभिन्न स्त्रोतों की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकें
- अल्पकालीन वित्त के विभिन्न स्त्रोतों की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकें

6.1 प्रस्तावना

वित्त व्यवसाय का जीवन रक्त (Life–blood) है और आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था का आधार स्तम्भ है । बिना पर्याप्त वित्त के न तो कोई व्यावसायिक उपक्रम प्रारम्भ किया जा सकता है और न ही उसे सफलतापूर्वक संचालित किया जा सकता है ।

एफ. डब्ल्यू. पैश के अनुसार," आधुनिक मुद्रा प्रधान अर्थव्यवस्था में वित्त का अभिप्राय है, मुद्रा को उस समय उपलब्ध करवाना, जब उसकी आवश्यकता हो ।"

वित्त ही वह शक्तिशाली साधन है, जो सम्पूर्ण संस्था को गति प्रदान करता है । व्यवसाय की स्थापना से लेकर उसके विस्तार, विविधीकरण, आधुनिकीकरण आदि क्रियाओं के लिये वित्त प्रबन्धक को वित्त की पर्याप्त व्यवस्था करनी होती है । व्यवसाय के दैनिक क्रिया-कलापों के लिये भी वित्त की आवश्यक 'होती है और वित्त की व्यवस्था द्वारा ही पूँजी एवं संचित कोषों को उत्पादक बनाया जा सकता है ।

एक संस्था के पास वित्त प्राप्ति के विविध स्त्रोत उपलब्ध होते है । विभिन्न स्त्रोतों का प्रभावी मूल्यांकन करने के बाद व्यवसाय के उद्देश्यों के अनुसार वित्त के उचित स्त्रोत का चुनाव किया जाता है । वित्तीय स्त्रोत का मूल्यांकन मुख्य रूप से निम्नलिखित तीन बिन्दुओं के आधार पर किया जाता है -

1. वित्त की लागत
2. नियन्त्रण और
3. जोखिम

वित्त के प्रत्येक स्त्रोत के अपने अपने लाभ और दोष होते हैं, इसलिये उपरोक्त तीन आधारों पर उनका मूल्यांकन कर संस्था की आवश्यकता के अनुसार आदर्श स्त्रोत को चुना जाता है । विभिन्न स्त्रोतों की चर्चा करने से पूर्व आईये, व्यवसाय की वित्तीय आवश्यकताओं का अध्ययन कर लें -

6.2 व्यवसाय की वित्तीय आवश्यकताएँ

व्यवसाय की विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये वित्त की आवश्यकता होती है । व्यवसाय की विभिन्न वित्तीय आवश्यकताओं को तीन भागों में बाँटा जा सकता है-

6.2.1 अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताएँ -

ऐसी आवश्यकताएँ व्यवसाय की चालू सम्पत्तियों में विनियोजन के लिये उत्पन्न होती है, जैसे-स्टॉक, देनदार, प्राप्य बिल, हस्तस्थ रोकड़ आदि । इन सम्पत्तियों के लिये वित्त व्यवस्था की सामान्यत: कार्यशील पूँजी के लिये वित्त व्यवस्था कहा जाता है, ताकि व्यावसायिक क्रियाओं का परिचालन सुचारू रूप से किया जा सके । कार्यशील पूँजी की आवश्यकता कई तत्वों से प्रभावित तथा निर्धारित होती है । अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकता मुख्य रूप से एक वर्ष तक के लिये उत्पन्न होती है,इसलिये इनका जीवन काल सामान्यत: 12 महीने से अधिक नहीं होता है ।

6.2.2 मध्यकालीन वित्तीय आवश्यकताएँ -

ऐसी आवश्यकताएँ सामान्यत: 1 वर्ष से लेकर 5 वर्ष तक के लिये उत्पन्न होती हैं । उदाहरण के लिये कम्पनी को अपने उत्पादों के प्रचार प्रसार के लिये गहन विज्ञापन अभियान की

आवश्यकता है, तो ऐसे विज्ञापन पर किया गया व्यय आस्थगित आयगत व्यय कहलाता है, जिसे ' 3 से 5 वर्षा में लाभ हानि खाते से अपलिखित किया जा सकता है । ऐसे ही अन्य व्ययों के लिये भी मध्यकालीन वित्त की आवश्यकता होती है । कभी दीर्घकालीन आवश्यकताओं के लिये, जबकि दीर्घकालीन कोष तत्काल उपलब्ध नहीं हो पाते हैं, तब मध्यकालीन वित्त से ऐसी आवश्यकताओं की तात्कालिक पूर्ति कर दी जाती है और बाद में वांछित दीर्घकालीन कोष उपलब्ध हों जाने पर, पूर्व में लिये गये मध्यकालीन ऋण चुका दिये जाते हैं ।

6.2.3 दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताएँ -

ऐसी आवश्यकताएँ सामान्यत: 5 वर्ष से अधिक की अवधि के लिये उत्पन्न होती है । भूमि, भवन, प्लाण्ट, मशीन आदि में विनियोग के लिये दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता होती है । स्थाई कार्यशील पूँजी (Hard Core Working Capital) के लिये भी दीर्घकालीन स्त्रोतों से वित्त की व्यवस्था की जाती है ।

वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये आधारभूत सिद्धान्त यह है कि अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति अल्पकालीन स्त्रोतों, मध्यकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति मध्यकालीन स्त्रोतों तथा दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति दीर्घकालीन स्त्रोतों से ही की जानी चाहिये । इसी के अनुरूप वित्त के स्त्रोत भी अल्पकालीन, मध्यकालीन और दीर्घकालीन हो सकते हैं ।

6.3 वित्त के स्त्रोतों का वर्गीकरण

प्रत्येक व्यवसाय की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये वित्त के स्त्रोतों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है -

अ. अवधि के आधार पर वर्गीकरण -

1. अल्पकालीन स्त्रोत - 1 वर्ष तक के लिये
2. मध्यकालीन स्त्रोत - 1 से 5 वर्ष तक के लिये
3. दीर्घकालीन स्त्रोत - 5 वर्ष से अधिक के लिये

ब. स्वामित्व के आधार पर वर्गीकरण -

1. स्वामित्व पूँजी - अंश पूँजी, प्रतिधारित आयें आदि
2. ऋण पूँजी - ऋण पत्र, सार्वजनिक जमाएँ, बैंक / संस्थागत ऋण आदि ।

स. उत्पत्ति के स्त्रोत के आधार पर वर्गीकरण -

1. आंतरिक स्त्रोत - प्रतिधारित आयें, ह्रास कोष आदि
2. बाह्य स्त्रोत - प्रतिभूतियाँ जैसे अंश, ऋण पत्र, संस्थागत ऋण आदि ।

द. मुद्रा के आधार पर वर्गीकरण -

1. घरेलू मुद्रा वित्त - अंश, ऋण पत्र, संस्थागत ऋण आदि
2. विदेशी मुद्रा वित्त - निक्षेप रसीदें, प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग आदि

सुविधा की दृष्टि से, अवधि के आधार पर वर्गीकरण के अनुसार वित्त के विभिन्न प्रमुख स्त्रोतों का विवेचन हम करने जा रहे है ।

6.4 दीर्घकालीन वित्त के स्त्रोत

दीर्घकालीन वित्त प्राय: स्थायी सम्पत्तियों की व्यवस्था के लिये प्राप्त किये जाते हैं । किसी भी व्यवसाय का दीर्घकालीन वित्त उसकी वित्तीय संरचना का मूलाधार होता है तथा व्यवसाय में लम्बी अवधि तक विनियोजित रहता है । स्थायी सम्पत्तियों में दो प्रकार की सम्पत्तियों का प्रबन्ध किया जाता है-

1. मूर्त सम्पत्तियाँ (Tangible Assets) - भूमि, भवन, संयत्र, मशीन आदि
2. अमूर्त सम्पत्तियां (Intangible Assets) - ख्याति, एकस्व, व्यापारचिह्न आदि

दीर्घकालीन स्त्रोतों से प्राप्त वित्त को स्थाई पूँजी या अचल पूँजी के नाम से जाना जाता है । स्थायी पूँजी की मात्रा कितनी हो, यह प्रश्न भी विचारणीय एवं अत्यन्त महत्वपूर्ण है । स्थाई पूँजी के प्रमुख निर्णायक घटक निम्नलिखित है-

1. उद्योग की प्रकृति
2. उद्योग का आकार एवं उत्पादक क्षमता
3. निर्मित माल की प्रकृति एवं उत्पादन विधि
4. व्यवसाय की प्रकृति
5. उत्पादन के साधन एवं उनकी व्यवस्था
6. प्रारम्भिक व्यय एवं अमूर्त सम्पत्तियों की आवश्यकता

स्थाई पूँजी की आवश्यकता के निर्धारण के पश्चात् अब तक इसके विभिन्न स्त्रोतों पर चर्चा करेंगे, जिसे निम्न चार्ट से दर्शाया गया है-

दीर्घकालीन वित्त के प्रमुख स्त्रोत

स्वामित्व पूँजी	ऋण पूँजी
समता अंश	ऋणपत्र
पूर्वाधिकार/अधिमान अंश	बन्धक पत्र/बॉण्ड्स
प्रतिधारित आयें	संस्थागत ऋण

6.4.1 स्वामित्व पूँजी (Owner's Capital) -

एक कम्पनी के लिये दीर्घकालीन वित्त प्राप्त करने का यह सबसे महत्वपूर्ण स्त्रोत है । भारत में स्वामित्व पूँजी के अन्तर्गत दो प्रकार के अंशों व प्रतिधारित आयों को शामिल किया जाता है ।

भारत में अंशों द्वारा सीमित दायित्व वाली कम्पनियाँ ही अधिकतर प्रचलन में है । कम्पनी की कुल' अंश पूँजी छोटी-छोटी इकाइयों में विभाजित होती है । प्रत्येक इकाई जिसमे कम्पनी की पूँजी विभक्त होती है, अंश कहलाता है । भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 2(46) के अनुसार, " 'अंश का तात्पर्य किसी कम्पनी की अंश पूँजी के एक भाग से है, जिसमें स्कन्ध (Stock) भी शामिल है, जब तक कि अंश और स्कन्ध में स्पष्ट और गमित रूप से कोई अंतर न किया जाए ।"

न्यायाधीश लिंडले ने अंशों की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुऐ लिखा कि ' 'पूँजी का वह आनुपातिक भाग जिसका प्रत्येक सदस्य अधिकारी होता है, अंश कहलाता है । " इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अंश स्वामित्व की एक इकाई है जिसका धारक कम्पनी का आशिक स्वामी होता है ।

उदाहरण के लिये, एक कम्पनी की अधिकृत पूँजी 1 करोड़ रू है जो 100- 100 रू के 1 .00'000 अंशों में विभाजित है। ऐसी 100 रू की प्रत्येक इकाई एक अंश कहलाती है । एक या अधिक अंश खरीदने वाला अंशधारी कहलाता है ।

अंशों की विशेषताएँ - अंशों की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है -

1. अंश कम्पनी की अंश पूँजी का एक आनुपातिक भाग होता है ।
2. प्रत्येक अंश का एक निश्चित अंकित मूल्य होता है ।
3. एक वर्ग के सभी अंशों का अंकित मूल्य समान होता है ।
4. अंशधारी अपने अंशों का हस्तांतरण पार्षद अंतर्नियम में दी गई विधि के अनुसार कर सकते है ।
5. कम्पनी अंशों पर लाभांश चुकाती है, जो लाभों में हिस्से के रूप में होता है।
6. अंशों पर स्वामित्व के प्रमाण स्वरूप अंशधारियों को कम्पनी की सार्वमुद्रा के अधीन अंश प्रमाण-पत्र निर्गमित किये जाते है । यद्यपि आजकल डीमेट खाते (Demat Account) प्रचलित है, इसलिये भौतिक प्रमाण-पत्र के स्थान पर अंशों को इलेक्ट्रोनिक रूप (Electronic Form) में रखा जाने लगा है ।
7. प्रत्येक अंशधारी का दायित्व उसके द्वारा धारित अंशों के अंकित मूल्य तक सीमित होता है ।
8. अंश विनिमय साध्य विलेख नहीं होते है ।
9. अंशों की प्रकृति के आधार पर ही अंशधारी के अधिकार, कर्तव्य और दायित्वों का निर्धारण होता है ।
10. अंश निर्गमन के लिये कम्पनी को सम्पति पर कोई प्रभार या बंधक रखना आवश्यक नहीं होता है ।

अंशों के प्रकार - भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 के अनुसार वर्तमान में कम्पनियां केवल दो प्रकार के अंश ही निर्गमित कर सकती है -

1. समता अंश (Equity Shares)
2. अधिमान या पूर्वाधिकार अंश (Preference Shares)

भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 के लागू होने से पूर्व इंग्लैण्ड में प्रारम्भ किये गये स्थगित अंशों (Deferred Shares) को भारतीय कम्पनियों में भी प्रचलित किया गया था, परन्तु 1956 के अधिनियम द्वारा इस प्रकार के अंशों के निर्गमन पर रोक लगा दी गई ।

6.4.1.1 समता अंश (Equity Shares) - समता अंश ही वास्तव में किसी उद्योग की वित्त संरचना के आधार होते है तथा समता अंशधारी ही कम्पनी के वास्तविक स्वामी होते है । इन अंशों पर लाभांश पूर्वाधिकार अंशों पर निश्चित प्रतिशत से लाभांश

चुकाने के बाद ही दिया जाता है और कम्पनी के समापन पर समता अंश पूँजी की वापसी भी पूर्वाधिकार अंश पूँजी की वापसी के बाद ही की जाती है । इस तरह कम्पनी के लाभ या हानि के वास्तविक जिम्मेदार समता अंशधारी ही होते है, जिन पर लाभांश की दर पूर्वाधिकार अंशों की तरह पूर्व निर्धारित नही होती है । इस प्रकार के अंश ऐसे विनियोजकों द्वारा पसन्द किये जाते हैं, जो जोखिम उठाकर उच्च प्रतिफल प्राप्त करना चाहते हैं ।

समता अंशों की प्रमुख विशेषताएँ

समता अंशों की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं ;–

1. समता अंशधारी ही कम्पनी के वास्तविक खामी होते है ।
2. समता अंशधारियों को ही कम्पनी के नीति निर्धारण, प्रबन्ध एवं नियंत्रण में मताधिकार प्राप्त होता है ।
3. समता अंश पूँजी कम्पनी की जोखिम पूँजी रुलाती है, क्योंकि यही पूँजी अन्ततः कम्पनी की अन्तिम जोखिम वहन करती है ।
4. समता अंशों पर लाभांश की दर अस्थिर होता है, जो कम्पनी के लाभों के साथ घटती बढ़ती रहती है ।
5. समता अंशों के अंकित मूल्य तथा बाजार मूल्य में कोई संबंध नहीं होता है । समता अंशों का बाजार मूल्य कई कारणों से बदलता रहता है ।
6. कम्पनी की संपत्तियों पर अन्तिम दावा समता अंशधारियों का ही होता -है । कम्पनी के समापन पर अन्तिम भुगतान इन्हें अंशों के अनुपात में किया जाता है ।
7. कुछ सीमा तक समता अंशों को पुनः क्रय करने के अलावा समता अंशों का शोधन कम्पनी के जीवन काल में नही किया जाता है ।
8. समता अंशधारियों को आनुपातिक मताधिकार के अलावा अंश हस्तांतरित करने, प्रति पुरुष नियुक्त करने, नये निर्गमित अंश पहले खरीदने आदि के अधिकार प्राप्त होते हैं ।

समता अंशों के लाभ

अ. कम्पनी की दृष्टि से लाभ-

1. **स्थाई पूँजी की प्राप्ति -** समता अंशों के निर्गमन से प्राप्त पूँजी दीर्घकालीन एवं स्थाई होती है, जिसे कम्पनी के जीवन काल में लौटाया नहीं जाता है । यद्यपि कम्पनी संशोधन अधिनियम, 1999 की धारा 77 A की शर्तों के अनुसार सीमित मात्रा में समता अंशों को पुनः क्रय किया जा सकता है ।
2. **कोई स्थायी प्रभार या मार नहीं** - समता अंश निर्गमन करने पर कम्पनी की सम्पत्तियों पर कोई स्थायी प्रभार उत्पन्न नहीं होता है और न ही लाभांश देने का कोई भार पैदा होता है, क्योंकि पर्याप्त लाभ होने पर ही समता अंशों पर लाभांश बाँटा जाता है ।
3. **सुदृढ़ आर्थिक स्थिति में सहायक** - समता अंशों पर लाभांश की अनिवार्यता न होने के कारण कम्पनी अपने लाभों का समुचित भाग रोककर ओर उसे कम्पनी में ही

पुनर्विनियोजित कर आन्तरिक अर्थप्रबन्धन कर सकती है और विकास एवं विस्तार कार्यो के लिये इसका उपयोग किया जा सकता है ।

4. **साख क्षमता में वृद्धि** - समता पूँजी की प्रचुरता कम्पनी के ऋणदाताओं को अतिरिक्त सुरक्षा प्रदान करती है, साथ ही समता पूँजी द्वारा कम्पनी की स्थाई सम्पत्तियों पर कोई प्रभार उत्पन्न नहीं होता है, इससे कम्पनी की ऋण क्षमता बढ़ जाती है, क्योंकि उसकी समस्त सम्पत्तियाँ बंधक के लिये उपलब्ध रहती है ।
5. **सरल सस्ता एवं लोचशील साधन** - समता अंशों के निर्गमन पर व्यय अपेक्षाकृत कम होते हैं तथा इन्हें आसानी एवं सुगमता से निर्गमन किया जा सकता है । आवश्यकता पड़ने पर बाद में भी अधिकार अंश (Right Share) निर्गमित किये जा सकते है ।
6. **कम्पनी प्रबन्ध में कुशलता एवं विकेन्द्रीकरण** - समता अंशधारी ही अपने मताधिकार का समुचित प्रयोग करके कम्पनी प्रबन्ध में कुशलता ला सकते हैं । छोटे छोटे अंशधारियों के देश-विदेश में फैले होने के कारण प्रबन्धकीय विकेन्द्रीकरण के लाभ भी मिल जाते है।

ब. विनियोजकों की दृष्टि से लाभ -

1. **छोटे विनियोजकों के लिये आकर्षक** - समता अंश कम मूल्य के होने के कारण छोटे छोटे विनियोजकों के लिये भी सुलभ रहते हैं तथा साहसी एवं जोखिम उठाने वाले विनियोक्ताओं के लिये आय का आकर्षक साधन सिद्ध होते है ।
2. **प्रबन्ध में भाग लेने का अधिकार** - समता अंशधारी अपने मताधिकार द्वारा संचालक चुन सकते हैं तथा कम्पनी के प्रबन्ध-नियंत्रण एवं नीति निर्धारण में भाग ले सकते हैं ।
3. **पूँजीगत लाभ** - कम्पनी को अधिक लाभ होने तथा उसके संचित कोषों में वृद्धि होने पर उसके समता अंशों का बाजार मूल्य बढ़ जाता है, इन बढ़े हुये मूल्यों पर अपने अंशों को बेचकर अंशधारी पूँजी लाभ प्राप्त कर सकते है । संचित कोषों में से कम्पनी द्वारा बोनस अंश जारी करने पर भी अंशधारियों की पूँजी बढ़ जाती है ।
4. **अग्रक्रयाधिकार** - कम्पनी अधिनियम की धारा 81 के अनुसार कम्पनी द्वारा भविष्य में अंश निर्गमित करने पर कम्पनी के वर्तमान अंशधारियों को इन्हें खरीदने का अग्रक्रयाधिकार (Right of preemption) प्राप्त होता है, जिससे उन्हें बाजार मूल्य से कम मूल्य पर अंश प्राप्त करने का अवसर मिलता है ।
5. **स्वामित्व का अहसास** - समता अंशधारी ही कम्पनी के वास्तविक स्वामी होते है, इसलिए छोटे-छोटे विनियोक्ताओं को भी बड़ी-बड़ी कम्पनियों के स्वामित्व का गौरव प्राप्त होता है तथा वे कम्पनी की वार्षिक साधारण सभा में भाग लें सकते है ।

समता अंशों की हानियाँ

अ. कम्पनी की दृष्टि से हानियाँ -

1. **नियंत्रण का केन्द्रीकरण** - समता अंश हस्तांतरणीय होते है तथा इन पर आनुपातिक मताधिकार भी प्राप्त होता है, इसलिये कुछ प्रभावशाली लोग कम्पनी के अधिकांश अंश खरीदकर उस पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लेते. है । इस प्रकार कम्पनी का संचालन अपने स्वार्थ के अनुरूप कर सकते है ।

2. **समता पर व्यापार का लाभ नहीं** - यदि कम्पनी अपनी समस्त पूँजी समता अंशों के निर्गमन से प्राप्त करती है तो कम्पनी समता पर व्यापार के लाभ नही उठा पाती है, क्योंकि कम्पनी की अच्छी स्थिति की दशा में निर्धारित लाभांश वाले अधिमान अंश तथा निर्धारित ब्याज वाले ऋणपत्र लाभप्रद होते है ।
3. **सट्टे की प्रकृति को प्रोत्साहन** - समता अंशों के बाजार मूल्यों में कई बार कृत्रिम कारणों से उतार चढ़ाव होते रहते है, जिससे ऐसे अंशों में सट्टे की प्रकृति को बढ़ावा मिलता है और कम्पनी की साख पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है ।
4. **प्रबन्ध नीतियों में परिवर्तन** - हस्तान्तरणीय एवं मतदान अधिकार वाले अंश होने के कारण कम्पनी की प्रबन्ध नीतियों में भी परिवर्तन होता रहता है उससे प्रबन्ध नीतियों की एकरूपता तथा सामंजस्य बनाये रखने में कठिनाईयां आती है।
5. **लाभांश पर कर छूट नहीं** - ऋणपत्रों पर ब्याज आयकर की दृष्टि से आय की गणना करते समय कटौती योग्य होता है, परन्तु अंशों पर लाभांश की कटौती आयकर गणना में नहीं दी जाती है, साथ ही बाँटे गये लाभांश पर लाभांश वितरण कर भी चुकाना पड़ता है, जिससे कम्पनी की लागतें बढ़ जाती है ।

ब. विनियोजकों की दृष्टि से हानियाँ -

1. **लाभांश की अनिश्चितता** - समता अंशों पर लाभांश की दर एवं समय निश्चित नहीं होते है । पर्याप्त लाभों के होते हुये भी संचालक मण्डल लाभों के पुनर्विनियोजन का निर्णय ले सकता है । ऐसी स्थिति में समता अंशधारी लाभांश से वंचित रह जाते है ।
2. **मंदीकाल में हानि** - अवसान काल में कम्पनी को लाभ कम होने या न होने पर समता अंशधारियों को एक ओर तो लाभांश नहीं मिलता, दूसरी और समता अंशों का बाजार मूल्य भी गिर जाता हैं, जिससे विनियोजकों को पूँजीगत हानि होती है, यदि वे ऐसे समय में अपने अंशों का विक्रय करना चाहते है ।
3. **समापन की दशा में हानि** - कम्पनी के समापन पर ऋणों, दायित्वों, एवं पूर्वाधिकार अंशों का भुगतान करने के बाद यदि कोई राशि बचती है तो ही समता अंशधारियों को अनुपातिक पूँजी लौटाई जाती है । कई बार समता अंशधारियों को कुछ भी नहीं मिल पाता ।
4. **सट्टे की घातक प्रवृति** - सटोरियों द्वारा कृत्रिम रूप से भावों में उतार चढ़ाव से छोटे एवं अल्प-शिक्षित विनियोजक बाजार की चालों को समझ नहीं पाते है, और कई बार ऐसे अंशधारियों की सारी पूँजी ही डूब जाती है । दीर्घकालीन निवेश करने वाले साहसी एवं धैर्यवान विनियोजक ही ऐसे बाजार से लाभ उठा पाते है ।
5. **नियंत्रण का अधिकार मात्र छलावा**- कहने को तो समता अंशधारी कम्पनी के प्रबन्ध एवं नियंत्रण में पूर्ण अधिकार रखते है, परन्तु वास्तविक रूप से दूर-दूर फैले अंशधारी न तो कम्पनी की सभाओं में भाग ले पाते है और न ही कम्पनी के नीति निर्धारण में उनके मत का उतना महत्व होता है । कुछ मुट्ठी भर प्रवर्तक या बड़े अंशधारी ही अपनी मरजी से कम्पनी को चलाते है ।

समता अंशों का विश्लेषण / मूल्यांकन

इकाई के प्रारंभ में बताये गये तीन बिन्दुओं लागत, नियंत्रण एवं जोखिम के आधार पर समता अंशों का विश्लेषण निम्न प्रकार से किया जा सकता है-

1. **लागत** - समता अंशों की लागत अनिश्चित होती है, क्योंकि इन्हें अवशिष्ट आय में हिस्सा दिया जाता है । पिछले वर्षों में दिये गये लाभांश या अर्जित आय के आधार पर ही समता अंशों की लागत ज्ञात की जा सकती है । समता अंशों पर लाभांश को आयकर की दृष्टि से कटौती योग्य नहीं माना जाता है, साथ ही वितरित किये गये लाभांश पर कम्पनी को लाभांश वितरण कर भी चुकाना पड़ता है ।
2. **नियंत्रण** - सिद्धान्ततः समता अंशधारियों के हाथों में कम्पनी का प्रबन्ध और नियंत्रण होता है, परन्तु सामान्यतया कम्पनी का नियंत्रण कुछ बड़े अंशधारियों के हाथों में ही निहित होता है, क्योंकि अन्य छोटे-छोटे अंशधारी दूर-दूर तक फैले होते है तथा उनकी रूचि भी अंशों से प्राप्त आय में ही अधिक होती है ।
3. **जोखिम** - कम्पनी को समता अंशों का निर्गमन करने पर विशेष जोखिम नहीं उठानी होती है, क्योंकि अंश निर्गमन की सफलता का बीमा कर लेते है । विनियोक्ता की दृष्टि से समता अंशों में सर्वाधिक जोखिम होती है, तथा ऐसे अंशों के बाजार मूल्य में काफी उतार चढ़ाव होते रहते हैं ।

   कम्पनी के लिये दीर्घकालीन वित्त प्राप्त करने का यह एक आधार भूत स्त्रोत है, तथा कम्पनी को अच्छे लाभ की स्थिति में समता अंशधारियों की प्रति अंश आय बढ़ जाती है जबकि अपर्याप्त लाभ होने पर इनकी स्थिति दयनीय हो जाती है।

6.4.1.2 पूर्वाधिकार या अधिमान अंश (Preference Shares) -

भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 85(2) के अनुसार ' 'पूर्वाधिकार अंशों से आशय ऐसे अंशों से है जिन्हें एक निश्चित दर पर लाभांश प्राप्त करने तथा कम्पनी के समापन की दशा में पूँजी वापस प्राप्त करने का समता अंशधारियों की तुलना में प्राथमिक अधिकार होता है । " कम्पनी एक ही समय में विभिन्न प्रकार के तथा विभिन्न लाभांश दरों वाले पूर्वाधिकार अंश निर्गमित कर सकती है ।

पूर्वाधिकार अंशों की प्रमुख विशेषताएँ -

पूर्वाधिकार अंशों की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है -

1. इन अंशों पर लाभांश की दर स्थिर एवं पूर्व निश्चित होती है, जो निर्गमन के समय ही घोषित कर दी जाती है । लाभांश का भुगतान समता अंशों से पहले किया जाता है ।
2. कम्पनी के समापन की दशा में इन अंशों पर पूँजी की वापसी भी समता अंशों से पहले की जाती हैं ।
3. ऐसे अंशधारियों को कम्पनी के प्रबन्ध में भाग लेने तथा कुछ विशेष दशाओं को छोड़कर मतदान करने का अधिकार नहीं होता है ।
4. ऐसे अंशों का शोधन कम्पनी के जीवन काल में ही कर दिया जाता है।
5. इन अंशों में समता अंशों ऋणपत्रों दोनों के गुण पाये जाते है ।

पूर्वाधिकार अंशों के प्रकार -

पूर्वाधिकार अंश निम्नलिखित प्रकार के हो सकते हैं-

1. **संचयी या असंचयी -** संचयी पूर्वाधिकार अंशों पर नहीं दिया गया लाभांश संचित होता रहता है तथा आगामी वर्षों के लाभों में से पहले इन संचित लाभांशों का भुगतान किया जाता है- फिर शेष रहने पर ही समता अंशों पर लाभांश दिया जाता है ।

   इसके विपरीत असंचयी पूर्वाधिकार अंशों पर लाभांश उस वर्ष के लाभों में से ही दिया जाता है । किसी वर्ष लाभ न होने पर लाभांश संचित नहीं होता है ।

2. **अवशिष्ट भागी या अवशिष्ट भागी -** अवशिष्टभागी पूर्वाधिकार अंशों पर एक निश्चित दर से लाभांश देने तथा समता अंशों पर भी निश्चित दर से लाभांश देने के पश्चात् शेष (अवशिष्ट) लाभों में से कुछ हिस्सा दिया जाता है, जबकि अनावशिष्ट भागी पूर्वाधिकार अंशों को केवल निश्चित दर से ही लाभांश पाने का अधिकार होता है ।

3. **शोध्य या अशोध्य -** शोध्य अधिमान अंशों पर कम्पनी के जीवनकाल में ही पूँजी लौटा दी जाती है जबकि अशोध्य अधिमान अंशों पर पूँजी कम्पनी के समापन तक नहीं लौटाई जाती है । कम्पनी संशोधन अधिनियम, 1996 के लागू होने के बाद भारत में कोई भी कम्पनी अशोध्य पूर्वाधिकार अंश या 20 वर्षों से अधिक अवधि के शोधनीय अंश जारी नहीं कर सकती है ।

4. **परिवर्तनीय या अपरिवर्तनीय -** परिवर्तनीय पूर्वाधिकार अंशों को एक निश्चित अवधि में समता अंशों में परिवर्तित किया जा सकता है, जबकि अपरिवर्तनीय अंशों को समता अंशों में नहीं बदला जा सकता है ।

5. **सुरक्षित या प्रत्याभूति अंश -** सुरक्षित पूर्वाधिकार अंशों पर सुरक्षित लाभांश की व्यवस्था के लिये एक पृथक संचय कोष का निर्माण किया जाता है, ताकि कम लाभ वाले वर्ष में संचय से लाभांश दिया जा सके । प्रत्याभूति पूर्वाधिकार अंशों पर लाभांश की गारण्टी किसी संस्था या सरकार द्वारा दी जाती है ।

6. **संचयी परिवर्तनीय पूर्वाधिकार अंश -** सार्वजनिक कम्पनियाँ 100 रू. अंकित मूल्य के 10 प्रतिशत पूर्वाधिकार अंश साधारण सभा में विशेष प्रस्ताव पारित करके जारी कर सकती है यदि कम्पनी के अन्तर्नियम में व्यवस्था हो । इन अंशों को 3 से 5 वर्षों में समता अंशों में परिवर्तित किया जा सकता है और परिवर्तन के बाद भी उनका पिछला बकाया लाभांश भी चुकाया जाता है ।

   स्पष्ट उल्लेख न होने पर पूर्वाधिकार अंशों को संचयी, अनावशिष्टभागी, शोधनीय एवं परिवर्तनीय ही माना जाता है ।

पूर्वाधिकार अंशों के लाभ

अ. कम्पनी की दृष्टि से लाभ -

1. **प्रबन्ध में हस्तक्षेप नहीं -** पूर्वाधिकार अंशधारियों को सामान्यत: मताधिकार नहीं होता है, इससे कम्पनी को सामान्य प्रशासन में स्वतंत्रता मिलती है ।

2. **व्यापक पूँजी बाजार -** निश्चित एवं कर मुक्ता लाभांश मिलने के कारण पूर्वाधिकार अंशों को विस्तृत बाजार उपलब्ध होता है, क्योंकि सतर्क व परम्परागत विनियोजक भी ऐसे अंशों के प्रति अधिक आकर्षित होते हैं ।

3. **प्रभार रहित पूँजी -** इन अंशों के निर्गमन के लिये कम्पनी को कोई सम्पति बंधक नहीं रखनी पड़ती है, अत: कम्पनी को आसानी से प्रभार रहित पूँजी मिल जाती है ।
4. **लोचशील पूँजी संरचना -** पूर्वाधिकार अंश शोधनीय प्रकृति के होते है और इनका शोधन कम्पनी के जीवनकाल में कर दिया जाता है, इससे कम्पनी की पूँजी संरचना को लोचशील बनाया जा सकता है ।
5. **समता अंशों पर अधिक लाभांश -** पूर्वाधिकार अंशों पर चूंकि एक निश्चित दर से ही लाभांश देना होता है इसलिए लाभार्जन दर अधिक होने पर कम्पनी समता अंशों पर अधिक अच्छा लाभांश दे सकती है ।
6. **संतुलित पूँजीकरण में सहायक -** अल्प पूँजीकरण की दशा में नये अंशों का निर्गमन करके तथा अति पूँजीकरण की दशा में अंशों का शोधन करके संतुलित पूँजीकरण को सम्भव बनाया जा सकता है ।
7. **कम्पनी पर भार नहीं -** ऋणपत्र या बाण्ड्स पर ब्याज की तरह अधिमान अंशों पर लाभ न होने पर लाभांश चुकाना अनिवार्य नहीं होता है । संचयी अधिमान अंशों पर भी लाभांश, लाभ होने पर ही दिया जाता है ।

व. विनियोजकों की दृष्टि से लाभ -

1. **निश्चित और नियमित आय -** पूर्वाधिकार अंशों पर निश्चित दर से लाभांश नियमित रूप से प्राप्त होता है, चाहे कम्पनी को पर्याप्त लाभ न हो । किसी वर्षलाभ न होने पर लाभांश संचित हो जाता है ।
2. **न्यूनतम जोखिम -** निश्चित दर से लाभांश प्राप्त होने तथा पूँजी वापसी की प्राथमिकता होने के कारण पूर्वाधिकार अंशों में धन विनियोजित करने पर जोखिम न्यूनतम होती है।
3. **सुरक्षित पूँजी -** पूर्वाधिकार' अंश कम्पनी के जीवनकाल में ही शोधनीय होते है, इसलिये समता अंशों की तरह बाजार में अंशों के भावों में उतार चढ़ाव से पूर्वाधिकार अंशधारियों को कोई हानि नहीं होती है, उनकी पूँजी सदैव सुरक्षित रहती है ।
4. **मंदीकाल में विशेष लाभ -** मंदीकाल में जब बाजार में सामान्य बाजार दरें गिरने लगती है, तब भी पूर्वाधिकार अंशधारियों को पूर्व की भाँति निश्चित दर से लाभांश प्राप्त होता रहता है, अत: मंदीकाल में यह एक श्रेष्ठ प्रतिभूति है ।
5. **निषेधाधिकार -** यद्यपि पूर्वाधिकार अंशधारियों को कम्पनी के सामान्य प्रशासन में भाग लेने का अधिकार नहीं होता है, परन्तु उन्हें अपने हितों की रक्षा के लिये कुछ निषेधाधिकार (Vote Power) प्राप्त होता है ।

पूर्वाधिकार अंशों की हानियाँ

अ. कम्पनी की दृष्टि से हानियाँ-

1. **लाभांश का स्थायी भार -** कम्पनी को पूर्वाधिकार अंशों पर निश्चित दर से लाभांश नियमित रूप से चुकाना ही होता है, चाहे कम्पनी को पर्याप्त लाभ हो या नहीं । संचयी पूर्वाधिकार अंशों पर तो बकाया लाभांश भी संचित होता रहता है।

2. **ऊँची लागत -** पूर्वाधिकार अंशों पर देय लाभांश आयकर की दृष्टि से कटौती योग्य व्यय नहीं माना जाता, इसलिये ऋणपत्रों की तुलना में पूर्वाधिकार अंशों की लागत दुगनी हो जाती है, यदि कर की दर 50 प्रतिशत मान ली जाये ।
3. **समता अंशधारियों को हानि -** कम्पनी के लाभ पर्याप्त न होने पर भी पूर्वाधिकार अंशों पर निश्चित दर से लाभांश चुकाना ही होता है, इससे समता अंशधारियों को लाभांश मिलने की संभावना क्षीण हो जाती है । संचयी पूर्वाधिकार अंशों पर बकाया लाभांश चुकाने के बाद ही समता अंशधारियों को लाभांश मिल सकता है

व. विनियोजकों की दृष्टि से हानियाँ-

1. **सीमित मताधिकार -** पूर्वाधिकार अंशधारियों को समता अंशधारियों की तरह संचालकों या अंकेक्षकों की नियुक्ति, कम्पनी के प्रबन्ध या अन्य महत्वपूर्ण मामलों पर मताधिकार प्राप्त नहीं होता है, इन्हें मात्र अपने हितों की रक्षा के लिये सीमित मताधिकार से ही संतोष करना पड़ता है ।
2. **अच्छा लाभ होने पर भी स्थिर लाभांश -** कम्पनी को अधिक लाभ होने पर भी पूर्वाधिकार अंशधारियों को स्थिर दर से ही लाभांश दिया जाता है । अनावशिष्टभागी पूर्वाधिकार अंशों को अवशिष्ट लाभों में से कोई अतिरिक्त हिस्सा नहीं मिलता।
3. **कभी भी शोधन संभव -** पूर्वाधिकार अंशों का शोधन कम्पनी कभी भी कर सकती है । इसलिये पूर्वाधिकार अंशधारियों की अनिश्चित सी स्थिति बनी रहती है । यदि कम्पनी अंशों का शोधन ऐसे समय करे, जब अन्यत्र उचित विनियोजन 'संभव न हो तो विनियोजकों को हानि उठानी पड़ती है ।
4. **कोई पूँजी लाभ नहीं -** शोधन के समय पूर्वाधिकार अंशों पर सामान्यत: अंकित मूल्य ही लौटाया जाता है । स्कंध बाजार में तेजी से उन अंशों पर कोई पूँजी लाभ उत्पन्न नहीं होता है । समापन के समय पूँजी लौटाने पर भी इन्हें केवल विनियोजित राशि ही लौटाई जाती है, आधिक्य का बँटवारा केवल समता अंशधारियों में ही किया जाता है ।

पूर्वाधिकार अंशों का विश्लेषण/ मूल्यांकन

पूर्वाधिकार अंश भारत में अधिक लोकप्रिय नहीं है, क्योंकि इन पर निश्चित दर से लाभांश ऋणपत्रों पर ब्याज की भाँति चुकाना होता है लेकिन ब्याज की भाँति लाभांश को कर योग्य आय ज्ञात करते समय घटाया नहीं जा सकता । उल्टे वितरित लाभांश पर लाभांश कर अलग से चुकाना पड़ता है । इसलिये पूर्वाधिकार अंशों से वित्त प्राप्त करना तभी उचित होता है, जबकि-

1. कम्पनी की औसत उपार्जन दर, पूर्वाधिकार अंशों पर देय निश्चित लाभांश दर से अधिक हो ।
2. ऋणपत्र निर्गमित करने के लिये कम्पनी के पास बंधक रखने योग्य पर्याप्त सम्पत्तियाँ उपलब्ध न हो, तथा
3. व्यवसाय में जोखिम बढ़ने की सम्भावना हो ।

समता अंशों तथा पूर्वाधिकार अंशों का तुलनात्मक अध्ययन –

हालांकि दोनों प्रकार के अंशों के अपने-अपने गुण दोष हैं तथा ये विभिन्न प्रकार के विनियोजकों की आवश्यकताओं की संतुष्टि करते है, फिर भी इन दोनों प्रकार के अंशों की तुलना निम्न प्रकार से की जा सकती है –

क्र. सं.	तुलना का आधार	समता अंश	पूर्वाधिकार अंश
1.	लाभांश	समता अंशों पर लाभांश पूर्वाधिकार अंशों पर लाभांश चुकाने के बाद ही दिया जाता है ।	पूर्वाधिकार अंशों पर लाभांश प्राप्त करने में समता अंशधारियों पर प्राथमिकता दी जाती है ।
2.	पूँजी वापसी	समता अंशों पर पूँजी वापसी पूर्वाधिकार अंशों की पूँजी वापसी के बाद ही की जाती है ।	पूर्वाधिकार अंशों को कम्पनी के समापन पर पूँजी वापसी समता अंशों से पहले की जाती है ।
3.	लाभांश दर	समता अंशों पर लाभांश दर पूर्व निश्चित नहीं होती है ।	पूर्वाधिकार अंशों पर लाभांश दर पूर्व निश्चित होती है ।
4.	जोखीम	समता अंशों पर जोखिम अधिक होती है, क्योंकि समता अंशधारी ही व्यवसाय के वास्तविक स्वामी होते हैं	पूर्वाधिकार अंशधारियों की जोखिम समता अंशधारियों की तुलना में कम होती है ।
5.	शोधन	इनका शोधन कम्पनी के जीवन काल में संभव नहीं, केवल सीमित मात्रा में अंश पुन: क्रय किये जा सकते हैं ।	इनका शोधन कम्पनी के जीवन काल में अनिवार्य है । अशोधनीय अंश जारी नहीं किये जा सकते ।
6.	मताधिकार	समता अंशधारियों को कम्पनी के प्रबन्ध, नियंत्रण एवं नीति निर्धारण में मताधिकार होता है ।	कुछ विशेष दशाओं को छोड़कर पूर्वाधिकार अंशधारियों को कोई सामान्य मताधिकार नहीं होता है ।
7.	बाजार मूल्य	समता अंशों के बाजार मूल्य में उतार चढ़ाव होता रहता है ।	पूर्वाधिकार अंशों का बाजार मूल्य प्राय: स्थिर रहता है ।
8.	पूँजीवृद्धि	समता अंशधारी अधिक लाभांश तथा बोनस अंश मिलने के कारण कम्पनी की समृद्धि में हिस्सेदार होते हैं तथा इनकी पूँजीवृद्धि होती रहती है।	पूर्वाधिकार अंशधारी कम्पनी की समृद्धि में हिस्सेदार नहीं होते हैं, इसलिए उनकी पूँजी में वृद्धि संभव नहीं होती है ।
9.	निर्गम की अनिवार्यता	प्रत्येक सीमित दायित्व वाली कम्पनी के लिये इन अंशों का निर्गमन अनिवार्य है।	कम्पनी के लिये पूर्वाधिकार अंश जारी करना अनिवार्य नहीं है ।
10.	उपयुक्तता	ये अंश जोखिम वहन करने वाले विनियोजक के लिये उपयुक्त है ।	ये अंश जोखिम वहन करने वाले ये अंश स्थिर व नियमित आय विनियोजकों के लिए उपयुक्त हैं ।

6.4.1.3 प्रतिधारित आयें (Retained Earnings) -

यह साधन नई कम्पनियों के लिये नहीं, बल्कि मौजूदा कम्पनियों के लिये उपयुक्त है । प्राय: कम्पनियाँ समस्त अर्जित लाभों का वितरण लाभांश के रूप में नहीं करती है, बल्कि कुछ लाभों को संचय के रूप में रोक लेती है, जिन्हें प्रतिधारित आयें कहा जाता है । इन लाभों को कम्पनी में ही पुर्नविनियोजित कर दिया जाता है । इसलिये इन्हें " **लाभों का पुर्नविनियोजन"** (Ploughing back of profits) भी कहा जाता है । यह "**आन्तरिक वित्त प्रबन्धन**" का श्रेष्ठ साधन है, जिसकी स्पष्ट लागत तो नहीं होती, परन्तु अवसर लागत अवश्य होती है ।

कम्पनी कई तरह के संचय बना सकती है तथा कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत कुछ संचयों का निर्माण करना अनिवार्य भी है । लाभांश घोषित करने पर लाभों का अधिकतम 10% भाग संचय में स्थानांतरित करना अनिवार्य है । कम्पनी के अदत्त ऋणपत्रों का कम से कम 50% ऋणपत्र शोधन संचय बनाकर ही ऋणपत्रों का शोधन किया जा सकता है ।

भारत जैसे विकासशील राष्ट्र में बिना स्पष्ट लागत का यह स्त्रोत काफी महत्वपूर्ण है, इससे कम्पनी एवं समता अंशधारियों की वित्तीय स्थिति मजबूत होती है । औद्योगिक इकाईयों में आधुनिकीकरण, विकास एवं विस्तार के लिये ऐसे स्त्रोतों से अतिरिक्त पूँजी उपलब्ध करवाना सुगम है, यद्यपि यह प्रबन्धकों की लाभांश नीति पर निर्भर करता हैं तथा कभी-कभी इन कोषों के दुरुपयोग के कारण समता अंशधारियों में असंतोष उत्पन्न हो सकता है । कुल मिलाकर प्रतिधारित आयों से कम्पनी की साख बढ़ती है तथा कम्पनी के विकास एवं उसके अंशों के बाजार मूल्य में सुधार एवं सुदृढ़ता दिखाई देती है ।

6.4.2 ऋण पूँजी (Debt Capital) -

प्राय: सभी व्यावसायिक उपक्रम अपने विकास एवं विस्तार के साथ-साथ बढ़ती आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये स्वामित्व पूँजी के अतिरिक्त ऋण पूँजी का ही सहारा लेते हैं । यह पूँजी ऋणदाताओं द्वारा प्रदत्त होने के कारण ऋण पूँजी कहलाती है ।

सामान्यत: अंशों के निर्गमन द्वारा पूँजी बढ़ाने के लिये कई वैधानिक औपचारिकताएँ पूरी करनी होती है, तथा अतिपूँजीकरण का भय भी बना रहता है, इसलिये कम्पनियां ऋण पूँजी की व्यवस्था करके अपनी लाभार्जन क्षमता बढ़ाकर समता अंशधारियों की सम्पदा (Wealth) को अधिकतम करने का प्रयास करती है ।

ऋणपूँजी चाहे अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये प्राप्त की जाये अथवा मध्यकालीन या दीर्घकालीन आवश्यकताओं कर पूर्ति के लिये प्राप्त की जाये, उसकी दो प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित होती है -

1. निश्चित दर से अनिवार्य रूप से ब्याज चुकाना, और
2. ऋण के परिपक्व होने पर उसका शोधन करना

वर्तमान युग में किसी भी संस्था के लिये ऋण लेना उसकी कमजोर वित्तीय स्थिति का परिचायक नहीं माना जाता है, बल्कि ऋण लेकर व्यवसाय को सफलतापूर्वक संचालित करना वित्तीय प्रबन्ध की कुशलता का प्रतीक माना जाता है । दीर्घकालीन वित्तीय स्त्रोत के रूप ऋण पूँजी के प्रमुख साधन निम्नलिखित है-

6.4.2.1 ऋण पत्र (Debentures) -

कम्पनी द्वारा दीर्घकालीन पूँजी प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण साधन ऋण पत्र' है । कोई भी कम्पनी अपने पार्षद सीमा नियम द्वारा अधिकार दिये जाने पर ऋणपत्रों का निर्गमन करके दीर्घकालीन वित्त प्राप्त कर सकती है ।

Debenyurt शब्द लैटिन भाषा के शब्द ' Debere' से बना है, जिसका अर्थ है ऋण लेना । भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 2 (12) के अनुसार 'ऋणपत्र में ऋणपत्र स्कन्ध, बॉण्ड तथा कोई अन्य प्रतिभूति शामिल है, चाहे वे कम्पनी की सम्पत्तियों पर प्रभार उत्पन्न करती है अथवा नहीं । "

इस परिभाषा से ऋणपत्र का अर्थ स्पष्ट नहीं होता है, इसलिये सरल शब्दों में संक्षेप में कहा जा सकता है कि एक ऋणपत्र कम्पनी की सार्वमुद्रा के अधीन निर्गमित ऐसा लिखित प्रलेख है जो ऋण को प्रमाणित करता है और ऋणपत्रों के निर्गमन और शोधन की प्रमुख शती को स्पष्ट करता है ।

ऋणपत्रों की विशेषताएँ

ऋणपत्रों की प्रमुख विशेषताएँ संक्षेप में इस प्रकार है -

1. ऋणपत्र कम्पनी द्वारा लिये गये ऋण को प्रमाणित करने वाला लिखित प्रलेख है ।
2. ऋणपत्रों का शोधन सामान्यत: एक निश्चित तिथि को किया जाता है, जिसका उल्लेख ऋणपत्र प्रमाण पत्र में होता है ।
3. ऋणपत्रों पर मुद्रांक शुल्क लगता है, जो एक साथ भी चुकाया जा सकता है ।
4. कम्पनी की सम्पत्तियों पर प्रभार उत्पन्न करने वाले ऋणपत्रों पर कम्पनी की सार्वमुद्रा भी अंकित की जाती है ।
5. ऋणपत्र धारियों को कम्पनी की सभा में मतदान का अधिकार नहीं होता है ।
6. ऋणपत्रों पर देय ब्याज की दर तथा भुगतान की तिथि भी निश्चित होती हे ।
7. पूर्णप्रदत: ऋणपत्रों को ऋणपत्र स्कन्ध में परिवर्तित किया जा सकता है ।
8. ऋणपत्र प्राय: श्रृंखला में जारी किये जाते है, जिसका उल्लेख ऋणपत्र प्रमाणपत्र पर भी होता है ।

ऋणपत्र के प्रकार -

ऋणपत्र निम्नलिखित प्रकार के हो सकते है-

1. **वाहक या पंजीकृत -** वाहक ऋणपत्र केवल सुपुर्दगी द्वारा हस्तांतरित किये जा सकते है, ऋणपत्र धारक ही ब्याज पाने का अधिकारी होता है, जबकि पंजीकृत ऋणपत्र के धारक का नाम कम्पनी के ऋणपत्र धारियों के रजिस्टर में अंकित होता है । ऐसे ऋणपत्र का हस्तान्तरण करने से पूर्व कम्पनी के पास पंजीकरण कराना अनिवार्य है ।

2. **सुरक्षित या असुरक्षित -** जिन ऋणपत्रों का निर्गमन बिना किसी संपत्ति को गिरवी रख कर किया जाता है, वे असुरक्षित या गैर जमानती या नग्न ऋणपत्र कहलाते है, जबकि बन्धक या जमानती या सुरक्षित ऋणपत्रों का निर्गमन कम्पनी की संपत्तियों को बन्धक रखकर किया जाता है । सुरक्षित ऋणपत्र स्थायी प्रभार या चल प्रभार वाले हो सकते है।
3. **शोधनीय या अशोधनीय -** शोध्य ऋणपत्र का भुगतान निर्गमन प्रलेख में घोषित एक निश्चित तिथि को या इससे पूर्व कर दिया जाता है जबकि अशोधनीय ऋणपत्रों के शोधन की तिथि निश्चित नहीं होती है ये चिरस्थायी ऋणपत्र कहलाते है ।
4. **परिवर्तनीय या अपरिवर्तनीय -** परिवर्तनशील ऋणपत्रों को भविष्य में ' अंशों में परिवर्तित किया जा सकता है, ये पूर्ण या आशिक परिवर्तनशील ऋणपत्र हो सकते है । अपरिवर्तनशील ऋणपत्र अंशों में परिवर्तित नहीं किये जा सकते है ।
5. **प्रथम या द्वितीय -** प्रथम ऋणपत्रों का भुगतान अन्य ऋणपत्रों की अपेक्षा प्राथमिकता के आधार पर किया जाता है और द्वितीय ऋणपत्रों का भुगतान प्रथम ऋणपत्रों के भुगतान के बाद किया जाता है । इसी प्रकार तृतीय, चतुर्थ आदि ऋणपत्र भी हो सकते है ।
6. **प्रत्याभूति ऋणपत्र -** ऐसे ऋणपत्रों के मूलधन और ब्याज की गारण्टी किसी अन्य कम्पनी, संस्था या ' सरकार द्वारा दी जाती है, प्रत्याभूति ऋणपत्रों के लिये बन्धपत्र (Bond) शब्द का प्रयोग किया जाता है ।
7. **समपार्श्विक ऋणपत्र -** बैंक या अन्य संस्थाओं से लिये गये ऋणपत्र की समपार्श्विक प्रतिभूति के रूप में समपार्श्विक ऋणपत्र जारी किये जाते है, जिन पर कोई ब्याज नहीं दिया जाता है । केवल मूल ऋण का ब्याज चुकाया जाता है ।
8. **'समरूप' वाक्य वाले ऋणपत्र -** जब कोई कम्पनी ऋणपत्रों की श्रृंखला जारी करती है तो सामान्यत: इनमें 'समरूपता' की शर्त भी होती है । 'समरूप' वाक्यों वाली श्रृंखलाओं के सभी ऋणपत्रों के अधिकार एक समान या आनुपातिक होते है ।

ऋणपत्रों के लाभ -

अ. कम्पनी की दृष्टि से लाभ -

1. **मितव्ययी साधन -** अन्य साधनों की अपेक्षा ऋणपत्र मितव्ययी है, क्योंकि-:
   - ऋणपत्रों पर देय ब्याज दर सामान्यत: अधिमान अंशों पर लाभांश दर से कम होती है।
   - ऋणपत्रों पर देय ब्याज कर योग्य आय ज्ञात करते समय कटौती के रूप में स्वीकृत है।
   - ऋणपत्रों का निर्गमन व्यय भी कम है, क्योंकि प्रविवरण जारी नही करना पड़ता है । वैधानिक रूप से अभीगोपन कमीशन की अधिकतम दर भी अंशों पर 5% होती है, वही ऋणपत्रों पर 2.5% ही होती है (कम्पनी अधिनियम की धारा 76 के अनुसार) ।
2. **समता पर व्यापार के लाभ -** ऋणपत्रों पर निश्चित दर से व्याज चुकाने के बाद शेष लाभ समता अंशधारियों के लिये उपलब्ध रहते है, इस प्रकार कम्पनी की उपार्जन क्षमता अधिक होने पर कम्पनी समता पर व्यापार का लाभ उठा सकती है ।
3. **प्रबन्ध नियंत्रण में हस्तक्षेप नहीं -** यदि ऋणपत्र धारियों के हित सुरक्षित है, तो उन्हें कम्पनी के प्रबन्ध या नियंत्रण में भाग लेने का कोई अधिकार नहीं होता है, और इस

प्रकार कम्पनी को वित्त प्राप्ति प्रबन्ध में भाग लेने का अधिकार दिये बिना प्राप्त हो जाती है ।

4. **पूँजी में लोच -** ऋणपत्रों का जब चाहे निर्गमन किया जा सकता है और जब चाहे खुले बाजार से क्रय द्वारा शोधन भी किया जा सकता है । इस प्रकार कम्पनी के पूँजी कलेवर में लोचशीलता बनी रहती है ।
5. **मंदीकाल में वरदान -** मंदीकाल में वित्त प्राप्त करने का उत्तम साधन ऋणपत्र ही है, क्योंकि ऐसे समय में सामान्यत: लोग अंश खरीदने से कतराते है । जबकि ऋणपत्रों पर निश्चित ब्याज दर की गारण्टी होने से रूढिवादी विनियोजक भी उन्हें खरीदना सुरक्षित मानते है ।
6. **शोधन का भार नहीं -** ऋणपत्रों का श्रृंखलाबद्ध निर्गमन करके कम्पनी अनुवर्ती निर्गमन से प्राप्त राशि द्वारा पूर्व निर्गमित ऋणपत्रों का शोधन कर सकती है, इससे कम्पनी को शोधन का भार नही झेलना पड़ता ।

व. विनियोजकों की दृष्टि से लाभ -

1. **निश्चित एवं नियमित आय -** कम्पनी को लाभ हो चाहे हानि, ऋणपत्रों पर व्याज अवश्य प्राप्त होता है, इस प्रकार आय का यह सुरक्षित एवं स्थाई स्त्रोत बन जाता है ।
2. **सुरक्षित विनियोग -** सामान्यत: ऋणपत्र कम्पनी की सम्पत्तियों पर स्थायी या चल प्रभार द्वारा जारी किये जाते है, इसलिये विनियोग पूर्णत: सुरक्षित है ।
3. **तरलता -** सुरक्षित ऋणपत्रों को जब चाहे बाजार में बेचकर मुद्रा में बदला जा सकता है या इन्हें गिरवी रखकर अन्य संस्थाओं से ऋण भी आसानी से लिया जा सकता है, इस प्रकार विनियोजक अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति आसानी से कर सकते हैं।
4. **परिवर्तनशीलता** - ऋणपत्रों के निर्गमन के समय इन्हें समता अंशों में परिवर्तन का भी विकल्प दिया जा सकता है, इसलिये कम्पनी की आर्थिक स्थिति मजबूत होने पर ऋणपत्रधारी कम्पनी का अंशधारी बनकर लाभ उठा सकता है ।
5. **क्रेडिट रेटिंग** - ऋणपत्रों के सार्वजनिक निर्गमन से पूर्व उनका किसी क्रेडिट रेटिंग एजेन्सी जैसे क्रिसिल (CRISIL) आदि से रेटिंग करवाया जाता है, इससे विनियोजकों को विनियोग सम्बन्धी निर्णय लेने में आसानी व सुगमता रहती है ।

ऋणपत्रों की हानियां-

अ. कम्पनी की दृष्टि से हानियां -

1. **स्थायी भार** - ऋणपत्रों पर ब्याज अनिवार्य रूप से चुकाना पड़ता है, चाहे कम्पनी को लाभ हो या नही, इससे कम्पनी पर स्थाई भार बन जाता है ।
2. **अतिरिक्त ऋण प्राप्त करने में कठिनाई** - ऋण पत्रों को निर्गमित करते समय कम्पनी की सम्पत्तियां बंधक रख दी जाती है, इससे उसकी साख कम हो जाती है और उसे अन्य संस्थाओं से अतिरिक्त ऋण प्राप्त करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है ।

3. **अनिवार्य समापन का अधिकार** - ऋणपत्रधारियों को व्याज चुकाने में त्रुटि करने पर ऋणपत्रधारी कम्पनी का न्यायालय द्वारा अनिवार्य समापन करा सकते है । ऐसे अधिकारों से कम्पनी प्रबंधकों पर संकट के बादल छाये रहते है ।
4. **उत्तरोत्तर लागत में वृद्धि** - यदि पूर्व ऋणपत्रों के शोधन के लिये कम्पनी ऋणपत्रों की अनुवर्ती श्रृंखला जारी करती है, तो उस पर अधिक दर से व्याज देना पड़ता है तथा बार-बार मुद्रांक शुल्क व अन्य व्यय चुकाने पड़ते है इससे उत्तरोत्तर लागत में वृद्धि होती रहती है ।

ब. विनियोजकों की दृष्टि से हानियाँ -

1. **निर्धारित आय से सन्तुष्टि** - ऋणपत्रों से प्राप्त वित्त से कम्पनी अपने विकास की गति बढ़ाती है परन्तु विनियोजकों को मात्र निश्चित व्याज से ही सन्तुष्टि करनी पड़ती है, उन्हें कम्पनी के अतिरिक्त लाभ या संपत्तियों में से कुछ भी अतिरिक्त पाने का हक नहीं होता ।
2. **मतदान का अधिकार नहीं -** कम्पनी के लिये अंशपत्रधारियों की भाँति स्थायी पूँजी जुटाने के बावजूद ऋणपत्रधारियों को कम्पनी की सभाओं में भाग लेने या मतदान करने के अधिकार से वंचित रखा जाता है ।
3. **कर योग्य ब्याज** - ऋणपत्रों पर प्राप्त ब्याज पूर्णत: कर योग्य होता है और एक निर्धारित राशि से अधिक ब्याज की राशि होने पर कर उद्गम स्थान पर ही काट लिया जाता है । जबकि लाभांश अंशधारी के हाथों में पूर्णत: करमुक्त होता है ।
4. **तेजीकाल में हानि** - जब बाजार में तेजी का आलम होता है तब भी ऋणपत्रधारियों को पुरानी निर्धारित दर से ही व्याज मिलता है, और शोधन पर भी अंकित मूल्य 'के बराबर राशि ही मिलती है । बढ़ी हुई दर के बाजार में पुरानी घटी दर के ऋणपत्रों को बेचने पर भी पूरी राशि नहीं मिलती है ।

ऋणपत्रों का विश्लेषण और मूल्यांकन

भारतीय कम्पनियों की दीर्घकालीन वित्तपूर्ति में ऋणपत्रों का महत्व 1982 के पश्चात् बढ़ता जा रहा है । अधिक आकर्षक शर्तों एवं परिवर्तनशीलता के विकल्प, निर्गमन एवं अभिगोपन सुविधाओं में वृद्धि तथा भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड (SEBI) द्वारा जारी दिशा निर्देशों के कारण ऋणपत्रों की बिक्री बढ़ी है! कम्पनी के लिये ऋणपत्रों का ब्याज कर योग्य आय में से कटौती. योग्य होना अंशों की तुलना में काफी आकर्षक है । फिर भी इनका प्रयोग विवेक से एवं उचित सीमा के भीतर होना चाहिये । वित्तपूर्ति के रूप में ऋणपत्रों का प्रयोग तभी वांछनीय है जबकि-

i. कम्पनी की बिक्री एवं आय स्तर स्थिर हो,
ii. कम्पनी के पास बंधक रखने के लिये पर्याप्त सम्पत्तियाँ हो, तथा
iii. कम्पनी की उपार्जन क्षमता ऋणपत्रों पर देय ब्याज दर से अधिक हो ।

समता पूँजी और ऋणपूँजी का तुलनात्मक अध्ययन

सामान्यतया कम्पनियाँ प्रारंभ में अपनी पूँजी समता अंशों के निर्गमन द्वारा प्राप्त करती है और जब कम्पनी का व्यवसाय अच्छा चलने लगे तथा स्थाई एवं नियमित आय प्राप्त

होने लगे तब ऋणपत्रों के निर्गमन द्वारा वित्त प्राप्ति की जाती है। समता और ऋण की तुलना निम्न प्रकार से की जा सकती है-

क्रं सं.	तुलना का आधार	समता पूँजी	ऋण पूँजी
1.	प्रकृति	यह स्वामी पूँजी है।	यह ऋण दाताओं द्वारा उपलब्ध ऋण पूँजी है ।
2.	प्रतिफल की दर	वार्षिक लाभों में से लाभांश के रूप के रूप में भुगतान किया जाता है।	लाभ होने या न होने पर भी ब्याज का भुगतान भुगतान करना अनिवार्य होता है।
3.	प्रतिफल की दर	लाभांश की दर पूर्व घोषित नहीं होती है।	ब्याज की दर पूर्व घोषित एवं सामान्यत: स्थिर होती है।
4.	जोखिम	वास्तविक स्वामी होने के कारण जोखिम सर्वाधिक होता है।	कंपनी की संपत्तियों पर प्रभार होने के कारण जोखिम नही होती है।
5.	मतदान	कंपनी के प्रबंध, नियंत्रण, नीति निर्धारण में मतदान का अधिकार नहीं होता है।	कंपनी के प्रबंध, नियंत्रण, में मतदान का अधिकार नहीं होता है।
6.	कर लाभ	कर योग्य आय की गणना में लाभांश भुगतान की कटौती नहीं मिलती है।	ब्याज की कटौती कर योग्य आय की गणना में दी जाती है।
7.	बंधक	समता अंश जारी करते समय सम्पति बंधन नहीं रखनी होती है।	सामान्यत: ऋणपत्रों को संपत्ति बंधक रखकर ही जारी किया जाता है।
8.	निर्गमन का समय	अंशों का निर्गमन व्यवसाय की स्थापना के समय या बाद में भी किया जा सकता है।	ऋणपत्रों का निर्गमन व्यवसाय के विस्तार एवं विकास के लिये बाद में ही किया जाता है।
9.	धारक	अंश के धारक अंशधारी कहलाते है।	इनके धारक ऋणपत्रधारी होते हैं।
10.	समापन पर	समापन पर भुगतान सबके अंत में अधिशेष बचने पर अनुपातिक रूप से किया जाता है ।	समापन पर भुगतान सुरक्षित ऋण के रूप में प्राथमिकता के आधार पर किया जाता है ।

6.4.2.2 बन्धपत्र बॉण्ड्स (Bond) - भारत में प्रत्याभूति अथवा अप्रत्याभूति ऋणपत्र दोनों को ऋणपत्र ही कहा जाता है, किन्तु अमेरिका में अप्रत्याभूति ऋणपत्रों को ही ऋणपत्र कहा जाता है तथा प्रत्याभूति ऋणपत्रों को बॉण्ड्स कहा जाता है। वैसे इधर कुछ वर्षों में भारत में भी प्रत्याभूति ऋणपत्रों को बॉण्ड्स कहा जाने लगा है ।

संयुक्त राज्य अमेरिका में कम्पनियाँ बॉण्ड्स के धारकों से अलग अलग अनुबंध न करके प्रन्यासी (Trustee) से समझौता कर लेती है और प्रन्यासी बॉण्डधारकों के अधिकारों की रक्षा करते है । इस संबंध में वहाँ 1939 में प्रन्यासी विलेख अधिनियम पारित किया गया था, ताकि निष्पक्ष और योग्य प्रन्यासी नियुक्त हो सके । यदि

कम्पनी प्रसंविदे की किसी शर्त को पूरा नही करती है, तो प्रन्यासी कम्पनी पर वाद भी दायर कर सकते है ।

इस प्रकार बॉण्ड में तीन पक्षकार होते है-कम्पनी, प्रन्यासी और धारक । प्रन्यासी, कम्पनी और धारक के मध्य एक महत्वपूर्ण कड़ी का काम करते है ।

तेजी से बदलते हुये वित्तीय पर्यावरण एवं मुद्रा व पूँजी बाजार के विकास से वित्त प्राप्ति के नवीन स्त्रोतों का विकास हो रहा है और निम्नलिखित बॉण्ड्स प्रमुख रूप से बाजार में प्रचलित है-

1. **शून्य कूपन बॉण्ड -** ऐसे बॉण्ड अपने परिपक्व मूल्य की तलना में काफी कम मूल्य में बट्टे पर निर्गमित किये जाते है । इन पर कोई ब्याज नहीं दिया जाता है, परिपक्व मूल्य और निर्गमन मूल्य का अन्तर ही ब्याज कहलाता है ।
2. **गहन बट्टायुक्त बॉण्ड** - ये बॉण्ड भी शून्य कूपन बॉण्ड की भाँति होते है, परन्तु इनकी परिपक्वता अवधि काफी लम्बी होती है । ऐसे बॉण्ड भारत में सर्वप्रथम भारतीय औद्योगिक विकास

   बैंक (IDBI) द्वारा 1992 में जारी किये गये थे, जिनका निर्गमन मूल्य 27,00 रू0 था और 25 वर्ष बाद परिपक्वता पर देय मूल्य 1,00,000 रू. था । बैंक तथा बॉण्डधारक दोनों को हर 5 वर्ष बाद इनके शोधन का अधिकार प्राप्त था ।
3. **दोहरा विकल्प बॉण्ड** - ऐसे बॉण्ड भी 1992 में भारतीय औद्योगिक विकास बैंक द्वारा जारी किये गये । इनका अंकित मूल्य 5,000 रू. है और 10 वर्ष की परिपक्वता अवधि में 15% वार्षिक, अर्द्धवार्षिक संचयी ब्याज देय था । प्रत्येक बॉण्ड के दो अलग अलग प्रमाण पत्रों के रूप में दो भाग थे, एक 5,000 रू (मूलधन) तथा दूसरा 16,500 (ब्याज व प्रब्याज) का था । बॉण्ड धारक किसी भी एक या दोनों को बेच सकता था।
4. **परिवर्तनशील दर बॉण्ड** - ऐसे बॉण्ड्स पर ब्याज दर निश्चित नहीं होती है, बल्कि बाजार दशाओं के अनुसार परिवर्तनशील (Floting) होती है, इस कारण ऐसे बॉण्ड अधिक लोकप्रिय हो रहे है ।
5. **मुद्रा स्फीति बॉण्ड** - ऐसे बॉण्ड्स पर व्याज दर मुद्रास्फीति के अनुसार समायोजित की जाती है । उदाहरण के लिये यदि ब्याज दर 10% है और मुद्रा स्फीति दर 7% है तो धारक को 17% की दर से व्याज दिया जायेगा, इससे निवेशक मुद्रा स्फीति के विरूद्ध सुरक्षित रहता है ।
6. **विकास बाण्ड्स**- ये संचयी या असंचयी बॉण्डस होते है, जिन पर व्याज का भुगतान परिपक्वता पर या सामयिक रूप से होता है । निवेशकों को आकर्षित करने के लिये शोधन पर प्रीमियम भी दिया जाता है ।

6.4.2.3 संस्थागत ऋण (Institutional Loans)

जैसा कि हम पहले विवेचन कर चुके हैं कि नवीन स्थापित कम्पनियां प्रारम्भ में समता अंश और अधिमान अंश ही जारी करती है । कुछ वर्षा बाद व्यवसाय में नियमित

और स्थाई आय प्रारंभ हो जाने पर ऋणपत्र एवं बॉण्ड भी जारी किये जा सकते है, परन्तु वर्तमान मुद्रा स्फीति के युग में विकास, विस्तार, आधुनिकीकरण, विविधीकरण संबंधी परियोजनाओं की लागतें बढ़ जाने के कारण केवल अंशों या ऋणपत्रों से ही इनकी वित्तपूर्ति सम्भव नही हो पाती है और कम्पनियां विशेषीकृत वित्तीय संस्थानों से मध्यमकालीन एवं दीर्घकालीन ऋण प्राप्त करती है । हम यहाँ दीर्घकालीन ऋणों की चर्चा कर रहे है जिन्हें सावधि ऋण कहते हैं ।

संस्थागत सावधि ऋणों की प्रमुख विशेषताएं -

ऐसे ऋणों की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

1. ये ऋण कम्पनी के विकास, विस्तार एवं आधुनिकीकरण के लिये, स्थाई सम्पत्तियों को खरीदने, स्थाई कार्यशील पूँजी की व्यवस्था करने और ऊँची क्या व्याज दरों पर निर्गमित ऋणपत्रों/ बॉण्डों का शोधन करने हेतु लिये जाते है ।
2. सामान्यत: ये ऋण संपत्तियों पर प्रभार द्वारा सुरक्षित होते है ।
3. ये ऋण प्राय: 5 से 15 वर्ष की अवधि के होते है, जिनका पुर्नभुगतान, ऋण लेने के 2-3 वर्षों बाद से उचित किश्तों में किया जाता है ।
4. वित्तीय संस्था अपने हितों की सुरक्षा के लिये ऋण प्रसंविदे में कई प्रतिबंधात्मक शर्तें तथा परिवर्तन वाक्यांश भी शामिल कर सकती है ।
5. सावधि ऋण वित्तीय संस्थाओं से प्रत्यक्ष सम्पर्क द्वारा प्राप्त किये जाते है जो परियोजना की तकनीकी, वाणिज्यिक, आर्थिक, वित्तीय व प्रबन्धकीय व्यवहार्यता पर आधारित होता है तथा ऋण की ब्याज दरें एवं अन्य शर्त भी परियोजना की प्रकृति पर निर्भर करती है ।

सावधि ऋण देने वाली प्रमुख वित्तीय संस्थाएँ

भारत में विभिन्न औद्योगिक एवं व्यावसायिक संस्थाओं को दीर्घकाल के लिये वित्त उपलब्ध कराने वाली प्रमुख वित्तीय संस्थाएँ इस प्रकार है-

अ. अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाएँ -

1. भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (IFCI)
2. भारतीय औद्योगिक सारव एवं विनियोग निगम (ICICI)
3. भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI)
4. भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (SIDBI)
5. भारतीय निर्यात आयात बैंक (EXIM BANK)
6. भारतीय औद्योगिक निवेश बैंक (IDBI)
7. आधारभूत संरचना विकास वित्त कम्पनी लिमिटेड (IDBF)
8. भारतीय पर्यटन वित्त निगम (TFCI)
9. भारतीय नौवहन ऋण एवं विनियोग कम्पनी लिमिटेड (SCICI)
10. राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम (NIDC)
11. राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम (NSCI)

12. भारतीय स्कन्ध धारिता निगम लिमिटेड (HSCIL)
13. ICIC साहसी कोष प्रबन्ध कम्पनी लिमिटेड (IVFMCL)
14. IFCI साहसी पूँजी कोष लिमिटेड (IVCFL)

ब. राज्य स्तरीय वित्तीय संस्थाएँ -

1. राज्य वित्त निगम (SFC'S) जैसे राजस्थान में राजस्थान वित्त निगम (RFC)
2. राज्य औद्योगिक विकास निगम (SIDC'S) जैसे राजस्थान में राजस्थान राज्य औद्योगिक विकास एवं विनियोग निगम (RIICO)

स. विनियोग संस्थाएँ -

1. भारतीय जीवन बीमा निगम (LIC)
2. भारतीय सामान्य बीमा निगम (GICI) व इनकी सहायक इकाइयाँ
3. भारतीय यूनिट ट्रस्ट(UTI)

द. व्यापारिक बैंक -

1. सार्वजनिक क्षेत्र के व्यापारिक बैंक (Public Sector Banks)
2. निजी क्षेत्र के व्यापारिक देव? (Private Sector Banks)

य. अंतराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएँ -

1. विश्व बैंक (WORLD BANK) या अंतर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक (IBRD)
2. अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF)
3. अंतर्राष्ट्रीय वित्त निगम (IFC)
4. एशियाई विकास बैंक (ADB)

6.5 मध्यकालीन वित्त के स्त्रोत

मध्यकालीन वित्तीय आवश्यकताओं (1-5 वर्ष) की पूर्ति के लिये प्राय: उन्हीं स्त्रोतों का सहारा लिया जाता है, जो दीर्घकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं । जैसा कि पहले भी स्पष्ट किया जा चुका है कि कई बार दीर्घकालीन आवश्यकताओं कीं पूर्ति के लिये जब तुरन्त दीर्घावधि कोष उपलब्ध नही हो पाते है, तब उन्हें मध्यमकालीन कोषों से पूरा किया जाता है और जैसे ही तथा जब भी वांछित दीर्घकालीन कोषों की प्राप्ति हो जाती है, मध्यावधि ऋणों को चुका दिया जाता है ।

मध्यकालीन वित्त के प्रमुख विशेष स्त्रोत -

अ. व्यापारिक बैंक
व. सार्वजनिक निक्षेप
स. पट्टा वित्त
द. सेतु वित्त

6.5.1 व्यापारिक बैंक (Commercial Banks) -

भारतीय स्टेट बैंक और उसके 7 सहायक बैंकों, सार्वजनिक क्षेत्र के 19 बैंकों तथा निजी क्षेत्र के बैंकों ने उद्योगों व व्यापारियों को मध्यकालीन एवं अन्यकालीन ऋण

उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । इन बैंकों ने बड़े व लघु उद्योगों को विस्तार व आधुनिकीकरण के लिये विभिन्न प्रकार की साख योजनाएं बनाई है और ग्रामीण उद्योगों को भी सहायता पहुंचाई है ।

कहने को तो व्यापारिक बैंक अल्पकालीन ऋण देते है, लेकिन व्यवहार में पुन: ऋण देने की व्यवस्था के कारण ये ऋण मध्यकालीन और दीर्घकालीन ऋणों में बदल जाते है । प्राय: ये देखा गया है कि बैंकों द्वारा दिये गये ऋण वित्तीय संस्थाओं द्वारा दिये जाने वाले दीर्घकालीन ऋणों से भी अधिक दीर्घकालीन सिद्ध होते है । बैंकों द्वारा दी जाने वाली साख सुविधा के प्रमुख प्रकार निम्नलिखित है-

1. **ऋण एवं अग्रिम (Loans and Advances)** - ये ऋण सुरक्षित या असुरक्षित तथा प्राय: निश्चित अवधि के लिये होते है । स्वीकृत ऋण की सम्पूर्ण राशि ग्राहक के खाते में जमा कर दी जाती है, जिस पर निर्धारित दर से ब्याज लिया जाता है । ऋण का भुगतान किस्तों में या एकमुश्त किया जा सकता है ।
2. **नकद साख (Cash Credit)** - बैंक ऋण लेने का यह सर्वाधिक लोकप्रिय माध्यम है, जिसमें बैंक ग्राहक को ऋण की एक अधिकतम सीमा स्वीकार कर देता है । ग्राहक अपनी आवश्यकतानुसार राशि आहरित कर सकता है और आहरित राशि पर ही ब्याज लगाता है । माल बन्धक या गिरवी रखकर ऋण स्वीकृत किया जाता है ।
3. **अधिविकर्त्ता (Over Draft)** - यदि ग्राहक का बैंक में चालू खाता है तो एक निश्चित सीमा तक खाते में जमा राशि से अधिक राशि निकालने की सुविधा दी जा सकती है, जिसे अधिविकर्ष कहते है । जब भी ग्राहक चालू खाते में जमा राशि से अधिक राशि आहरित करता है, उस पर व्याज लिया जाता है । यह सुविधा माल या व्यक्ति की जमानत पर भी दी सकती है ।

   बैंकों का योगदान औद्योगिक एवं व्यापारिक साख में काफी वृहद रहा है तथा इस संबंध में भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक एवं साख नीति तथा समय समय पर गठित विशिष्ट समितियों की अनुशंसाओं का भी पालन किया जाता है ।

6.5.2 सार्वजनिक या जन निक्षेप (Public Deposits) -

भारत में व्यापारिक बैंकों के विकास से पूर्व जनता अपनी बचतों को उद्योगों के पास जमा रखती थी । आज भी निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियाँ जन निक्षेप के माध्यम से आवश्यक वित्त प्राप्त करती है । जन निक्षेप से आशय एक गैर-बैंकिंग कम्पनी द्वारा कम्पनी के कर्मचारियों, ग्राहकों तथा अंशधारियों सहित' सामान्य जनता से प्राप्त जमा राशि से है, जो निश्चित समय व निश्चित ब्याज दर पर प्राप्त की जाती है । इनकी अवधि प्राय: एक से तीन वर्ष तक होती है ।

जन निक्षेप के बढ़ते महत्व को देखकर कम्पनी अधिनियम, 1956 में धारा 58 A जोड़कर कम्पनियों को जन निक्षेप स्वीकार करने की छूट दी गई है । इस धारा के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार द्वारा " Companies " (Acceptance of Deposit) Rules, 1975" जारी किये गये

है, जिसके अनुसार कम्पनियाँ अपने शुद्ध कोषों (प्रदत्त पूँजी तथा शुद्ध संचय) के 35% तक जमाएँ आमंत्रित कर सकती है ।

कम्पनियों के अतिरिक्त एकाकी व्यापारी तथा साझेदारी फर्मे भी जन निक्षेप स्वीकार कर सकती है, परन्तु इन्हें 'अच्छे समय का साथी' (Fair Weather's Friend) माना गया है, क्योंकि जनता का कम्पनी में विश्वास डिग जाने पर वह अपनी जमा राशि की तुरन्त वापसी की माँग कर सकती है । अत: इसे सुरक्षित एवं विश्वसनीय साधन नहीं माना जाता है ।

6.5.3 पट्टा वित्त (Lease Financing) -

भारतीय लेखा मानक 19 के अनुसार पट्टा एक अनुबंध है, जिसमें पट्टेदाता (Lessor) पट्टेदार (Lessee) को भुगतान या भुगतानों की श्रृंखला के बदले एक निर्धारित अवधि के लिये सम्पत्ति को उपयोग करने का अधिकार देता है । पट्टा पूँजीगत उपकरणों की वित्त पूर्ति की एक विधि है, जिसके अंतर्गत पट्टेदार सम्पति का चयन करता है, इसे पट्टे पर प्राप्त करता है तथा पूर्व निर्धारित किराया चुकाकर पट्टे की अवधि तक उपयोग करता है, जबकि वैधानिक रूप से स्वामित्व पट्टेदाता के पास ही रहता है जो सम्पति की लागत की वित्त पूर्ति करता है ।

इस प्रकार यह वित्त पूर्ति का अप्रत्यक्ष स्त्रोत है, जिसमें सम्पति की 100% वित्त पूर्ति पट्टेदाता द्वारा की जाती है तथा पट्टेदार. को प्रतिफलस्वरूप किराया देना होता है, जिससे पट्टेदाता की लागत व उचित लाभ वसूल हो सके । भारत में तीव्र औद्योगिकरण के कारण पट्टा व्यवस्था बहुत लोकप्रिय होती जा रही है । बड़े औद्योगिक समूहों व वित्तीय संस्थाओं के साथ कई निजी क्षेत्रों की संस्थाओं ने पट्टा कम्पनियाँ विकसित की है और पट्टा व्यवसाय के त्वरित विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है ।

6.5.4 सेतु वित्त (Bride Financing) -

सेतु वित्त से तात्पर्य सामान्यत: किसी कम्पनी द्वारा लघु या मध्यम अवधि के लिये वाणिज्यिक बैंकों से लिये गये ऐसे ऋणों से है जो वित्तीय संस्थाओं द्वारा स्वीकृत सावधि ऋणों के लम्बित रहने के कारण लिये जाते है । सामान्यत: वित्तीय संस्थाओं को ऋण वितरित करने में अधिक समय लगता है, जबकि कम्पनी को परियोजना में देरी करने पर भारी नुकसान उठाना पड़ सकता है, इसलिये कम्पनियां वाणिज्यिक बैंकों से अस्थाई ऋण जुटा लेती है, ऐसे अस्थाई ऋण वित्तीय संस्थाओं द्वारा भी दिये जाते है ।

जब भी स्वीकृत सावधि ऋण कम्पनी को प्राप्त होता है, ऐसे अस्थाई सेतु ऋण को चुका दिया जाता है । प्राय: सेतु ऋणों को सम्पत्तियों या व्यक्तिगत गारण्टी द्वारा या प्रतिज्ञा पत्रों द्वारा सुरक्षित किया जाता है । सामान्यत: सेतु ऋणों पर ब्याज दर सावधि ऋणों की तुलना में अधिक होती है ।

6.6 अल्पकालीन वित्त के स्त्रोत

एक वर्ष अथवा उससे कम अवधि की वित्तीय आवश्यकताओं की के लिये प्राप्त किया गया धन 'अल्पकालीन वित्त' कहलाता है । अल्पकालीन अवधि कुछ दिनों सप्ताहों या महीनों की भी हो सकती है । अल्पकालीन वित्त की आवश्यकता प्राय: कार्यशील पूँजी की व्यवस्था करने

के लिये होती है, जिसमें कच्चे माल का क्रय, मजदूरी, वेतन, कारखाना, कार्यालय एवं विक्रय व्यय, कर आदि का भुगतान तथा निर्मित माल की उधार बिक्री का अर्थ-प्रबन्धन शामिल है । इसलिये अल्पकालीन वित्त के स्त्रोतों को कार्यशील पूँजी के स्त्रोत भी कहा जाता है । सामान्यतया किसी भी व्यवसायिक संस्था की सफलता कार्यशील पूँजी की उचित मात्रा पर निर्भर करती है और कार्यशील पूँजी अल्पकालीन वित्त के स्त्रोतों पर, इसलिये इन स्त्रोतों का सही व वास्तविक मूल्यांकन आवश्यक है । अल्पकालीन वित्त के स्त्रोतों हम निम्न चार्ट द्वारा प्रदर्शित कर सकते हैं

अल्पकालीन वित्त के प्रमुख स्त्रोत

बाह्य स्त्रोत	**आन्तरिक स्त्रोत**
व्यापारिक साख	ह्रास कोष
व्यापारिक बिलों की कटौती	करों के लिये आयोजन
साख पत्र	बकाया व्यय
वाणिज्यिक पत्र	
ग्राहकों से अग्रिम	

6.6.1 बाह्य स्त्रोत (External Sources) –

संस्था के बाहरी साधनों से उत्पन्न अल्पकालीन वित्त के प्रमुख स्त्रोत निम्नलिखित है-

6.6.1.1 व्यापारिक साख (Trade Credit) -

व्यापारिक साख अल्पकालीन वित्त का सबसे महत्वपूर्ण एवं सबसे बड़ा स्त्रोत है । व्यापारिक साख से अभिप्राय एक व्यापारिक संस्था द्वारा दूसरी व्यापारिक संस्था को उधार माल या सेवाएं बेच कर प्रदान की गई साख से है । विभिन्न वस्तुओं व कच्चे माल के विक्रेता एवं पूर्तिकर्ता अपने ग्राहकों को उनकी भुगतान क्षमता के अनुसार स्वत: साख प्रदान करते है, जो सामान्यत: 7 दिन से 3 माह तक की अवधि की हो सकती है ।इस प्रकार व्यापारिक साख नकद वित्त के स्थान पर माल के रूप में प्रदान की जाती है । सामान्यत: व्यापारिक साख की अग्रलिखित तीन श्रेणियाँ होती है -

1. **खुला खाता**- जब पूर्तिकर्ता क्रेता को उधार माल बेचता है, तो भुगतान विक्रय वीजक की शर्तों के अनुसार भविष्य में प्राप्त करता है । शीघ्र भुगतान पर नकद वहाँ भी प्राप्त हो सकता है, जैसे यदि साख शर्त में ' 2e10 शुद्ध 30 ' का उल्लेख है तो इसका अर्थ है कि 10 दिन में भुगतान करने पर 2%' नकद वही प्राप्त होगा तथा साख की अवधि 30 दिन की होगी ।
2. **विनिमय विपत्र** - इस विधि में क्रेता विक्रेता द्वारा लिखे गये विनिमय विपत्र को स्वीकार करता है और परिपक्वता अवधि पर विपत्र को विक्रेता द्वारा प्रस्तुत करने पर भुगतान कर देता है । कई बार आपसी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये 'अनुग्रह विपत्र' भी लिखे और स्वीकार किये जाते है ।

3. **प्रतिज्ञा पत्र** - जब क्रेता विक्रेता को एक निश्चित तिथि को राशि चुकाने की प्रतिज्ञा करते हुए विपत्र लिखकर देता है तो उसे प्रतिज्ञा पत्र कहते है । देय तिथि पर क्रेता द्वारा विक्रेता को भुगतान कर दिया जाता है ।

   व्यापारिक साख बिना विशेष वैधानिक औपचारिकताओं के सरलतापूर्वक उपलब्ध हो जाती है और बिना किसी सम्पति पर प्रभार उत्पन्न किये लोचदार व्यवस्था की जा सकती है, परन्तु नई संस्थाओं को यह सुविधा तुरन्त उपलब्ध नही हो पाती है । कई बार उधार माल महंगा या घटिया भी मिल सकता है ।

6.6.1.2 व्यापारिक बिलों की कटौती (Discounting of Trade Bills) -

व्यापारिक साख के रूप में जब विक्रेता व्यापारिक विपत्र लिखता है तो भुगतान के लिये परिपक्वता तिथि तक इन्तजार करना पड़ता है । लेकिन आवश्यकता पड़ने पर इन बिलो को व्यापारिक बैंको से बट्टे पर भुनाया जा सकता है या बैंकों को मांग बिल बेचे भी जा सकते है । परिपक्वता पर बैंक बिल स्वीकृता से राशि प्राप्त कर लेते है । इस प्रकार अल्पकालीन वित्त का यह अति लोकप्रिय साधन है ।

बिलों की तरह प्रतिज्ञा पत्रों, हुण्डियों या अन्य साख पत्रों को भी भुनाया या बेचा जा सकता है । यदि परिपक्वता तिथि पर विपत्र अनादरित हो जाता है तो अन्तिम जिम्मेदारी भुनाने वाली संस्था की ही होती है ।

6.6.1.3 साख पत्र (Letter of Credit) -

बैंक अपने ग्राहकों को उधार माल खरीदने में साख पत्रों के माध्यम से भी सहायता करते है । साख पत्र वस्तुत: बैंक द्वारा पूर्तिकर्ताओं को एक निश्चित राशि तक चुकाने की गारण्टी है 1 जब पूर्तिकर्ता नये ग्राहक को उधार माल बेचने में संकोच करता है तब ग्राहक साख पत्र के माध्यम से पूर्तिकर्ता को विश्वास दिला सकता है । यदि ग्राहक देय तिथि पर पूर्तिकर्ता को भुगतान करने में असफल रहता है तो साख पत्र के अधीन किये गये क्रय के लिये बैंक स्वयं भुगतान कर देता है। इस प्रकार ग्राहक के पक्ष में बैंक साख पत्र खोलकर पूर्तिकर्ताओं की जोखिम के प्रति सुरक्षा प्रदान करते है ।

इस व्यवस्था में बैंक ग्राहकों को प्रत्यक्ष रूप से वित्त उपलब्ध नहीं करता है, बल्कि अपने ग्राहकों की देनदारी का समादरण करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लेता है । बैंक वित्त सम्बन्धी परामर्श भी देता है तथा प्रबन्ध में कोई हस्तक्षेप नहीं करता है ।

6.6.1.4 वाणिज्यिक पत्र (Commercial Papers) -

अमेरिका जैसे विकसित देशों में अल्पकालीन पूँजी प्राप्त करने का यह महत्वपूर्ण साधन है । भारत में वाणिज्यिक पत्रों का प्रारम्भ रिजर्व बैंक द्वारा 1989 में किया गया, जिसमें बडी कम्पनियों को सीधे मुद्रा बाजार से धन एकत्रित करने के लिये वाणिज्यिक पत्र निर्गमित करने की अनुमति होती है, इसकी अवधि 15 दिन से 1 वर्ष तक हो सकती है । ये पत्र बैंक, बीमा कम्पनियाँ व अन्य विनियोग संस्थाओं द्वारा क्रय कर लिये जाते है, इस प्रकार यह स्त्रोत अल्पकालीन वित्त प्राप्ति का सबसे तरल व निम्न लागत वाला स्त्रोत है ।

एक निगम अपनी सफल कार्यशील पूँजी के 75% तक वाणिज्यिक पत्र निर्गमित कर सकती है, जो 5-5 लाख रू. के गुणक में होते है तथा न्यूनतम राशि 25 लाख रू. होती है । सामान्यत: इन्हें बट्टे पर निर्गमित किया जाता है । कम्पनी की साख रेटिंग A2 या P2 से कम नहीं होनी चाहिए । इनका खुले रूप से हस्तांतरण सम्भव नहीं है । इस प्रकार वाणिज्यिक पत्र अल्प अवधि का असुरक्षित प्रतिज्ञा पत्र है और प्रसिद्धि प्राप्त एवं अच्छी साख वाली कम्पनियां ही इस स्त्रोत का लाभ उठा सकती है जिनकी शुद्ध कीमत(Net Worth) कम से कम 10 करोड़ रू. हो । भारत में इनका प्रचलन सीमित मात्रा में ही हो पाया है ।

6.6.1.5 ग्राहकों से अग्रिम (Advances from Customers) -

मूल्यवान व एकाधिकार वाली वस्तुओं के निर्माण व उत्पादन में लगे विनिर्माता एवं ठेकेदार, जिन्हें निर्माण कार्य में पर्याप्त समय लगने की सम्भावना होती है प्राय: ग्राहकों से माल की आपूर्ति करने के लिये अग्रिम राशि की मांग करते है । यह लागत रहित वित्त स्त्रोत है तथा वास्तव में उपयोगी है ।

यह अग्रिम राशि माल की सुपुर्दगी तक विक्रेता के पास ही रहती है । इस पर कोई ब्याज नहीं दिया जाता है । परन्तु यह साधन तभी काम में लिया जा सकता है जब संस्था की साख बहुत अच्छी हो तथा क्रेताओं को यह विश्वास हो कि अग्रिम राशि जमा कराने पर माल समय पर मिल जायेगा । कुछ वर्षों पहले बजाज स्कूटर व मारुति कार की एडवांस बुकिंग करके काफी अग्रिम राशि वसूल की गई थी । आज भी कई उत्पादक एवं विक्रेता अपने चुने हुए ग्राहकों को अपने उत्पाद के अधिकृत विक्रेता के रूप में नियुक्ति करने के लिये काफी राशि अग्रिम रूप में लेते है ।

6.6.2 आन्तरिक स्त्रोत (Internal Sources) -

संस्था के स्वयं के साधनों से उत्पन्न अल्पकालीन वित्त के प्रमुख स्त्रोत निम्नलिखित है-

6.6.2.1 ह्रास कोष (Depreciation Found) -

प्राय: संस्थाएं अपनी स्थायी सम्पत्तियों पर प्रति वर्ष एक निश्चित राशि मूल्य हास के रूप में लाभ हानि खाते में डेबिट कर हास कोष का निर्माण करती है, ताकि सम्पति की प्रतिस्थापना की जा सके । परन्तु जब तक नई सम्पति क्रय न की जाये, तब तक ऐसे कोष का प्रयोग आन्तरिक स्त्रोत के रूप में व्यवसाय में किया जा सकता है । कुछ विद्वान हास को गैर नकद व्यय मानते हुए हास कोष को वित्त का स्त्रोत मानने से इंकार करते है । परंतु मूल्य हास ऊपरी व्यय के रूप में वस्तु की लागत में तथा स्टॉक की राशि में शामिल होते है । सम्पति को पट्टे या किराये पर लेने की बजाय खरीदने पर संस्था को कोषों की प्राप्ति तो नहीं, परन्तु कोषों की बचत तो होती है, क्योंकि उन्हें वार्षिक किराया नहीं चुकाना पड़ता है ।

मूल्य हास के कारण कर योग्य आय में कटौती के परिणाम स्वरूप कर में बचत के रूप में भी नकद कोष की अप्रत्यक्ष प्राप्ति होती है । इसे निम्न उदाहरण से समझा जा सकता है-

विवरण	प्रथम स्थिति (रू)	द्वितीय स्थिति (रू)
कर एवं हास पूर्व आय	1,00,000,	1,00,000,
घटाईये - वार्षिक मूल्य हास (अ)	0,	20,000
कर पूर्व आय (कर योग्य	1,00,00	80,000
घटाइये - आयकर (माना) 50%	50,000,	40,000
कर पश्चात् शुद्ध आय (व)	50,000,	40,000
कर पश्चात् कोष प्रवाह (अ) + (व)	50,000,	60,000

द्वितीय स्थिति में कोष प्रवाह 10,000 रू अधिक है, क्योंकि 20,000 रू मूल्य हास के कारण 10,000 रू. की कर बचत प्राप्त हुई है ।

6.6.2.2 करों के लिये आयोजन (Provision for Taxes) -

प्राय: सभी कम्पनियां अपने लाभों का एक निश्चित भाग प्रतिवर्ष करों के भुगतान हेतु प्रावधान करती है, जिसे करों के लिये आयोजन कहते है । जब तक करों का भुगतान वास्तविक रूप से नहीं किया जाता, यह राशि अल्पकालीन वित्त पूर्ति का स्त्रोत बनती है । इसी प्रकार अन्य आयोजन भी बनाये जाते है और उनके वास्तविक उपयोग तक आंतरिक वित्त पूर्ति का साधन बनते है ।

6.6.2.3 बकाया व्यय (Outstanding Expenses) -

बकाया व्ययों का अर्थ उन व्ययों से है, जिनका भुगतान अल्प समय के लिये स्थगित कर दिया गया है । प्राय: इस रोकी गई राशि का उपयोग कुछ समय के लिये व्यवसाय में वित्त के स्त्रोत के रूप में किया जा सकता है । परन्तु ऐसे साधन का प्रयोग अपवाद स्वरूप ही किया जाना चाहिये, अन्यथा संस्था की साख पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ सकता है ।

व्यावसायिक संस्थाओं की वित्त पूर्ति के लिये नई व आधुनिक संस्थाएं व नये साधन भी देखने को मिल रहे है । जिसमें साहस पूँजी (Venture Capital) पारस्परिक कोष (Mutual Fund), यूरो मुद्रा बाजार, यूरो बॉण्ड्स एवं अन्य बॉण्ड्स प्रमुख है, प्रत्येक संस्था अपनी आवश्यकतानुसार उचित स्त्रोत का चुनाव कर सकती है ।

6.7 सारांश

वित्त प्रत्येक व्यापार, वाणिज्य एवं उद्योग की जीवनदायिनी शक्ति है, वित्त के बिना व्यवसाय न तो प्रारम्भ किया जा सकता है और न ही उसका कुशल संचालन और विकास किया जा सकता है । वित्त प्राप्ति के विभिन्न स्त्रोत है, जिनका मूल्यांकन वित्त की लागत, नियंत्रण और जोखिम के आधार पर कर वित्त के उचित स्त्रोत चुनाव किया जा सकता है। व्यवसाय की वित्तीय आवश्यकताएं तीन प्रकार की हो सकती है -

1. अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताएं - 1 वर्ष तक
2. मध्यकालीन वित्तीय आवश्यकताएं - 1 से 5 वर्ष तक
3. दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताएं - 5 वर्ष से अधिक

वित्त के स्त्रोतों का वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर किया जा सकता है, परन्तु सुविधा की दृष्टि से अवधि के आधार पर वर्गीकरण इस प्रकार है -

1. दीर्घकालीन वित्त के स्त्रोत -

अ. स्वामित्व पूँजी -
1. समता अंश
2. पूर्वाधिकार / अधिमान अंश
3. प्रतिधारित आयें

व. ऋण पूँजी -
1. ऋणपत्र
2. बंधपत्र / बॉण्ड्स
3. संस्थागत ऋण

VIII. मध्यकालीन वित्त के स्त्रोत -

1. व्यापारिक बैंक
2. सार्वजनिक निक्षेप
3. पट्टा वित्त
4. सेतु वित्त

IX. अल्पकालीन वित्त के स्त्रोत

अ. बाह्य स्त्रोत -	1. व्यापारिक साख
	2. व्यापारिक बिलों की कटौती
	3. साख पत्र
	4. वाणिज्यिक पत्र
	5. ग्राहकों से अग्रिम
व. आन्तरिक स्त्रोत–	1. हास कोष
	2. करों के लिये आयोजन
	3. बकाया व्यय

6.8 शब्दावली

1. **वित्त**- वित्त का अर्थ आवश्यकता पड़ने पर मुद्रा की व्यवस्था या प्रबन्ध करने से है ।
2. **अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताएँ** - जो एक वर्ष तक के लिये होती है ।
3. **मध्यकालीन वित्तीय आवश्यकताएँ** - जो 1 से 5 वर्ष तक के लिये होती है ।
4. **दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताएँ** - जो 5 वर्ष से अधिक के लिये होती है ।
5. **अंश** - प्रत्येक इकाई जिसमें कम्पनी की पूँजी विभक्त होती है, अंश कहलाती है ।
6. **समता अंश** - वे अंश जिन पर लाभांश भुगतान और पूँजी की वापसी का कोई पूर्वाधिकार नहीं होता है, समता अंश कहलाते है ।
7. **पूर्वाधिकार अंश** - वे अंश जिन पर निश्चित दर से लाभांश भुगतान और पूँजी की वापसी का पूर्वाधिकार होता है, पूर्वाधिकार अंश कहलाते है ।

8. **प्रतिधारित आयें** - अर्जित लाभों में से लाभांश न करके रोके हुए लाभ प्रतिधारित आयें कहलाते है, जिन्हें व्यवसाय में पुनर्विनियोजित कर दिया जाता है ।
9. **ऋणपत्र** - ऋणपत्र कम्पनी की सार्वमुद्रा के अधीन निर्गमित ऐसा लिखित प्रलेख है जो ऋण को प्रमाणित करता है और ऋण पुत्रों के निर्गमन और शोधन की प्रमुख शर्तों को स्पष्ट करता है ।
10. **बंधपत्र या बॉण्ड्स** - प्रत्याभूतित ऋणपत्रों को बॉण्ड्स कहा जाता है, जिनका प्रबन्ध प्रन्यासियों से अनुबन्ध कर किया जाता है ।
11. **संस्थागत ऋण** - विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं से 1 से 10 वर्ष तक की अवधि के लिये गये ऋण निर्धारित शर्तों के अधीन प्राप्त किये जाते है, संस्थागत ऋण कहलाते है ।

6.9 स्वपरख प्रश्न

लघुतरात्मक प्रश्न (Short Answer Type Questions) -

1. वित्तीय स्त्रोतों का मूल्यांकन किन आधारों पर किया जाता है?
2. व्यवसाय की वित्तीय आवश्यकताएँ कितने प्रकार की होती है?
3. अंशों की प्रमुख विशेषताएँ बताइये ।
4. समता अंशों की विशेषताएँ बताइये ।
5. समता अंशों का वित्त के स्त्रोतों के रूप में मूल्यांकन कीजिए ।
6. पूर्वाधिकार अंशों से वित्त प्राप्त करना कब उचित होता है?
7. प्रतिधारित आयों से आप क्या समझते है?
8. ऋणपत्रों की विशेषताएँ बताइये ।
9. संस्थागत सावधि ऋणों की विशेषताएँ बताइये ।
10. जन निक्षेप से क्या आशय है? क्या वित्त विश्वसनीय स्त्रोत है?
11. पट्टा वित्त को समझाइये ।
12. व्यापारिक बिलों की कटौती से आप क्या समझते हैं?
13. साख पत्र और वाणिज्यिक पत्र का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए ।
14. हास कोष किस प्रकार वित्त का एक स्त्रोत है?
15. करों के लिये आयोजन और बकाया व्यय को वित्त के स्त्रोत के रूप में कैसे अपनाया जाता है?

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions) -

1. दीर्घकालीन वित्त के प्रमुख स्त्रोतों को समझाइये ।
2. समता अंश से क्या आशय है? कम्पनी और विनियोजकों की दृष्टि से समता अंशों के लाभ और हानियों को समझाइये ।
3. पूर्वाधिकार अंश का अर्थ स्पष्ट कीजिये । इसके प्रकार बताइये । इनका निर्गमन कम्पनी और विनियोजकों के लिये किस प्रकार लाभदायक है?
4. अन्तर बताइये -

i. समता अंश और पूर्वाधिकार अंश

ii. समता पूँजी और ऋण पूँजी

5. दीर्घकालीन साधन के रूप में ऋण पत्रों का अर्थ व उसके प्रकार बताइये तथा इसके गुण-दोषों को बताइये ।

6. बन्ध पत्र या बॉण्ड्स से आप क्या समझते है? भारत में किस प्रकार के बाण्ड्स प्रमुख रूप से प्रचलित हैं ।

7. संस्थागत सावधि ऋण से क्या आशय है? भारत में सावधि ?ण देने वाली प्रमुख वित्तीय संस्थाएँ कौन सी हैं?

8. मध्यकालीन वित्त क्यों आवश्यक है? मध्यकालीन वित्त के विभिन्न स्त्रोतों का वर्णन कीजिये ।

9. अल्पकालीन वित्त से क्या आशय है? अल्पकालीन वित्त के बाह्य और आंतरिक स्त्रोतों का विवेचन कीजिये ।

10. निम्न को समझाइये -

i. वित्त के स्त्रोतों का वर्गीकरण

ii. लाभों का पुनर्विनियोजन

iii. व्यापारिक साख के प्रकार

6.10 उपयोगी पुस्तकें

1. P.V.Karni : Corporation Finance.
2. I.M. Pandey : Financal Management.
3. Prasanna Chandra : Financial Management.

इकाई-7 : पूँजी संरचना : नियोजन (Capital Structure :Planning)

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 पूँजी संरचना का अर्थ एवं परिभाषाएँ

7.3 पूँजी संरचना, वित्तीय संरचना और सम्पत्ति संरचना

7.4 पूँजी संरचना को प्रभावित करने वाले तत्व

7.4.1 आन्तरिक तत्व

7.4.2 बाह्य तत्व

7.5 आदर्श या अनुकूलतम पूँजी संरचना की विशेषताएँ

7.6 क्या अनुकूलतम पूँजी संरचना एक मिथक कल्पना है?

7.7 अनुकूलतम पूँजी संरचना के चयन के आधार

7.7.1 पूँजी की न्यूनतम औसत लागत

7.7.2 अधिकतम प्रति अंश आय

7.8 श्रेष्ठ पूँजी संरचना निर्णय के आधारभूत तत्व

7.8.1 समता पर व्यापार

7.8.2 पूँजी दन्तिकरण

7.6.3 पूँजी की लागत

7.9 ऋण समता का तटस्थता बिन्दु

7.10 सारांश

7.11 शब्दावली

7.12 स्व परख प्रश्न

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि -

- पूँजी संरचना का अर्थ समझ सकें
- पूँजी संरचना, वित्तीय संरचना और सम्पत्ति संरचना में अन्तर कर सकें
- पूँजी संरचना को प्रभावित करने वाले आन्तरिक एवं बाह्य तत्वों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकें
- अनुकूलतम पूँजी संरचना की विशेषताएँ जान सकें
- अनुकूलतम पूँजी संरचना चयन के आधार के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकें
- श्रेष्ठ पूँजी संरचना निर्णय के आधारभूत तत्वों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकें ।

7.1 प्रस्तावना

पूँजी संरचना को पूँजी संगठन, पूँजी का ढाँचा अथवा पूँजी का स्वरूप या पूँजी विन्यास भी कहा जा सकता है । एक व्यावसायिक -संस्था के लिये पूँजीकरण की राशि निर्धारित कर लेने के बाद वित्तीय प्रबन्धक को पूँजी संरचना के सम्बन्ध में निर्णय लेना पड़ता है । पूँजी संरचना फर्म के पूँजीकरण के मिश्रण को बतलाता है । कई बार पूँजीकरण और पूँजी संरचना को एक ही समझ लिया जाता है, किन्तु इन दोनों में मौलिक भिन्नता है । गेर्स्टनबर्ग के अनुसार, पूँजीकरण का तात्पर्य पूँजी की मात्रा को निश्चित करने से है तथा पूँजी संरचना से तात्पर्य पूँजी के स्वरूप या प्रकार को निश्चित करने से है ।" उनके अनुसार पूँजी संरचना का अर्थ है ' 'फर्म के पूँजीकरण का निर्माण । "

7.2 पूँजी संरचना का अर्थ एवं परिभाषाएँ

एक व्यावसायिक संस्था द्वारा दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकताओं की पूर्ति स्वामित्व स्त्रोतों यथा समता अंशों, पूर्वाधिकार अंशों और प्रतिधारित अर्जनों द्वारा की जा सकती है या ऋण स्त्रोतों यथा ऋण पत्रों, बंध-पत्रों और संस्थागत ऋणों से। पूँजी संरचना में यह निर्धारित किया जाता है कि आवश्यक पूँजी का कितना भाग ऋण पूँजी के रूप में प्राप्त किया जाये और कितना भाग स्वामित्व पूँजी के रूप में । एक व्यावसायिक संस्था को इन दोनों में इस प्रकार संतुलन बनाये रखना होता है ताकि लागत और जोखिम न्यूनतम हो और स्वामियों का धन अधिकतम हो ।

आर. एच. बैंसल के अनुसार - ' 'पूँजी संरचना का उपयोग प्राय: किसी व्यावसायिक संस्था में विनियोजित कोषों के दीर्घकालीन स्त्रोतों को दर्शाने के लिये किया जाता है ।

वैस्टर्न एवं ब्रिग्नम के अनुसार - ' 'पूँजी संरचना किसी फर्म का स्थायी वित्त प्रबन्धन होता है, जो दीर्घकालीन ऋणों, पूर्वाधिकार अंशों तथा शुद्ध मूल्य से प्रदर्शित होता है । "

इस प्रकार पूँजी संरचना एक व्यावसायिक संस्था की वित्तीय योजना है, जिसके अन्तर्गत पूँजी के विभिन्न स्थायी स्त्रोतों के बीच समन्वय स्थापित किया जाता है । प्राय: पूँजी संरचना में प्रयुक्त पूँजी दो प्रकार की होती है ।

1. स्थायी लागत वाली पूँजी - ऋण पत्र एवं पूर्वाधिकार अंश
2. परिवर्तनशील लागत वाली पूँजी - समता अंश एवं प्रतिधारित आयें ।

संस्था को इन दोनों प्रकार की पूँजी के मध्य समन्वय स्थापित करना होता है, क्योंकि इस संतुलन का संस्था की वित्तीय सुदृढ़ता पर सीधा प्रभाव पड़ता है । पूँजी की यह सन्तुलित व्यवस्था ही पूँजी संरचना कहलाती है । पूँजी संरचना में विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों का आपस में क्या अनुपात हो, इस प्रश्न का हल ढूंढा जाता है ।

7.3 पूँजी संरचना. वित्तीय संरचना और सम्पत्ति संरचना

जहाँ वित्तीय संरचना में व्यवसाय के समस्त दायित्वों - दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन को शामिल किया जाता है, वहीं पूँजी संरचना में केवल दीर्घकालीन दायित्वों को शामिल किया

जाता है । दूसरी और संपत्ति संरचना में व्यवसाय की समस्त स्थायी एवं चालू सम्पत्तियों को शामिल किया जाता है ।

उपरोक्त विवरण को निम्न सूत्रों द्वारा भी प्रकट किया जा सकता है -

1. वित्तीय संरचना	=	कुल दायित्व
	=	दीर्घकालीन दायित्व + चालू दायित्व
	=	समता अंश पूँजी / पूर्वाधिकार अंश पूँजी+संचय एवं कोष + दीर्घकालीन ऋण + चालू दायित्व
2. पूँजी संरचना	=	कुल दायित्व - चालू दायित्व
	=	वित्तीय संरचना - अल्पकालीन दायित्व
	=	दीर्घकालीन दायित्व
3. सम्पत्ति संरच	=	कुल सम्पत्तिया
	=	स्थायी सम्पत्तियाँ + चालू सम्पत्तियाँ

7.4 पूँजी संरचना को प्रभावित करने वाले तत्व

एक व्यावसायिक संस्था के लिये सुनियोजित पूँजी संरचना का बड़ा महत्व है, क्योंकि इससे संस्था की पूँजी की कुल लागत तथा लाभदायकता पर प्रभाव पड़ता है । वित्तीय प्रबन्धकों का यह उत्तरदायित्व है कि वे संस्था के लक्ष्यों के अनुरूप अनुकूलतम पूँजी संरचना का निर्धारण करे । प्राय: जब भी संस्था को वित्त की आवश्यकता होती है, तब वित्तीय प्रबन्धकों का वित्त के विभिन्न स्त्रोतों का गहनता से विश्लेषण करके पूँजी की संरचना करते हैं । अत: पूँजी संरचना को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने वाले समस्त तत्वों पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक है । इन तत्वों को प्रमुख रूप से दो -वर्गो में विभाजित किया जा सकता है :-

7.4.1. आन्तरिक तत्त्व

7.4.2. बाह्य तत्त्व

इनका विस्तृत विवेचन नीचे किया जा रहा है -

7.4.1 आन्तरिक तत्व (Internal Factors) -

एक ही उद्योग में विभिन्न उत्पादन इकाईयाँ या एक ही व्यवसाय के अन्तर्गत विभिन्न संस्थाएँ अलग-अलग विशेषताएँ लिये होती है, जिसका व्यवसाय की लाभदायकता तथा वित्तीय सुदृढ़ता पर सीधा प्रभाव पड़ता है । इन्हें प्रत्येक संस्था की आन्तरिक विशेषताएँ कहा जाता है । पूँजी संरचना को प्रभावित करने वाले ऐसे प्रमुख आन्तरिक तत्व निम्नलिखित हैं-

1. **व्यवसाय का आकार (Size of Business)** - संस्था की पूँजी संरचना को व्यवसाय का आकार पूर्णत: प्रभावित करता है । बड़े आकार की संस्थाओं को अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है, जिसे किसी एक साधन से पूरा करना न तो सम्भव होता है और न ही उचित होता है । इसलिये ऐसी संस्थाएँ कम लागत एवं कम जोखिम वाले सभी स्रोतों से पूँजी प्राप्त करने का प्रयास करती है । वहीं छोटी संस्थाओं की सीमित आवश्यकताओं के लिये

समता अंश पूँजी का प्रयोग अधिकाधिक किया जाता है क्योंकि इन संस्थाओं की जोखिम उठाने की क्षमता कमजोर होती है तथा साख भी सुदृढ़ नहीं होती है । इसके विपरीत, मध्यम आकार वाली व्यावसायिक संस्थाओं में अंश एवं ऋणपत्र दोनों ही प्रकार की प्रतिभूतियों को शामिल किया जाता है, क्योंकि ऐसी संस्थाएं दोनों स्त्रोतों से पूँजी प्राप्त करने में सक्षम होती है ।

2. **व्यवसाय की प्रकृति (Natural of Business)** - पूँजी संरचना के निर्धारण में व्यवसाय की प्रकृति का काफी प्रभाव रहता है । व्यवसाय की आकृति के आधार पर संस्थाऐं तीन प्रकार की हो सकती है - निर्माणी संस्थाएँ, व्यापारिक संस्थाएँ तथा सेवा प्रदत्त संस्थाएँ। निर्माणी या उत्पादक संस्थाओं में कार्यशील पूँजी की अपेक्षा स्थायी पूँजी का प्रयोग अधिक मात्रा में किया जाता है तथा ऋण लेने की व जोखिम उठाने की क्षमता अधिक होने के कारण अंश पूँजी के साथ-साथ ऋण पूँजी का प्रयोग भी बड़ी मात्रा में कर सकती है, इसके विपरीत व्यापारिक संस्थाओं में स्थायी पूँजी की अपेक्षा कार्यशील पूँजी का प्रयोग अधिक मात्रा में किया जाता है, जिसके लिये अल्पकालीन वित्त के स्त्रोतों तथा समता अंश पूँजी या शोधनीय प्रतिभूतियों का प्रयोग अधिक किया जाता है । सेवा प्रदाता संस्थाओं जैसे बैंकिंग अथवा वित्तीय संस्थाओं तथा सामान्य व्यापारिक संस्थाओं की पूँजी संरचना में आधारभूत अन्तर होता है । ऐसी संस्थाएँ अपनी दीर्घकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अपनी साख के आधार पर ?ण प्राप्त कर लेती है ।

3. **नियमित एवं निश्चित आय की सम्भावनाएँ (Possibilities of Regular And Stable Income) -** यदि भविष्य में नियमित आय निश्चित एवं स्थायी रूप से प्राप्त होती रहने की सम्भावना है तो वहाँ वित्तीय प्रबन्धक स्थायी लागत वाली प्रतिभूतियों जैसे पूर्वाधिकार अंशों तथा ऋणपत्रों का अधिक मात्रा में प्रयोग करते हैं, इसलिये जनोपयोगी सेवाओं से सम्बन्धित संस्थाएं अपने पूँजी ढांचे में पूर्वाधिकार अंशों, ऋणपत्रों एवं बॉण्डों का अधिक प्रयोग करती है, क्योंकि ऐसी संस्थाओं में आय की निश्चितता एवं निरंतरता बनी रहती है, इसके विपरीत जिन संस्थाओं में आय की अनिश्चितता एवं अनियमितता होती है, अर्थात् जिन व्यावसायिक संस्थाओं में जोखिम अधिक हो और पूँजी बाजार में प्रतिस्पर्धा अधिक हो, वे अपनी पूँजी संरचना में समता अंशों को सर्वाधिक रूप से शामिल करना पसन्द करती है ।

4. **व्यवसाय की सम्पत्ति संरचना (Assets Structure of Business) -** संस्था की पूँजी संरचना उसकी सम्पत्ति संरचना पर भी निर्भर करती है । निर्माणी संस्थाओं एवं जनोपयोगी संस्थाओं में जहाँ स्थायी सम्पत्तियों की मात्रा अधिक होती है, वहाँ पूँजी संरचना में दीर्घकालीन ऋणों एवं ऋणपत्रों का प्रयोग अधिक होता है तथा अंश पूँजी कम होती है, इसके विपरीत व्यापारिक संस्थाओं जैसी संस्थाओं के सम्पत्ति ढांचे में स्थायी सम्पत्तियों की अपेक्षा चालू सम्पत्तियों की उपयोगिता अधिक होती है, इसलिये वही वित्त की प्राप्ति समता अंशों के माध्यम से प्रमुख रूप से की जायेगी और दीर्घकालीन प्रतिभूतियों की मात्रा कम होगी ।

5. **व्यवसाय पर नियंत्रण की इच्छा (Desire to control the Business)-** व्यवसाय की पूँजी संरचना व्यवसाय पर नियंत्रण की इच्छा पर भी निर्भर करती है । यदि व्यावसायिक कम्पनी का नियंत्रण, प्रबन्धन / प्रवर्तक अपने ही हाथों में केन्द्रित रखना चाहते हैं, तो वे समता अंशों का एक बड़ा भाग स्वयं के पास रख लेते हैं तथा शेष भाग बिखरे हुए छोटे-छोटे अंशधारियों में बांट दिया जाता है । शेष पूँजी के लिये पूर्वाधिकार अंश या ऋणपत्र जारी कर दिये जाते हैं ताकि कम्पनी के नियंत्रण पर उनका एकाधिकार पूर्ववत बना रह सके।
6. **संस्था की आयु (Age Of Business Firm)** - संस्था की आयु का भी प्रभाव उसकी पूँजी संरचना पर पड़ता है । नई संस्थाएँ विभिन्न स्त्रोतों से उचित शर्तों पर बाजार से पूँजी नहीं जुटा सकती है, क्योंकि इन संस्थाओं की साख स्थापित नहीं होती है, अत: विनियोक्ताओं को जोखिम अधिक महसूस होती है । जबकि. पुरानी संस्थाएं जिनकी आयु अधिक हैं, वे अपनी स्थापित साख के आधार पर दीर्घकालीन ऋण या ऋणपत्रों के माध्यम से पूँजी जुटा सकती है ।
7. **भावी योजनाएं एवं इच्छित लोचता (Future Plans And Desired Flexibility)** - पूँजी संरचना का निर्धारण व्यवसाय की भावी योजनाओं तथा पूँजी में इच्छित लोचता से भी होता है । यदि भविष्य में व्यवसाय के विस्तार एवं विकास की सम्भावना हो तो कम्पनी की अधिकृत पूँजी अधिक रखी जानी चाहिए, ताकि भविष्य में पर्याप्त नये अंश जारी किये जा सकें । बाद में धीरे धीरे साख जमने पर अन्य प्रतिभूतियाँ भी जारी की जा सकती है।

   संस्था को अपना पूँजी कलेवर पर्याप्त लोचपूर्ण भी रखना चाहिए ताकि भविष्य की आवश्यकताओं के अनुरूप पूँजी की पर्याप्त व्यवस्था की जा सके । लोचता के लिये संस्था की अधिकृत पूँजी को आवश्यकता से अधिक रखा जा सकता है, ताकि आवश्यकता पड़ने पर नये अंशों का निर्गमन किया जा सके, साथ ही संस्था द्वारा शोध्य पूर्वाधिकार अंशों तथा शोध्य ऋणपत्रों का निर्गमन भी किया जाता है, ताकि आवश्यकता न होने पर इनका शोधन कर आधिक्य पूँजी लौटाई जा सके ।
8. **साख स्थिति (Credit Position)** - संस्था की साख रिथति उसकी पूँजी संरचना पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है। यदि संस्था की साख सुदृढ़ है तो वह सुविधाजनक रूप से अनुकूलतम पूँजी ढांचे को अपना सकती है । ऐसी संस्थाओं के पूर्वाधिकार अंशों तथा ऋण पत्रों में विनियोक्ता तुरन्त विश्वास कर लेते हैं, जबकि कमजोर साख स्थिति वाली संस्थाओं को समता अंशों का सहारा लेना होता है, क्योंकि उन्हें ऋण प्राप्त करने में कठिनाई होती है।
9. **परिचालन अनुपात (Operating Ratio)** - यह अनुपात कुल परिचालन लागतों / व्ययों व शुद्ध बिक्री के मध्य ज्ञात किया जाता है । यह अनुपात जितना ऊँचा होगा, उतनी ही संस्था की बिक्री पर लाभार्जन क्षमता कम होगी तथा ऐसी संस्थाएं स्थिर लागत वाली प्रतिभूतियों का प्रयोग कम से कम करेगी, जबकि परिचालन अनुपात कम होने पर संस्था

के पास ऋण पर व्याज आदि चुकाने के लिये पर्याप्त आय शेष रहेगी और स्थिर लागत वाली प्रतिभूतियों का निर्गमन करने पर कोई कठिनाई उत्पन्न नहीं होगी ।

10. **समता पर व्यापार (Trading on Equity)** - व्यवसाय के प्रवर्तक, संचालक या उच्च प्रबन्धक यदि कम पूँजी पर अधिक लाभ कमाने की आकांक्षा रखते हैं तो वे समता पर व्यापार' के सिद्धान्त का पालन. करते हैं । इस सिद्धान्त के अनुसार संस्था द्वारा समता पूंजी का निर्गमन न्यूनतम मात्रा में किया जाता है तथा पूँजी का बड़ा भाग दीर्घकालीन भागों द्वारा प्राप्त किया जाता है ताकि ऋणों पर निश्चित दर से व्याज चुकाकर शेष आय का प्रयोग समता पूँजी पर उच्च दर से लाभांश चुकाने में प्रयुक्त किया जा सकता है । 'समता पर व्यापार' करना तभी लाभदायक सिद्ध होता है, जबकि व्यवसाय में उपार्जन दर, ऋण पर ब्याज दर से अधिक होती है । इसका विस्तृत वर्णन इसी अध्याय में आगे हम करेंगे ।

11. **दन्तिकरण अनुपात (Gearing Ratio)** - कुल पूँजीकरण में अस्थायी लाभांश वाली समता अंश वाली पूँजी तथा स्थायी लाभांश या ब्याज वाली क्रमश: पूर्वाधिकार अंश पूँजी या ऋण पूँजी के मध्य अनुपात दन्तिकरण अनुपात कहलाता है । यदि समता अंश पूँजी कम निर्गमित की गई है तो वह निम्न दन्ति अनुपात कहलाता है, जबकि उच्च दन्ति अनुपात की स्थिति में समता अंश पूँजी का निर्गमन अधिक किया जाता है । निम्न दन्ति अनुपात वाली कम्पनी में पूँजी की स्थायी लागतें (पूर्वाधिकार अंश लाभांश + ब्याज) अधिक होंगी और समता अंशधारियों में वितरण योग्य लाभ कम बचेंगे । ऐसी स्थिति में समता अंशों के मूल्य गिर जाते हैं । उच्च दन्तिकरण में पूँजी की स्थाई लागतें कम होगी जिससे समता अंशधारियों को लाभांश के रूप में अधिक आय होगी, ऐसी स्थिति में समता अंशों के मूल्य में सट्टे की प्रवृति पाई जाती है । इसलिये पूंजी संरचना में विभिन्न प्रतिभूतियों का उचित समन्वय बनाये रखा जाता है ।

12. **प्रबन्धकों का दृष्टिकोण (Attitude of Management)** - पूँजी संरचना के निर्धारण में प्रबन्धकों के दृष्टिकोण का भी बड़ा महत्व रहता है । प्रबन्धक आय की अनिश्चितता एवं जोखिम का मुकाबला किस प्रकार करना चाहते हैं तथा संस्था पर कितना नियंत्रण बनाये रखना चाहते हैं, इस पर पूँजी संरचना निर्भर करती है । पूँजी ढांचा समान रूप से प्रबन्धक की आयु, अनुभव, महत्वाकांक्षा, विश्वास तथा परम्परावादिता से भी प्रभावित होता है, क्योंकि प्रबन्ध का दृष्टिकोण समान परिस्थितियों में भी भिन्न भिन्न हो सकता है ।

13. **रोकड़ प्रवाह क्षमता (Cash Flow Ability) -** पूँजी संरचना का निर्धारण करते समय वित्त प्रबन्धकों को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि कम्पनी की रोकड़ प्रवाह क्षमता कितनी है । जब भी प्रबन्धकों द्वारा स्थायी लागत वाली प्रतिभूतियों का निर्गमन किया जाता है, तब संस्था के पास उन व्ययों की पूर्ति के लिये पर्याप्त रोकड़ होना भी आवश्यक है । बैन हॉर्न के अनुसार ' 'संस्था को स्थिर भार बढ़ाने से पहले अपनी वांछित रोकड़ प्रवाह की स्थिति का अध्ययन कर लेना चाहिये', क्योंकि स्थिर भार की पूर्ति रोकड़ द्वारा ही की जाती है ।''

कम्पनी को पर्याप्त लाभ होने पर भी संस्था के पास पर्याप्त रोकड़ या तरल सम्पत्तियां भी हो, यह आवश्यक नहीं है ।

14. **सरलता एवं स्पष्टता (Simplicity And Clearity)** - पूँजी संरचना का प्रारूप सरल एवं स्पष्ट भी होना चाहिए। यदि कम्पनी की पूँजी संरचना जटिल होगी तो अन्य पक्षकारों को इसे समझने में कठिनाई होगी तथा वे संस्था की आर्थिक स्थिति पर सन्देह कर सकते हैं । सरल एवं स्पष्ट पूँजी ढांचे से वित्तीय प्रबन्धकों को बाजार से अतिरिक्त पूँजी जुटाने में कठिनाई महसूस नही होती है, तथा वे स्वयं भी उच्च प्रबन्धकों को पूँजी संरचना तथा इसका कम्पनी की आर्थिक स्थिति पर प्रभाव को स्पष्ट करने में सुविधा महसूस करते हैं ।

7.4.2 बाह्य तत्व (External Factors) -

आन्तरिक तत्वों के अलावा व्यावसायिक वातावरण को प्रभावित करने वाले बाह्य घटकों का प्रभाव भी पूँजी संरचना पर पर्याप्त रूप से पड़ता है । बाह्य तत्वों पर संस्था का नियंत्रण नहीं होता है, परन्तु व्यवसाय की पूँजी संरचना का निर्धारण करते समय प्रबन्धकों को इन तत्वों पर विचार करना भी आवश्यक है -

1. **पूँजी बाजार की स्थिति (Position of Capital Market) –**पूँजी बाजार का वातावरण तथा दशाएँ और स्थिति से पूँजी संरचना प्रभावित होती है । इसलिये प्रबन्धकों को पूँजी बाजार की परिस्थितियों का अध्ययन भली-भाँति कर लेना आवश्यक होता है । सामान्यत: मंदी के समय जब बाजार में ब्याज दरें कम होती हैं एवं लाभ की सम्भावनाएँ अनिश्चित होती है, तब ऋणपत्रों का निर्गमन जनता में लोकप्रिय होता है। कम्पनी के प्रबन्धक भी ज्यादा ब्याज दरों वाले ऋणपत्रों का प्रतिस्थापन कम दरों वाले ऋणपत्रों से कर सकते हैं। जबकि तेजी काल में समता अंशों का निर्गमन करना सुविधाजनक रहता है, क्योंकि विनियोक्ता के पास अतिरिक्त धन होता है, जिसे वह ज्यादा प्रतिफल की आशा में जोखिम वाली समता अंश प्रतिभूतियों में विनियोग करना पसंद करते हैं । प्रबन्धक भी समता अंशों को प्रव्याजि या प्रीमियम पर निर्गमित कर लाभ उठा सकते हैं । यदि देश का पूँजी बाजार पूर्ण विकसित है तथा विभिन्न वित्तीय संस्थाएं खुले बाजार में वित्त प्रदान कर रही होती है, तो संस्था को कम लागत पर ऋण प्राप्त करने में आसानी होती है और पूँजी संरचना को परिवर्तित कर अनुकूल बनाया जा सकता है । अविकसित पूँजी बाजार की स्थिति में पूँजी संरचना में वांछित परिवर्तन करना संभव नहीं होगा ।
2. **विनियोक्ताओं की प्रकृति (Nature of Investors)** - किसी संस्था की पूँजी संरचना उस देश के विनियोक्ताओं की प्रकृति और प्रवृति पर भी निर्भर करती है । कुछ विनियोक्ता साहसी एवं जोखिम वहन करने वाले तथा पर्याप्त पूँजी वाले होते हैं और वे ऋणपत्रों की अपेक्षा समता अंशों में विनियोग करना अधिक पसंद करते हैं, जबकि ऐसे विनियोक्ता जो शंकालु एवं भीरु प्रवृति तथा कम पूँजी वाले होते हैं, वे अधिमान अंश, ऋणपत्र एवं बॉण्डों में विनियोग करना अधिक सुरक्षित समझते हैं । अनिर्णय की स्थिति वाले विनियोक्ता परिवर्तनीय ऋणपत्रों में विनियोग करना अधिक पसन्द करते हैं । प्रबन्धकों

को विनियोक्ताओं की प्रकृति एवं रूचि के अनुरूप अपनी पूँजी संरचना में परिवर्तन करना पड़ता है, तभी वे सफलतापूर्वक पूँजी निर्गमन कार्य को अंजाम दे सकते हैं ।

3. **पूँजी निर्गमन की लागत (Cost of Capital Issue)** - पूँजी संरचना पर पूँजी निर्गमन की लागत का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ता है । पूँजी निर्गमन की लागत में अभिगोपन कमीशन, दलाली निर्गमन पर बट्टा, विज्ञापन पर व्यय आदि को शामिल किया जाता है । प्रबन्धकों की प्राथमिकता मित्तव्ययता की दृष्टि से ऐसी प्रतिभूतियों को निर्गमित करने की होती है, जिनकी निर्गमन लागत कम आती है, यदि अन्य बातें समान रहे।
4. **सरकारी नियंत्रण. नियम एवं नियमन (Government Control, Rules And Regulations)-** पूँजी संरचना पर सरकारी नियंत्रण, नियम एवं अधिनियम का भी प्रभाव पड़ता है । देश में प्रचलित नियम तथा इनमें परिवर्तन की संभावनाओं को भी ध्यान में रखा जाता है । उदाहरणार्थ, भारत में प्रचलित आयकर अधिनियम के अनुसार ?ण एवं ऋणपत्रों पर ब्याज को कर योग्य आय की गणना के लिये कटौती योग्य माना जाता है और कम्पनियाँ ऊँची कर दरों के कारण समता अंशों की बजाय ऋणपत्रों का निर्गमन करना अधिक अच्छा मानती है । इसी प्रकार पूँजी निर्गमन अधिनियम के अनुसार पूँजी सघन उद्योगों के अलावा अन्य उद्योगों में ऋण एवं समता अंश पूँजी का मिश्रण का अनुपात 2:1 होना आवश्यक है। इसी प्रकार समता पूँजी तथा अधिमान अंश पूँजी में अनुपात 3:2 होना वांछनीय है । बोनस अंशों के निर्गमन व नये अंशों के निर्गमन, ऋणपत्रों के शोधन आदि के लिये भी कई प्रतिबन्ध लगाये गये हैं । सेबी द्वारा भी समय-समय पर दिशा निर्देश जारी किये जाते हैं । इन सबको दृष्टिगत रखते हुए पूँजी संरचना का निर्माण किया जाता है ।
5. **वित्तीय संस्थाओं की नीति (Policy of Financial Institution)** - भारतीय वित्तीय संस्थाएं ऋण देते समय संस्था की पूँजी संरचना का विस्तार से अध्ययन करती है । प्राय: वह समता अंश पूँजी व ऋण पूँजी के मध्य अनुपात को ज्यादा महत्व देती है, क्योंकि उन्हें उनके द्वारा प्रदान किये गये ऋणों की सुरक्षा का विशेष ध्यान रखना आवश्यक होता है । नई संस्थाएं ऋण देते समय कई प्रतिबन्धों एवं शर्तों का पालन करवाती है । कुछ संस्थाएं अपने ऋण को भविष्य में समता अंश पूँजी में परिवर्तित करने की शर्त भी लगा देती है, इसलिये कम्पनी को अधिकृत अंश पूँजी थोड़ी बढ़ाकर निर्धारित करनी चाहिए, ताकि समता अंश आवश्यकता पडने पर जारी किये जा सकें ।
6. **अन्य महत्वपूर्ण तत्व (Other Important Factors)** - पूँजी संरचना को प्रभावित करने वाले उपरोक्त तत्वों के अलावा कुछ अन्य तत्व भी उसे प्रभावित करते हैं जैसे आर्थिक उच्चावचन, प्रतिस्पर्धा एवं बाजार की दशाएं, मौसमी मांग में परिवर्तन आदि । इन तत्वों को दृष्टिगोचर रखते हुए यदि प्रबन्धक अपनी पूंजी संरचना का निर्माण करते हैं तो कम्पनी पर अनावश्यक भार नहीं बढ़ेगा तथा कम्पनी अपने पूँजी ढांचे को संस्था के अनुकूलतम बनाने में सफल हो सकेगी ।

7.5 आदर्श या अनुकूलतम पूँजी संरचना की विशेषताएँ

प्रत्येक संस्था को अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये तथा अपनी वित्तीय सुदृढ़ता एवं स्थिरता बनाये रखने के लिये एक आदर्श या संतुलित पूँजी संरचना का निर्माण करना आवश्यक है । जैसा कि हम पहले अध्ययन कर चुके हैं कि पूँजी संरचना विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों का मिश्रण है । अब प्रश्न यह उठता है कि इन विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों का अनुपात क्या हो कि आदर्श पूँजी संरचना का निर्माण किया जा सके । एक अनुकूलतम पूँजी संरचना उसे कहा जा सकता है, जहाँ कम्पनी के समता अंश का बाजार मूल्य अधिकतम हो और पूँजी की औसत लागत न्यूनतम हो । सिद्धान्त: जब तक ऋण पर ब्याज की लागत की तुलना में संस्था की विनियोगों पर आय (Return on Investment–ROS) अधिक है, ऋण की मात्रा बढ़ने पर प्रति अंश आय (Earnings Per share–EPS) भी बढती रहती है और इससे समता अंश का बाजार मूल्य भी बढ़ता रहता है, परन्तु ऋण की प्रत्येक वृद्धि से कम्पनी की जोखिम भी बढ़ती है, क्योंकि कम्पनी पर व्याज का स्थायी भार बढ़ता जाता है, और व्यवहार में कम्पनी के अंश का बाजार मूल्य बढ़ने की बजाय गिर भी सकता है ।

इसलिये एक कम्पनी की आदर्श पूँजी संरचना का निर्माण एक आसान कार्य नहीं है, क्योंकि एक आदर्श या अनुकूलतम पूँजी संरचना में निम्न विशेषताएँ होनी चाहिए -

1. **अधिकतम प्रति अंश आय (Maximum Earnings per Share) -** कम्पनी की पूँजी संरचना ऐसी होनी चाहिये ताकि समता अंशों पर प्रति अंश आय (EPS) अधिकतम हो, क्योंकि समता अंशधारी ही कम्पनी के वास्तविक स्वामी होते हैं । यह तभी सम्भव हो सकता है, जबकि संस्था को नियमित एवं निश्चित आय प्राप्त होती रहे । यद्यपि संस्था की आय प्रबन्धकीय कुशलता एवं अन्य कई तत्वों पर निर्भर करती है, फिर भी संतुलित पूँजी संरचना द्वारा कम लागत पर पूँजी प्राप्त करके प्रति अंश आय बढ़ाई जा सकती है ।
2. **न्यूनतम पूँजी लागत (Minimum Cost of Capital)** - पूँजी लागत से तात्पर्य यहां पर समग्र पूँजी की लागत (Overall Cost of Capital) से है, जिसमें ऋणपत्रों पर दिये जाने वाले ब्याज की दर तथा समता एवं अधिमान अंशों पर दिये जाने वाले लाभांश की दर को तो शामिल करते ही हैं, साथ ही इन प्रतिभूतियों को निर्गमित करने की लागत जैसे अभिगोपन कमीशन, दलाली, निर्गमन पर बट्टा, विज्ञापन, छपाई आदि पर व्यय इत्यादि को भी शामिल किया जाता है । एक आदर्श पूँजी संरचना में विभिन्न प्रतिभूतियों को ऐसे अनुपात में शामिल करना चाहिए, जिससे पूँजी की समग्र या औसत लागत कम से कम हो ।
3. **न्यूनतम जोखिम(Minimum Risk)** - एक आदर्श पूँजी संरचना विभिन्न प्रकार की व्यावसायिक जोखिमों से भी निर्धारित होती है । इन जोखिमों में व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा, करों में वृद्धि, मूल्यों में कमी, लागत में वृद्धि, क्रय शक्ति में कमी, ब्याज दरों में वृद्धि आदि शामिल है । इसलिये आदर्श पूँजी संरचना इस प्रकार की होनी चाहिए कि ये जोखिमे

न्यूनतम हों, तथा आवश्यकता पड़ने पर व्यवसाय इन जोखिमों का सफलतापूर्वक सामना कर सके । इन जोखिमों को न्यूनतम करने के लिये कम्पनी को अपनी पूँजी संरचना में उच्च श्रेणी की प्रतिभूतियों को भी शामिल करनी चाहिये ।

4. **लोचशीलता (Flexibility)** - पूँजी संरचना में पर्याप्त लोचशीलता का होना भी आवश्यक है, ताकि इसे परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल बनाया जा सके । दूसरे शब्दों में, पूँजी संरचना ऐसी होनी चाहिए कि व्यवसाय विस्तार के समय आवश्यक पूँजी को इसमें शामिल किया जा सके तथा यदि आवश्यकता न हो तो पूँजी को वापस लौटाया भी जा सके ।
5. **शोध-क्षम्यता (Solvency)** - संतुलित पूँजी संरचना में यह गुण भी होना चाहिए कि वह संस्था को दिवालियापन के कगार पर न पहुंचा दे । ऋणों के अत्यधिक प्रयोग से ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है, इसलिये ऋणों का प्रयोग उसी सीमा तक किया जाना चाहिए, जिससे कम्पनी की आय में उच्चावचन होने पर भी स्थायी व्याज के व्ययों से कम्पनी को कोई खतरा न हो, कम्पनी के पास अपने दायित्वों का भुगतान करने की पर्याप्त क्षमता होना आवश्यक है ।
6. **पर्याप्त रोकड़ प्रवाह (Adequate Cash Flow)** - कम्पनी की आदर्श पूँजी संरचना में तरलता का पर्याप्त गुण होना आवश्यक है, इसके लिये ब्याज अवाप्ति अनुपात (Interest Coverage Ration) का सहारा लिया जाना चाहिए । इस अनुपात की गणना ब्याज एवं कर से पूर्व आय (EBIT) एवं ऋण सेवा भार के मध्य सम्बन्ध स्थापित करके की जा सकती है, यह अनुपात जितना अधिक होगा, व्याज चुकाने की क्षमता भी उतनी ही अधिक मानी जायेगी, परन्तु संस्था को पर्याप्त रोकड़ प्रवाह की स्थिति भी बनाये रखनी होगी, ताकि ब्याज का भुगतान समय पर करने के बाद अन्य खर्चो का भुगतान करने में भी वह सक्षम हो सके ।
7. **अधिकतम नियंत्रण (Maximum Control)-** आदर्श पूँजी संरचना में यह गुण भी होना चाहिये कि संस्था पर अधिकतम नियंत्रण समता अंशधारियों का ही बना रहे । विशेष परिस्थितियों में अधिमान अंशधारियों एवं ऋणपत्रधारियों को मतदान का अधिकार हस्तांतरित हो जाता है, इसलिये पूँजी संरचना इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे ऐसी विशेष परिस्थितियाँ उत्पन्न ही न हो तथा कम्पनी का प्रबन्ध और नियंत्रण समता अंशधारियों के हाथों में ही सुरक्षित रहे । मताधिकार युक्त पूँजी तथा मताधिकार रहित पूँजी का अनुपात संतुलित बनाये रखना आवश्यक है ।
8. **सरलता (Simplicity)** - कम्पनी की पूँजी संरचना सरल तथा जटिलता रहित होना आवश्यक है । संस्था को प्रारम्भ में केवल समता अंश और अधिमान अंश ही जारी करके विनियोजकों को आकर्षित करना चाहिये । भविष्य में आवश्यकता होने पर दीर्घकालीन ऋण या ऋणपत्रों से पूँजी प्राप्त करनी चाहिये, ताकि प्रतिभूतियों की विविधता ज्यादा न हो जाये तथा कम्पनी में विनियोग करने वाले अपनी रूचि के अनुसार धन विनियोजित कर सके ।
9. **पूर्ण उपयोगिता (Full Utilization)** - पूँजी संरचना में विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त पूँजी की मात्रा इतनी होनी चाहिये कि कम्पनी उस पूँजी का पूर्ण सार्थक उपयोग कर सके ।

अति या अल्प पूँजीकरण की स्थिति में पूँजी का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता है और कम्पनी की वित्तीय स्थिति डाँवाडोल हो सकती है । किसी भी कम्पनी में आदर्श पूँजी संरचना के लिये आवश्यक है कि उचित पूँजीकरण की व्यवस्था की जावे ।

10. **आकर्षक अधिकार (Attractive Rights) –**पूँजी संरचना में ऐसी प्रतिभूतियों को शामिल करना चाहिये ताकि प्रतिभूतियों के धारकों को विभिन्न प्रकार के आकर्षक अधिकार प्राप्त हो सके, जैसे मतदान, हस्तांतरण, शोधन, नामांकन, हस्तांकन आदि से सम्बन्धित अधिकार । अधिकारों से आकर्षित होकर विनियोजक संस्था में रूचि लेंगे तथा विनियोजकों एवं संस्था के मध्य अच्छे सम्बन्धों की स्थापना हो सकेगी ।
11. **वैधानिक नियमों के अनुकूल (Commensurate to Leagal Rules) -** प्रत्येक देश के कम्पनी अधिनियम एवं अन्य वैधानिक नियमों एवं वैधानिक संस्थाओं द्वारा व्यावसायिक संस्थाओं की पूँजी संरचना में विभित्र प्रकार की प्रतिभूतियों के अनुपात के सम्बन्ध में प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं । भारत में प्रतिस्तुतइ एवं विनिमय बोर्ड (SEBI) द्वारा ऋण समता अनुपात (Debt-Equitu Ratio) के सम्बन्ध में आवश्यक नियम बनाये गये हैं । जिनका पालन करना आवश्यक भी है और संस्थाओं के हित में भी है । इसलिये यह आवश्यक है कि पूँजी संरचना वैधानिक एवं आर्थिक मान्यताओं के भी अनुकूल हो ।
12. **रूढ़िवादिता (Conservation) -** पूँजी संरचना के परम्परागत सिद्धान्त के अनुसार एक संस्था की पूजी संरचना में ऋण एवं समता के विवेकयुक्त मिश्रण से फर्म के कुल मूल्य में वृद्धि तथा पूँजी की लागत में कमी की जा सकती है । यह सिद्धान्त बतलाता है कि यदि कम्पनी ऋण लेती है तो फर्म का मूल्य एक सीमा तक बढ़ेगा, परन्तु एक सीमा के पश्चात भी यदि ऋण लगातार बढ़ रहा है तो फर्म का मूल्य गिरना प्रारम्भ हो जायेगा । अत: कम्पनी को सभी घटकों पर पूर्ण विचार करते हुए अनुकूलतम पूँजी संरचना का चुनाव करना चाहिये ।

7.6 क्या अनुकूलतम पूँजी संरचना एक मिथक / कल्पना है?

सैद्धान्तिक दृष्टि से प्रत्येक कम्पनी अनुकूलतम पूँजी संरचना की बात करती है, परन्तु व्यवहार में ऐसी पूँजी संरचना का निर्माण असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है । अनुकूलतम पूँजी संरचना की पूर्व वर्णित विशेषताओं में भी परस्पर विरोधाभास देखने को मिलता है । उदाहरण के लिये ऋणपत्रों से पूँजी जुटाना मितव्ययी हो सकता है, जो न्यूनतम पूँजी लागत के गुण पर खरा उतरता है, परन्तु यह शोध क्षमता एवं रूढ़िवादिता के सिद्धान्तों के विरूद्ध है । एक समझदार वित्तीय प्रबन्धक को बाजार की दशाओं एवं कम्पनी की परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए सर्वोतम व्यवस्था करने का प्रयास करना चाहिये । पूर्व वर्णित विशेषताओं का महत्व भी प्रत्येक कम्पनी के लिये अलग-अलग होता है, क्योंकि एक कम्पनी लोचशीलता को महत्व देती है तो दूसरी कम्पनी न्यूनतम जोखिम पर ज्यादा ध्यान दे सकती है । ऐसी स्थिति में अनुकूलतम पूंजी संरचना के लिये सर्वमान्य मापदण्ड तय करना अत्यन्त कठिन है ।

समय के अनुसार भी अनुकूलतम पूँजी संरचना का अनुपात बदलता रहता है, जो पूँजी संरचना कम्पनी के लिये पिछले वर्षों में आदर्श थी, वही पूँजी संरचना वर्तमान में कम्पनी के लिये कष्टदायक हो सकती है । इसलिये कुछ विद्वान अनुकूलतम (optimum) पूँजी संरचना के स्थान पर श्रेष्ठ (sound) पूँजी संरचना जैसी अवधारणा का प्रयोग करना उचित समझते हैं, क्योंकि यह अवधारणा वास्तविकता के अधिक निकट प्रतीत होती है ।

7.7 अनुकूलतम पूँजी संरचना के चयन के आधार

किसी संस्था की पूँजी संरचना में समता अंश पूंजी, पूर्वाधिकार अंश पूँजी तथा ऋणपत्रों का समावेश हो सकता है । प्रत्येक पूँजी संरचना में समता अंश पूँजी तो होगी ही, उसके अतिरिक्त पूर्वाधिकार अंश पूँजी और / या ऋणपत्र हो सकते हैं । इस प्रकार पूँजी संरचना के निम्न चार विकल्प या स्वरूप हो सकते हैं -

i. केवल समता अंश पूँजी;

ii. समता अंश पूँजी और पूर्वाधिकार अंश पूँजी;

iii. समता अंश पूँजी और ऋण पत्र, तथा

iv. समता अंश पूँजी, पूर्वाधिकार अंश पूँजी और ऋणपत्र ।

हमारे सामने यह प्रश्न उठता है कि उपरोक्त चारों विकल्पों / स्वरूपों में से किस विकल्प का चुनाव किया जाये । यह चुनाव पूर्व वर्णित आन्तरिक एवं बाह्य तत्वों पर निर्भर करता है । पूँजी संरचना के स्वरूप के चयन के आधार निम्नलिखित हो सकते हैं :-

7.7.1 पूँजी की न्यूनतम औसत लागत

7.7.2 अधिकतम प्रति अंश आय

7.7.1 पूँजी की न्यूनतम औसत लागत - विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों का मिश्रण इस प्रकार किया जाना चाहिये, ताकि पूँजी की औसत या समग्र लागत न्यूनतम हो सके और संस्था के प्रमुख उद्देश्य अधिकतम लाभ की प्राप्ति में सहायक हो सके । संतुलित पूँजी संरचना में संस्था के समता अंश का बाजार मूल्य अधिकतम होता है जो प्रति अंश आय (EPS)पर निर्भर करता है । अत: जब तक संस्था की विनियोग पर प्रत्याय की दर (ROI) ऋण पूँजी की लागत से अधिक होती है तब तक ऋण पूँजी की मात्रा बढ़ाते हुए समता अंशों का मूल्य बढ़ाया जा सकता है । इस प्रकार संतुलित पूँजी संरचना पर औसत पूँजी लागत न्यूनतम होती है । इसे हम निम्न उदाहरण से समझ सकते हैं -

उदाहरण 7.1

एक कम्पनी के लिये अनुकूलतम पूँजी संरचना के चयन के लिये, ऋण समता के मिश्रण के विभिन्न स्तरों पर ऋण तथा समता पूँजी की लागत के निम्न अनुमान लगाये गये हैं-

कुल पूँजी में ऋण का (%)	समता की लागत (%)	समता की लागत (%)
0	5	12
10	5	12

20	5	13
30	6	13
40	7	14
50	8	15
60	9	16
70	10	17
80	11	18

आपको पूँजी की समग्र लागत की गणना करके कंपनी के लिये - अनुकूलतम ऋण समता मिश्रित का निर्धारण करना है ।

हल -

पूँजी की समग्र लागत की गणना

ऋण का(%)	समता का (%)	ऋण की लागत (%)	समता की लागत(%)	पूँजी की समग्र लागत
0	100	5	12	(5×0)+(12×1)=12.0
10	90	5	12	(5×.1)+(12×.9)=11.3
20	8	5	13	(5×.2)+(13×.8)=11.4
30	70	6	13	(6×.3)+13×.7=10.9
40	60	7	14	(7×.4)+14×.6=11.2
50	50	8	15	(8×.5)+(15×.5)=11.5
60	40	9	16	(9×.6)+(16×.4)=11.8
70	30	10	17	(10×.7)+(17×.3)=12.1
80	20	11	18	(11×.8)+(18×.2)=12.4

निष्कर्ष : पूँजी की समग्र लागत के आकर पर अनुकूलतम पूँजी संरचना का बिन्दु है - 30% ऋण तथा 70% समता क्यों की इस मिश्रित पर पूँजी की समग्र लागत (10.9%) न्यूनतम है -

7.7.2 अधिकतम प्रति अंश आय -

पूँजी संरचना में ऋण की राशि बढ़ाकर प्रति अंश आय बढ़ाई जा सकती है ।, क्योंकि ऋण प्राप्ति समता अंशों की तुलना में मितव्ययी साधन है । इसका कारण यह है कि ऋण पर देय ब्याज, कर योग्य आय की गणना हेतु स्वीकृत व्यय माना जाता है । जबकि अंशों पर देय लाभांश को लाभों का नियोजन माना जाता है और इसे कर योग्य आय की गणना हेतु स्वीकृत व्यय नहीं माना जाता है । इस प्रकार पूँजी संरचना में ऋण पूँजी को शामिल करने से समता अंशधारियों की प्रति अंश आय (Earnings Per Share- EPS) अधिक हो जाती है । इसे

EBIT–RPS विश्लेषण भी कहा जाता है । विभिन्न विकल्पों में से प्रति अंश आय के आधार पर अनुकूलतम पूँजी संरचना का चुनाव हम निम्न उदाहरण से स्पष्ट कर सकते हैं-

उदाहरण 7.2

एक कम्पनी 'बेस्ट ऑफ लक लिमिटेड' की समता अंश पूँजी50 लाख रूपये है, जो 100 रू. वाले 50,000 अंशों में विभाजित है । कम्पनी को एक विस्तार कार्यक्रम के लिये 25 लाख रूपये की आवश्यकता है और कम्पनी का प्रबन्ध चार सम्भावित विकल्पों में से एक का चयन करना चाहता है -

1. पूर्ण रूप से समता अंशों द्वारा;
2. 10 लाख रू. समता अंशों तथा 15 लाख रू. 8%पूर्वाधिकार अंशों द्वारा;
3. 10 लाख रू. समता अंशों तथा 15 लाख रू.10% ऋणपत्रों द्वारा,
4. 5 लाख रू. समता अंशों, 10 लाख रू. 8% पूर्वाधिकार अंशों तथा 10 लाख रू. 10% ऋणपत्रों द्वारा

   कम्पनी की व्याज एवं कर से पूर्व कुल आय 8 लाख रू. होगी । निगम कर की दर 40%' मानते हुए प्रत्येक विकल्प से प्रति अंश आय की गणना कीजिये तथा अनुकूलतम पूँजी संरचना का चयन कीजिये ।

हल -

Compution of Compative EPS

(Rs in Lakhs)

(Particulars)		**Alternatives**		
	I	**II**	**III**	**IV**
Equity share Capital)	25.00	10.00	10.00	5.00
8% preference Capital	-	15.00	-	10.00
10% Debentures	-	-	15.00	10.00
Total Additional Capital	25.00	25.00	25.00	25.00
Earnings Before Interest & Tax (EBIT)	8.00	8.00	6.50	7.00
Less Interest on 10% Debentures			1.50	1.00
Profit Before Tex(PBT)	8.00	8.00	6.50	7.00
Less Tex @ 40%	3.20	3.20	2.60	2.80
Profit After Tax (PAT)	4.80	4.80	3.90	4.20
Less 8% Preference Share Dividend		1.20		0.80
Profit for Equity Share holders (a)	4.80	3.60	3.90	3.40
No. of Equity shares (b)	75,000	60,000	60,000	55000
(EPS) in Rs. (a/b) $EPS = \frac{\text{Profit for Equity shareholders}}{\text{No.of Equity Shares}}$	6.40	6.00	6.50	6.18

निष्कर्ष : उपरोक्त गणना से स्पष्ट है कि विकल्प (iii) सर्वोत्तम है, क्योंकि यहाँ प्रति अंश आय 6.50 रू. सर्वाधिक है। इसलिये 10 लाख रू. समता अंशों द्वारा तथा 15 लाख रू. ऋणपत्रों द्वारा प्राप्त किये जाने चाहिये ।

* यद्यपि समस्त 25 लाख रू. की पूँजी ऋणपत्रों द्वारा प्राप्त करना सम्भव हो तो इस विकल्प का चयन करने पर प्रति अंश आय को 6.60 रू. तक बढ़ाया जा सकता है।

$$EPS = \frac{(Rs.\,8,00,000 - 2,50,000) - Rs.\,2,20,000\,(Tax)}{50,00} = Rs.\,6.60$$

7.0 श्रेष्ठ पूँजी संरचना निर्णय के आधारभूत तत्व -

आदर्श पूँजी संरचना सम्बन्धी निर्णय, वित्तीय प्रबन्धकों के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्यक्षेत्र होता है । पूँजी के विभिन्न स्त्रोतों का सही अनुपात निर्धारित करना प्रबन्धकों के समक्ष चुनौती प्रस्तुत करता है, क्योंकि उन्हें समता अंशधारियों के साथ-साथ ऋणपत्रधारियों को भी संतुष्ट करना होता है । आदर्श पूँजी संरचना सम्बन्धी निर्णय लेते समय निम्नलिखित तीन आधारभूत तत्वों पर विचार किया जाना चाहिये -

7.8.1 समता पर व्यापार

7.8.2 पूँजी की दंतीकरण

7.8.3 पूँजी की लागत

7.8.1 समता पर व्यापार (Trading of Equity)

जब कोई कम्पनी समता अंश पूँजी की बजाय ऋण पूँजी के आधार पर अपने व्यवसाय का संचालन करती- है तो इसे समता पर व्यापार करते हैं । कुल पूंजीकरण में ऋण पूँजी का अनुपात अधिक रखकर समता अंशों पर आय बढ़ा जा सकती है ।

गेस्टर्नवर्ग के अनुसार - 'जब कोई व्यक्ति या निगम स्वामित्व पूँजी के साथ ऋण पूँजी लेकर अपने नियमित व्यापार का संचालन करता है, तो इसे समता पर व्यापार कहते हैं । "

गुथमैन तथा डूंगल के अनुसार - ' 'किसी फर्म के वित्तीय प्रबन्धन के लिये स्थायी लागत पर ऋण कोषों का प्रयोग करना समता पर व्यापार कहलाता है । "

समता पर व्यापार को अनुकूल वित्तीय उत्तोलक (Favorable Financial Leverage) भी कहा जाता है । यहाँ पर ऋण पूँजी में ऋणपत्रों, दीर्घकालीन ऋणों, बॉण्डों तथा अधिमान अंश पूँजी को भी शामिल किया जाता है, जिन्हें स्थाई लागत वाली पूँजी भी कहा जाता है । समता पर व्यापार की नीति तभी लाभदायक सिद्ध होती है, जबकि प्रबन्धकों को यह विश्वास हो कि वे ऋण पूँजी पर चुकाये जाने वाले व्याज की अपेक्षा अधिक आय अर्जित कर सकेंगे।

समता पर व्यापार के प्रकार

समता पर व्यापार दो प्रकार से हो सकता है -

1. अल्प समता पर व्यापार (Trading on Thin Equity) - जब , कम्पनी की अंश पूँजी, ऋण पूँजी की अपेक्षा कम होती है तो इस स्थिति को अल्प समता पर व्यापार कहते हैं ।
2. उच्च समता पर व्यापार (Trading on Thin Equity) -
3. जब कम्पनी की अंश पूँजी, ऋण पूँजी की अपेक्षा अधिक होती है, तो इस स्थिति को उच्च समता पर व्यापार कहते हैं ।

समता पर व्यापार के उद्देश्य

समता पर व्यापार के निम्नलिखित तीन उद्देश्य हो सकते है-

1. **वित्तीय साधनों पर नियंत्रण (Control on Financial Resources)**
   समता पर व्यापार नीति का प्रमुख उद्देश्य वित्तीय साधनों को नियंत्रित करना होता है, इसके लिये संस्था न्यूनतम स्वामी पूँजी के सहारे अधिकतम ऋण पूँजी लेकर अपने वित्तीय साधनों पर नियंत्रण स्थापित करने में सफल होती है ।
2. **समता पर अंशों पर आय में वृद्धि (Increase in Earning per Equity Share) -** कम दरों पर ब्याज चुकाकर समता अंशधारियों की प्रति अंश आय एवं लाभांश दर में वृद्धि करने का उद्देश्य भी प्राप्त किया जाता है ।
3. **व्यवसाय पर नियंत्रण की स्थापना (Establishment of control over Business)-** समता पूँजी की मात्रा एवं समता अंशधारियों की संख्या कम रखकर तथा अतिरिक्त आवश्यक पूँजी ऋणपत्रों से प्राप्त करके व्यवसाय पर समता अंशधारियों का सम्पूर्ण नियंत्रण बनाये रखा जाता है ।

समता पर व्यापार नीति का मूल्यांकन

समता पर व्यापार करना तभी लाभप्रद है, जबकि संस्था ऋण मर ब्याज की तुलना में अधिक दर से आय अर्जित करे। साथ ही कम्पनी की आय में निश्चितता एवं नियमितता होनी चाहिये, क्योंकि ऋण पर ब्याज या पूर्वाधिकार अंशों पर लाभांश स्थायी प्रभार होते हैं, इसलिये यदि भविष्य में कम्पनी को पर्याप्त लाभ न हो तो समस्त लाभ ऋणपत्रधारियों को व्याज या पूर्वाधिकार अंशों पर लाभांश चुकाने में ही समाप्त हो जायेंगे तथा समता अंशधारियों के लिये कुछ भी नहीं बचेगा । कई बार तो ऋणपत्र धारियों को ब्याज चुकाना भी कठिन हो जाता है तथा इससे संस्था की साख व फर्म का मूल्य भी गिर जाता है और संस्था दिवालियेपन की स्थिति में आ खड़ी होती है ।

गेस्टर्नबर्ग ने ठीक ही लिखा है कि प्राथमिक रूप में समता पर व्यापार, आय की स्थिरता एवं निश्चितता की शर्त से जुड़ी हुई नीति है । यदि आय में अस्थिरता है तो इसकेकुप्रभाव निम्न उदाहरण से हम समझ सकते हैं ।

उदाहरण 7.3

एक संस्था की कुल पूँजी 20,00,000 रू. है, जिसमें से 5,00,000 लाख रू. 100 रू. वाले 5,000समता अंशों में विभक्त है तथा शेष 15,00,000 रू. के 8% ऋण पत्र हैं । यदि आयकर की दर 40%, हो तो कम्पनी द्वारा अपनाई गई समता पर व्यापार की नीति की समीक्षा

कीजिये । यह मान लीजिये कि पिछले 5 वर्षों में कम्पनी की विनियोग पर व्याज एवं कर से पूर्व आय क्रमश: 8%, 12%, 6%, 5%,' रही है ।

हल -

Compution of Earning per Share

Particular	I year Rs.	IIyear Rs.	III year Rs.	IV year Rs.	V year Rs.
Earning Before interest & Tax (EBIT)	160000	320000	240000	120000	100000
Less : Intrest on Degntures @ 8%	120000	120000	120000	120000	120000
Profit Before Tax (PBT)	40000	120000	120000	--	20000
Less : Income Tex 40%	16000	48000	48000	--	--
Profit Available for Equity shareholders (a)	24000	120000	72000	--	20000
No. of Equity shares (b)5000	5000	5000	5000	5000	50000
Earning per share(a) / (b)	4.8	24.0	14.4	--	(-) 4.0

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि प्रथम तीन वर्षों में लाभ में उतार चढ़ाव के बावजूद कम्पनी को समता अंशों पर आय 4.8 रू. से लेकर 24 रू. तक हुई है, लेकिन चौथे वर्ष में आय की दर में गिरावट के कारण लाभ का सम्पूर्ण भाग ऋणपत्रधारियों को ब्याज चुकाने में चला जाता है तथा सामान्य अंशधारियों के लिये कुछ नहीं बचता । पाँचवें वर्ष जब लाभ की दर गिरकर 5% रह जाती है, तब संस्था ऋणपत्रधारियों को सम्पूर्ण व्याज चुकाने की स्थिति में भी नहीं है । यदि कम्पनी ने समता पर व्यापार की नीति नहीं अपनाई होती तो चौथे और पांचवें वर्ष में भी कम्पनी प्रति अंश क्रमश: 3 रू. तथा 2.50 रू. आय अर्जित कर रही होती । इस प्रकार कम्पनी की आय में भारी अस्थिरता के कारण समता पर व्यापार की नीति कम्पनी के अनुकूल नहीं है ।

7.8.2 पूँजी दन्तिकरण (Capital Gearing) -

वित्तीय प्रबन्धक पूँजी संरचना सम्बन्धी निर्णय लेते समय पूँजी दन्तिकरण या गियरिंग पर भी अच्छी तरह से सोच विचार कर लेते है । पूँजी दन्तिकरण से तात्पर्य स्थिर ब्याज एवं स्थिर लाभांश वहन करने वाले कोषों तथा परिवर्तनशील लाभांश वहन करने वाले कोषों के अनुपात से है । ऋणपत्रों पर स्थिर व्याज तथा पूर्वाधिकार अंशों पर स्थिर लाभांश दिया जाता है, वहीं समता अंशों पर लाभांश की दर परिवर्तनशील होती है ।

ब्राउन एवं हावर्ड के अनुसार - 'पूँजी दन्तिकरण शब्द का प्रयोग किसी कम्पनी की साधारण अंश पूँजी एवं स्थिर ब्याज वाली पूँजी के बीच अनुपात को प्रदर्शित करने के लिये किया जाता है । '

जे-वेट्टी के अनुसार -सामान्य अंशों (समता अंशों) के पूर्वाधिकार अंश पूँजी एवं ऋण पूँजी के बीच सम्बन्ध को पूँजी दन्तिकरण कहा जाता है । ' इस प्रकार पूँजी दन्तिकरण सामान्यत: स्थिर लागत वाली पूँजी (अधिमान अंशों एवं ऋणपत्रों) तथा समता अंश

पूँजी के बीच सम्बन्ध को दर्शाने वाला अनुपात है, कुछ विद्वान इसे 'पूँजी लीवरेज' (Capital Leverage) भी कहते है ।

पूँजी दन्तिकरण के प्रकार

पूँजी दन्तिकरण दो प्रकार का हो सकता है-

1. **उच्च दन्तिकरण (Higher Gearing)** - जब समता अंश पूँजी, स्थिर लागत वाली पूँजी की तुलना में कम होती है, तो उसे उच्च दन्तिकरण कहते हैं । दन्तिकरण जितना ऊँचा होगा, दन्ति अनुपात (Gear Ratio) उतना ही निम्न होगा । उदाहरण के लिए, किसी कम्पनी की कुल पूँजी 1,25,000 रू. है, जिसमें 1,25,000 रू. समता अंश पूँजी तथा 3,75,000 रू. पूर्वाधिकार अंश पूँजी और ऋणपत्र हो तो यहाँ उच्च दन्तिकरण होगा तथा दन्ति अनुपात निम्न अर्थात् 1,25,000:3,75,000 या 1:3 होगा ।
2. **निम्न दन्तिकरण (Low Gearing)** - जब समता अंश पूँजी, स्थिर लागत वाली पूँजी की तुलना में अधिक होती है, तो इसे निम्न दन्तिकरण कहते हैं । दन्तिकरण जितना निम्न होगा, दन्ति अनुपात उतना ही उच्च होगा । पूर्व उदाहरण में यदि समता अंश पूँजी 4,00,000रू. तथा शेष 1,00,000 रू. के ऋणपत्र हो तो यहां निम्न दन्तिकरण होगा तथा दन्ति अनुपात उच्च अर्थात् 4:1 होगा ।

   पूँजी दन्तिकरण की तुलना किसी भी वाहन के गियर से की जा सकती है । जिस प्रकार वाहन को प्रारम्भ में निम्न गियर पर चालू किया जाता है और जैसे-जैसे वाहन की गति बढ़ती है, उच्च गियर का प्रयोग करते जाते हैं, उसी प्रकार व्यवसाय के प्रारम्भिक वर्षों में, जबकि आय अनिश्चित होती है, पूँजी की व्यवस्था समता अंश पूँजी से की जानी चाहिए, ताकि व्यवसाय पर स्थाई लागत का अनावश्यक भार न पड़े । फिर जैसे जैसे व्यवसाय में विस्तार एवं प्रगति हो, पूँजी सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति स्थाई लागत वाली पूँजी से की जा सकती है ।

पूँजी दन्तिकरण का महत्व

पूँजी संरचना में पूँजी दन्तिकरण का बड़ा महत्व है । इससे पूँजी के विभिन्न स्त्रोतों के मध्य उचित अनुपात निर्धारित किया जाता है । विभिन्न व्यापार चक्रों का पूँजी दन्तिकरण पर प्रभाव पड़ता है । मुद्रा स्फीति या तेजी के समय स्थिर लागत वाली पूँजी का प्रयोग लाभदायकतापूर्वक किया जा सकता है, जबकि मुद्रा संकुचन या मंदी के समय समता अंशों के निर्गमन से पूँजी की व्यवस्था की जा सकती है । इस प्रकार व्यवसाय चक्रों की गति के अनुसार तेजी काल या मंदीकाल में व्यवसायी को पूँजी का गियरिंग बदलती रहनी चाहिए, ताकि व्यवसाय को सफलतापूर्वक चलाया जा सके और व्यवसाय को झटका न लगे । संस्था की सुरक्षा तथा सफलता व्यावसायिक परिस्थितियों के अनुसार अनुकूल पूँजी दन्तिकरण पर निर्भर करती है ।

7.8.3 पूँजी की लागत (Cost of Capital):-

पूँजी संरचना का निर्णय लेते समय पूँजी की लागत को भी ध्यान में रखना आवश्यक है । व्यावसायिक संस्था द्वारा विभिन्न स्त्रोतों से पूँजी एकत्रित की जाती है, लेकिन यह देखना अति आवश्यक है कि ऐसी पूँजी की लागत व जोखिम कितनी है? प्राय: अतिरिक्त पूँजी की आवश्यकता के समय यह समस्या विशेष रूप से उपस्थित होती है । यह आवश्यक नहीं कि पूँजी के जिस स्त्रोत की लागत कम हो, उस स्त्रोत की जोखिम भी उतनी ही कम हो । परन्तु पूँजी की लागत का प्रत्यक्ष प्रभाव संस्था की उपार्जन क्षमता पर पड़ता है, इसलिए पूँजी की लागत का विशेष रूप से ध्यान रखना आवश्यक है ।

पूँजी का उपयोग करने के बदले उपभोक्ता संस्था द्वारा विनियोक्ता को चुकाया गया मूल्य ही पूँजी की लागत कहलाता है । तकनीकी भाषा में पूँजी लागत का आशय उस न्यूनतम प्रत्याय दर से है जो कि एक कम्पनी को विनियोजकों को संतुष्ट करने तथा अपना मूल्य बनाये रखने के लिए विनियोग पर अर्जित करनी चाहिए ।

सोलोमन इजरा ने 'पूँजी की लागत को वांछित अर्जनों की न्यूनतम दर या पूँजीगत व्ययों की कट -ऑफ रेट कहा है।"

हम्पटन जॉन जे. के अनुसार ' 'पूँजी की लागत एक प्रत्याय दर है, जो एक संस्था बाजार में अपने मूल्य में वृद्धि करने के लिए विनियोग पर चाहती है । " पूँजी लागत की गणना संस्था द्वारा पूँजी की वास्तविक प्राप्त शुद्ध राशि पर की जानी चाहिए । उदाहरण के लिए, यदि एक कम्पनी 20 लाख रूपये के 8% ऋणपत्र 5% बट्टे पर निर्गमित करती है तथा निर्गमन व्यय 20,000 रू. होता है तो ऐसी स्थिति में कम्पनी को प्राप्त शुद्ध राशि 20,00,000 रू. - 1,00,000रू. -20,000रू. = 18, 80,000रू. होगी और कम्पनी का वार्षिक व्याज का भार रू. 20, 00,000 x 8% = 1, 60,000 रू. होगा, इसलिए पूँजी की (कर पूर्व) लागत निम्नलिखित होगी :-

पूँजी की (कर पूर्व) लागत निम्नलिखित होगी :-

पूँजी की (कर पूर्व) लागत = वार्षिक व्याज भार ×100

प्राप्त शुद्ध राशि

$$= \frac{1,60,000}{18,800,000} \times 100 = 8.51\%$$

पूँजी लागत की अवधारणा वित्तीय प्रबन्ध के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण है । कोई भी वित्तीय निर्णय लेते समय पूँजी की लागत पर विचार करना आवश्यक है, क्योंकि विनियोगों के न्यूनतम आय इतनी अवश्य होनी चाहिए, जितनी पूँजी की लागत है । पूँजी लागत अवधारणा एवं पूँजी लागत गणना की विस्तृत विवेचना एक अलग अध्याय में की गई है ।

7.9 ऋण समता का तटस्थता बिन्दु

प्रत्येक व्यावसायिक संस्था को पूँजी संरचना का ऐसा प्रतिरूप चुनना होता है, जिस पर वह अपने अंशधारियों के लिए सर्वाधिक प्रति अंश आय अर्जित कर सके । इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए बाज एवं कर से पूर्व आय (Earnings Before Interest and Tax–EBIT) का वह

तटस्थता बिन्दु ज्ञात किया जाता है, जिस पर संस्था की आय, देय व्याज के बराबर होती है, अर्थात् विनियोजित पूँजी पर प्रत्याय दर, ऋण पर ब्याज दर के समान होती है । यदि कम्पनी की संभावित आय इस तटस्थ बिन्दु से अधिक है तो कम्पनी को ऋणपत्रों से पूँजी जुटानी चाहिए । इसके विपरीत यदि कम्पनी को संभावित आय तटस्थ बिन्दु से कम है तो समता अंश पूँजी का प्रयोग अधिक लाभप्रद होगा । इस प्रकार तटस्थता बिन्दु की सहायता से सर्वोत्तम पूँजी संरचना का स्वरूप निर्धारित किया जा सकता है । इस बिन्दु की गणना निम्न बीजगणितीय सूत्र से की जा सकती है -

$$\frac{(X-I_1)\ (1-T)-PD}{S1}=\frac{(X-I_2)(1-T)-PD}{S2}$$

यहाँ पर X=EBIT का तटस्थ बिन्दु /समविच्छेद बिन्दु

I_1 प्रथम विकल्प के अन्तर्गत देय ब्याज राशि

I_2 = द्वितीय विकल्प के अन्तर्गत देय व्याज राशि

T = कम्पनी पर कर (निगम कर) की दर

PD = पूर्वाधिकार अंशों पर लाभांश की राशि

$S_{1=}$ प्रथम विकल्प के अर्न्तगत समता अंशों की संख्या या समता अंश पूँजी

S_2= द्वितीय विकल्प के अंतर्गत समता अंशों की संख्या या समता अंश पूँजी

उदाहरण 7.4

धोनी लिमिटेड को एक परियोजना के लिए 3० लाख रूपयों की आवश्यकता है । कम्पनी के पास निम्नलिखित दो विकल्प उपलब्ध है : -

i. 100 रू. वाले 3,000 समता अंशों के द्वारा; या

ii. 100 रू. वाले 10,000 समता अंश, 100 रू. वाले 10,000, 10% ऋणपत्र तथा 100 रू वाले 10,000, 12% पूर्वाधिकार अंशों के द्वारा कम्पनी की कर एवं ब्याज से पूर्व आय का तटस्थता बिन्दु ज्ञात कीजिए ।

हल :

$$\frac{(X-0)(1-0.4)-0}{30000}=\frac{(X-Rs.100000)(1-0.4)-120000}{10000}$$

(X–Rs.1,00,000)(1-0.4)-1,20,000 / 10,000

या X(0.6) / 30,00 = 0.6 X – 60,000–1,20,000 / 10,000

या (0.6) = 0.6 X - 1,800,000-1 /30,000, 10,000

या 18 X–54,00,000 = 6X(तिरछा गुणा करने पर)

या 12x (पक्षान्तरण द्वारा)

या X = 4,50,000रू.

EBIT के 4, 50,000 रू. के स्तर पर दोनों विकल्पों में प्रति अंश आय (EPS) समान होंगी, जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है :-

(i) सुमता विकल्प **(ii) ऋण विकल्प**

	रू.	रू.
ब्याज एवं कर पूर्व आय (Ebit)	4,50,000	4,50,000
घटाइये- 10% ऋणपत्रों पर ब्याज	-	1,00,000
कर से पूर्व लाभ (PBT)	4,50,000	3,50,000
घटाइये - 40% आयकर	1,80,000	1,40,000
कर पश्चात् लाभ (PAT)	2,70,000	2,20,000
घटाइये- 12% पूर्वाधिकार अंश लाभांश	-	1,20,000
समता अंशधारियों के लिए लाभ (a)	2,70,000	90,000
समता अंशों की संख्या (b)	30,000	10,000
प्रति अंश आय (EPS) = A÷b)	9	9

निष्कर्ष :- धोनी लिमिटेड की सशावित आय यदि 4,50,000 से अधिक है तो कम्पनी को ऋणपत्रों या पूर्वाधिकार अंशों से पूँजी जुटाना लाभप्रद होगा, परन्तु इससे कम संभावित आय होने पर समता अणे का प्रयोग ही उचित रहेगा ।

7.10 सारांश

दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पूँजी के विभिन्न स्त्रोतों का अनुपात निर्धारित करना पूँजी संरचना कहलाता है । प्राय: पूँजी संरचना में प्रयुक्त पूँजी दो प्रकार की होती है:-

अ स्थाई लागत वाली पूँजी-ऋणपत्र एवं पूर्वाधिकार अंश

व. परिवर्तनशील लागत वाली पूँजी-समता अंश एवं प्रतिधारित आयें

पूँजी संरचना को प्रभावित करने वाले तत्व निम्नलिखित है :-

आन्तरिक तत्व	**बाह्य तत्व**
1. व्यवसाय का आकार	1 पूँजी बाजार की स्थिति
2. व्यवसाय की प्रकृति	2. विनियोक्ताओं की प्रकृति
3. पूँजी निर्गमन की लागत	3. नियमित एवं निश्चित आय की संभावनाएँ
4. व्यवसाय की संपत्ति संरचना	4. सरकारी नियंत्रण, नियम एवं नियमन
5. व्यवसाय पर नियंत्रण की इच्छा	5. वित्तीय संस्थाओं की नीति
6. संस्था की आयु	6. अन्य महत्वपूर्ण तत्व
7. भाषी योजनाएं एवं इच्छित लोचता	
8. साख स्थिति	
9. परिचालन अनुपात	
10. समता पर व्यापार	
11. दन्तिकरण अनुपात	
12. प्रबन्धकों का दृष्टिकोण	

13. रोकड़ प्रवाह क्षमता	
14. सरलता एवं स्पष्टता	

आदर्श या अनुकूलतम पूँजी संरचना में निम्न विशेषताएँ होनी चाहिए -

1. अधिकतम प्रति अंश आय
2. न्यूनतम पूँजी लागत
3. न्यूनतम जोखिम
4. लोचशीलता
5. शोध क्षम्यता
6. पर्याप्त रोकड़ प्रवाह
7. अधिकतम नियंत्रण
8. सरलता
9. पूर्ण उपयोगिता
10. आकर्षक अधिकार
11. वैधानिक नियमों के अनुकूल
12. रूढ़िवादिता

वास्तव में अनुकूलतम पूँजी संरचना एक मिथक या कल्पना है, क्योंकि उपरोक्त विशेषताओं को एक साथ पूरा करना असम्भव है । इसलिए कम्पनी को एक श्रेष्ठ पूँजी संरचना प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिये । अनुकूलतम पूँजी संरचना चयन के मुख्य आधार निम्नलिखित है:-

1. पूँजी की न्यूनतम औसत लागत
2. अधिकतम प्रति अंश आय

श्रेष्ठ पूँजी संरचना के तीन आधारभूत तत्व निम्न लिखित है :-

1. समता पर व्यापार
2. पूँजी दन्तिकरण
3. पूँजी की लागत

श्रेष्ठ पूँजी संरचना के निर्धारण के लिए ऋण समता का तटस्थता बिन्दु ज्ञात किया जाता है, जहां विनियोजित पूँजी पर प्रत्याय दर, ऋण पर व्याज दर के समान होती है, अर्थात यह कर एवं व्याज से पूर्व आय का वह बिन्दु है जहाँ कोई भी पूँजी संरचना का स्वरूप अपनाने पर प्रति अंश आय समान रहेगी ।

7.11 शब्दावली

1. **पूँजी संरचना** - दीर्घकालीन वित्त प्रबन्धन के लिए पूँजी के विभिन्न स्त्रोतों का अनुपात निर्धारित करना पूँजी संरचना कहलाता है, जिससे पूँजी मिश्रण की सही जानकारी मिलती है ।
2. **पूँजीकरण** में दीर्घकालीन स्त्रोतों से पूँजी की कुल मात्रा का निर्धारण किया जाता है ।
3. **वित्तीय संरचना** में पूँजी संरचना के साथ चालू दायित्वों को भी शामिल किया जाता है।

4. **सम्पत्ति संरचना** में व्यवसाय की समस्त सम्पत्तियों को शामिल किया जाता है ।
5. **अनुकूलतम पूँजी** संरचना ऐसी संतुलित संरचना है, जिससे संस्था की पूँजी की औसत लागत न्यूनतम तथा प्रति अंश आय अधिकतम होती है ।
6. **समता पर व्यापार** - कम समता अंश पूँजी तथा स्थिर लागत वाली पूँजी के अधिक प्रयोग की नीति को समय पर व्यापार कहते हैं ताकि प्रति अंश आय बढ़ सके ।
7. **पूँजी दन्तिकरण** - समता अंश पूँजी तथा स्थिर लागत वाली पूँजी के अनुपात को पूँजी दन्तिकरण कहते हैं । समता अंश पूँजी कम होने पर उच्च दन्तिकरण कहलाता है ।
8. **पूँजी की लागत** - पूँजी के प्रयोग के लिए दिया जाने वाला प्रत्याय पूँजी की लागत कहलाता है, जो कम्पनी द्वारा अपने विनियोगों पर न्यूनतम रूप से अर्जित करना ही चाहिए ।
9. **ऋण समता का तटस्थता बिन्दु** - वह बिन्दु जिस पर कम्पनी में विनियोजित पूँजी पर प्रत्याय दर, ऋण पर देय ब्याज दर के समान होती है । ऋण समता के किसी भी विकल्प को अपनाने पर प्रति अंश आय समान होती है ।

7.12 स्वपरख प्रश्न

लघुत्तरात्मक प्रश्न (Short Answer Type Question)

i. एक कम्पनी की पूँजी संरचना से आप क्या समझते हैं?
ii. पूँजी संरचना में प्रयुक्त पूँजी कितने प्रकार की होती है? स्पष्ट कीजिए ।
iii. पूँजी संरचना, वित्तीय संरचना तथा सम्पति संरचना में अन्तर समझाइये ।
iv. व्यवसाय की प्रकृति पूँजी संरचना को कैसे प्रभावित करती है? समझाइये ।
v. क्या पूँजी बाजार की स्थिति पूँजी संरचना को प्रभावित करती है? कारण सहित बताइये।
vi. पूँजी संरचना के सम्बन्ध में सरकारी नियंत्रण, नियम एवं नियमन को स्पष्ट कीजिए ।
vii. आदर्श या अनुकूलतम पूँजी संरचना की अवधारणा को समझाइये ।
viii. क्या अनुकूलतम पूँजी संरचना एक कल्पना या मिथक है? विवेचना कीजिए । ??
ix. अनुकूलतम पूँजी संरचना के चयन के आधार क्या हो सकते हैं?
x. 'प्रति अंश आय के आधार पर अनुकूलतम पूंजी संरचना का चुनाव किया जा सकता है ।' व्याख्या कीजिए ।
xi. 'संतुलित पूँजी संरचना पर औसत पूँजी लागत न्यूनतम होती है । ' स्पष्ट कीजिए ।
xii. श्रेष्ठ पूँजी संरचना के आधारभूत तत्व कौन से हैं?
xiii. समता पर व्यापार से आप क्या समझते हैं?
xiv. समता पर व्यापार के प्रकार समझाइये ।
xv. समता पर व्यापार के क्या प्रमुख उद्देश्य हैं? स्पष्ट कीजिए । -
xvi. पूँजी दन्तिकरण से क्या आशय है?
xvii. पूँजी दन्तिकरण के प्रकार बताइये ।
xviii. पूँजी दन्तिकरण का महत्व समझाइये ।
xix. पूँजी की लागत का पूँजी संरचना पर क्या प्रभाव पडता. है? स्पष्ट कीजिए ।

xx. ऋण समता के तटस्थता बिन्दु का क्या अर्थ है?

निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. कम्पनी की पूँजी संरचना से आप क्या समझते हैं? वित्तीय और सम्पत्ति संरचना से इसके अंतर को स्पष्ट कीजिए ।
2. एक कम्पनी की पूँजी संरचना को प्रभावित करने वाले आन्तरिक तत्वों की विवेचना कीजिए।
3. एक कम्पनी की पूँजी संरचना का निर्धारण करते समय किन बाह्य घटकों पर विचार किया जाना चाहिए?
4. आदर्श या अनुकूलतम पूँजी गत से क्या आशय है? एक अनुकूलतम पूँजीगत ढांचे की मूलभूत विशेषताओं का वर्णन कीजिए ।
5. अनुकूलतम पूँजी संरचना के चयन के आधारों को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए ।
6. श्रेष्ठ पूँजी संरचना निर्णय के आधारभूत तत्वों को समझाइये ।
7. समता पर व्यापार के क्या आशय है' इसके प्रकार और उद्देश्य बताइये । समता पर व्यापार नीति किस प्रकार प्रति अंश आय को प्रभावित करती है? उदाहरण सहित समझाइये ।
8. पूँजी दन्तिकरण से आप क्या समझते हैं? इसके प्रकार तथा महत्व बताइये ।
9. पूँजी की लागत से क्या आशय है? इसे कैसे ज्ञात किया जाता है? पूँजी संरचना संबंधी निर्णय को यह कैसे प्रभावित करती है?
10. "ऋण समता के तटस्थता बिन्दु से सर्वोत्तम पूँजी संरचना का स्वरूप निर्धारित किया जा सकता है ।" उदाहरण सहित समझाइये ।

व्यावहारिक समस्याएँ (Practical Problem)

1. एक्स लि. को अपने विस्तार कार्यक्रम के लिए 50 लाख रूपयों की आवश्यकता है, जिसके लिए प्रबन्ध निम्न तीन विकल्पों पर विचार कर रहा है :-

	Alternative j(Rs. In Lakhs)		
Equity Shares of kjRs. 100 each	50,	20	10
14% Debentures	-	20	15
18% Loan from IDBI	-	10	25

कम्पनी विनियोगों पर 25% कर पूर्व आय की अपेक्षा करती है । निगम कर की दर 5098 है । आप कौन से विकल्प के चुनाव का सुझाव देंगे ।

उत्तर :- EPS (A) Rs. 12.5 (B) Rs. 19.75 (c) Rs 29.5 (विकल्प c)

2. अनुकूलतम पूँजी संरचना के चुनाव हेतु ऋण और समता पूँजी के (कर पश्चात) लागत अनुमान निम्न प्रकार से ज्ञात किये गये हैं:-

Debt. % of Total Capital	Cost of Debt. (%)	Cost of Debt. (%)
0	5.0	12.0
10	5.0	12.0

20	5.0	12.5
30	5.5	13.0
40	6.0	14.0
50	6.5	16.0
60	7.0	20.0

पूँजी की समग्र औसत लागत के आधार पर अनुकूलतम ऋण-समता मिश्रण को ज्ञात कीजिए।

उत्तर :- 30% ऋण 70% समता, समग्र लागत 10.75%

3. एक कम्पनी की कुल पूँजी 2,00,000 रूपये है, जिसमें 1,00,000 रू. के 100 रू वाले 1,000 समता अंश तथा 1,00,000 रू. के 6% ऋण पत्र है । आयकर की दर 50% है । यदि पिछले 5 वर्षा में कम्पनी की कर एवं ब्याज से पूर्व आय क्रमश: 26,00 रू. 36,000 रू. तथ 46.000 रू. है तो समता पर व्यापार नीति का मूल्यांकन कीजिए ।

   उत्तर :- प्रति अंश आय क्रमश:10 रू 15 रू 20 रू.कुछ नहीं, (-) 2 रू. - समता पर व्यापार नीति अनुकूल नहीं ।

4. आपकी कम्पनी को एक नई परियोजना के लिए 150 लाख रूपयों की आवश्यकता है । ऋण पर ब्याज की दर 12% है तथा कर की दर 50% है । यदि ऋण समता अनुपात 2:1 रखने पर ऋण उपलब्ध हो सकता है तो समता पूँजी या ऋण पूँजी के प्रयोग का तटस्थता बिन्दु ज्ञात कीजिए ।

   उत्तर - तटस्थता बिन्दु 18 लाख रू., समता पूँजी पर आय 6%

7.13 उपयोगी पुस्तकें :

1. P.V.Kulkarni : Corporation Finance
2. I.M.Pandey : Financal Management
3. Prasana Chandra : Financal Management

इकाई - 8: पूँजी संरचना के सिद्धान्त (Theories of Capital Structure)

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 आधारभूत मान्यताएँ

8.3 शुद्ध आय सिद्धान्त

8.4 शुद्ध परिचालन आय सिद्धान्त

8.5 मोदीग्लियानी - मिलर सिद्धान्त

8.6 परम्परागत सिद्धान्त

8.7 भारत में पूँजी संरचना की स्थिति

8.8 सारांश

8.9 शब्दावली

8.10 स्वपरख प्रश्न

8.11 निबन्धात्मक प्रश्न

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :-

- पूँजी संरचना के सिद्धान्तों की मान्यताएँ जान सकें ।
- शुद्ध आय सिद्धान्त के बारे में जान सकें ।
- शुद्ध परिचालन आय सिद्धान्त के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकें ।
- मोदीग्लियानी-मिलर सिद्धान्त के बारे में जान सकें ।
- परम्परागत सिद्धान्त के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकें ।
- भारत में पूँजी संरचना की स्थिति के बारे में जान सकें ।

8.1 प्रस्तावना

आदर्श या अनुकूलतम पूँजी संरचना के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये वित्तीय प्रबन्धक को पूँजी संरचना के सिद्धान्तों के बारे में जानकारी होना आवश्यक है । इसलिये हम इस इकाई में पूँजी संरचना के प्रमुख सिद्धान्तों की विवेचना करेंगे । किसी संस्था के कुल पूँजीकरण में ऋण एवं समता पूँजी का मिश्रण (अर्थात पूँजी संरचना) संस्था की पूँजी की समग्र लागत तथा संस्था के कुल मूल्य को प्रभावित करता है । किसी भी संस्था के प्रबन्ध को पूँजी संरचना के उस प्रारूप का चुनाव करना चाहिये, जिससे संस्था की समग्र पूँजी की लागत न्यूनतम हो तथा संस्था का कुल मूल्य अधिकतम हो । अनुकूलतम पूंजी संरचना के बारे में भिन्न-भिन्न मत हैं । कुछ विद्वान ?ण समता मिश्रण का प्रभाव फर्म के कुल मूल्य पर मानते है, जबकि अन्य

विद्वानों के अनुसार ऋण समता के मिश्रण के किसी भी प्रारूप से फर्म का कुल मूल्य अप्रभावित रहता है ।

पूँजी की लागत, पूँजी संरचना तथा फर्म के मूल्य के मध्य सम्बन्धों को स्पष्ट करने वाले प्रमुख सिद्धान्त / विचार धाराएँ या उपागम निम्नलिखित हैं :-

अ. शुद्ध आय सिद्धान्त

ब. शुद्ध परिचालन आय सिद्धांत

स मोदीग्लियानी-मिलर सिद्धान्त

द. परम्परागत सिद्धान्त

8.2 आधारभूत मान्यताएँ

उपरोक्त चारों सिद्धांत को सुगमतापूर्वक एवं वास्तविक अर्थों में समझने के लिये निम्न मान्यताओं की जानकारी होना आवश्यक है -

i. संस्था केवल दो प्रकार की पूँजी का ही प्रयोग करती है - ऋण पूँजी एवं समता अंश पूँजी । पूर्वाधिकार अंशों का भी प्रयोग नहीं किया जाता है ।

ii. निगम कर का अस्तित्व नहीं है, यद्यपि बाद में इस मान्यता को रह कर दिया गया है।

iii. फर्म अपनी आय का 100 प्रतिशत लाभांश के रूप में बांट देती है । इसलिये कोई प्रतिधारित आय नहीं होती है।

iv. फर्म की कुल सम्पत्ति या अपरिवर्तित रहती है अर्थात् फर्म के विनियोग निर्णय स्थिर माने जाते है ।

v. फर्म की कुल पूँजी व्यवस्था स्थिर रहती है । यद्यपि पूँजी संरचना में परिवर्तन सम्भव है ।

vi. फर्म की कर एवं ब्याज से पूर्व आय में वृद्धि की कोई सम्भावना नहीं है ।

vii. फर्म की व्यावसायिक जोखिम पर पूँजी संरचना के निर्णय का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

viii. फर्म का जीवनकाल अनन्त है ।

8.3 शुद्ध आय सिद्धान्त ' विचारधारा / उपागम

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन डेविड डूराण्ड द्वारा किया ' गया था, इसे **स्थिर समता ' - पूँजी लागत सिद्धान्त (Fixed Cost of Equity Capital Theory)** भी कहा जाता है । - इस सिद्धान्त के अनुसार पूँजी संरचना सम्बन्धी निर्णय पूँजी की कुल लागत तथा संस्था के कुल मूल्य को प्रभावित करते है । कोई भी संस्था अपनी पूँजी संरचना में ऋण पूँजी की मात्रा बढ़ाकर पूँजी की समग्र लागत में कमी तथा R फर्म के कुल मूल्य में वृद्धि कर सकती है ।

ऋण कोषों की प्राप्ति समता पूँजी की तुलना में मितव्ययी स्त्रोत है, क्योंकि :-

i. व्याज दरें सामान्यत: लाभांश दरों से कम होती है ; तथा

ii. कर योग्य आय की गणना में ऋण पर देय ब्याज स्वीकृत व्यय माना जाता है, जबकि लाभांश को नहीं ।

इस प्रकार मितव्ययी स्त्रोत से पूँजी की व्यवस्था करने से समता अंश पूँजी पर प्रत्याय में वृद्धि होती है तथा इससे समता अंशों के मूल्य में वृद्धि तथा परिणामस्वरूप संस्था के कुल मूल्य में भी वृद्धि होती है । संस्था की अनुकूलतम पूँजी संरचना (अर्थात ऋण-समता मिश्रण) वह होगी, जहां संस्था की पूँजी की समग्र लागत न्यूनतम हो तथा संरव्या का कुल मूल्य अधिकतम हो ।

रेखाचित्र

शुद्ध आय सिद्धान्त को रेखाचित्र के माध्यम से निम्न प्रकार समझा जा सकता है:-

रेखाचित्र 8.1 - शुद्ध आय सिद्धान्त के अनुसार उत्तोलक एवं पूँजी की लागत के संबंध

रेखाचित्र में OX अक्ष पर उत्तोलक की मात्रा तथा OY अक्ष पर समता पूँजी की लागत (K_e), ऋण पूँजी की लागत (K_d) तथा पूँजी की कुल लागत (K_o) को प्रदर्शित किया गया है । रेखाचित्र से स्पष्ट है कि उत्तोलक की मात्रा बढ़ने पर जहां समता पूँजी तथा ?ण पूँजी की लागतें अपरिवर्तित रहती है, वहीं पूँजी की कुल लागत (K_o) कम होती जाती है, इस प्रकार यह विचारधारा उत्तोलक की मात्रा को बढ़ाने पर जोर देती है ।

मान्यताएँ -

शुद्ध आय उपागम निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है -

i. ऋण पूँजी की लागत समता पूँजी की लागत से कम होती है ।

ii. ऋण पूँजी की लागत तथा समता पूँजी की लागत सदैव स्थिर रहती है अर्थात ऋण पूँजी में वृद्धि से भी विनियोजकों और ऋणदाताओं की दृष्टि से फर्म अधिक जोखिमपूर्ण रही होती है ।

iii. आयकर या निगमकर पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है ।

गणना क्रिया विधि :-

शुद्ध आय सिद्धान्त के अनुसार फर्म के कुल मूल्य (V) तथा पूँजी की समग्र लागत (K_o) की गणना निम्न प्रक्रिया से की जाती है :-

i. फर्म की ब्याज एवं कर से पूर्व आय (EBIT) में से ऋण पत्रों का ब्याज (I) घटाकर समता अंशधारियों के लिये उपलब्ध आय ज्ञात की जाती है

E=EBIT-I

ii. समता के बाजार मूल्य (S) की गणना निम्न सूत्र से की जाती है :-

$$\text{Market Value of Equity (s)} = E/K_e$$

iii. फर्म के कुल मूल्य (V) को गणना के लिये समता के बाजार मूल्य (S) में ऋण पूँजी का मूल्य (D) जोड़ देते है :-

$$V = S+D$$

iv. यदि D ज्ञात न हो तो इसे निम्न सूत्र से ज्ञात किया जा सकता है -

$$D = I/K_d$$

v. पूँजी की समग्र लागत या पूँजीकरण दर (Ko) निम्न सूत्र से ज्ञात करेंगे -

$$K_0 = \frac{EBIT}{v} \times 100$$

यहाँ पर EBIT = ब्याज एवं कर से पूर्व आय (Earnings before interest and tax)

I = ऋण पत्रों पर ब्याज (Interest on debenture)

E= समता अंशधारियों के लिये उपलब्ध आय

(Earning available for equity shareholders)

Ke= समता पूँजी की लागत या समता पूँजीकरण दर

(Cost of equity capital or Equity capitalization rate)

K_d = ऋण पूँजी की लागत (Cost of Debt Capital)

K_o = पूँजी की समग्र लागत (Overall Cost of Capital)

S = समता का बाजार मूल्य (Market Value of Debt)

V = फार्म का बाजार मूल्य (Total Value of Firm)

उदाहरण 8.1 -

अ. केबीसी लिमिटेड के पास 10% वाले8,00,000 रू. के ऋण पत्र है । कम्पनी की सम्भावित शुद्ध वार्षिक आय, कर एवं ब्याज से पूर्व 4,00,000 रू. है । समता पूँजीकरण दर 16% है । निगम कर को ध्यान न रखते हुए शुद्ध आय सिद्धान्त के अनुसार फर्म का कुल मूल्य एवं पूँजी की समग्र लागत ज्ञात कीजिये तथा निम्न का प्रभाव भी बताईये–

ब. यदि. फर्म 4,00,000 रू. के समता अंशों को पुन: क्रय करने हेतु 4,00,0000 रू. के ऋण पत्र जारी करती है ।

स. फर्म समता अंशों के निर्गमन द्वारा 4,00,000रू. के ऋणपत्रों का शोधन करती है ।

हल -

(a)Calculation of overall cost of capital and value of firm

	Rs.
Annual Net Income (EBIT)	4,00,000
Less : Interest on 10% Debentures (I)	80,000
Earnings available to equity shareholders (E)	3,20,000
Equity Capitalisation Rate (Ke)	16%
Market Value of Equity (S) =E= $\frac{320000}{K_e}$	20, 00,000
Add: Market Value of Debentures(D)	8,00,000
Total Value of Firm (V) = S+D	28, 00, 000

Overall cost capital (K_o) = $\frac{EBIT}{V}100 = \frac{4,00,000\ x\ 100}{28,00,000}$ 14.29%

(b) Value of the firm and Ko after increase in debentures	**Rs.**
Annual Net Income (EBIT)	4,00,00
Less: Interest on 10% Debentures (i)	1,20,000
Earnings available to equity shareholders (E)	2,800,000
Equity capitalization Rate (E)	16%
Market value of Equity (S)= E/ Ke = $\frac{2,800,000}{16\%}$	17,500,000
Add: Market value of debentures (D)	12,00,000
Total value of firm (V)= S+D	29,50,000
Overall cost of capital (K_o) $= EBIT \times 100 = \frac{4,00,000\ x\ 100}{29,50,000}$	13.56%

(c) Value of the firm & Ko after decrease in debentures	**Rs.**
Annual Net Income (EBIT)	4,00,000
Less: Interest on 10% Debentures (I)	40,000
Earnings available to equity shareholders (E)	3,60,000
Equity capitalization Rate (Ke)	16 %
Market Value of Equity (S) = E = 2,26,000 / Ke, 16 %	25,50,000
Add: Market value of debentures (D)	4,00,000
Total value of firm (V) = S+D	26,50,000
Overall cost of capital (KO) = $= \frac{EBIT}{V} \times 100 = \frac{4,00,000\ x\ 100}{29,50,000}$	15.09%

निष्कर्ष :-उपरोक्त गणनाओं से स्पष्ट है कि पूँजी संरचना में उत्तोलक में वृद्धि तथा कमी का फर्म के कुल मूल्य (V) तथा पूँजी की समग्र लागत (K_o) पर निम्न प्रभाव पड़ता है:-

	वर्तमान संरचना,	**ऋण पत्रों में वृद्धि,**	**ऋण पत्रों में कमी**
फर्म का कुल मूल्य (V)	28,00,000	29,50,000	26,50,000
पूँजी की समग्र लागत (Ko)	14.29%	13.56%	15.09%

मूल्यांकन-

शुद्ध आय सिद्धान्त पूँजी संरचना में पूँजी की समग्र लागत (Ko) पर ऋणों के प्रभाव को स्पष्ट करता है तथा अनुकूलतम /आदर्श या संतुलित वित्तीय उत्तोलक (Financial Leverage) पर जोर देता है । यदि वित्तीय उत्तोलक अनुकूल है, तो संस्था अतिरिक्त क्या लेकर समता अंशधारियों के लिये उपलब्ध आय में वृद्धि कर सकती है और अन्ततः फर्म के मूल्य में वृद्धि कर सकती है । परन्तु इस सिद्धान्त का प्रमुख दोष यह है कि यह सिद्धान्त इस तथ्य को मान्यता नहीं देता है कि पूँजी संरचना में ऋण की मात्रा बढ़ाने से जोखिम बढ़ जाती है और जोखिम बढ़ने से समता अंशधारी अपने अंश बेचना पसन्द करेंगे, फलस्वरूप समता अंशों का बाजार मूल्य भी गिर जायेगा । इस तथ्य की अनदेखी करने से यह सिद्धान्त पूँजी संरचना प्रबन्ध के लिये पर्याप्त नहीं माना जा सकता है ।

8.4 शुद्ध परिचालन आय सिद्धान्त / विचारधारा / उपागम

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन भी डेविड डूरण्ड द्वारा ही किया गया था । यह सिद्धान्त गणना की दृष्टि से शुद्ध आय सिद्धान्त से पूर्णत: विपरीत है । इस सिद्धान्त के अनुसार फर्म की पूँजी संरचना में परिवर्तन से फर्म के कुल मूल्य (V) तथा पूँजी की समग्र लागत (Ko) पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है । इस प्रकार कोई भी पूँजी संरचना संस्था के लिये अनुकूलतम नहीं होती है और विनियोजक पूँजी संरचना में परिवर्तन के प्रति उदासीन रहते है । दूसरे शब्दों में इसे पूँजी संरचना की असम्बन्ध अवधारणा (Irrelevant Theory) भी कहा जा सकता है ।

चूँकि इस सिद्धान्त के अनुसार ऋण समता का कोई भी मिश्रण फर्म के कुल मूल्य में कोई परिवर्तन नहीं लाता है, इसलिये सभी प्रकार के मिश्रण फर्म के लिये अनुकूलतम माने जायेंगे । परन्तु जैसा कि कम्पनी को कुछ मात्रा में समता पूँजी निर्गमित करना अनिवार्य है, इसलिये यदि कर का अस्तित्व माना जाये तो कम्पनी अधिकतम संभव मात्रा में ऋण लेकर अपने मूल्य में वृद्धि कर सकती है ।

रेखाचित्र

शुद्धि परिचालन आय सिद्धान्त को रेखाचित्र के माध्यम से निम्न प्रकार समझा जा सकता है-

रेखा चित्र 8.2 :- शुद्ध परिचालन आय सिद्धान्त के अनुसार उत्तोलक एवं पूँजी लागत व फर्म के मूल्य में संबंध

रेखाचित्र में OX अक्ष पर उत्तोलक की मात्रा तथा OY अक्ष पर पूँजी की समग्र लागत (Ko) तथा फर्म के कुल मूल्य (V) को प्रदर्शित किया गया है । रेखाचित्र से स्पष्ट है कि उत्तोलक की मात्रा में वृद्धि का फर्म के मूल्य (V) तथा पूँजी की समग्र (Ko) पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है । परन्तु समता पूँजी की लागत (Ke) उत्तोलक की मात्रा बढ़ने के साथ-साथ बढ़ती रहती है । समता पूँजी की लागत (Ke) में वृद्धि, सस्ती ऋण पूँजी के प्रयोग करने से होने वाले लाभ के प्रभाव को समाप्त कर देती है और पूँजी की कुल लागत (Ko) स्थिर रहती है । फर्म का कुल मूल्य (V) भी प्रत्येक अवस्था में समान रहता है । यदि फर्म केवल समता पूँजी का ही प्रयोग करती है तो पूँजी की समग्र लागत (Ko) तथा समता पूँजी की लागत (Ke) समान रहती है :-

मान्यताएँ-

शुद्ध परिचालन आय उपागम निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है :-

i. कुल पूँजी को क्या एवं समता में विभाजित करना महत्वहीन है, क्योंकि विनियोजक इसके प्रति उदासीन रहते है ।

ii. ऋण-समता के प्रत्येक मिश्रण पर व्यवसायिक जोखिम स्थिर रहती है, इसलिये पूँजी की समग्र लागत (K_0) भी स्थिर रहती है ।

iii. ऋण पूँजी की लागत (K_d) भी स्थिर रहती है ।

iv. कम लागत वाली ऋण पूँजी के उपयोग में वृद्धि से समता अंशधारियों की वित्तीय जोखिम में वृद्धि होती है, जिससे समता पूँजी की लागत (K_e) बढ जाती है और इस प्रकार कम लागत वाली ऋण पूँजी के उपयोग से प्राप्त होने वाले सम्पूर्ण लाभ समाप्त हो जाते है।

v. निगम कर का अस्तित्व नहीं होता है ।

गणना क्रिया विधि -

शुद्ध परिचालन आय सिद्धान्त के अनुसार फर्म के कुल मूल्य (V) तथा समता पूँजी की लागत (K_e) की गणना निम्न प्रक्रिया से की जाती है -

i. फर्म की ब्याज एवं कर से पूर्व आय (EBIT) में पूँजी की समग्र लागत (K) का भाग देकर फर्म के कुल मूल्य (V) की गणना की जाती है । सूत्र रूप में -

$V = EVIT/K_o$

ii. फर्म के कुल मूल्य (V) में से ऋण के बाजार मूल्य (D) को घटाकर समता का बाजार मूल्य (s) ज्ञात करते है। सूत्र रूप में -

$S=V - D$

iii. ब्याज एवं कर से पूर्व आय (EBIT) में ऋण पर ब्याज की राशि (I) घटाकर समता अंशधारियों के लिये उपलब्ध राशि (E) ज्ञात की जाती है और समता पूँजी की लागत (K_e) निम्न सूत्र से इग्नत करते हैं :-

$K_e = E \times 100 / S$

यहाँ पर: EBIT = ब्याज एवं कर से पूर्व आय (Earnings before interest and tax)

I ऋण पत्रों पर ब्याज (Interest on debentures)

E = समता अंशधारियों के लिये उपलब्ध आय

(Earning available for equity share–holders)

K_e = समता पूँजी की लागत या समता पूँजीकरण दर

(Cost of Equity capital of Equity capitalization rate)

K_d = ऋण पूँजी की लागत (Cost of debt capital)

K_o = पूँजी की समग्र लागत (Overall cost of capital)

S = समता का बाजार मूल्य (Market value of Equity)

D = ऋण का बाजार मूल्य (Market value of firm)

उदाहरण 8.2

अ. ए लिमिटेड की सम्भावित शुद्ध परिचालन आय, कर एवं ब्याज से पूर्व 6,00,000 रू. है। कम्पनी की समग्र पूँजीकरण दर 15 % है। ऋण की लागत 12 % है तथा बकाया ऋण की राशि 20,00,000 रू. है । शुद्ध परिचालन आय सिद्धान्त के अनुसार फर्म के कुल मूल्य तथा समता पूँजीकरण दर की गणना कीजिये तथा निम्न का प्रभाव भी बताइये-

ब. यदि फर्म 5,00,000 रू. के समता अंशों को पुन: क्रय करने हेतु 5,00,000 रू. के ऋणपत्र जारी करती है ।

स. यदि फर्म समता अंशों के निर्गमन द्वारा 5,00,000 रू. के ऋणपत्रों का शोधन करती है।

हल -

(a) **Calculation of value of firm and Equity capitalization rate'**

	Rs
Net operating income (EBIT)	6,00,000
Interest on 12 % Debt of Rs. 20,00,000 (I)	2,40,000
Overall Capitalisation Rate (K_o)	15 %
Total value of firm (V)	
$\frac{V}{K_0}$ =EBIT = $\frac{6,00,000}{16\%}$	40,00,000
Market value of Debt (D)	20,00,000
Market value of Equity (S) = (V) - (D)	20,00,000
Equity Capitization Rate (Ke)	
$\frac{K}{S}e = EBIT - I \times 100 = \frac{6,00,000 - 2,40,0000}{20,00,000} \times 100 =$	18 %

(b) Value of firm and K_e after increase in Debt	**Rs**
Net operating income (EBIT)	6, 00,000
Interest on 12% Debt of Rs. 25, 00,000 (I)	3, 00,000
Overall capitalization Rate (K_o)	15%
Total value of kfirm (V)	
V = EBIT / Ko = Rs. 6,00,000 /	40,00,000
Market value of Debt (D)	25,00,000
Market value of Equity (S) = (V) - (D)	15,00,000
Equity capitalization Rate (K_e)	
$K_e = \frac{EBIT}{S} - I \times 100 = \frac{6,00,000 - 2,40,0000}{15,00,000} \times 100 =$	20%

(c) Value of firm and K_e after decrease in debt	**Rs**
Net operating income (EBIT)	6,00,000

Interest on 12% Debt of Rs. 15, 00,000 (I)	1,800,000
Overall Capitalisation Rate (K)	15%
Total Value of firm (V)	
V = EBIT / K_o = Rs. $\frac{6,00,000}{16\%}$	40,00,000
Market value of Debt (D)	15,00,000
Market value of Equity (S) = (V) - (D)	25,00,000
Equity Capitalisation Rate (K_e)	
$K_e = \frac{EBIT - I \times 100}{S} = \frac{6,00,000 - 1,80,0000}{Rs.25,00,000} \times 100 =$	16.8%

निष्कर्ष :

उपरोक्त गणनाओं से स्पष्ट है कि पूँजी संरचना में उत्तोलक में वृद्धि या कमी का, फर्म के कुल मूल्य (V) तथा समता पूँजीकरण दर (K_e) पर निम्न प्रभाव पड़ता है -

	वर्तमान सरंचना,	ऋण में वृद्धि,	ऋण में कमी
फर्म का कुल मूल्य (V)	40,00,000	40,00,000	40,00,000
समता पूँजीकरण दर (K_e)	18%	20%	16.8%

पूँजी सरंचना में ऋण की मात्रा बढ़ाने या घटाने से फर्म का कुल मूल्य (V) अप्रभावित रहता है । परन्तु समता पूँजीकरण दर (K_e) ऋण में वृद्धि से बढ़ जाती है तथा ऋण में कमी से घट जाती है इससे पूँजी की समग्र लागत (K_o) स्थिर रहती है, क्योंकि एक की लागत से दूसरी लागत प्रति संतुलित (Off set) हो जाती है ।

मूल्यांकन.

यह सिद्धान्त फर्म के कुल मूल्य निर्धारण में शुद्ध परिचालन आय की भूमिका पर ध्यान देती है और इस सिद्धान्त के अनुसार विनियोग प्रस्तावों की स्वीकृति फर्म के कुल मूल्य तथा शुद्ध परिचालन आय के संबंध पर आधारित होनी चाहिए।

परन्तु यह विचारधारा आदर्श या अनुकूलतम पूँजी संरचना की अवधारणा को स्वीकार नहीं करती है । इस प्रकार ऋण-समता मिश्रण के निर्धारण का कोई महत्व नहीं रह जाता है ।

8.5 मोदीग्लियानी - मिलर सिद्धान्त / विचारधारा / उपागम (एम.एम.सिद्धान्त)

मोदीग्लियानी-मिलर विचारधारा में भी पहले तो अन्य विचारधाराओं की तरह निगम करों को ध्यान में नहीं रखा गया परन्तु बाद में उन्होंने निगम करों की उपस्थिति को स्वीकार किया, इसलिये उनकी विचारधारा दो तरह की मानी जा सकती है -

अ. जब निगम करों का अस्तित्व न माना जाये - ऐसी स्थिति में यह विचारधारा शुद्ध परिचालन आय विचारधारा की तरह होती है ।

ब. जब निगम करों का अस्तित्व माना जाये - ऐसी स्थिति में यह विचारधारा शुद्ध आय विचारधारा की तरह होती है ।

अ. निगम करों का अस्तित्व न मानने पर - निगम करों की अनुपस्थिति में इस विचारधारा के अनुसार एक संस्था की पूँजी संरचना में परिवर्तन से न तो फर्म का कुल मूल्य प्रभावित होता है और न ही समग्र पूँजी लागत ही प्रभावित होती है । परन्तु इस सिद्धान्त में इसके कारणों पर भी प्रकाश डाला गया है । ऋण-समता मिश्रण के किसी भी स्तर पर फर्म के मूल्य (V) तथा पूंजी की औसत लागत (K_o) के स्थिर रहने के पीछे कारण यह है कि ऋण पूँजी, समता पूँजी से सस्ती होती है तथा पूँजी संरचना में ऋण पूँजी के अधिक प्रयोग से समता अंशधारियों की प्रत्याशा बढ़ जाती है और समता पूँजी की लागत भी बढ़ जाती है, इस प्रकार ऋण की कम लागत से होने वाला लाभ, समता पूँजी की बढ़ी हुई लागत से प्रति संतुलित (Off set) हो जाता है और पूँजी की समग्र लागत स्थिर रहती है । ऋण पूँजी का एक निश्चित सीमा से ज्यादा उपयोग करने पर संस्था की वित्तीय जोखिम बढ़ जाती है तथा ऋण पूँजी की लागत भी बढ़ती है और समता पूँजी की लागत घटती है । इस प्रकार ऋण एवं समता पूँजी की लागतों का प्रति-संतुलन हो जाता है ।

इस सिद्धांत के अनुसार पूँजी संरचना के. अलावा अन्य दृष्टि से समान दो संस्थाओं की समग्र पूँजी लागत एवं फर्म का मूल्य अन्तरपणन प्रक्रिया (Arbitrage Process) के कारण समान ही रहते हैं । अन्तरपणन से आशय किसी प्रतिभूति को कम मूल्य वाले बाजार में खरीदने एवं अधिक मूल्य वाले बाजार में बेचने की क्रिया से है ।

रेखाचित्र -

निगम करों की अनुपस्थिति में मोदीग्लियानी - मिलर सिद्धान्त को निम्न रेखाचित्र से समझा जा सकता हैं

रेखाचित्र 8.3 मोदीग्लियानी-मिलर सिद्धांत (करों की अनुपस्थिति) के अन्तर्गत उत्तोलक एवं पूंजी की लागत में संबंध

रेखाचित्र में OX अक्ष पर उत्तोलक की मात्रा तथा OX अक्ष पर समता पूँजी की लागत (K_e) ऋण पूँजी की लागत (K_d)तथा कुल पूँजी की लागत (K_o) को प्रदर्शित किया गया है । रेखाचित्र से स्पष्ट है कि करों के अभाव में ऋण व समता के किसी भी अनुपात में फर्म की ऋण पूँजी की लागत (K_d) तथा कुल पूँजी की लागत (K_o) स्थिर रहती है । ही, उत्तोलक की मात्रा बढ़ने से समता पूँजी की लागत (K_e) बढ़ती है तथा वह कम लागत वाली ऋण पूँजी के लाभों को प्रति संतुलित कर देती है । फर्म का कुल मूल्य (V) भी प्रत्येक दशा में स्थिर रहता है -

फर्म का मूल्य (V) फर्म का मूल्य (V)

मान्यताएँ -

निगम करों की अनुपस्थिति में एम.एम. विचारधारा निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है ।

i. पूँजी बाजार पूर्ण (Perfect) है, अर्थात विनियोजक विवेकशील है एवं प्रतिभूतियों का क्रय विक्रय करने में पूर्ण स्वतंत्र है 1 उन्हें पूँजी बाजार का पूर्ण ज्ञान, है एवं समस्त आवश्यक सूचनाएँ उपलब्ध हैं ।

ii. प्रतिभूतियों के क्रय विक्रय में कमीशन, दलाली या अन्य कोई व्यवहार लागत (Transaction cost) नहीं आती है।

iii. व्यक्तिगत विनियोजकों को भी बिना किसी बाधा के उन्हीं शर्तों पर ऋण प्राप्त होता है, जिन शर्तों पर किसी संस्था को प्राप्त होता है ।

iv. सभी संस्थाओं को सजातीय जोखिम वर्गो (Dividend payout ratio) 100% में विभाजित किया जा सकता है और प्रत्येक समान वर्ग में आने वाली संस्था में व्यावसायिक एवं वित्तीय जोखिम समान होती है ।

v. संस्था का मूल्यांकन करने हेतु सभी विनियोजकों की शुद्ध परिचालन आरा के सम्बन्ध में प्रत्याशा (Expectation) समान हे ।

vi. संस्था का लाभांश भुगतान अनुपात (Dividend payout ratio) 100% है अर्थात कम्पनी अपने समस्त लाभों का वितरण लाभांश के रूप में अंशधारियों में कर देती है ।

अन्तरपणन प्रक्रिया (Arbitrage process)-

किसी प्रतिभूति को कम मूल्य वाले बाजार से खरीदना तथा अधिक मूल्य वाले बाजार में बेचना अन्तरपणन कहलाता है । -इस प्रक्रिया में मूल्यविभेद का लाभ उठाने के लिये विभिन्न बाजारों में एक ही प्रतिभूति को एक साथ खरीदा व बेचा जाता है । एम.एम.सिद्धाना के अनुसार, पूँजी संरचना को छोड़कर अन्य प्रत्येक दृष्टि से समान दो संस्थाओं का बाजार मूल्य लम्बे समय तक भिन्न-भिन्न नहीं रह सकता हैं । यदि दो समान फर्मे अपने भिन्न-भिन्न ऋण-समता अनुपात के कारण भिन्न-भिन्न मूल्य रखती है तो अन्तरपणन क्रिया उनके बाजार मूल्यों को संतुलित या समान कर देगी ।

इस प्रकार शुद्ध परिचालन आय विचारधारा में जो व्यावहारिकता का अभाव पाया जाता है, उसे एम.एम. विचारधारा में व्यावहारिक न्याय उपलब्ध कराया गया है ।

अन्तरपणन प्रक्रिया की सीमाएँ-

एम.एम. विचारधारा में अन्तरपणन प्रक्रिया व्यावहारिक आधारशिला है, परन्तु इसकी निम्न सीमाएँ हैं-

1. व्यक्तिगत विनियोजकों एवं संस्थाओं- को एक जैसी शर्तों पर ऋण प्राप्त होने की मान्यता गलत है ।

2. यह मानना भी गलत है कि 'व्यक्तिगत उत्तोलक' 'निगम उत्तोलक' का पूर्ण स्थानापन्न है ।
3. प्रतिभूतियों को खरीदने व बेचने की लागत (व्यवहार लागत) को न मानना अवास्तविक है ।
4. अन्तरपणन प्रक्रिया में संस्थागत प्रतिबन्ध भी बाधक है, क्योंकि संस्थागत विनियोजक जैसे भारतीय यूनिट ट्रस्ट, भारतीय जीवन बीमा निगम आदि व्यक्तिगत विनियोजकों की भांति व्यवहार नहीं कर सकते है ।
5. निगम कर की उपस्थिति से इस विचारधारा के निष्कर्ष विफल हो जाते हैं ।

ब निगम करों का अस्तित्व मानने पर -

मोदीग्लियानी-मिलर के मूल सिद्धान्त (निगमकरों की अनुपस्थिति में) की यह मान्यता कि संस्था की पूँजी संरचना में ऋण की मात्रा बढ़ाने पर भी फर्म का मूल्य (V) तथा पूँजी की समग्र लागत (K_o) स्थिर रहती है, निगम करों की उपस्थिति में सही नहीं उतरती है, जबकि निगम कर एक वास्तविकता है । अत: उन्होंने 1963 में अपनी मूल विचारधारा को संशोधित किया तथा यह स्वीकार किया कि कर योग्य आय की गणना हेतु ऋण पर ब्याज को कटौती योग्य मानने के कारण ऋण पूँजी की लागत कम होती है । संशोधित विचारधारा के अनुसार ऋण लेने वाली अर्थात् उत्तोलक वाली (Levered) फर्म का मूल्य, क्या न लेने वाली अर्थात् बिना उत्तोलक वाली (Unlevered) के मूल्य से अधिक होगा और उसकी पूँजी की समग्र लागत (K_o) भी कम होगी ।

रेखाचित्र -

मोदीग्लियानी-मिलर सिद्धान्त (निगमकरों की उपस्थिति में) रेखाचित्र की सहायता से निम्न प्रकार से समझा जा सकता है :-

रेखाचित्र 8.4 - मोदीग्लियानी मिलर सिद्धान्त (करों की उपस्थिति में) के अन्तर्गत उत्तोलक एवं पूंजी की लागत में सम्बन्ध

रेखाचित्र में OX अक्ष पर उत्तोलक की मात्रा तथा OY अक्ष पर समता पूँजी की लागत (K_e) ऋण पूँजी की लागत (K_d) तथा कुल पूंजी की लागत (K_o) को प्रदर्शित किया गया है । रेखाचित्र से स्पष्ट है कि उत्तोलक की मात्रा बढ़ने से ऋणपूँजी की कर पश्चात लागत (K_d) स्थिर रहती है, वहीं समता पूँजी की लागत (K_e) बढ़ती है । इसलिये आदर्श या अनुकूलतम पूँजी संरचना वहां उपस्थित होगी जहाँ ऋणपूँजी की लागत (K_d) तथा कुल पूँजी की लागत (K_o) की स्थिति निकटतम हो ।

गणना क्रिया विधि :-

निगम करों की उपस्थिति में किसी फर्म का कुल मूल्य (४) निम्न प्रकार से ज्ञात किया जा सकता है -

1. बिना उत्तोलक वाली फर्म का मूल्य निम्न सूत्र से ज्ञात कर सकते है -

Value of Levered firm (Vu) = EBIT(1-T /) / Ke

2. उत्तोलक वाली फर्म- का मूल्य निम्न सूत्र से ज्ञात कर सकते है -

   Value of Levered firm (V1) = Vu + DT

   यहां पर: EBIT=व्याज एवं कर से पूर्व आय (Earning before interest and tax)

   K_e = समता पूँजी की लागत (Cost of Equity capital)

   T = निगम कर की दर (Corporate tax rate)

   D = ऋण की राशि (Amount of debt)

   V_u = बिना उत्तोलक वाली फर्म का मूल्य (Value of Unlevered firm)

   V_L = उत्तोलक वाली फर्म का मूल्य (Value of Levered firm)

उदाहरण 8.3 -

दो कम्पनियाँ 'पी' तथा 'आर' सभी दृष्टियों से समान है, सिवाय इसके कि कम्पनी 'पी' अपनी पूँजी संरचना में किसी ऋण का उपयोग नहीं करती है, जबकि कम्पनी 'आर' की पूँजी संरचना में 10% वाले 10 लाख रू. के बकाया ऋण पत्र है । दोनों कम्पनियों की ब्याज एवं परिचालन से पूर्व आय 3 लाख रू. है और समता पूँजीकरण दर 12% है । निगम कर की दर 40% मानते हु ये मोदीग्लियानी- मिलर सिद्धान्त के अनुसार दोनों फर्मों का मूल्य ज्ञात कीजिये ।

हल -

बिना उत्तोलक वाली फर्म 'पी' का बाजार मूल्य (जो किसी ऋण का उपयोग नहीं करती)

$$V_U = \frac{EBIT(I-T)}{K_e} K_e$$

$$= \frac{Rs.3,00,000 \times (1-0.40)}{12\%}$$

$$= \frac{3,00,000 \times 0.60 \times 100}{12} = Rs.\ 15,00,000$$

उत्तोलक वाली फर्म 'आर' का बाजार मूल्य (जो 10 लाख रूपये ?ण का उपयोग करती है)

$V_L = V_U + DT$

= Rs.15, 00,000 + (Rs. 10, 00,000 x 0.40)

= Rs. 15, 00,000 +Rs. 4, 00,000 = Rs. 19, 00,000

निष्कर्ष - फर्म 'आर' का बाजार मूल्य 4,00,000 रू. अधिक है क्योंकि ऋण के उपयोग के कारण 10,00,000 x 10% = 1,00,000 रू. के ब्याज पर कर की बचत 1, 00,000 x 40% रू होती है और40, 000 रू. का वर्तमान मूल्य (40,000 /10%) = 4,00,000 रू. होता है ।

मूल्यांकन -

एम.एम. सिद्धान्त में करों की उपस्थिति में यह माना गया है कि ऋण मात्रा बढ़ाने से उत्तोलक वाली फर्म का मूल बढ़ जाता है और पूँजी की औसत लागत कम हो जाती है । परन्तु जिन मान्यताओं पर यह सिद्धान्त आधारित है वे वास्तविकता पर आधारित नहीं है, जैसे - पूर्ण पूँजी बाजार की विद्यमानता, व्यवहार लागतें नहीं होना, 100% लाभांश का भुगतान करना, व्यक्तिगत उत्तोलक एवं निगम उत्तोलक का एक होना आदि । गलत मान्यताओं के कारण इस सिद्धान्त की आलोचना की जाती है ।

8.6 परम्परागत सिद्धान्त /विचारधारा / उपागम

शुद्ध आय विचारधारा एवं शुद्ध परिचालन आय विचारधारा दो चरम (Extreme) विचारधाराएँ है । जहाँ शुद्ध आय विचारधारा के अनुसार पूँजी संरचना में ऋण की उपस्थिति फर्म के कुल मूल्य तथा कुल पूँजी की लागत, दोनों को प्रभावित करती है, वहीं शुद्ध परिचालन आय विचारधारा के अनुसार पूँजी संरचना में ऋण की उपस्थिति का फर्म के मूल्य या कुल पूँजी की लागत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है । एम.एम. सिद्धान्त करों की अनुपस्थिति में शुद्ध परिचालन आय विचारधारा का समर्थन करती है तथा निगम करों की उपस्थिति में शुद्ध आय विचारधारा का समर्थन करती है ।

परम्परागत विचारधारा शुद्ध आय सिद्धान्त तथा शुद्ध परिचालन आय सिद्धान्त की मध्यमार्गी है, इसलिये इसे **मध्यवर्ती विचारधारा (Intermediate Approach)** भी कहा जाता है । इस विचारधारा के अनुसार ऋण पूँजी एवं समता पूँजी के विवेकपूर्ण मिश्रण द्वारा एक संस्था अपनी पूँजी की समग्र लागत को कम कर सकती है तथा अपने कुल मूल्य को बढ़ा सकती है । ऋण पूँजी की लागत समता पूँजी से कम होती है इसलिये कोई भी फर्म अपनी पूँजी संरचना में एक सीमा तक ऋण पूँजी में वृद्धि करके अपनी समग्र पूँजी लागत में कमी तथा कुल मूल्य में वृद्धि कर सकती है, परन्तु एक सीमा के बाद ऋण की मात्रा बढ़ाने पर समग्र पूँजी की लागत में वृद्धि तथा फर्म के मूल्य में कमी आ सकती हैं । इस प्रकार यह विचारधारा अनुकूलतम पूँजी संरचना के अस्तित्व को स्वीकार करती है ।

इजरा सोलोमन (Solomon Ezra) के अनुसार पूँजी संरचना में परिवर्तन का पूँजी की समग्र लागत (K_o)तथा फर्म के कुल मूल्य (V) पर पड़ने वाले प्रभाव को निम्न तीन चरणों में स्पष्ट किया जा सकता है -

प्रथम चरण (First Stage) - प्रारम्भ में किसी संस्था द्वारा पूँजी संरचना में ऋण पूँजी का उपयोग संस्था की पूँजी की समग्र लागत (K_o) में कमी तथा फर्म के कुल मूल्य (V) में वृद्धि करता है । इसका कारण यह है कि समता पूँजी की लागत (K_e) प्रारम्भ में स्थिर रहती है या ऋण में वृद्धि के कारण थोड़ी सी बढ़ती है एवं दूसरी और ऋण की लागत (K_d)भी स्थिर रहती है या थोडी सी बढ़ती है, क्योंकि पूँजी संरचना में ऋण के उचित उपयोग को पूँजी बाजार में सुरक्षित माना जाता है ।

-**द्वितीय चरण (Second Stage)** - पूँजी संरचना में ऋण की मात्रा का एक निश्चित सीमा से अधिक उपयोग करने से पूँजी की समग्र लागत या फर्म का कुल मूल्य अप्रभावित रहता है । इसका कारण यह है कि अधिक ऋण से संस्था की वित्तीय जोखिम बढ़ जाती है तथा इसमें

समता पूँजी की लागत में भी वृद्धि हो जाती है जो कम लागत वाली ऋण पूँजी के उपयोग से हुए लाभ को प्रति संतुलित (Off set) कर देती है । इस चरण में एक विशिष्ट बिन्दु पर मध्यम विस्तार सीमा (Middle range) होती है, जहां फर्म का मूल्य अधिकतम एवं पूँजी की समग्र लागत न्यूनतम होती है, इसे अनुकूलतम पूँजी संरचना का बिन्दु कहा जा सकता है ।

- **तृतीय चरण (Third Stage)** - पूँजी -संरचना में ऋण पूँजी की स्वीकार्य मात्रा के पश्चात और अधिक वृद्धि करने से समता अंशधारियों की दृष्टि में संस्था की वित्तीय जोखिमें बढ़ जाती है और इस कारण समता पूँजी की लागत में होने वाली वृद्धि, कम लागत वाली ऋण पूँजी के उपयोग से होने वाले लाभ की तुलना में अधिक हो जाती है। इस प्रकार फर्म के कुल मूल्य (V) में कमी तथा पूँजी की समग्र लागत (K_o) में वृद्धि होने लगती है ।

इस प्रकार यह विचारधारा शुद्ध आय विचारधारा का समर्थन करती है, परन्तु यह भी स्पष्ट करती है उत्तोलक के सभी स्तरों पर फर्म के कुल मूल्य में वृद्धि या पूँजी की कुल लागत में कमी नहीं होती हैं साथ ही यह विचारधारा शुद्ध परिचालन आय विचारधारा का भी समर्थन करती है परन्तु यह भी स्पष्ट करती है कि उत्तोलक के सभी स्तरों पर फर्म का कुल मूल्य तथा पूँजी की कुल लागत स्थिर नहीं रहती हैं ।

रेखाचित्र -

परम्परागत सिद्धान्त को रेखाचित्र के माध्यम से निम्न प्रकार समझा जा सकता है -

रेखाचित्र 8.4 परम्परागत सिद्धान्त के अन्तर्गत उत्तोलक एवं पूँजी लागत में सम्बन्ध

रेखाचित्र में OX अक्ष पर उत्तोलक की मात्रा तथा OY अक्ष पर समता पूँजी की लागत (K_e) ऋण पूँजी की लागत (K_d) तथा कुल पूँजी की लागत (K_o) को प्रदर्शित किया गया है । रेखाचित्र से स्पष्ट है कि समता पूँजी की लागत प्रथम चरण में लगभग स्थिर रहती है, लेकिन बाद में धीरे फिर तेज गति से बढ़ती है । ऋण पूँजी को लागत भी एक निश्चित सीमा तक स्थिर रहने के बाद बढने लगती है । कुल पूँजी की लागत प्रथम चरण में गिरती है, द्वितीय चरण में स्थिर रहती है, फिर तृतीय चरण में बढने लगती है । आदर्श या अनुकूलतम पूँजी संरचना वहाँ होगी, जहां कुल पूँजी लागत (K_o) ऋण पूँजी की लागत (K_d) के बहुत समीप हो, अर्थात यह द्वितीय स्तर पर PP के मध्य स्थित होगी, जहाँ कुल पूँजी की लागत न्यूनतम होगी तथा फर्म का कुल मूल्य अधिकतम होगा ।

मान्यताएँ:-

i. निगम कर या आयकर पर ध्यान नहीं दिया गया है ।

ii. ऋण पूँजी की लागत समता पूँजी की लागत से कम है ।

iii. एक निश्चित सीमा के बाद ऋण पूँजी की लागत तथा समता पूँजी की लागत बढ़ने लगती है, लेकिन समान पूँजी की लागत बाद में तेजी से बढती है ।

iv. फर्म का मूल्य वहाँ अधिकतम होगा, जहां पूँजी की भारित औसत लागत न्यूनतम होगी।

गणना क्रिया विधि -

परम्परागत सिद्धान्त के अनुसार फर्म के कुल मूल्य (V) तथा पूँजी की समग्र लागत (K_o) की गणना ठीक उसी प्रकार की जाती है जिस प्रकार शुद्ध आय सिद्धान्त के अन्तर्गत की जाती है, अर्थात्

Value of firm = Value of Equity (S) + Value of Debt (D)

Overall cost (V) of capital (K_0) =

$$= \frac{Earning\ before\ and\ Tax(EBIT)}{Value of\ firm(V)} \times 100$$

उदाहरण 4 -

निम्नलिखित सूचना से फर्म का कुल मूल्य तथा पूँजी की समग्र लागत का परिकलन कीजिये-

	Rs
Net Operating Income	3,00,000
Total Capital	20,00,000
Cost of Equity capital in different situations in as under	
(a) If the firm uses no debt	12%
(b)If the firm uses Rs 8,00,000, 5% Debentures	13%
(c)If the firm uses Rs. 12,00,000,7% Debentures	18%

हल -

Calculation of Total value of firm and Overall cost of capital

	No Debit	Rs. 8,00,000 5% Debentures	Rs.12,00,000 7% Debentures
	(a)	(b)	(c)
Net Operating Income (EBIT)	3,00, 000	3,00,000	3,00,000
Less: Interest available to Equity	-	40,000	40,000
Earnings available to Equity Shareholders(E)	3,00,000	2,60,000	2,16,000
Equity capitalization Rate (k_e)	12%	13%	18%
Market value of Equity (S)	3,00,000 x 100 / 12	2,60,000 x 100 / 13	2,16,000 x 100 / 18
$S = \frac{E}{K_e}$	= 2500,000	=2000,000	=12,00,000

Add. Market value of debt (D)	_____	8,00,000	12,00,000
Total value of firm (V) = (S) + (D)	25,00,000	28,00,000	24,00,000
Overall cost of Capital (K_o)	3, 00,000 x 100	3,00,000x100	3,00,000x100
$K_0 = \frac{EBIT}{V} \times 100$	25,00,000 = 12%	28,0,000 = 10.71%	24,00,000 = 12.5%

निष्कर्ष - उपरोक्त गणना से स्पष्ट है कि यदि ऋणपत्रों के उपयोग से फर्म के मूल्य व पूँजी की कुल लागत पर निम्न प्रभाव पड़ता है -

शून्य ऋण 8,00,000 रु ऋण 12,00,000 रु. ऋण फर्म का कुल मूल्य (V) 25,00,000

पूँजी की कुल लागत (K_o) 12% 10.71% 12.5%

इस प्रकार फर्म की अनुकूलता पूँजी संरचना विकल्प (b) के समान है, जहां कम्पनी 8,00,000 रू. के 5% ऋणपत्रों का उपयोग करती है, और इस बिन्दु पर फर्म का कुल मूल्य अधिकतम और पूँजी की कुल लागत न्यूनतम होती है ।

मूल्यांकन -

परम्परागत सिद्धान्त से समग्र पूँजी लागत तथा फर्म के कुल मूल्य पर पूँजी संरचना में परिवर्तनों का प्रभाव ज्ञात किया जा सकता है । परन्तु यह सिद्धान्त पूँजी संरचना की विभिन्न परिस्थितियों में शुद्ध परिचालन आय तथा जोखिम समान होने पर भी समान मूल्य प्रदान नहीं करता है, इसलिये इस सिद्धान्त की आलोचना की जाती है ।

8.7 भारत में पूँजी संरचना की स्थिति

भारत में ऋण एवं समता के मिश्रण पर विभिन्न शोध अध्ययन किये गये हैं और पूँजी संरचना के चुनाव के बारे में भारतीय कम्पनियों की स्थिति इस प्रकार है :-

1. परम्परागत विचारधारा के अनुसार क्या का उपयोग करने से पूँजी की कुल लागत में कमी आती है । इसे भारतीय कम्पनियों के अध्ययन में सही पाया गया है । उपभोक्ता सामान बनाने वाली कम्पनियों में कम ऋण का प्रयोग करने के कारण पूँजी की औसत लागत ज्यादा थी, जबकि मध्यवर्ती वस्तुएं बनाने वाली कम्पनियों में ऋण का प्रयोग अधिक होने के कारण पूँजी की औसत लागत कम पाई गयी ।
2. पूर्व अध्ययनों में पाया गया था कि- निगम प्रबन्धक समता की बजाय ऋण पूँजी को प्राथमिकता देते थे, क्योंकि ऋण पूँजी की लागत कम होती है तथा कम्पनी का प्रबन्ध विकेन्द्रित नहीं होता है । लेकिन वर्तमान अध्ययन में यह पाया गया कि कम्पनियाँ समता एवं ऋण को समान प्राथमिकता दे रही हैं, क्योंकि समता पूँजी प्राप्त करना आसान है तथा लाभांश देने में भी स्वतन्त्रता रहती है, दूसरी ओर प्रतिस्पर्धा के युग में आय की अनिश्चितता भी बढ़ गई है, इस कारण कम्पनियाँ ऋण का प्रयोग नहीं करना चाहती है, भले ही वह पूँजी का एक सस्ता साधन है ।

3. एक अध्ययन में यह पाया गया कि अंशों के मूल्य में तथा प्रतिफल, जोखिम, वृद्धि दर, उत्तोलक आदि के मध्य महत्वपूर्ण सम्बन्ध होता है । इस प्रकार ऋण-समता मिश्रण या पूँजी संरचना भी अंशों के मूल्यों को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण घटक होता है।

8.8 सारांश

वित्तीय प्रबन्धक पूँजी संरचना के ऐसे प्रारूप का चयन करता है, जिसमें फर्म का कुल मूल्य (K_o) अधिकतम होता है तथा पूँजी की समग्र लागत (V) कम होती है, इसे आदर्श या अनुकूलतम पूँजी संरचना भी कहते है । पूँजी की लागत एवं फर्म के मूल्य पर प्रभाव बताने वाले प्रमुख चार सिद्धान्त निम्नलिखित है -

1. शुद्ध आय सिद्धान्त (Net Income Theory)
2. शुद्ध परिचालन आय सिद्धान्त (Net Operation Income Theory)
3. मोदीग्लियानी-मिलर सिद्धान्त (Modigiliani – Miller Theory)
4. परम्परागत सिद्धान्त (Traditional Theory)

भारत में विभिन्न कम्पनियां कम लागत के कारण ऋण पूँजी को समता पूँजी की बजाय अधिक प्राथमिकता देती रही है, परन्तु प्रतिस्पर्धा के युग में आय की अनिश्चितता के कारण कम्पनियाँ समता पूँजी को बराबर प्राथमिकता देने लगी है । उत्तोलक का प्रभाव अंशों के मूल्य पर भी पड़ता है ।

8.9 शब्दावली

शुद्ध आय सिद्धान्त - इस सिद्धान्त के अनुसार एक संस्था अपनी पूँजी संरचना में ऋण की मात्रा बढ़ाकर अपने मूल्य में वृद्धि तथा पूँजी की समग्र लागत में कमी कर सकती है ।

शुद्ध परिचालन आय सिद्धान्त - इस सिद्धान्त के अनुसार संस्था की पूँजी संरचना में परिवर्तन का कोई प्रभाव उसके मूल्य तथा पूँजी की समग्र लागत पर नहीं पड़ता हैं । मोदीग्लियानी-मिलर **सिद्धान्त -** इस सिद्धान्त के दो रूप बताये गये है-

अ. निगम करों की अनुपस्थिति में - इस सिद्धान्त के अनुसार संस्था की पूँजी संरचना में परिवर्तन से संस्था का मूल्य तथा पूँजी की समग्र लागत अप्रभावित रहती है, क्योंकि अन्तरपणन प्रक्रिया का प्रभाव पड़ता है ।

ब. निगमकरों की उपस्थिति में - ऋण का उपयोग करने वाली अर्थात उत्तोलक वाली संस्था का कुल मूल्य, ऋण का उपयोग न करने वाली अर्थात् बिना उत्तोलक वाली संस्था से अधिक होता है तथा पूँजी की कुल लागत भी कम होती है ।

परम्परागत सिद्धान्त - इस सिद्धान्त के अनुसार ऋण एवं समता के विवेकपूर्ण मिश्रण से पूँजी की कुल लागत में कमी तथा फर्म के कुल मूल्य में वृद्धि की जा सकती है ।

अन्तरपणन प्रक्रिया - इस प्रक्रिया से आशय मूल्य विभेद का लाभ लेने के लिये एक ही प्रतिकूतइ को एक साथ कम मूल्य वाले बाजार से खरीदने तथा अधिक मूल्य वाले बाजार में बेचने से है ।

8.10 स्वपरख प्रश्न

लघुत्तरात्मक प्रश्न (Short Answer Type Quations)

1. पूँजी संरचना सिद्धान्तों की आधारभूत मान्यताएँ बताइये ।
2. पूँजी संरचना के विभिन्न सिद्धान्तों के नाम लिखिये ।
3. पूँजी संरचना के शुद्ध आय सिद्धान्त को समझाइये ।
4. पूँजी संरचना के शुद्ध आय सिद्धान्त की मान्यताएँ क्या है?
5. पूँजी संरचना के शुद्ध आय सिद्धान्त का मूल्यांकन कीजिये ।
6. पूँजी संरचना की शुद्ध परिचालन आय विचारधारा से आप क्या समझते है?
7. पूँजी संरचना की शुद्ध परिचालन आय विचारधारा की मान्यताएँ बताइये ।
8. पूँजी संरचना की शुद्ध परिचालन आय विचारधारा का मूल्यांकन कीजिये ।
9. पूँजी संरचना के मोदीग्लियानी-मिलर सिद्धान्त से आप क्या समझते है?
10. निगमकरो के अभाव में पूँजी संरचना पर मोदीग्लियानी-मिलर सिद्धान्त का प्रभाव बताइये।
11. व अन्तरपरण प्रक्रिया को समझाइये । इसकी सीमाएँ बताइये ।
12. पूँजी संरचना की मोदीग्लियानी-मिलर विचारधारा की मान्यताएँ बताइये ।
13. निगम करों की उपस्थिति में मोदीग्लियानी-मिलर विचारधारा के अनुसार फर्म का मूल्य कैसे ज्ञात करेंगे?
14. पूँजी संरचना के परम्परागत सिद्धान्त से आप क्या समझते है?
15. पूँजी संरचना के परम्परागत सिद्धान्त के विभिन्न चरण बताइये ।

8.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. पूँजी संरचना से क्या आशय है? पूँजी संरचना के सिद्धान्तों को संक्षेप में समझाइये ।
2. पूँजी संरचना की शुद्ध आय विचारधारा को उपयुक्त उदाहरण की सहायता से समझाइये।
3. पूँजी संरचना की शुद्ध परिचालन आय विचारधारा का वर्णन कीजिये तथा उपयुक्त उदाहरण देकर इसे समझाइये ।
4. पूँजी संरचना की मोदीग्लियानी-मिलर विचारधारा, निगमकरों की अनुपस्थिति में तथा निगम करों की उपस्थिति में किस प्रकार अपना दृष्टिकोण रखती है? विवेचन कीजिये।
5. पूँजी संरचना की परम्परागत विचारधारा को समझाइये । इस दृष्टिकोण की शुद्ध आय विचारधारा एवं शुद्ध परिचालन आय विचारधारा के साथ तुलना कीजिये ।
6. "पूँजी संरचना महत्वपूर्ण नहीं है । " इस कथन का पूँजी संरचना सिद्धान्त में शुद्ध परिचालन आय के योगदान के विस्तृत संदर्भ में आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिये ।
7. डेविड साल्ह द्वारा प्रतिपादित पूँजी संरचना के सिद्धान्तों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिये ।
8. पूँजी संरचना की मध्यवर्ती विचारधारा को उपयुक्त उदाहरण की सहायता से समझाइये।

क्रियात्मक प्रश्न (Practical Problems) -

1. सुमन लिमिटेड के पास 10% वाले 12,00,000 रू. के ऋणपत्र है । कम्पनी की सम्भावित शुद्ध वार्षिक आय कर एवं व्याज से पूर्व 4,20,000 रू. है । समता अंशों की पूँजीकरण दर 15% है । शुद्ध आय सिद्धान्त के अनुसार परिकलित कीजिये-

अ कम्पनी का वर्तमान बाजार मूल्य और पूँजी की समग्र लागत;

ब. यदि समता पूँजी में कमी करके ऋणपत्रों में 6,00,000 रू. की वृद्धि की जाये तो कम्पनी के कुल बाजार मूल्य तथा पूँजी की कुल लागत पर प्रभाव; तथा

स. यदि समता अंशों के निर्गमन द्वारा ऋणपत्रों में 6,00,000 रू. की कमी की जाये तो कम्पनी के कुल बाजार मूल्य तथा पूँजी की कुल लागत पर प्रभाव ।

उत्तर -	(अ)	(ब)	(स)
कम्पनी का बाजार मूल्य (रू)	32,00,000	34,00,000	30,00,000
पूँजी की समग्र लागत	13.125%	12.353%	14.0%

2. शुचिता लिमिटेड की 10 लाख रू. की सम्पत्तियों में विनियोजन पर शुद्ध परिचालन आय 2,00,000 रू. है । इसके पास 4,00,000 रू. के 12% ब्याज दर पर ऋण है । यह मानिए कि कर विद्यमान नहीं है ।

अ. शुद्ध आय विचारधारा तथा समता पूँजीकरण दर 16% का प्रयोग करते हुए फर्म का कुल मूल्य तथा पूँजी की समग्र लागत की गणना कीजिये ।

ब. शुद्ध परिचालन आय विचारधारा तथा समग्र पूँजीकरण दर 12.5% का प्रयोग करते हुये फर्म का कुल मूल्य, अंशों का मूल्य तथा समता पूँजी की लागत की गणना कीजिये ।

उत्तर - शुद्ध आय विचारधारा - फर्म का कुल मूल्य 13,50,000 रू. पूँजी की समग्र लागत 14.81% शुद्ध परिचालन आय विचारधारा - फर्म का कुल मूल्य 16,00,000 रू. अंशों का मूल्य 12,00,000 रू. समता पूँजी की लागत 12.67%

3. निम्न समंकों से प्रत्येक फर्म का मूल्य मोदीग्लियानी-मिलर विचारधारा के अनुसार ज्ञात कीजिये

	फर्म ए	**फर्म बी**	**फर्म सी**
EBIT (Rs.)	13,00,000	13,00,000	13,00,000
No. of Shares	3,00,000	2,50,000	2,00,000
12% Debentures (Rs.)	–	9,00,000,	10,00,000

प्रत्येक फर्म विनियोग पर 12% प्रत्याय की आशा करती है ।

उत्तर - प्रत्येक फर्म का मूल्य 1,08,33,333 रू

4. कम्पनी यू. लि. तथा वी लि. सभी प्रकार से समान है, सिवाय इसके कि प्रथम कम्पनी ऋण का प्रयोग नहीं करती है जबकि द्वितीय कम्पनी 10 लाख रू. का ऋण 8% ब्याज पर प्रयोग करती है । यह मानते हुए कि ज़) मोदीग्लियानी-मिलर सिद्धान्त की मान्यताओं की पूर्ति होती है, (अ) कर की दर 50% है (स) कर व ब्याज से पूर्व आय (EBIT) 1,800,000 रू. है तथा (द) बिना उत्तोलक वाली कम्पनी की समता पूँजीकरण दर 12%है यू लि. तथा दी लि. का मूल्य ज्ञात कीजिये ।

उत्तर - यू लि. का मूल्य 7,50,000, रू. वी लि. का मूल्य 12,50,000 रू

5. एक कम्पनी की चालू परिचालन आय 3,40,000 रू. है । कम्पनी के पास 10% वाले 10 लाख रू. के बकाया ऋण है तथा समता पूँजी की लागत 15% है । कम्पनी 6,00,000 रू. के अतिरिक्त ऋण की प्राप्ति से उत्तोलक में वृद्धि करने पर विचार कर रही है तथा इस राशि से समता पूँजी को पुन: क्रय करेगी । इस बढ़ी हुई वित्तीय जोखिम से ऋण की लागत 12% तक तथा समता पूँजी की लागत 16% तक बढ़ने की संभावना है । आपको परम्परागत प्रतिमान का उपयोग करते हुए कम्पनी के चालू मूल्य का निर्धारण करना है । कम्पनी द्वारा अपने उत्तोलक में वृद्धि करने के बारे में अपनी अनुशंसा भी दीजिये ।

   उत्तर - फर्म का कुल मूल्य वर्तमान में 26,25,000 रू. प्रस्तावित योजना के बाद 25,25,000

   - अत: प्रस्तावित योजना की अनुशंसा नहीं की जा सकती है ।

इकाई-9 - पूँजी की लागत (Cost of Capital)

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
92 पूँजी की लागत का अर्थ एवं परिभाषायें
9.3 पूँजी की लागत की विशेषताएँ
9.4 पूँजी की लागत अवधारणा का महत्व
9.5 पूँजी की लागत का वर्गीकरण
9.6 पूँजी की लागत की गणना
9.7 तकनीकी शब्दावली
9.8 स्वपरख प्रश्न
9.9 संदर्भ ग्रंथ

9.0 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ्ने के पश्चात् आप समझ जायेंगे -

- पूँजी की लागत क्या होती है?
- पूँजी की लागत का क्या महत्व है?
- ऋण पूँजी की लागत क्या होती है?
- अधिमान अंश पूँजी / समता अंश पूँजी / प्रतिधारित अर्जनों की लागत क्या होती है?
- पूँजी की भारित औसत लागत क्या होती है?
- पूँजी की लागत की गणना कैसे की जाती है?

9.1 प्रस्तावना

उपक्रम जिन साधनों से पूँजी प्राप्त करता है उसे हम विनियोजन कह सकते हैं । ये साधन समता या अधिमान अंश, ऋण पत्र प्रतिधारित अर्जन हो सकते हैं । विनियोजक पूँजी का विनियोग करते समय यह आश्वासन प्राप्त करना चाहते हैं कि न केवल उनका धन उपक्रम के हाथों में सुरक्षित रहेगा, बल्कि उन्हें उनकी पूँजी का उचित मूल्य भी निर्धारित रूप में मिलता रहेगा । कुछ विनियोजक धन की सुरक्षा पर अधिक बल देते है, तो कुछ पूँजी के बदले मिलने वाले मूल्य पर परिणामत: विभिन्न विनियोजकों के मध्य पूँजी का मूल्य एक समान नहीं होता है । अर्थात् पूँजी के कुछ साधन महंगे तो कुछ साधन सस्ते होते हैं ।

वित्तीय प्रबंधक का प्रमुख कार्य पूँजी को विभिन्न परियोजनाओं में विनियोजित कर आय अर्जित करना होता है । उपक्रम भी पूँजी के बदले उतना ही मूल्य चुकाने को तैयार होता है जो उसके द्वारा पूँजी पर अर्जित प्रत्याय दर से अधिक न हो । इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि पूँजी के उन्हीं साधनों का प्रयोग करना चाहिए जो सस्ते हों किन्तु वित्तीय दृष्टिकोण से आय, जोखिम, नियंत्रण आदि कारकों का भी ध्यान रखना जरूरी है । व्यवहार

में कुछ महंगे स्त्रोत व कुछ सस्ते स्त्रोत एकत्रित करके उनमें ऐसा संतुलन स्थापित किया जाता है कि उनकी औसत संयुक्त लागत पूँजी पर अर्जित प्रत्याय दर से कम हो । यह संतुलन स्थापित करने के लिए पूँजी की लागत का विस्तृत अध्ययन आवश्यक है ।

एक व्यावसायिक संस्था द्वारा पूँजी विभिन्न स्त्रोतों तथा समता या अधिमान अंशों, ऋणपत्रों, प्रतिधारित अर्जनों से प्राप्त की जा सकती है । प्रत्येक स्त्रोत के स्वामी अपने विनियोजन पर एक निश्चित प्रतिफल पाने की अपेक्षा रखते हैं । वित्तीय प्रबंधक का प्रमुख कार्य पूंजी को विभिन्न परियोजनाओं में विनियोजित कर आय अर्जित करना होता है । ताकि पूँजी के स्त्रोतों को न्यूनतम प्रत्याय चुकाई जा सके । इस न्यूनतम प्रत्याय दर के निर्धारण एवं अनुकूलतम पूँजी ढांचा निश्चित करने में पूंजी की लागत अवधारणा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । किसी भी विनियोग प्रस्ताव को उसी समय स्वीकार करना चाहिये, जबकि उस प्रस्ताव की संभावित प्रत्याय दर (Expected rate of Return) पूँजी की अनुमानित लागत से अधिक हो, अत: पूँजी की लागत का अर्थ व गणना विधि समझना आवश्यक है ।

9.2 पूँजी की लागत का अर्थ एवं परिभाषाएँ

पूँजी की लागत एक महत्वपूर्ण अवधारणा है परन्तु इसका प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है -

अ विनियोक्ता की दृष्टि से पूँजी की लागत उस त्याग का पुरस्कार है जिसको वह वर्तमान में उपयोग को स्थगित कर विनियोग के बदले भविष्य में प्राप्त करने की इच्छा करता है ।

व. पूँजी का उपयोग करने वाली फर्म की दृष्टि से पूँजी का उपयोग करने के बदल चुकाया गया मूल्य ही पूँजी कहलाता है ।

स तकनीकी दृष्टिकोण से पूँजी की लागत वह न्यूनतम प्रत्याय दर है जो विनियोक्ताओं को संतुष्ट करने एवं उपयोग कर्ताओं को अपने व्यवसाय को बनाये रखने के लिए विनियोग पर अर्जित करनी चाहिये ।

अत: पूँजी की लागत की धारणा को स्पष्ट रूप से जानने के लिए यह आवश्यक है कि हम कुछ प्रमुख परिभाषाओं का अध्ययन करें ।

सोलोमन इजरा के अनुसार : "पूँजी की लागत अपेक्षित अर्जनों की न्यूनतम दर या पूँजी व्ययों की विच्छेद दर है । "

एम-जे- गोर्डन के अनुसार : - "पूँजी की लागत अपेक्षित अर्जनों की न्यूनतम दर या पूँजी व्ययों की विच्छेद दर है । "

मिल्टन एच स्पेन्सर (Milton H. Spencer) के अनुसार - "पूँजी की लागत वह न्यूनतम प्रत्याय दर होती है जिसे एक फर्म किसी विनियोग को करते समय एक शर्त के रूप में आवश्यक मानती है ।

हन्ट विनियम तथा डोनाल्डसन (Hunt William and Donaldson) के अनुसार - जैसे (पूँजी की लागत) इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि यह वह दर है जो शुद्ध राशि (Net

process) पर अर्जित की जानी चाहिए जिससे देय धन देय होने पर लागत व्ययों की पूर्ति की जा सके । "

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि पूँजी की लागत वह न्यूनतम प्रत्याय दर है जो एक फर्म को अपने विनियोगों से अवश्य अर्जित करनी चाहिये जिससे कोषों की लागत का भुगतान किया जा सके एवं संस्था के बाजार मूल्य में वृद्धि की जा सके ।

9.3 पूँजी की लागत की विशेषताएँ (Characteristics of Cost of Capital)

पूँजी की लागत अवधारणा के विश्लेषण से निम्न विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं:-

1. **पूँजी की न्यूनतम प्रत्याय दर (Minimum Rate of return Capital** पूँजी की लागत एक ऐसी न्यूनतम प्रत्याय दर है जो संस्था को अपने विनियोगों से अर्जित करनी चाहिये ताकि प्राप्त कोषों की लागत का भुगतान किया जा सके ।
2. **बाधक दर के रूप में (In Form of Hurdle Rate)** पूँजी की लागत व्यवसाय में बाधक दर के रूप में प्रकट होती है । यद्यपि इसकी गणना पूँजी के विविध तत्वों की वास्तविक लागत के आधार पर ज्ञात की जाती है ।
3. **व्यवसायिक एवं वित्तीय जोखिम का पुरस्कार (Reward of Business and Finance Risk)** व्यावसायिक जोखिम बिक्री की मात्रा व वित्तीय जोखिम पूँजी संरचना (ऋण व पूंजी) पर निर्भर करती है । पूँजी की लागत मुख्यत: इन जोखिमों के बदले में मिलने वाला पुरस्कार है ।
4. **वास्तव में कोई लागत नहीं (No real cost)** पूँजी की लागत वास्तव में कोई लागत नहीं है बल्कि एक प्रत्याय दर है जो उपलब्ध परियोजनाओं पर प्राप्त होनी चाहिये ।

9.4 पूँजी की लागत अवधारणा का महत्व (Significance of Concept of cost of Capital)

वित्तीय प्रबंध के क्षेत्र में पूंजी की लागत अवधारणा के महत्व को निम्न तथ्यों से समझा जा सकता है:-

1. **अनुकूलतम पूँजी संरचना का निर्धारण (Determination of optimum capital structure)** पूँजी की लागत पूँजी संरचना को पूर्ण रूप से प्रभावित करती है और उससे स्वयं भी प्रभावित होती है । एक संस्था की पूँजी संरचना उस समय अनुकूलतम होती है जबकि विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों की मात्रा व स्वरूप इस प्रकार हो कि कम्पनी की औसत लागत न्यूनतम हो तथा समता अंशों का मूल्य अधिकतम हो सके । इस स्थिति का निर्धारण लागत एवं मूल्य के पारस्परिक संबंध के विवेचन अर्थात पूँजी की लागत से किया जाता है ।
2. **पूँजी बजटन निर्णय (Capital Budgeting decisions)** पूँजी बजटन या विनियोग प्रस्तावों की स्वीकृति पूँजी की लागत पर निर्भर करती है । किसी भी विनियोग प्रस्ताव को उस समय तक स्वीकार नहीं करना चाहिए जब तक उस प्रस्ताव की संभावित प्रत्याय दर पूँजी की

अनुमानित लागत से अधिक न हो । पूँजी बजटन की विधियों में जिस दर पर परियोजना के भावी अन्तर्वाहों को अपहरित किया जाता हैं वह पूँजी की लागत ही होती है ।

3. **वित्तीय स्त्रोतों का तुलनात्मक मूल्यांकन (Comparative Evaluation of Financial Sources)** वित्त प्राप्ति के विभिन्न स्त्रोतों यथा समता अंश, अधिमान-अंश, ऋण में से किसी समय विशेष पर किसी एक या अधिक स्त्रोतों की लागत का तुलनात्मक अध्ययन पूँजी की लागत के आधार पर किया जा सकता है ।
4. **श्रेष्ठ विकल्पों का चयन (Selection of Best Alternatives**) पूँजी की लागत की गणना द्वारा व्यवसाय की स्थिति के अनुसार श्रेष्ठ विकल्प का चयन किया जा सकता है ताकि व्यवसाय की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो एवं लाभप्रदत्ता में वृद्धि की जा सके ।
5. **संभावित आय एवं अन्तर्निहित जोखिम की जानकारी (Knowledge of Expected Income and Inherent Risk)** पूँजी लागत द्वारा विनियोक्ताओं को फर्म की संभावित आय तथा उसमें अन्तर्निहित जोखिम के बारे में जानकारी मिलती है । यदि पूँजी की भारित औसत लागत अधिक है तो संभावित आय कम होने से जोखिम अधिक व पूँजी संरचना असंतुलित होगी, इसके विपरीत भारित लागत कम होने पर संभावित आय अधिक जोखिम कम एवं पूँजी संरचना संतुलित होगी ।
6. **कार्यशील पूँजी एवं लाभांश नीति निर्णय (Financial and Dividend Decisions)** पूँजी लागत अवधारणा के आधार पर कार्यशील पूँजी की मात्रा तथा उसके स्त्रोतों का चुनाव आदि के बारे में निर्णय लिया जाता है । यह अवधारणा लाभांश नीति के निर्धारण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । यदि अंश पूंजी / ऋण पूँजी की लागत अधिक है तो कम्पनी अपनी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति बाह्य स्त्रोतों से न करके अधिकाधिक लाभों के प्रतिधारणा द्वारा करती है । इसके विपरीत यदि पूँजी की लागत काफी कम है तो कम्पनी बाह्य स्त्रोतों से पूँजी प्राप्त कर सकती है एवं उदार लाभांश नीति का अनुसरण कर अंशधारियों को संतुष्ट कर सकती है ।
7. **उच्च प्रबन्धकों की वित्तीय कुशलता के मूल्यांकन में सहायक (Evaluation of Financial Efficiency of Higher Management)** प्रबन्ध द्वारा विभिन्न विनियोग परियोजनाओं के लिए बनाये गये बजट में परियोजना की संभावित लाभदायकता तथा लागतों का अनुमान लगाया जाता है । परियोजना को लागू करने के बाद पूँजी की अनुमानित लागत तथा वास्तविक लागत की तुलना करके ज्ञात किया जा सकता है कि उच्च प्रबन्ध लागतों को बजट अनुमानों के अनुसार रखने में कहां तक सफल हुआ है ।

9.5 पूँजी की लागत का वर्गीकरण (Classification of Cost of Capital)

1. **ऐतिहासिक लागत एवं भावी लागत (Historical Cost and Future Cost**) ऐतिहासिक लागत से आशय किसी संस्था द्वारा किसी परियोजना में विनियोजित कोषों के लिए भूतकाल में चुकाई गई लागत से है, जबकि भावी लागत भविष्य में किसी परियोजना

में विनियोजित किये जाने वाले कोषों की प्रत्याशित लागत है । भावी लागतों का अनुमान ऐतिहासिक लागतों के आधार पर लगाया जाता है ।

2. **औसत लागत एवं सीमान्त लागत (Average Cost and Marginal Cost)** किसी समय विशेष पर संस्था की पूँजी संरचना में सम्मिलित विभिन्न वित्तीय स्त्रोतों की विशिष्ट लागतों का साधारण या भारित औसत पूँजी की औसत लागत कहलाती है । सीमांत पूँजी लागत का आशय नयी पूँजी के अतिरिक्त एक रूपये की लागत से है । पूँजी बजटन एवं वित्त संबंधी निर्णयों में सामान्यत: सीमान्त पूँजी लागत का ही प्रयोग किया जाता है।
3. **स्पष्ट लागत एवं अस्पष्ट लागत (Explicit Cost and Implicit Cost**) किसी भी वित्त स्त्रोत की वह कटौती दर जो किसी परियोजना के अनुमानित रोकड़ अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य को रोकड़ बहिर्वाहों के वर्तमान मूल्य के बराबर कर देती है, स्पष्ट लागत कहलाती है, यह विनियोग अवसरों की आंतरिक प्रत्याय दर होती है । अस्पष्ट लागत पूँजी स्त्रोतों की वह अवसर लागत होती है जो उस परियोजना को स्वीकार कर लेने पर अंशधारियों को भावी उपार्जनों के रूप में देनी होती है । अस्पष्ट पूँजी लागत तभी उत्पन्न होती है जबकि कोष कहीं उपयोग किये जाते हैं अन्यथा नहीं ।
4. **विशिष्ट लागत तथा संयुक्त लागत (Specific Cost Combined Cost)** पूँजी संरचना के किसी विशिष्ट स्त्रोत, जैसे ऋण अधिमान अंश, समता अंश, प्रतिधारित अर्जने इत्यादि की लागत को विशिष्ट लागत कहा जाता है । जब भी उपक्रम को अतिरिक्त पूँजी की आवश्यकता होती है । हर साधन से उपलब्ध वित्त की विशिष्ट पूँजी की लागत पर विचार करके निर्णय लिया जाता है । इसके विपरीत पूँजी संरचना के सभी स्त्रोतों की मिली जुली लागत को पूँजी को संयुक्त लागत अथवा भारित लागत अथवा समग्र लागत कहते हैं । पूँजी बजटन संबंधी निर्णयों में प्रत्याय दर का प्रयोग करने के लिये भारांकित लागत का **उपयोग किया जाता है ।**
5. **स्थानीय लागत तथा सामान्य लागत (Spot Cost and Normal Cost)** एक निश्चित समयावधि पर स्थानीय पूँजी बाजार की दर को स्थानीय लागत कहा जाता है, यह अल्पकालीन लागत होती है । इसके विपरीत किसी क्षेत्र या सम्पूर्ण राष्ट्र में प्रचलित ब्याज दर को सामान्य पूँजी लागत कहा जाता है । स्थानीय पूँजी लागत व्यक्त लागत है जो उपक्रम को पूँजी के उपयोग पर वास्तव में चुकानी होती है जबकि सामान्य पूँजी लागत उसकी निहित पूँजी लागत है जो उसकी सम्पत्तियों पर अपेक्षित कम से कम प्रत्याय दर को दर्शाती है ।

9.6 पूँजी की लागत की गणना (Computation of Cost of Capital)

किसी संस्था की पूँजी की लागत की गणना में उसकी पूँजी के विभिन्न स्त्रोतों की विशिष्ट लागत की गणना एवं तत्पश्चात औसत पूँजी लागत की गणना करना शामिल है । विभिन्न वित्त स्त्रोतों की पूँजी की लागत भिन्न-भिन्न होती है, जिसकी गणना विधि निम्नानुसार है-

1. **ऋण पूँजी की लागत (Cost of Debt Capital**) सामान्यत: ऋण पूँजी, ऋण पत्रों या बॉण्डो के निर्गमन द्वारा प्राप्त की जाती हैं । इस दीर्घकालीन ऋण की लागत प्रत्याय की वह

न्यूनतम दर होती है जो ऋण पूँजी द्वारा वित्त विनियोजन पर समता अंशधारियों की आय को अपरिवर्तित रखने के लिए अवश्य अर्जित की जानी चाहिये । इन ?ण पत्रों पर देय ब्याज दर ही ऋण पूँजी की लागत होती है, किन्तु इसकी सही गणना हेतु इस ब्याज की राशि का संबंध ऋण पूँजी के निर्गमन से प्राप्त **शुद्ध राशि (Net Proceed)** से स्थापित करना चाहिए । प्राप्त शुद्ध राशि की गणना में दो तत्वों का ध्यान रखा जाता है :-

i. **ऋणपत्रों का निर्गमन मूल्य** : ऋणपत्रों को (i) सम मूल्य (At Per) अथवा प्रीमियम (Premium) पर निर्गमित किया जा सकता है ।

ii. **निर्गमन की लागतें-** निर्गमन लागतों से आशय ऋण प्राप्त करने की लागतों से है इनमें अभिगोपन कमीशन, दलाली, प्रविवरण की छपाई, डाक व्यय, मुद्रांक शुल्क, विज्ञापन आदि के व्यय सम्मिलित होते हैं ।

प्राप्त शुद्ध राशि की गणना निम्न प्रकार की जायेगी :

प्राप्त शुद्ध राशि
- सम मूल्य पर = सम मूल्य – निर्गमन लागत
- प्रीमियम पर = सम मूल्य + प्रीमियम – निर्गमन लागत
- बट्टे पर = सम मूल्य – बट्टा – निर्गमन लागत

ऋण शोधन अवधि के अनुसार दो प्रकार का हो सकता है, एक **चिरस्थायी ऋण (Redeemable Debt Perpetual Debt)** तथा द्वितीय **शोध ऋण (Redeemable Debt)** चिरस्थायी ऋण वह होता है जिसका संस्था के जीवनकाल में भुगतान नहीं किया जाता है जबकि शोध्य ऋण वह होता है जिसका पूर्व निर्धारित अवधि के बाद भुगतान करना होता है । ऋण पूँजी की लागत इन दोनों प्रकार के ऋणों के सम्बन्ध में ज्ञात की जा सकती है ।

अ. अशोधनीय या चिरस्थायी ऋण की लागत (Cost of Perpetual Debt):

Kd(Before tax) =

जबकि

Kd= ऋण की लागत (Cost of Capital)

R = वार्षिक ब्याज (Annual Interest)

NP = प्राप्त शुद्ध राशि (Net Proceeds.).

कर समायोजन (Tax Adjustment)

ऋण पूँजी पर देय ब्याज आयकर अधिनियम के अनुसार स्वीकार्य व्यय होता है जो कर की दर के अनुरूप बचत प्रदान करता है, करके रूप में यह बचत तभी संभव है जबकि उपक्रम को लाभ हो । हानि की स्थिति में ऋण पूँजी की लागत कर से पूर्व या कर के पश्चात् एक ही तरह की होती है । अत: ऋण पूँजी की प्रभावी लागत ज्ञात करने के लिए कर-पूर्व लागत को कर पश्चात् लागत में निम्न सूत्र की सहायता से परिवर्तित करेंगे:

Kd (after Tax) =Kd (Before Tax) (1-Tax Rate)

Kd (after Tax) = (1-T) R/NP x 100

Illustration 1

Rsm Ltd. Issues 1,00,000 8% perpetual debentures @ 10 each at a discount of 5% The cost flotation are 2.5% The rate of tax and applicable to the company is 35% Compute the of debt capital before tax and after tax.

राम लिमिटेड 8% वाले 1,00,000 ऋण अशोधनीय ऋण पत्र 10% रू. प्रति ऋण पत्र 5% बट्टे पर निर्गमित करती है । निर्गमन की लागत 2.5% है । कम्पनी पर लागू कर की दर 35% है, ऋण पूँजी की कर पूर्व तथा कर के बाद की लागत ज्ञात कीजिये ।

Solution :

Kd (before Tax) = R/NP x 100

=80000/925000 x 100 = 8.648%

Kd (after Tax) = Kd (Before tax) (1-T)

=8.648 (1-35)

=8.648 (0.65)

= 5.63%

i. Calculation of Net Proceed -

		Rs
Total value of Debentures		10,00,000
Less: I. Discount @ 5%	50,000	
Flotating charges 2.5	25,000	75,000
Net proceeds		9,25,000

ii. Interest = 10, 00,000 x $\frac{8}{100}$ = Rs.80,000

Illustration: 2

A company has 8 % perpetual debt Rs. 2,00,000. The tax rate is 50% determine the cost of capital (before tax as well as after tax) assuming the debt is issued at (i) per, (ii) 10% discount and (iii) 10% premium.

एक कंपनी के पास 8% अशोधनीय ऋण 2,00,000 रू. का है । कर की दर 50% है । ऋण पूँजी की लागत की गणना (कर पूर्व एवं कर पश्चात्) कीजिये, यदि ऋण पत्रों का निर्गमन (i) सममूल्य पर (ii) 10% बट्टे पर (iii) 10% प्रीमियम पर किया है ।

Solution:

i. Debt issued at par:

Kd (before tax) = R/NP x 100तथा

Kd (after tax) = Kd (before tax) (1–T)

Kd(before tax) = 16000/2,00,000 x 100 = 8%

Kd(after tax)=16000/2/00/000 (1–0.50) x 100 =4%

ii. Debt issued at 10% Discount :

Kd(before tax) = 16000/1/800/000x 100=8.89% approx.
Kd (after tax)= 16000/1/80/000 (1–0.50) x 100= 4.4445%

iii. Debt issued at par:

Kd(before tax) = 160000/2/20/000 (1–0.50) x 100= 3.636%

ब. शोधनीय ऋण पूँजी की लागत (Cost of Redeemable Debt Capital) सामान्यतया ऋण-पत्रों के निर्गमन पर प्राप्त शुद्ध राशि एवं उनकी परिपक्वता पर चुकाई जाने वाली राशि में अंतर पाया जाता है । अंतर की इस राशि में ऋण-पत्रों की अवधि का भाग देकर ऋण-पत्रों पर प्रतिवर्ष देय व्याज की राशि में जोड़ा जाता है ताकि औसत पूँजी पर ऋण-पूँजी की लागत ज्ञात की जा सके । औसत पूँजी की गणना शुद्ध राशि व परिपक्वता पर देय राशि में दो का भाग देकर की जाती है ।

$$Kd\ (Before\ tax) = \frac{R + \left[\frac{MV - NP}{n}\right]}{\left[\frac{MV + NP}{2}\right]} \times 100$$

$$Kd\ (Before\ tax) = \frac{(1-T)\left[R + \left(\frac{MV - NP}{n}\right)\right]}{\left[\frac{MV + NP}{2}\right]} \times 100$$

जबकि:

Kd= ऋण पूँजी की लागत (Cost of debt)

MV= ऋण की परपक्वता पर देय मूल्य (Maturity value of debt)

NP= प्राप्त शुद्ध राशि (Net Proceeds)

n= परिक्वता की अवधि (Number of years to maturity)

R= वार्षिक देय ब्याज (Annual interest payment)

Illustration:3

Compute the after tax cost of 12% debentures from the following data, which are redeemable after 8 years .

निम्न समंकों से 12% ऋण पत्रों की कर पश्चात् लागत ज्ञात कीजिये जिनका शोधन 8 वर्ष बाद होगा ।

निर्गमित ऋण पत्रों की संख्या (No. of Debentures issued)	10,000
अक्रित मूल्य (Factore Value)	100
निर्गमन मूल्य (Issue Price).	95
शोधनीय मूल्य (Redemable Price)	105
कुल निर्गमन खर्चे (Total issue Expenses)	10,000
कर की दर (Tax Rate)	35%

Solation:

$$Kd\ (after\ tax) = \frac{\left[R + \frac{MV - NP}{n}\right]}{\frac{MV + NP}{2}} \times 100 \times (1 - T)$$

$$= \frac{12 + \left[\frac{105 - 94}{8}\right]}{\left(\frac{105 + 94}{2}\right)} \times 100 \times (1 - 0.35)$$

$$= \frac{12 + 1.375}{99.5} \times 100 \times 0.65 = 8.74\%$$

Calculation of Net Proceed	**Rs**
Issue Price per debenture	95
Less : Issue expenses per debenture	1
Net Proceed per debenture	94

Issue expenses per debenture = Total Issue Expenses/ No. ofDebentures 10,000/10,000 = Re. 1

Illustration 4:

A Ltd. Is deciding to issue Rs. 10v lakhs 10% debentures of Rs. 500 each redeemable after 10 years. The cost of issue of estimated to be as follows. (i) Underwriting commission 1% (ii) Brokerage 0.5% (iii) Printing and other expenses Rs. 5000.

Assuming corporate tax rate 50% calculate before and after tax cost of debt capital if debentures are issued (i) at psr (ii) at 10% (iii) Printing and other discount.

A लिमिटेड 10 लाख रू. के 500 रू. मूल्य के 10% ऋण पत्र निर्गमित करना चाहती है । ऋण पत्रों का शोधन 10 वर्ष बाद सममूल्य पर होगा । निर्गमन के व्यय निम्न प्रकार होने की आशा है (i) अभियोजन कमीशन 1% (ii) दलाली 0.5%(iii) छपाई व अन्य व्यय 5000 रू. ।

ऋण पूँजी की लागत (कर पूर्व कर पश्चात् ज्ञात कीजिये यदि निगम कर की दर 50% हो एवं ऋण पत्रों का निर्गमन (i) सममूल्य (ii)10% प्रीमियम (iii) 10% बट्टे पर किया हो ।

Solution

Calculation of Net Proceeds per Debenture

	At Par Rs.	At Premimum Rs	At Discount Rs
Face Value of debentures	500	500	500
Add: Permium @ 10 %	-	50	-

Less: Discount @ 10%	-	-	50
Less Expenses: **Rs.**	500	550	450
i. Underwirting Commission 5			
ii. Brokerage 2.50			
iii. Printing and other expenses	10	10	10
Net Proceeds	490	540	440

Caclculation of Cost of Debt Capital :

1. **Debentures issued at par**

(a) kd (Before tax) $= \dfrac{R + \left(\dfrac{MV - NP}{n}\right)}{\left(\dfrac{MV + NP}{2}\right)} \times 100$

Kd (before tax) $= \dfrac{50 + \left(\dfrac{500 - 490}{10}\right)}{\left(\dfrac{500 + 490}{2}\right)} \times 100$

$\dfrac{50 + 1}{495} \times 100 = \dfrac{51}{495} \times 100$

Kd (before tax) = Kd (befpre tax) x (1-T)

(b) Kd (after tax) = kd (before tax) x (1-T)

= 10.30 x (1-0.5)

Kd (after tax) = 5.152%

2. **Debentures issued at Premimum**

a. Kd (before tax)

$= \dfrac{50 + \left(\dfrac{500 - 540}{10}\right)}{\left(\dfrac{500 + 540}{2}\right)} \times 100$

$= \dfrac{50 + 4}{520} \times 100$

$= \dfrac{46}{520} \times 100$

Ka (before tax) = 8.846%

b. Kd (after tax) = Kd (before tax) x (1-T)

= 8.846% (1-0.5)

= 4.423 %

3. **Debenture issue at discount :**

a. Kd (after tax) =

$$= \frac{50 + \left(\frac{500-440}{10}\right)}{\left(\frac{500+440}{2}\right)} \times 100$$

$$= \frac{50+6}{470} \times 100$$

$$= \frac{56}{470} \times 100$$

Kd (after tax) = 11.91%

b. Kd (after tax) = Kd (before tax) x (1-T)

= 11.91 % (1-0.5)

Kd (after tax) = 5.957%

II. **पूर्वाधिकार या अधिमान अंश पूँजी की लागत (Cost of preference share capital)**

पूर्वाधिकार अंश स्थायी तथा स्थिर आय वाली प्रतिभूतियाँ हैं जिन पर दिये जाने वाले लाभांश की दर पूर्व निश्चित होती है तथा जिन्हें कम्पनी के समापन पर समता अंशधारियों से पूर्व पूँजी के पुर्नभुगतान का अधिकार रहता है । यद्यपि इन अंशों पर लाभांश भुगतान करना प्रबंधकीय दायित्व नहीं है । जैसा कि ऋणपत्रों की दशा में होता है फिर भी इनका बेचान तब तक नहीं किया जाता है जब तक कि लाभांश भुगतान की पूरी संभावना न हो जाये । इन अंशधारियों द्वारा अपेक्षित लाभांश ही इनकी लागत होती है । पूर्वाधिकार अंश दो प्रकार के होते हैं -

A. अशोधनीय पूर्वाधिकार अंश (Irredeemable preference shares)

B. शोधनीय पूर्वाधिकार अंश (Redeemable preference shares)

पूर्वाधिकार अंशों पर चुकाया जाने वाले लाभांश आयकर अधिनियम के अन्तर्गत स्वीकृत व्यय नहीं माना गया है । अत: इनकी लागत प्राय: कर के पश्चात् ही ज्ञात की जाती है ।

पूर्वाधिकार अंश पूँजी की लागत की गणना निम्न सूत्रों की सहायता से की जा सकती है :-

A. अशोधनीय पूर्वाधिकार अंश की लागत (Cost of Irredeemable preference shares)

Kp (after tax) = DPS/NP x 100

जबकि:

DPS = प्रति अधिमान अंश देय लाभांश (Dividend Payable per Preference Share)

NP = शुद्ध प्राप्त राशि (Net Proceed)

KP = अधिमान अंश की लागत (Cost of Preference Shares)

KP = (before tax) = KP (before tax)

Illustration: 5

X LTD. Wishes to issue 1000, 9% preference shares of Rs. 100 each. The other expenses of capital issue are: underwriting expenses 2.5% of Face Value, Printing etc. Rs.500.

Calculation cost of capital if issue has been made – (a) at par , (b) at discount of Rs. 5 per share, and (c) at a premium of Rs. 6 per share.
What will be the effect on cost of capital if present corporation tax on its earnings comes to 50%?

X लिमिटेड 100 रू0 वाले 9% 1,000 अधिमान अंश निर्गमित करना चाहती है । पूँजी व्यय इस प्रकार है - अभिगोपन कमीशन अंकित मूल्य का 2.5% छपाई आदि 500 रू. ।

पूँजी लागत ज्ञात कीजिये यदि निर्गमन - अ) सममूल्य पर (ब) 5 रू. प्रति अंश बट्टे पर तथा (स) 6 रू. प्रति अंश प्रीमियम पर किया गया हो ।

यदि अर्जनों पर निगम कर की दर 50 हो तो पूजी लागत पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

Solution:

a. **Cost of capital if shares are issued at par**

Kp (before tax) = DPS/NP x 100

DPS = Rs. 9; NP =100-3 Rs. 97

Substituting these values,

Kp (before tax) Kp (after tax) x 100= 9.278%

Kp (before tax)= Kp (after tax) x (1/1-T)

Kp (before tax) =9.278 x (1/1-50= 18.556%

b. **Cost of Capital if shares are issued at discount of R.5 per share**

Kp (after tax) = 9.783 x (1/1-50)

=9.783x2= 19.566%

c. **Cost of Capital if shares are issued at premium at premium of Rs. 6 per share**

Kp (after tax) = 9/100+6-3 x 100=9/103x 100=8.737%

Kp(before tax) = (8.737x1/1-50) = 8.737 x 2=17.474%

B. शोधनीय पूर्वाधिकार अंशों की लागत (Cost of redeemable preference shares)

कम्पनी अधिनियम के प्रावधान के अनुसार वर्तमान में अशोधनीय अधिमान अंशों का निर्गमन नहीं किया जा सकता है । व्यवहार में भी शोधनीय अधिमान अंशों का ही निर्गमन किया जाता है । इस प्रकार के अंशों का शोधन परिपक्वता तिथि पर किया जाता है । ऐसी अधिमान अंश पूँजी की लागत शोध ऋणपत्रों की लागत की भाँति ही ज्ञात की जाती है । केवल ब्याज (R) के स्थान पर लाभांश (D) का प्रयोग किया जाता है । इसके लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जा सकता है -

$$\text{Kp (after tax)} = kp(after\ tax) = \frac{D + \left(\frac{MV - NP}{n}\right)}{\left(\frac{MV + NP}{2}\right)} \times 100$$

जबकि :

Kp = अधिमान अंश पूँजी की लागत (Cost of preference share)

MV = अधिमान अंशों का परिपक्वता मूल्य (Maturity value of preference share)

NP = प्राप्त शुद्ध राशि (Net Proceeds)

n= परिपक्वता अवधि (Number of years to maturity)

DPS or D प्रति अंश लाभांश (Dividend per share)

Kp (before tax) = Kp(after tax) x 1/1–Tax Rate (T)

Illustration: 6

Sakshi LTD. Has 8% redeemable preference share of Rs. 10,00,000 @ 1000 each , which are redeemable at the end of 10th years. These were issued after allowing 2.5% underwriting commission. Calculate the cost of preference share capital. Assume 50% tax rate.

साक्षी लिमिटेड 10,00,000 रू0 मूल्य के 8% शोधनीय अधिमान अंश (प्रति अंश 1000 रू.) निर्गमित करती है जिनका शोधन 1०वे वर्ष के अंत में होता है । इनका निर्गमन 2.5% अभिगोपन कमीशन पर किया गया है । अधिमान अंश पूँजी की लागत ज्ञात कीजिये । कर की दर 50% मान लीजिये ।

Solution:

$$\text{(a)Kp (after tax)} = \frac{D + \frac{[MV - NP]}{n}}{\frac{[MV + NP]}{2}} \times 100$$

$$\text{Kp (after tax)} = \frac{80 + \frac{[1000 - 975]}{10}}{\frac{[1000 + 975]}{2}} \times 100$$

$$\text{Kp (after tax)} = \frac{80 + 2.5}{987.50} \times 100$$

KD (after tax) = 8.35%

Kp (before tax) = Kp (after Tax) ×1/I–T

= 8.35×[1/1.05]

= 16.7%

III. समता अंश पूँजी की लागत (Cost of Equity Capital ऋण पूँजी तथा पूर्वाधिकार अंश पूँजी की लागत की तुलना में समता अंश पूँजी की लागत की गणना करना अधिक कठिन होता है । ' यह कठिनाई इसलिए होती है कि इन पर देय लाभांश की दर पूर्व निश्चित

नहीं होती है न इन पर लाभांश देना अनिवार्य होता है । इसका यह तात्पर्य नहीं होता है कि यह पूँजी कम्पनी के लिए लागत रहित होती है । प्रत्येक समता अंशधारी अपनी कम्पनी से कुछ न कुछ प्रत्याय की आशा करता है । यह आशान्वित प्रत्याय ही समता अंश पूँजी की लागत कहलाती है । उपर्युक्त अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि उपक्रम की लाभप्रदता कम से कम इतनी तो हो कि वह समता अंशधारियों को न्यूनतम अपेक्षित लाभांश दे सके ।

नये समता अंशों का निर्गमन होने पर नये अंशधारियों को विद्यमान अंशधारियों के साथ लाभांश एवं अवितरित लाभों में आनुपातिक हिस्सा प्राप्त होता है । इससे विद्यमान अंशधारियों की प्रति अंश प्राप्तियाँ कम हो जाती है फलत: अंशों का बाजार मूल्य भी कम हो जाता है । अत: नये समता अंशों का निर्गमन करते समय यह देखना आवश्यक है कि अंशों के विनियोजन से कम्पनी को कम से कम इतनी आय अवश्य प्राप्त हो कि अंशों के मूल्यों को अपरिवर्तित रखा जा सके। यह अपेक्षित न्यूनतम दर ही समता अंश पूँजी की लागत होती है । सामान्यत: समता अंशधारी कम्पनी से निम्न अपेक्षाएं रखते हैं:-

i. एक निश्चित प्रतिशत लाभांश प्रतिवर्ष नकद रूप में प्राप्त हो सके ।
ii. प्रति अंश आय में निरन्तर रूप से वृद्धि होती रहे ताकि भविष्य में अधिक लाभांश मिल सके ।
iii. प्रतिधारित लाभों में से भले ही तत्काल रोकड़ रूप में प्राप्ति न हो, किन्तु उसके पूँजी विनियोग में वृद्धि होती रहे, ताकि पूँजी लाभ में वृद्धि हो सके ।

पहले से निर्गमित समता अंश पूँजी की लागत निर्धारण हेतु निम्न विधियों. का प्रयोग किया जाता है :

A. पहले से निर्गमित समता अंश पूँजी की लागत निर्धारण हेतु निम्न विधियों का प्रयोग किया जाता है:

1. **लाभांश प्राप्ति विधि (Divided Yield Method)** इसे लाभांश / मूल्य अनुपात विधि (Divided/Price Rate Method) भी कहते हैं । यह विधि इस मान्यता पर आधारित है कि जब एक विनियोक्ता किसी कम्पनी के अंशों में अपनी बचतों को विनियोजित करता है तो कम से कम बाजार में प्रचलित प्रत्याय के बराबर उसे भुगतान अवश्य प्राप्त होगा । इसलिए इन अंशों की लागत ज्ञात करने के लिए प्राप्त लाभांश को अंश के बाजार मूल्य से पंजीकृत किया जाता है । इसे सूत्र के रूप में निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है

   Ke = $ke = \frac{DPS}{MP} \times 100$

जबकि.

Ke = समता पूँजी की लागत (Cost of Equity Share Capital)
DPS = प्रति अंश नगद लाभांश (Current Cash of Dividend per share)
MP = वर्तमान बाजार मूल्य (Current Market price per share)

प्रति अंश लाभांश एवं बाजार मूल्य की गणना निम्नानुसार की जाती है -

a. **प्रति अंश लाभांश की गणना -** लाभांश प्राप्ति विधि से समता पूँजी की लागत ज्ञात करने के लिए प्रति अंश लाभांश की मात्रा की गणना जरूरी है । यह गणना वर्तमान कम्पनियों की दशा में गत कुछ वर्षा की लाभांश दरों के आधार पर आसानी से की जा सकती है । गत वर्षों की दरों का औसत लेकर उनमें भविष्य में संभावित महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों के आधार पर समायोजन कर लिया जाता है । नयी स्थापित कम्पनियों की दशा में गत वर्षा के लाभांश का कोई लेखा नहीं होता है । अत: समान व्यावसायिक कार्य में संलग्न उपक्रमों के लाभांश या कम्पनी के चालू वर्ष के लाभांश के आधार पर गणना की जाती है ।

b. **प्रति अंश बाजार मूल्य की गणना -** यह एक महत्त्वपूर्ण किन्तु मुश्किल कार्य है क्योंकि अंशों के बाजार मूल्य में प्रतिदिन उतार-चढ़ाव होता रहता है । जो अंश स्कंध विनिमय में सूचीबद्ध होते हैं उनका औसत बाजार मूल्य या गणना की तिथि का बाजार मूल्य लिया जा सकता है, किन्तु जिन अंशों का सूचीकरण नहीं होता है, उनके बाजार मूल्य की गणना कठिन कार्य है । इस हेतु इन अंशों का बाजार में बेचने पर प्राप्य धनराशि के आधार प्रति अंश बाजार मूल्य ज्ञात किया जाता है ।

Illustration: 7

Yash Ltd. Has issued 1,000 equity shares of Rs. 100 each as full paid. The present market value of these share is Rs.150 per share. The company paid a dividend of Rs. 15 per share. Find out the cost equity capital.

यह लिमिटेड ने 100 रू. वाले 1000 पूर्ण प्रदत्त समता अंशों का निर्गमन किया है । अंशों का वर्तमान बाजार मूल्य 150 रू. प्रति अंश है । कम्पनी ने 15 रू. प्रति अंश की दर से लाभांश चुकाया है । समता अंश की लागत की गणना कीजिये।

$$Ke = \frac{DPS}{MP} \times 100 = \frac{15}{150} \times 100 = 10\%$$

सीमाएँ - लाभांश प्राप्ति विधि की अनेक सीमाएँ हैं जिनमें से प्रमुख निम्न हैं :

i. इस विधि में प्रतिधारित अर्जनों (Retained Earnings) के उपयोग से कमाये जाने वाले लाभों की उपेक्षा की जाती है जबकि इनके उपयोग से अंशों पर लाभांश तथा उनका बाजार मूल्य बढ़ता है । जब बढ़े हुए मूल्यों पर इन अंशों को बेचा जाता है तो अंशधारी को पूंजीगत लाभ प्राप्त होता है । इस पूंजीगत लाभ को लाभांश दरों का परिणाम मानना अनुपयुक्त है ।

ii. यह विधि लाभांशों में वृद्धि पर कोई ध्यान नहीं देती है ।

iii. समता अंशों के मूल्य में अधिक उच्चावचन होता है अत: इनके सही बाजार मूल्य का अनुमान लगाना कठिन है ।

2. **अर्जन प्राप्ति विधि : (Earning Yield Method)** कम्पनी के समस्त व्ययों को चुकाने के उपरान्त शेष आय पर समता अंशधारियों का अधिकार होता है, इसलिए केवल लाभांश के आधार पर लागत की गणना उचित प्रतीत नहीं होती । अत: इस विधि में समता अंश पूँजी की लागत अंशों की भावी प्रत्याशित आय को उसके बाजार मूल्य से संबंधित करके

निकाली जाती है । इसलिए इस विधि को आय / मूल्य अनुपात विधि (Earning Price Rate Method or E/P Ratio Method) भी कहते हैं। सूत्र रूप में इसे अंग्राकित प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है -

$$Ke = \frac{EPS}{MP} \times 100$$

जबकि

Ke = समता अंश पूँजी की लागत (Cost of Equity Capital)

EPS = प्रति अंश अर्जन (Earning per Share)

MP = प्रति अंश बाजार मूल्य (Market Price per Share)

प्रति अंश अर्जन की गणना विद्यमान कम्पनी की दशा में कुछ वर्षों की औसत प्राप्तियाँ लेकर की जा सकती है, जबकि नयी कम्पनी होने पर उसी प्रकार के व्यवसाय में संलग्न कम्पनी की प्राप्तियों के आधार पर की जायेगी ।

Illustration 8:

The market price of a share of Ram Ltd. Is Rs. 50(face value Rs. 10) earning per share Rs. 8 Calculation the cost equity share capital.

राम लिमिटेड के 10 रू. सम मूल्य वाले समता अंश का बाजार मूल्य 50 रू. है और प्रति अंश अर्जन 8 रू. है । समता अंश पूंजी की लागत की गणना कीजिये ।

Ke = EPS/MP x 100

=8/50 x 100=16% per share

इस विधि की निम्नलिखित सीमाएँ हैं :-

i. इस विधि की प्रमुख मान्यता यह है कि संस्था ऋण का प्रयोग नहीं करती है एवं लाभांश भुगतान अनुपात शत प्रतिशत है अर्थात् आय का कोई भाग प्रतिधारित नहीं किया जाता है, जबकि ऐसा संभव नहीं होता है ।

ii. समता अंशों के मूल्यों में उतार चढ़ाव केवल अर्जनों के कारण ही नहीं होते हैं, पूँजी की सुरक्षा, जोखिम, प्रबन्धकों की नीति, संभावित भविष्य आदि अनेक कारण भी प्रभाव डालते हैं ।

iii. शुद्ध प्रत्याशित अर्जनों का अनुमान लगाना कठिन है ।

iv. इस विधि में प्रति अंश अर्जन राशि की स्थिरता पर जोर दिया जाता है जबकि वास्तव में प्रति अंश अर्जन स्थिर नहीं रह सकती है ।

3. लाभांश प्राप्ति तथा लाभांश में वृद्धि विधि (Divided Yield Plus Growth in Divided Method)

यह विधि इस मान्यता पर आधारित है कि समता अंशधारी केवल वर्तमान लाभांश दर से ही संतुष्ट नहीं होते हैं बल्कि वे उसमें प्रतिवर्ष वृद्धि की आशा करते हैं । यदि ऐसा नहीं होता है तो कोई भी व्यक्ति समता अंशों में विनियोग नहीं करना चाहेगा । इस विधि

में समता अंश पूँजी की लागत कम्पनी की वर्तमान लाभांश दर में संभावित भावी वृद्धि का समायोजन करके ज्ञात की जाती है ।

सूत्र रूप में

$$Ke = \frac{DPS}{MP} \times 100 + G$$

जबकि

Ke = समता अंश पूँजी की लागत (Cost of equity capital)

DPS = प्रति अंश लाभांश दर (Current Cash Dividend per share)

MP = प्रति अंश बाजार मूल्य (Market price per share)

G = लाभांश में वृद्धि दर (Growth Rate in Dividend)

उदाहरण के लिए यदि किसी कम्पनी के अंश का सममूल्य 100 रू0 प्रति अंश तथा बाजार मूल्य 16० रू. प्रति अंश है । कम्पनी ने 27 रू. प्रति अंश लाभांश चुकाया है । यदि लाभांश में 6% वार्षिक वृद्धि की संभावना हो तो समता पूँजी की लागत निम्न प्रकार होगी :-

$$Ke = \frac{DPS}{MP} \times 100 + G$$

= 27/180 ×100 + 6

= 15 + 6= 21%

व्यवहारिक दृष्टि से अंश पूँजी की लागत ज्ञात करने की यह सबसे अच्छी विधि मानी गयी है । इजरा सोलोमन. गॉर्डन, शेपिरो आदि विद्वानों ने भी इस विधि का समर्थन किया है अर्जन प्राप्ति विधि की अपेक्षा इसमें विशिष्ट बात यह है कि इसमें वर्तमान के साथ भविष्य के अनुमानों को भी महत्व दिया जाता है, किन्तु इस विधि के व्यावहारिक प्रयोग में प्रमुख कठिनाई लाभांश में वृद्धि की सही दर निर्धारित करने में आती है ।

4. **प्राप्त आय विधि (Realised Yield Method)** इस विधि के अन्तर्गत समता पूँजी की लागत अंशधारी द्वारा अपने विनियोग (समता अंशों) पर गत वर्षों में वास्तव में प्राप्त आय अर्थात लाभांश के आधार पर ज्ञात की जाती है । इस प्राप्त आय को वर्तमान मूल्य कारक से अपहारित किया जाता है और तत्पश्चात् इसकी तुलना विनियोग के मूल्य से की जाती है। इस विधि में यह माना जाता है कि 'इतिहास स्वयं को दोहराता है' अत: व्यवसाय के गत वर्षों के कार्यो के आधार पर भविष्य की परिस्थितियों का अनुमान लगाया जा सकता है । यह विधि निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है:-

   i. व्यवसाय में लाभांश एवं वृद्धि दर में स्थिरता है ।
   ii. व्यवसाय में जोखिम सदैव समान रहती है ।
   iii. जोखिम को वहन करने के लिए अंशधारी उसी प्रत्याय दर की निरन्तर/अपेक्षा करता है ।
   iv. अंशधारी की वास्तव में प्राप्त आय एवं पुनर्विनियोजन अवसर दर समान है, किन्तु उक्त मान्यताओं एवं गणना विधि कठिन होने के कारण इस विधि का प्रयोग कम किया जाता है ।

B. **नये निर्गमित समता अंशों की लागत (Cost of Newly Issued Equity Shares)** जब एक कम्पनी नये अंश निर्गमित करती है तब प्रति अंश सम्पूर्ण बाजार मूल्य प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि नये निर्गमन पर कम्पनी की कई प्रकार के व्यय करने पड़ते हैं । इन व्ययों में अभिगोपन, कमीशन, दलाली तथा अन्य खर्चे सम्मिलित होते हैं । अत: प्रति अंश शुद्ध मूल्य की गणना संभावित बाजार मूल्य में से सभी निर्गमन के व्यय घटाकर की जाती है । तत्पश्चात् प्रति अंश लाभांश या प्रति अंश अर्जन (EPS) में प्राप्त शुद्ध राशि का भाग देकर समता अंशों की लागत ज्ञात की जा सकती है ।

सूत्र :

$$Ke = \frac{DPS}{NP} \times 100 \ or \ \frac{EPS}{NP} \times 100 \ or \ \frac{DPS}{NP} \times 100 + G$$

जबकि, NP = प्रति अंश प्राप्त शुद्ध राशि (Net Proceeds per share)

Illustration: 9

Maua Limited is thinking of raising funds by the issuance of equity capital. The current market price of the company's share is Rs. 21. The company is expected to pay a dividend of Rs. 2 per share next year. The flotation cost per share is Rs. 1. The company has paid dividend in past years as follows:

माया लिमिटेड नयी समता पूँजी के निर्गमन द्वारा कोष प्राप्ति पर विचार कर रही है । कम्पनी के अंश का वर्तमान बाजार मूल्य 21 रू. है । कम्पनी द्वारा अगले वर्ष 2 रू. प्रति अंश लाभांश दिये जाने की संभावना है । निर्गमन व्यय प्रति अंश 1.00 रूपये है । कम्पनी ने गत वर्षों में निम्न दर से लाभांश भुगतान किया है -

Year	2004	2005	2006	2007	2008
Dividend per share	Rs. 1.00	1.10	1.21	1.33	1.464

Calculate the cost of new issue.

नये निर्गमन की लागत ज्ञात कीजिये ।

Solution :

गत वर्षों की लाभांश दर का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि इसमें प्रतिवर्ष 10% (चालू वर्ष की दर में गत वर्ष की दर का भाग देने पर) की वृद्धि होती जा रही है । अत: भविष्य में भी लाभांश की वृद्धि दर 10% मानते हुए पूँजी की लागत लाभांश प्राप्ति तथा लाभांश वृद्धि दर विधि से ज्ञात की जायेगी -

$$Ke = \frac{DPS}{NP} \times 100 + G = \frac{2}{21-1} \times 100 + 10$$

= 2/20 × 100+10 =10+10=20%

iv. **प्रतिधारित अर्जनों की लागत (Cost of Retained Earnings):** कम्पनी जो शुद्ध लाभ अर्जित करती है उसके कुछ भाग को अपने अंशधारियों में लाभांश वितरण हेतु उपयोग

करती है तथा शेष संचयों में हस्तान्तरित कर देती है । इसे प्रतिधारित अर्जन कोष (Retained Earnings Fund) कहा जाता है ।

इस प्रकार के कोषों के लिए कम्पनी को कोई लागत नहीं चुकानी पड़ती तथा न किसी प्रकार का कोई व्यय करना पड़ता है, इसलिए इसे लागत रहित पूँजी मानते हैं, किन्तु यह सत्य नहीं है । यद्यपि इसकी कोई स्पष्ट लागत नहीं होती किन्तु इसे पूँजी की अवसर लागत (Opportunity Cost) होती है ।

वेस्टन एवं ब्रिंघम' के शब्दों में "प्रतिधारित अर्जनों की लागत या प्रत्याय जिसे प्रतिधारित आय पर आधारित विनियोगों पर उपार्जित किया जाना आवश्यक है, प्रत्याय की उस दर के बराबर होती है जो कि विनियोजक अपनी अंश पूँजी पर प्राप्त करने की आशा रखता है । "

यदि कम्पनी इस आय को संचित करने के ब जाय अंशधारियों में लाभांश के रूप में वितरित कर देती है तो अंशधारी इसे अन्यत्र कहीं विनियोजित करके कुछ आय प्राप्त कर लेते । इसलिए प्रत्येक अंशधारी इन प्रतिधारित या रोकी गई अर्जनों पर कम्पनी रो उतनी आय की अपेक्षा करता है जितनी उसे इसके प्राप्त होने पर वैकल्पिक विनियोजन से उत्पन्न होने वाली आय से वंचित रहना पड़ता है । किन्तु इससे निम्नलिखित समायोजन करने आवश्यक होंगे -

1. प्रत्येक अंशधारी को लाभांश के रूप में प्राप्त आय पर कर देना होता है । फलत: अंशधारी द्वारा विनियोजित की जाने वाली राशि आयकर दायित्व से कम हो जायेगी । किन्तु कम्पनी के विभिन्न अंशधारियों की आयकर सीमा भिन्न-भिन्न होने के कारण सभी के लिए अनुमानित औसत व्यक्तिगत आयकर दायित्व मानकर गणना की जाती है ।
2. अंशधारियों को विनियोजन करते समय दलाली भी चुकानी पड़ती है, इससे भी विनियोजित की जाने वाली राशि तथा इस पर प्राप्त होने वाली अपेक्षित आय, दलाली के अनुपात में कम हो जाती है ।
3. लाभांश वितरण के फलस्वरूप अंशधारी द्वारा पूर्वधारित अंशों के बाजार मूल्य में भी वृद्धि हो जाती है और उसे अंश के बाजार मूल्य से घटाया जायेगा ।

अत: प्रतिधारित अर्जनों की लागत आकलित करते समय अपेक्षित लाभांश की दर (समता पूँजी की लागत) में व्यक्तिगत आयकर व दलाली व पूँजी लाभ कर समायोजन कर निम्न में से किसी भी सूत्र का प्रयोग किया जा सकता है:-

$$Kr = Ke\,(1-Tp)(1-B) \quad \text{.....} \quad (1)$$

$$Kr\,\frac{D\left(1-T_p\right)\left(1-B\right)}{MP}\times 100 \quad \text{.....} \quad (2)$$

$$Kr\left[\frac{D}{MP}\times 100+G\right]\times\left(1-T_p\right)\left(1-B\right) \quad \text{.....} \quad (3)$$

$$Kr=\frac{D\left(1-T_p\right)\left(1-B\right)}{MP}\times 100 \quad \text{.....} \quad (4)$$

$$\text{अथवा}\; Kr=\frac{DPS\left(1-T_p\right)\left(1-B\right)}{MP\left(1-T_0\right)}\times 100 \quad \text{.....} \quad (5)$$

जबकि;

Kr = प्रतिधारित अर्जनों की लागत (Cost of Retained Earnings)

Ke = समता पूँजी की लागत

TP = व्यक्तिगत आय पर आयकर दर (Personal tax rate)

B = लाभांश विनियोग पर दलाली (Brokerage)

MP = प्रतिअंश बाजार मूल्य (Market rate in dividend)

D or E = अंशधारियों की प्रति अंश अपेक्षित लाभांश या अर्जन दर (Shareholders expected rate of dividend or Earnings per share)

G = लाभांश वृद्धि दर (Growth rate individual shareholder)

Tc = अंशधारी पर लागू व्यक्तिगत पूँजी लाभ पर कर की दर (Capital gain tax rate applicable to individual shareholder)

इस प्रकार प्रतिधारित आय की गणना अंशधारियों की औसत आय कर दर के निर्धारण पर ही संभव है, किन्तु इस दर का निर्धारण अव्यावहारिक है, क्योंकि फर्म में हजारों अंशधारी होते हैं जिनका व्यक्तिगत आयकर दायित्व अलग-अलग होता है । अत: कुछ विद्वान प्रतिधारित आय की गणना में आयकर, कमीशन आदि के समायोजन को छोड़ देना ही उचित मानते हैं, सामान्यत: समता अंशों की पूँजी लागत दर की प्रतिधारित अर्जनों की लागत मानी जा सकती है ।

Illustration: 10

From the following information find out cost of retained earnings.

निम्नलिखित सूचना से प्रतिधारित अर्जनों की लागत ज्ञात कीजिये:

Divided Per Share	Rs. 3
Personal Income Tax Rate	30%
Market Price Per Share	Rs. 30
Brokerage on Investment of Dividend	3%

Solution:

Kr = DPS(1=Tp)(1-B)/MPx 100

= 3(1-30) (1-03)/30 x 100

= 3(.70)(1-.03/30 x 100

= 2.037/30 x 100

= 6.79%

V हास कोषों की लागत (Cost of Depreciation Funds) हास कोषों की लागत अवसर लागत होती है । यदि इन्हें संस्था अपने पास नहीं रखती तो इन्हें अंशधारियों को वापस कर दिया जाना चाहिए । अंशधारी इनका वैकल्पिक उपयोग कर आय कमा सकते हैं । अत: इसकी लागत दीर्घकालीन ऋण पूँजी की तरह निकालनी चाहिए । चूंकि हास की राशि आयकर अथवा निगम

कर के लिए स्वीकृत मद है । अत: इसकी भी लागत की गणना भी करके पश्चात् की जाती है ।

VI अल्पकालीन ऋण या साख की लागत (Cost of Short Term Loan or Credit) संस्था अल्पकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु किसी बैंक अथवा अन्य संस्था से ऋण या साख लेकर करती है उसकी भी लागत लगती है । यह लागत ऋण की राशि में ऋण प्राप्त करने के लिए किये गये व्ययों को घटकर प्राप्त शुद्ध राशि तथा ऋण पर देय व्याज के अनुपात के रूप में निकालनी चाहिए । सूत्र रूप में :-

$$K_L = \frac{Interest}{Net\ Proceeds} \times 100$$

जबकि K_L ऋण की लागत (Cost of Loan)

Illustration: 11

A Ltd. Has taken a Loan of Rs. 8000 from State Bank of India. The rate of interest on his loan is 10% per year. A Ltd. Has incurred Rs.200.00 as different expenses for this Loan. Calculation cost of this short term Loan.

A. लिमिटेड भारतीय स्टेट बैंक से 8000 रू0 का ऋण लिया है, इस पर व्याज की दर 10% प्रतिवर्ष है । इस ऋण को प्राप्त करने हेतु A लिमिटेड को 200 रू0 व्यय करने पड़े । अल्पकालीन ऋण की लागत ज्ञात कीजिये ।

Solution:

$$K_L = \frac{Interest}{Net\ Proceeds} \times 100$$

$$K_L = \frac{800}{7800} \times 100$$

K_L= 10.256%

VII. पूँजी की औसत लागत (Average Cost of Capital)

किसी भी व्यावसायिक संस्था अथवा कम्पनी की पूँजी संरचना एक ही तरह की प्रतिभूतियों से निर्मित नहीं होती है । बल्कि वह अनेक प्रकार की प्रतिभूतियों के उचित मिश्रण द्वारा निर्मित होती है । संस्था के प्रबन्धक स्वामित्व, नियंत्रण, आय आदि अनेक तत्वों को ध्यान में रखकर विभिन्न स्त्रोतों से संस्था की पूँजी प्राप्त करते हैं । समस्त पूँजी का एकत्रीकरण लागत तत्व के आधार पर ही नहीं किया जाता है । स्वामित्व कोष एवं ऋण कोष के मध्य भी उचित अनुपात बनाये रखना होता है । इसी समस्या के समाधान हेतु वित्तीय प्रबन्धकों द्वारा पूँजी की औसत लागत की धारणा विकसित की गई है । इसे पूँजी की औसत भारयुक्त लागत (Weighted Average Cost of Capital) भी कहा जाता है । पूँजी की औसत लागत को ज्ञात करने के लिए निम्न प्रक्रिया अपनाई जाती है :-

सर्वप्रथम संस्था में प्रयुक्त समस्त पूँजी की राशि को एक मानकर उसके अनुपात में विभिन्न पूँजी मदों को भार दिया जाता है । भार देने के लिए पूँजी का पुस्तक मूल्य अथवा बाजार मूल्य में से किसी एक का प्रयोग किया जाता है ।

पुस्तक मूल्य भार संस्था की कुल पूँजी संरचना में पूँजी के विभिन्न स्त्रोतों का सापेक्षिक अनुपात है । बाजार मूल्य भार, पूँजी के विभिन्न स्त्रोतों के कुल बाजार मूल्य से प्रत्येक स्त्रोत के बाजार मूल्य के अनुपात के आधार पर ज्ञात किया जाता है । सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से बाजार मूल्य के आधार पर दिये गये भार अधिक उपयुक्त माने जाते हैं क्योंकि (i) पूँजी के प्रत्येक घटक की लागत निकालने में बाजार मूल्य का प्रयोग किया जाता है। (ii) प्रतिभूति विक्रय पर वास्तविक प्राप्त राशि एवं बाजार मूल्यों में, समानता होती है किन्तु इनके निर्धारण में कई व्यावहारिक समस्यायें आती है । व्यवहार में भी पुस्तक मूल्य भारों का ही अधिक प्रयोग किया जाता है क्योंकि (i) पुस्तक मूल्य संबंधी सूचना कम्पनी के प्रकाशित लेखों से आसानी से उपलब्ध हो जाती है। (ii) प्रबंधक पूँजी संरचना संबंधी लक्ष्य निर्धारित करते समय पुस्तक मूल्य को आधार बनाते हैं (iii) प्रतिधारित अर्जनों की दशा में बाजार मूल्य के आधार पर भार देना असुविधाजनक होता है (iv) कम्पनी की जोखिम का मूल्यांकन करने के लिए ऋण समता अनुपात ज्ञात करते समय पुस्तक मूल्य को ही आधार बनाया जाता है। (v) बाजार मूल्यों में निरन्तर उच्चावचन होते रहते हैं ।

बाजार मूल्य का प्रयोग करने पर समता अंश पूँजी एवं प्रतिधारित अर्जनों का बाजार मूल्य गिटमैन की विधि द्वारा निम्नानुसार ज्ञात किया जायेगा:

Market Value of Retained Earnings=

$$\frac{\text{Market Value of Equity Capital x Book Value of Retained Earnings}}{\text{Total of Book Value of Equity and Retained Earnings}}$$

Market Value of Equity Shares =

$$\frac{\text{Market Value Equity Capital x Book Value of Equity Shares}}{\text{Total of Book Value of Equity and Retained Earnings}}$$

ii. प्रत्येक पूँजी साधन की विशिष्ट लागत अलग से ज्ञात कर ली जाती है । जिसकी विधि पूर्व में वर्णित की जा चुकी है । कर पूर्व की पूँजी लागतों का कर पश्चात् पूँजी लागतों में परिवर्तित किया जाता है ।

iii. यदि पूँजी के किसी भी साधन पर कर लगता है तो कर का भी समायोजन किया जाता है ।

iv. पूँजी के हर साधन के भार एवं लागत की गणना करने के बाद प्रत्येक साधन की लागत व भार का आपस में गुणा किया जाता है, तत्पश्चात् पूँजी की भारित औसत लागत ज्ञात करने हेतु निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है =

$$k_w = \frac{\sum XW}{\sum W} \times 100$$

जबकि

Kw = पूँजी की भारित औसत लागत (Weighted Average Cost of Capita.)

X = पूँजी के विभिन्न स्त्रोतों की लागत (Specific Cost of Sources of Capital)

W = विशिष्ट स्त्रोत को दिया भार (Weight given of Specific Sources)

Illustration : 12

कामना लिमिटेड की पूँजी संरचना निम्न प्रकार है :-

Kamna Ltd. has the following capital structure:

	Rs
Equity Share capital (4,000 share@ 100 each)	4,00,000
8% preference shares	2,00,000
10% Debentures	4,00,000
	10/00/000

The market price of the company's equity shares is Rs. 200 . It is expected that company will pay a current dividend of Rs. 20 per share which will grow at 5%per year. The tax rate may be assumed at 35%. You are required to compute the weighted average cost of capital based on existing capital structure.

कम्पनी के समता अंश का बाजार मूल्य 200 रू. है । यह आशा की जाती है कि कम्पनी 20 रूपये प्रति अंश लाभांश का भुगतान करेगी, जिसमें हमेशा 5% वृद्धि होती रहेगी । कर की दर 35% मानी जा सकती है । वर्तमान पूँजी संरचना के आधार पर पूँजी की भारित औसत लागत -की गणना कीजिये ।

Solution:

Weight Average Cost of Capital

Source	**Amount (Rs.) (Book Value)**	**Weights**	**Cost of Capital**	**Weighted Average Cost %**
Equity Share Capital	4,00,000	.4	15	6.0
Preference Share Capital	2,00,000	.2	8	1.6
Debentures	4,00,000	.4	6.5	2.6
	10,00,000	**1.00**	**-**	**10.2%**

पूँजी की भारांकित औसत लागत 10.2% है ।

i. Cost of Equity Share Capital

Ke = DPS/MP x 100 + G

= 20/200 x 100 + 5

= 10+5 = 15%

ii. Cost of Debt

Kd (after tax) = Kd (before tax) x (1-T)

= 10% x (1-0.35)

= 6.5%

iii. Cost of Preference Capital (after tax)

Kp = 8%

Illustration: 13

A company has obtained capital from the following sources, the specific costs are also noted down against them:

एक कम्पनी ने निम्न साधनों से पूँजी प्राप्त की है जिनकी विशेष लागतें उनके सामने नीचे दी गयी है :

Source of Capital	Book Value Rs.	Market Value Rs.	Cost of Capital Rs
Debentures	4,00,000	3,80,000	6%
Preference Shares	1,00,000	1,10,000	8%
Equity Shares	6,00,000	12,00,000	12%
Retained Earnings	2,00,000	-	9%

You are required to calculate weighted average cost of capital using (i) book value weights, and (ii) market value weights.

आप (i) पुस्तक मूल्य भारों, तथा (ii) बाजार मूल्य भारों का प्रयोग करते हुए भारकित औसत पूँजी लागत की गणना कीजिये ।

Solution :

Weight Average Cost of Capital (Book Value Weights)

Source	Amount (Rs.) (Book Value)	Weights	Cost of Capital %	Weighted Average Cost%
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)= (3) × (4)
Debentures	4,00,000	.308	6	1.848
Preference Shares	1,00,000	.77	8	0.616
Equity Sharing's	2,00,000,	.54	9	1.386
Total	**13,00,000**	**1.000**		**9.382**

Weifght Average Cost of Capital (Market Value Weight)

Source	Amount (Rs.) (Book Value)	Weights	Cost of Capital %	Weighted Average Cost%
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)= (3) × (4)
Debentures	3,80,000	.225	6	1.350
Preference 'Shares	1,10,000	.065	8	0.520
Equity Shares	9,00,000	.533	12	6.396
Retained	3,00,000	.177	9	1.593

Earnings				
Total	**16,900,000**	**1.000**		**9.859**

टिप्पणी :

समता अंश पूँजी तथा प्रतिधारित अर्जनों का बाजार मूल्य गिटमैन की विधि के अनुसार निम्न प्रकार ज्ञात किया गया है : -

Market Value of R.E. = 12,00,000 x 2,00,000/8,00,000 x Rs.3,00,000

Market Value of E.S. =12,00,000 x 6,00,000 / 8,00,000 x Rs. 9.00,000

पुस्तक मूल्य भार के आधार पर भारांकित औसत पूँजी लागत 9.382% है जबकि बाजार मूल्य भारों का प्रयोग करने पर यह लागत 9.859% आती है ।

Illustration: 14

A Company's current earnings per share are Rs. 4, divided pay out is 5% of earnings, expected growth rate is 10%. Market price per share is Rs. 40 and tax rate is 50%. The Company wishes to raise capital up to Rs. 10 lakhs including debt of Rs. 3 lakh and 14% beyond that. एक कंपनी की प्रति अंश चालू अर्जने 4 रूपये है लाभांश अदायगी अर्जन की 5% है लाभांशों में प्रत्याशित वृद्धि दर 10% है, प्रति अंश बाजार कीमत40 रू. है और कर की दर 50% है । कंपनी अपनी पूँजी 10 लाख रू. तक बढ़ाना चाहती है जिसमें 3 लाख रू. का ऋण भी शामिल है । कर से पूर्व ऋण की लागत 2 लाख रू. तक 11% और उससे अधिक पर 14% है। कर पश्चात् ऋण और समता पूँजी की लागत तथा पूँजी की भारित औसत लागत का आंकलन कीजिए ।

Solution :

i. Cost of Equity Share Capital

Ke(after tax) = DPS/MP x 100 + G

= 0.20/ 40 x 100 + 10

ii. Cost of Debt

Kd(after tax) = R/ NP x 100 (1-T)

= Rs. 36,000/Rs. 3,00,000 x 100 (1-50)

= 12 x .50 = 6%

Calculation of Interest:

On Rs. 2,00,000 @ 11%	Rs.22,000
On Rs 1,00,000 @ 14 %	Rs.14,000
	Rs. 36,000

iii. Calculation of Weight Average Cost of Capital

Source(1)	Amount (Rs)	Weight	Cost of Capital	Weight Average Cost

	(2)	(3)	(4)	(5) = (3) x (4)
Equity Shares	7,00,000	.7	.105	.0735
Debt	3,00,000	.3	.060	.0180
Weighted Average Cost of Capital				**.0915 or 9.15%**

भारांकित औसत पूँजी लागत के गुण (Merits of Weighted Average Cost of Capital)

पूँजी की भारांकित औसत लागत संस्था के विनियोग पर प्रत्याय दर के निर्धारण में सर्वाधिक प्रयुक्त विधि है । इससे निम्नलिखित सहित अनेक लाभ मिलते हैं:-

1. **पूजी के विभिन्न स्त्रोतों पर आधारित (Bases on Various Profits are Normal)** भारांकित औसत पूँजी लागत में पूँजी संरचना के प्रत्येक तत्व पर विचार किया जाता है । संस्था की पूँजी-संरचना में हुए मामूली से परिवर्तन का भी सम्पूर्ण पूँजी लागत में परिवर्तन दृष्टिगत होता है ।
2. **सामान्य लाभों की दशा में परिशुद्ध (Accurate when Profits are Normal)** सामान्य लाभों की दशा में पूँजी बजटन प्रस्तावों के चयन में विच्छेद दर के रूप में भारांकित औसत लागत अधिक परिशुद्ध होती है । कारण, इसमें अपेक्षाकृत कम लागत वाली ऋण प्रतिभूतियों तथा समता अंशों में वृद्धि के लिए ऊँची प्रत्याय दर की आवश्यकता पर विचार किया जाता है ।
3. **स्पष्ट एवं तर्कसंगत (Straight forward and Logical)** भारांकित औसत लागत सम्पूर्ण पूँजी लागत को पूँजी-संरचना के व्यक्तिगत घटकों की लागत के योग के रूप में परिभाषित करती है । इसकी कार्यविधि तर्कपूर्ण तथा गणना क्रिया भी आसान है ।
4. **पूँजी परियोजनाओं के लिए आदर्श मापदण्ड (Ideal Measurement for Capital Projects)** इस लागत पद्धति से प्रबंधकों को पूँजी गत योजनाओं के संबंध में विवेकपूर्ण निर्णय लेने में सुविधा रहती है । यह लागत पद्धति योजना स्वीकार करने की समविच्छेद दर निश्चित करती है ।
5. **प्रभावी नियंत्रण (Effective Control)** पूँजी के सभी साधनों का भार पृथक्-पृथक ज्ञात होने से उन पर नियंत्रण स्थापित करना सुविधाजनक होता है ।

- **भारांकित औसत पूँजी लागत की सीमाएं (Limitation of Weighted Average Cost of Capital)**

1. वित्तीय कठिनाईयों के समय में कम्पनियाँ कम लागत के अल्पकालीन ऋणों पर निर्भर होती है, ऐसे ऋणों को औसत पूँजी की लागत की गणना में सम्मिलित करने से औसत लागत भी कम होती है । यदि इस औसत लागत के आधार पर कम प्रत्याय वाली परियोजना को स्वीकार कर लिया जाता है तो संस्था वित्तीय कठिनाई में पड़ जाती है ।

2. पूँजी के विभिन्न स्त्रोतों को भार देने में कठिनाई होती है । यद्यपि पुस्तक मूल्य से बाजार मूल्य अधिक उपयुक्त होता है, किन्तु पूँजी के प्रत्येक घटक का बाजार मूल्य उपलब्ध नहीं होता है ।
3. यदि संस्था कम लाभदायकता की स्थिति से गुजर रही हो तो ऐसी दशा में भारांकित औसत लागत शुरू नहीं होगी ।

9.7 तकनीकी शब्दावली

पूँजी की लागत (Cost of Capital) : पूँजी के प्रयोग के बदले में चुकायी गयी लागत पूँजी की लागत कहलाती है ।

सीमान्त पूँजी की लागत (Cost of Marginal Capital). अतिरिक्त पूँजी के प्रयोग के बदले अतिरिक्त चुकाई लागत ।

ऋण पूँजी की लागत (Cost of Debt Capital) ऋण के प्रयोग के बदले चुकाई जाने वाली कीमत।

अधिमान अंश की लागत (Cost of Preference Share). जो अधिमान अंशधारियों को लाभांश के रूप में चुकायी जाती है ।

समता अंश की लागत (Cost of Equity Share) : जो समता अंशधारियों को लाभांश के रूप में चुकायी जाती है ।

प्रतिधारित अर्जनों की लागत (Cost of Retained Earnings) : वह अवसर लागत जिसकी अंशधारी अपेक्षा करता है ।

पूँजी की भारित लागत (Weight Cost of Capital) : पूँजी के विभिन्न स्त्रोतों की उनके अनुपातानुसार भारांकित लागतों का औसत ।

9.8 स्वपरख प्रश्न

1. पूँजी की लागत से आप क्या समझते हैं?
2. विभिन्न प्रकार की पूँजी की लागत का निर्धारण कैसे किया जाता है? उदाहरण सहित समझाइये ।
3. वित्तीय प्रबंध में पूँजी की लागत अवधारणा का क्या महत्व है?
4. पूँजी की भारांकित औसत लागत से आप क्या समझते हैं? इसका निर्धारण किस प्रकार होता है?
5. प्रतिधारित आय क्या है? क्या यह लागत रहित पूँजी होती है? समझाइये ।
6. उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए -
   अ. ऋण पूँजी की लागत
   ब. पूर्वाधिकार अंश पूँजी की लागत
   स समता अंश पूँजी की लागत
   द. प्रतिधारित अर्जनों की लागत
7. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए -

अ. पूँजी की सीमान्त लागत

व. स्पष्ट एवं अस्पष्ट पूँजी लागत

स. भारांकित औसत पूँजी लागत

8. राम लि0 ने 4% बट्टे पर 100 रू. वाले 8% 10000 दस वर्षीय ऋण-पत्र निर्गमित किये । ये ऋण पत्र दस वर्ष पश्चात् 5% प्रीमियम पर शोधनीय है । निर्गमन लागत 2%है । कम्पनी कर की दर 50% मानते हुए कर से पूर्व व कर के पश्चात् ऋण पूँजी की लागत की गणना कीजिये ।

9. अरूण लिमिटेड 100 रू. वाले 1,00,000 10% अधिमान अंश सममूल्य पर जारी करती है, जिनका शोधन 7 वर्ष पश्चात् 5% प्रीमियम पर किया जाता है । निर्गमन की लागत 2 रू. प्रति अंश है । कर की दर 35% है । अधिमान अंश पूँजी की लागत ज्ञात कीजिये ।

10. अभिषेक लिमिटेड नं 100 रू. वाले 10,000 पूर्ण प्रदत्त समता अंश निर्गमित किये हैं । कम्पनी ने 3,00,000 रू. का कर पश्चात् शुद्ध लाभ कमाया है । इन अंशों पर 2 रू. प्रति अंश लाभांश का भुगतान किया गया है । अंशों का बाजार मूल्य 250 रू0 प्रति अंश है । लाभांश प्राप्ति विधि तथा अर्जन प्राप्ति विधि द्वारा समता अंश पूँजी की लागत ज्ञात कीजिये।

11. निम्नलिखित सूचना से प्रतिधारित अर्जनों की लागत की गणना कीजिये -

Current market price of a share	Rs. 70
Cost of floatation/brokerage per share	3% on market price
Growth in expected divided	5%
Expected divided per share on new share	Rs. 7
Shareholders marginal/personal income tax	30%

12. मानव लिमिटेड के पूँजी ढांचे के संबंध में निम्नलिखित सूचनाएँ उपलब्ध है -

	Amounts Rs.	After tax cost of Capital
Sources of Funds	3,500,000	.10
Equity Share Capital	2,00,000	.10
Retained Earnings	1,50,000	.12
Preferences Share Capital	3,00,000	.09

आप पूँजी की भारित औसत लागत की गणना कीजिये ।

13. जय लिमिटेड ऋण पत्र, अधिमान अंश पूँजी तथा समता अंश पूँजी के निर्गमन द्वारा 10,00,000 रू. प्राप्त करने की संभावना पर विचार कर रही है । निर्गमनों का पुस्तक मूल्य एवं बाजार मूल्य इस प्रकार है -

	Book Value Rs	**Market Value Rs**

Equity Shares	5,00,000	6,00,000
Preferences Shares	2,00,000	2,40,000
Debentures	3,00,000	3,60,000
	10,00,000	**12,00,000**

पूँजी के उपर्युक्त निर्गमनों की निम्न लागतें होने की संभावना है । निगम कर की दर 50 प्रतिशत मानिये ।

कम्पनी का समता अंश वर्तमान में 130 रू. में बिक रहा है । यह आशा की जाती है कि कम्पनी अगले वर्ष के अंत में 8 रू. प्रति अंश लाभांश का भुगतान करेगी, जिसमें 5% की दर से वृद्धि की संभावना है । कम्पनी के प्रति अंश 5 रूपये निर्गमन व्यय करने होंगे । (ii)100 रू. का 11% अधिमान अंश 125 रू. में बेचा जायेगा, किन्तु कम्पनी को 5 रू. प्रति अंश अभिगोपन कमीशन देना होगा । (iii) कम्पनी 500 रू. अंकित मूल्य का 10 वर्षीय ऋण पत्र 10%ब्याज दर पर बेच सकती है । ऋण पत्रों के निर्गमन पर निर्गमन मूल्य का 2% अभिगोपन कमीशन कंपनी को व्यय करना पड़ेगा ।

कम्पनी की भारांकित औसत पूँजी लागत (i) पुस्तक भार (ii) बाजार मूल्य भार प्रयोग करते हुए आकलित कीजिये ।

9.9 संदर्भ ग्रंथ

1. Arif Pasha : Management Accounting
2. Maheshwari S.N : Principles of Management Accounting
3. Sahaf M.A. : Management Accounting : Principles and Practices
4. Khan, Jain : Financial Management

इकाई- 10: उत्तोलक (Leverage)

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 उत्तोलक का अर्थ
10.3 उत्तोलक के प्रकार
10.4 परिचालन उत्तोलक
10.5 परिचालन उत्तोलक की विशेषताएँ
10.6 परिचालक उत्तोलक की उपयोगिता
10.7 वित्तीय उत्तोलक
10.8 तटस्थता बिन्दु का निर्धारण
10.9 संयुक्त उत्तोलक
10.10 उत्तोलकों की उपयोगिता
10.11 तकनीकी शब्दावली
10.12 स्वपरख प्रश्न
10.13 संदर्भ ग्रंथ

10.0 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के पश्चात् आप समझ जायेंगे -

- उत्तोलक क्या होता है?
- उत्तोलक कितने प्रकार के होते ' हैं?
- उत्तोलक की क्या विशेषतायें होती हैं एवं निर्णयन में इनका क्या महत्व होता है?
- उत्तोलकों की गणना किस प्रकार की जाती है?
- पूँजी मिश्रण निर्धारण में इनका क्या महत्व है?

10.1 प्रस्तावना

एक व्यावसायिक संस्था की पूँजी संरचना का निर्माण स्वामियों अथवा लेनदारों अथवा दोनों के कोषों से होता है । स्वामियों के कोषों में वृद्धि अंशों के निर्गमन या लाभों के पुर्नविनियोजन से की जा सकती है । जबकि लेनदारों के कोषों को ऋणपत्रों के निर्गमन या दीर्घकालीन ऋण द्वारा बढ़ाया जा सकता है । पूँजी संरचना संबंधों निर्णय संस्था के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण होते है । किसी संस्था की कुल पूँजी में ऋण की मात्रा बढ़ने से अंशधारियों के प्रत्याय में वृद्धि होती है एवं अंशों का मूल्य बढ़ता है । ऐसा इसलिए होता है क्योंकि उधार पूंजी की लागत, जो कि आयकर के लिए स्वीकार्य कटौती मानी जाती है, अंशधारियों के कोषों से कम होती है, किन्तु अधिक ऋण के कारण जोखिम में वृद्धि होने से अंश का 'बाजार मूल्य गिरता भी है । अंशधारियों के कोषों का अनुपात ऋण पूंजी की तुलना में अधिक होने पर अंशधारियों का

प्रत्याय एवं जोखिम दोनों ही कम होंगे । किसी संस्था की पूंजी संरचना में ऋण समता मिश्रण के निर्धारण एवं इसका अंशधारियों के प्रत्याय एवं जोखिम पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करने के लिए उत्तोलक या लिवरेज अवधारणा का प्रयोग किया जाता है ।

10.2 उत्तोलक का अर्थ (Meaning of Leverage)

यांत्रिक विज्ञान में उत्तोलक से आशय ऐसी तकनीक से है जो अधिक भार को कम शक्ति के प्रयोग द्वारा उठाने में काम में ली जाती है किन्तु वित्तीय प्रबंध में उत्तोलक को दो अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है । प्रथम अर्थ में उत्तोलकों को संस्था द्वारा स्वामियों के प्रत्याय में वृद्धि करने हेतु स्थायी लागत वाली सम्पत्तियों या 'कोषों के प्रयोग करने की योग्यता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है ।

जेम्स बॉन हार्न के अनुसार "उत्तोलक से अभिप्राय ऐसी सम्पत्तियों या कोष के प्रयोग से है जिनके लिए संस्था एक स्थायी लागत या प्रत्याय चुकाती है । स्थायी लागत या **प्रत्याय को उत्तोलकों का आधार (Fulcrum)** कहा जा सकता है ।'

द्वितीय अर्थ में उत्तोलक यह बतलाता है कि विक्रय में एक निश्चित परिवर्तन करने पर लाभों में विक्रय की अपेक्षा कितना गुना (times) अधिक परिवर्तन होता है । इस अर्थ में उत्तोलक विक्रय मात्रा में परिवर्तन के प्रभावों का परिणाम निर्धारण में सहायक होते है । लाभों में., विक्रय की अपेक्षा अधिक दर से परिवर्तन स्थिर लागतों के कारण होता है । लागतें यथा किराया, हास, बीमा, व्याज, लाभांश इत्यादि उत्पादन विक्रय के आकार से प्रभावित नहीं होती है । इनको स्थिरता के कारण ही लाभों में विक्रय की अपेक्षा अधिक दर से परिवर्तन होता है ।

10.3 उत्तोलक के प्रकार (Types of Leverage)

लाभों में वृद्धि या कमी - (1) स्थायी परिचालन लागतों (2) स्थायी वित्तीय लागतों (3) दोनों के योग के कारण होती है । इन्हीं लागतों के फलस्वरूप उत्तोलक भी तीन प्रकार के होते हैं:-

उत्तोलकों के प्रकार

- परिचालन उत्तोलक (Operating Leverage)
- वित्तीय उत्तोलक (Financial Leverage)
- संयुक्त उत्तोलक (Combined Leverage)

10.4 परिचालन उत्तोलक (Operating Leverage)

एक व्यावसायिक संस्था के विक्रय मूल्य का निर्धारण तीन घटकों के आधार पर किया जाता है:-

i. विक्रय मूल्य = परिवर्तनशील लागत + स्थायी लागत (+) लाभ या (-) हानि

ii. विक्रय मूल्य = अंशदान + परिवर्तनशील लागत

iii. अंशदान + स्थायी लागत + लाभ या - हानि

परिवर्तनशील लागतों से आशय उन लागतों से है जो विक्रय या उत्पादन के अनुपात में परिवर्तित होती है । जबकि स्थायी लागतें ऐसी लागतें हैं जिनका उत्पादन या विक्रय से कोई संबंध नहीं होता है । ये समय के आधार पर होती है । अत: उत्पादन शून्य होने पर भी संस्था को ये

लागतें वहन करनी होती हैं । दूसरी ओर उत्पादन में वृद्धि होने पर भी इन लागतों में वृद्धि नहीं होती है । अत: स्थायी लागतों के प्रयोग के फलस्वरूप विक्रय दर में परिवर्तन की अपेक्षा लाभ दर में आनुपातिक रूप से अधिक परिवर्तन को परिचालन उत्तोलक कहा जाता है । यदि किसी संस्था में स्थायी लागतें विद्यमान नहीं हैं तो उस संस्था में परिचालन उत्तोलक भी नहीं होगा । ऐसी संस्था में विक्रय में परिवर्तन की दर व लाभों में परिवर्तन की दर समान होगी ।

परिचालन उत्तोलक की कुछ प्रमुख परिभाषायें इस प्रकार हैं :-

बाकर एवं पेट्टी के अनुसार "परिचालन उत्तोलक को स्थायी परिचालन लागतों के उपयोग के परिणामस्वरूप दी हुई विक्रय मात्रा में हुये परिवर्तनों की तुलना में लाभों में हुये परिवर्तनों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है ।"

ई-एफ- ब्राइगम के अनुसार "यदि एक फर्म की कुल लागतों में स्थायी लागतों का प्रतिशत ऊँचा है तब यह कहा जायेगा कि फर्म में उच्च मात्रा में परिचालन उत्तोलक है ।'

जॉन जे हेम्पटन के अनुसार "परिचालन उत्तोलक तब विद्यमान होता है, जब आगम में परिवर्तन में फलस्वरूप ब्याज एवं कर से पूर्व आय (EBIT) में व्यापक परिवर्तन होता है ।"

संक्षेप में परिचालन उत्तोलक विक्रय में परिवर्तन का आय पर प्रभाव स्पष्ट करता है । परिचालन उत्तोलक यह बतलाता है कि विक्रय एवं लाभों के किसी स्तर को स्थिर मानते हुए विक्रय में एक निश्चित परिवर्तन किया जाता है तो लाभों में विक्रय की तुलना में कितना गुना (time) अधिक परिवर्तन होता है ।

10.5 परिचालन उत्तोलक की विशेषताएँ (Characteristics of Operating Leverage):

परिचालन उत्तोलक की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:-

1. **स्थायी लागतों से सम्बन्धित (Related to Fixed Costs)** परिचालन उत्तोलक का संबंध स्थायी लागतों से होता है । यदि किसी कम्पनी में स्थायी लागतें अधिक है तो परिचालन उत्तोलक अधिक होगा एवं किसी कंपनी में यदि स्थायी लागतें कम हैं तो परिचालन उत्तोलन भी कम होगा । इस प्रकार स्थायी लागतों एवं परिचालन उत्तोलक में सीधा संबंध होता है ।
2. **स्थायी सम्पत्तियों के मिश्रण पर प्रभाव (Effect on Max of Fixed Assets)** परिचालन उत्तोलक स्थायी लागत वाली सम्पत्तियों के उपयोग के कारण उत्पन्न होता है, फलस्वरूप यह चिट्ठे के सम्पत्ति पक्ष में स्थायी सम्पत्तियों के मिश्रण को प्रभावित करता है । साथ ही यह दीर्घकालीन एवं स्थायी सम्पत्तियों के मिश्रण पर भी असर डालता है ।
3. **व्यावसायिक जोखिम (Business Risk)** परिचालन उत्तोलक लाभों के साथ-साथ व्यावसायिक जोखिम में भी वृद्धि करता है । उच्च परिचालन उत्तोलक की स्थिति में एक तरफ विक्रय में मामूली सी वृद्धि के कारण परिचालन लाभों में वृद्धि तुलनात्मक रूप से अधिक होती है तो दूसरी ओर विक्रय में मामूली सी कमी होने पर परिचालन लाभों में कमी तुलनात्मक रूप से अधिक होती है ।

4. **सम-विच्छेद बिन्दु से सम्बन्ध (Relation with Break – even point)** समविच्छेद बिन्दु उत्पादन या बिक्री का वह बिन्दु है जहाँ सम्पूर्ण स्थायी लागतों की वसूली हो जाती है, किन्तु लाभ अथवा हानि नहीं होती है । परिचालन उत्तोलक की मात्रा सम-विच्छेद बिन्दु के पास सर्वाधिक होती है । अत: समविच्छेद बिन्दु में वृद्धि से परिचालन उत्तोलक की मात्रा में वृद्धि होगी, इसके विपरीत सम-विच्छेद बिन्दु में कमी होने पर परिचालन उत्तोलक की मात्रा भी कम होगी । इस बिन्दु के पास पहुँचने के बाद बिक्री में मामूली वृद्धि लाभों में भारी वृद्धि दिलाती है ।

5. **बिक्री मूल्य व परिवर्तनशील लागतों के अंतर से प्रभावित (Effected by Difference of Sales And Variable Cost)** बिक्री मूल्य व परिवर्तनशील लागतों में अंतर से परिचालन उत्तोलक की मात्रा प्रभावित होती है । यदि यह अंतर कम होता है तो परिचालन उत्तोलक की मात्रा अधिक एवं अंतर अधिक होने पर परिचालन उत्तोलक की मात्रा कम होगी ।

परिचालन उत्तोलक की गणना

अ. बिक्री के किसी एक स्तर पर परिचालन उत्तोलक की गणना निम्न सूत्र से की जाती है -

$$\text{Operating Leverage} = \frac{\text{Contribution}}{\text{Operating Profits}} \text{ अथवा } \frac{C}{EBIT}$$

$$OL \ \frac{\text{Sales} - \text{Veriable Cost}}{\text{Contribution} - \text{Fixed Costs}} \text{ अथवा } \frac{S-V}{S-V-F}$$

अनुकूल तथा प्रतिकूल परिचालन उत्तोलक (Favourable and Unfavorable Operating Leverage)

अंशदान के स्थायी लागतों से अधिक होने पर (C>FC) अनुकूल परिचालन उत्तोलक होगा जबकि स्थायी लागतें यदि अंशदान से अधिक होती है तो (FC>C) प्रतिकूल परिचालन उत्तोलक होगा । अन्य शब्दों में विक्रय के समविच्छेद बिन्दु से अधिक होने पर परिचालन उत्तोलक अनुकूल होगा इसके विपरीत विक्रय के समविच्छेद बिन्दु से कम होने पर परिचालन उत्तोलक प्रतिकूल होगा । इसे निम्न उदाहरण से समझा जा सकता है -

Operating Leverage परिचालन उत्तोलक

	Situation I Rs	Situation II Rs
Sales @ 100 Rs.	3,00,000	6,00,000
Less:Variable Cost @ Rs. 50	1,50,00	3,00,000
Contribution	1,50,000	3,00,000
Less: Fixed Operating Cost	2,00,000	2,00,000
Operating Leverage $\left(\frac{C}{EBIT}\right)$	$\frac{1,50,000}{50,000}$ = 3 (Adverse)	$\frac{3,00,000}{1,00,000}$ = (Favourable)

व. परिचालन उत्तोलक की मात्रा (Degree of Operating Leverage)

परिचालन उत्तोल की मात्रा की गणना विक्रय के दो स्तरों के परिणाम के आधार पर की जाती है । इसे परिचालन लाभों में प्रतिशत परिवर्तन को विक्रय में प्रतिशत परिवर्तन के

अनुपात के रूप में व्यक्त किया जाता है । परिचालन उत्तोलक की मात्रा की गणना निम्न सूत्र से की जाती है ।

Degree of Operating (DOL) = %Change in EBIT/% Charge in Sales

परिचालन उत्तोलक की मात्रा यह दर्शाती है कि यदि बिक्री में परिवर्तन होता है तो लाभों में परिवर्तन परिचालन उत्तोलक की मात्रा का गुणा होगा । उदाहरणार्थ, यदि परिचालन उत्तोलक की मात्रा 3 हो तो बिक्री में 1% परिवर्तन होने पर लाभों में उसका 3% परिवर्तन होगा ।

टिप्पणी -

1. यदि विक्रय का एक ही स्तर दिया हुआ है तो निम्न सूत्र द्वारा भी DOLकी गणना की जा सकती है -

   $$\text{DOL} = \frac{\text{Contribution}}{\text{EBIT}} \quad \text{or} \quad \frac{S.V.}{EBIT}$$

2. विक्रय के दो स्तर होने पर परिचालन उत्तोलक तथा परिचालन उत्तोलक की मात्रा समान होती है किन्तु DOLविक्रय के वर्तमान स्तर के लिए होती हैं, परिवर्तित स्तर के लिए नहीं।

Illustration: 1

Seema Limited is producing 20,000 units at present. Other information are as follows:

Selling price of the product Rs. 10 per unit

Fixed operating costs Rs. 50,000 per year

Variable operating costs Rs. 5.00 per unit

On the basis of information's given above ascertain the degree of operating leverage(DOP) and comment on it, if the company sells (a) 10,000 Units, and (b) 40,000 units. It may be assumed that all production is sold and there is no closing or opening stock.

सीमा लिमिटेड वर्तमान में 20,000 इकाइयों का उत्पादन कर रही है । अन्य सूचनाएँ निम्न प्रकार हैं :-

उत्पादन का विक्रय मूल्य	10 रूपये प्रति इकाई
स्थायी परिचालन लागत	50,000 रूपये प्रति वर्ष
परिवर्तनशील परिचालन लागत	5.00 रूपये प्रति इकाई

उपरोक्त दी हुई सूचना के आधार पर परिचालन उत्तोलक की मात्रा ज्ञात कीजिये और इस पर अपनी राय दीजिए । यदि कम्पनी विक्रय करती है - (अ) 10,000 इकाइयाँ और (ब) 40,000 इकाइयाँ । यह मान लीजिए कि समस्त उत्पादन का विक्रय कर दिया जाता है तथा कोई प्रारंभिक और अंतिम संबंध नहीं है ।

Solution :

Items	Existing Situation	Assumed Situation (a)	Assumed Situation(b)
Sales in Units	20,000	10,000	40,000
Sales @ Rs. 10 per unit	2,00,000	1,00,000	4,00,000
Less : Veriable Cost @ Rs. 5 per unit	1,00,000	50,000	2,00,000
Contribution	1,00,000	50,000	2,00,000
Less : Fixed Costs	50,000	50,000	50,000
Percentage profit(EBIT)	50,000	Zero	1,50,000
Percentage change in EBIT	–	(–)100%	(+) 200%
Percentage charge in Sales	–	(–) 50%	(+)100%
Degree of Operating Leverage: $Formula = \frac{\%change\,in\,EBIT}{\%change\,in\,Sales}$		(-)100% (-) 50% = – 2 (Adverse)	(+)200 (+) 100% = 2 Favourable)

Illustration -2

Details of Sales and Cost of Priya Ltd. are as follows (प्रिया लिमिटेड का विक्रम एवं लागत विवरण निम्न पार्कर है)

Variable Cost	Rs. 60,000
Fixed Cost	Rs. 30,000
EBIT	Rs. 10,000
Sales	Rs.1,00,000

Calculation – (i) Degree of Operating Leverage.

(ii) Percentage change in EBIT if sales is increased or decreased by 50%

गणना कीजिये

(i) परिचालन उत्तोलक की मात्रा (ii) में 50% की वृद्धि अथवा कमी होने पर लाभों में होने वाले प्रतिशत परिवर्तनों, की गणना कीजिये ।

Solution -

i. $DOL = \frac{C}{EBIT} \quad or \quad \frac{S-V}{EBIT}$

$$DOL = \frac{100000 - 60000}{10000} = 4$$

स्पष्टीकरण-

Statement showing Degree of Operating Leverage

टिप्पणी :- वर्तमान स्थिति में EBIT,Sales का 10% है जबकि विक्रय में 50% वृद्धि या कमी होने पर यह क्रमश: +20%, - 20% हो जाता है, अर्थात EBIT में विक्रय से +20%, -20% परिवर्तन होगा ।

ii. Percentage change in EBIT, if sales is increased by 50%

$$DOL = \frac{\%change\ in\ EBIT}{\%\ change\ in\ Sales}$$

$$4 = \frac{x}{+50}\ or\ x = (+)\ 20\%$$

iii. Percentage change in EBIT , if sales is decreased by 50%

$$DOL = \frac{\%change\ in\ EBIT}{\%\ change\ in\ Sales}$$

$$4 = \frac{x}{+50}\ or\ x = (-)\ 20\%$$

10.6 परिचालन उत्तोलक की उपयोगिता (Unity of Operating Leverage)

1. **पूँजी बजटन निर्णय (Capital Budgeting Decision)** परिचालन उत्तोलक स्थायी लागतों का परिणाम है । अत: यह पूँजी बजटन निर्णयों के लिए उपयोगी है । ब्राइगम के अनुसार 'परिचालन उत्तोलक अवधारणा का विकास ही मूलरूप से पूँजी बजटन निर्णयों में उपयोग के लिए हुआ था ।' पूँजी बजटन दीर्घकालीन लाभ-नियोजन के लिए आवश्यक है । इसलिए परिचालन उत्तोलक पूँजी बजटन निर्णयों एवं दीर्घकालीन लाभ-नियोजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है ।
2. **पूँजी संरचना निर्णय (Capital Structure Decisions)** परिचालन उत्तोलक विक्रय में परिवर्तन का परिचालन आय पर प्रभाव स्पष्ट करता है । चूँकि परिचालन आय ऋण पर ब्याज तथा के कुछ भाग के भुगतान करने के निर्णय का आधार होती है, इसलिए परिचालन उत्तोलक ऋण समता मिश्रण या पूँजी संरचना नियोजन को भी प्रभावित करता है । उच्च परिचालन उत्तोलक से अधिक जोखिम व अधिक लाभ की प्राप्ति होती है, जबकि निम्न परिचालन उत्तोलक से कम जोखिम न कम लाभ की प्राप्ति होती है । अत: एक फर्म वांछित लाभादायकता व जोखिम को ध्यान में रखते हुए ही पूँजी संरचना नियोजन करती है ।
3. **निश्चित लाभ के लिए आवश्यक विक्रय की गणना में सहायक (Helpful in computation of sales for certain level of Profit)** प्रत्येक व्यवसायी इस बात को अवश्य जानना चाहता है कि एक निश्चित लाभ को प्राप्त करने के लिए उसे कितना विक्रय करना होगा । परिचालन उत्तोलक की सहायता से व्यवसायी लाभ के विभिन्न स्तरों के लिए वांछित विक्रय राशि ज्ञात कर सकते हैं एवं इस हेतु आवश्यक व्यूह रचना का निर्माण कर सकते हैं ।
4. **सुरक्षा सीमा का ज्ञान : (Knowledge About Margin of Safety)** ऊँचे उत्तोलक की स्थिति में परिचालन लागतों का अनुपात अधिक एवं लाभों का अनुपात कम होता है । यह स्थिति कम सुरक्षा सीमा को दर्शाती है । इसके विपरीत निम्न उत्तोलक की स्थिति में सुरक्षा सीमा पर्याप्त होने से फर्म मजबूत मानी जाती है ।

परिचालन उत्तोलक की सीमायें (Limited of Operating Leverage)

1. परिचालन उत्तोलक स्थिर लागतों पर आधारित होता है । व्यवसाय में अर्द्ध परिवर्तनशील लागतों का स्थिर एवं परिवर्तनशील में विभाजन पूर्णत: सही नहीं होने पर परिचालन उत्तोलक भी दोषपूर्ण होगा ।
2. निर्णयन सिर्फ स्थायी लागतों पर आधारित नहीं होता है । प्रबंधकीय नीतियां, सरकारी नीतियां, वातावरण आदि तत्त्व भी महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं ।

10.7 वित्तीय उत्तोलक (Financial Leverage)

कम्पनी पर पड़ने वाले वित्तीय भार के आधार पर पूंजी को दो स्वरूपों में विभाजित किया जाता है.

1. स्थिर भार वाली पूंजी (Fixed Charged Capital)
2. परिवर्तनशील भार वाली पूँजी (Variable Charged Capital)

स्थिर भार वाली पूंजी के अन्तर्गत ऋण पूंजी तथा पूर्वाधिकार अंश पूंजी को सम्मिलित किया जाता है, उन पर देय ब्याज लाभांश की दरें निश्चित होती हैं । इसके विपरीत परिवर्तनशील भार वाली पूंजी में समता अंश पूंजी मुख्य होती है । इस पूंजी पर लाभांश की दरें निश्चित नहीं होती हैं । स्थिर वित्तीय व्ययों का भुगतान करने के उपरांत शेष परिचालन लाभ समता अंशधारियों के लिए उपलब्ध होते हैं । ये स्थिर वित्तीय व्यय परिचालन लाभों (EBIT) के साथ-साथ परिवर्तित नहीं होते, चाहे ऐसे लाभों की मात्रा कितनी ही क्यों न हो, अत: परिचालन लाभों में परिवर्तन होने पर प्रति अंश अर्जने (EPS) प्रभावित होती हैं । इस प्रभाव को वित्तीय उत्तोलक कहा जाता है ।

वित्तीय उत्तोलक में समता अंशधारियों की लाभदायकता पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण किया जाता है और इस विश्लेषण के आधार पर पूंजी संरचना के स्वरूप के संबंध में निर्णय लिये जाते हैं ।

वित्तीय उत्तोलक की परिभाषाएं निम्नानुसार हैं -

गिटमैन के अनुसार - 'वित्तीय उत्तोलक को स्थायी वित्तीय व्ययों के उपयोग से संस्था की प्रति अंश अर्जनों पर परिचालन लाभों (EBIT)में परिवर्तन के प्रभाव को आवर्धित (Magnify) करने की योग्यता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है ।

इजरा सोलोमन के अनुसार - 'वित्तीय उत्तोलक संस्था की गतिविधियों में प्रयुक्त ऋण तथा ईक्विटी कोषों के मिश्रण को बताता है । '

जे.ई. वाल्टर के अनुसार - उत्तोलन को समता पर प्रतिशत प्रत्याय का कुल पूंजीकरण के प्रतिशत प्रत्याय के रूप में परिभाषित किया जा सकता है । '

जेम्स सी. वान हार्न के अनुसार - 'वित्तीय उत्तोलकों में स्थायी लागत कोषों का प्रयोग साधारण अंशधारियों के प्रत्याय को बढ़ाने की आशा में किया जाता है ।"

डॉ. आर.एम. श्रीवास्तव के अनुसार - वित्तीय उत्तोलक का आशय एक स्थिर व्यय पर प्राप्त किये गये कोषों का विनियोजन करने से है । इसलिये वित्तीय उत्तोलक को दीर्घकालीन ऋण के साथ कुल विनियोजन कोषों के अनुपात के रूप में परिभाषित किया जा सकता है । "

निष्कर्ष के रूप में, वित्तीय उत्तोलक संस्था की पूँजी संरचना में स्थायी लागत साधनों से वित्त पूर्ति एवं परिवर्तनशील लागत साधनों से वित्त पूर्ति के अनुपात को दर्शाता है ।

वित्तीय उत्तोलक की विशेषतायें (Characteristics of Financial Leverage)

1. **वित्तीय जोखिम (Financial Risk)** वित्तीय उत्तोलक एवं संस्था की वित्तीय जोखिम में प्रत्यक्ष संबंध होता है । उच्च वित्तीय उत्तोलक की स्थिति में संस्था के परिचालन लाभों में वृद्धि के परिणामस्वरूप प्रति अंश अर्जनों में तुलनात्मक रूप से अधिक वृद्धि हो जाती है एवं निम्न वित्तीय उत्तोलक की स्थिति में परिचालन लाभों में कमी के परिणामस्वरूप प्रति अंश अर्जनों में तुलनात्मक रूप से अधिक गिरावट आ जाती है ।
2. **चिट्ठे के दायित्व पक्ष से सम्बन्धित (Related with Liabilities side of the Balance sheet)** वित्तीय उत्तोलक संस्था की पूँजी संरचना में स्थायी लागत वाली पूँजी की मात्रा से प्रभावित होता है, अत: यह कहा जा सकता है कि वित्तीय उत्तोलक का सम्बन्ध संस्था के चिट्ठे के दायित्व पक्ष से है ।
3. **प्रति अंश अर्जनों पर प्रभाव (Effect on Earnings per Share)** वित्तीय उत्तोलक स्थिर वित्तीय व्ययों के कारण संस्था के लाभों में होने वाले परिवर्तनों का प्रति अंश अर्जनों पर पड़ने वाले प्रभाव को स्पष्ट करता है ।
4. **वित्तीय स्त्रोतों के मिश्रण का निर्धारण (Determination of Maxture of Financial Resources)** वित्तीय उत्तोलक की सहायता से संस्था के वित्तीय स्त्रोतों के मिश्रण को निर्धारित किया जा सकता है । पूंजी संरचना का निर्धारण इस प्रकार किया जाता है जिससे प्रति अंश अर्जन बढ़ सके ।

वित्तीय उत्तोलक की गणना (Computation of Financial Leverage)

I. लाभ के किसी एक स्तर पर वित्तीय उत्तोलक की गणना निम्न सूत्र से की जा सकती है -

$$\text{Financial Leverage} = \frac{\text{Operating Profit or Earnings before Interest and Tax}}{\text{Earnings before Tax but after Interest}}$$

Or

$$\text{FL } \frac{\text{EBIT}}{\text{EBT}} \; or \; \frac{\text{EBIT}}{\text{EBIT}-1}$$

जबकि, I = स्थायी वित्तीय व्ययों अर्थात् ब्याज एवं अधिमान अंश लाभांश (Fixed Financial Charges)

अनुकूल तथा प्रतिकूल वित्तीय उत्तोलक (Favourable and Unfavourable Financial Leverage)_

यदि स्थिर भार वाली प्रतिभूतियों के उपयोग के कारण प्रति अंश अर्जन अधिक होती है तो इसे अनुकूल वित्तीय उत्तोलक कहते हैं । ऐसा ऋण पूंजी की लागत सामान्य प्रत्याय दर से कम होने पर ही होगा । इसके विपरीत स्थिर 'मार वाली प्रतिभूतियों के उपयोग के कारण प्रति अंश अर्जनों में कमी प्रतिकूल वित्तीय उत्तोल का द्योतक होगी । ऐसा तब होता है जब

ऋण पूंजी की लागत सामान्य प्रत्याय दर से अधिक होती है । इसे निम्नलिखित उदाहरण से समझा जा सकता है -

	Rs
Equity Share Capital	2,00,000
10% Debentures	2,00,000
Total	**4,00,000**

वित्तीय उत्तोलक एवं समता पर प्रत्याय दर की गणना कीजिये, यदि सामान्य प्रत्याय (i) 8% (ii) 15% दर हो ।

Financial Leverage

	Rate of Return 8%	Rate of Return 15%
EBIT	32,000	60,00
Less: Interest	20,000	20,000
EBT	12,000	40,000
Financial Leverage		
$\left(\frac{EBIT}{EBT}\right)$	2.67	1.5
	(Adverse)	(Favourable)
Rate of Equity Returns	$\frac{12,000}{2,00,000}\times 100$	$\frac{40,000}{2,00,000}\times 100$
	= 6%	= 20%

II. वित्तीय उत्तोलक की मात्रा (Degree of Financal Leverage)

लाभ के दो स्तरों की तुलना के लिए वित्तीय उत्तोलक की मात्रा को परिचालन लाभों (EBIT) में प्रतिशत परिवर्तन की तुलना में प्रति अंश अर्जनों (EPS) में प्रतिशत परिवर्तन द्वारा मापा जाता है । सूत्र रूप में -

$$\text{Degree of Financial Leverage} = \frac{\text{Percentage change in EPS}}{\text{Percentage change in EBIT}}$$

$$DFL = \frac{\text{\% change in Taxable Profit}}{\text{\%in Operating Profit}} \; or \; \frac{\text{\%change in EBT}}{\text{\%in EBIT}}$$

जबकि,

$$EPS = \frac{\text{Fund available for Equity Share holders}}{\text{Number of Equity Shares}}$$

$$EPS = \frac{\text{Earning after tax} - \text{Preference Share Dividend}}{\text{No. of Equity shares}}$$

टिप्पणी:-

1. जब लाभ का एक ही स्तर दिया हो तो निम्न सूत्र द्वारा भी DPL की गणना की जा सकती है:

$$DPL \; \frac{EBIT}{EBT}$$

2. लाभ के दो स्तर दिये होने पर वित्तीय उत्तोलकों एवं वित्तीय उत्तोलक की मात्रा समान होते हैं, किन्तु DPLलाभ के वर्तमान स्तर के लिए होती है, परिवर्तित स्तर के लिए नहीं।

3. यदि कम्पनी की पूंजी संरचना में सामान्य अंश, पूर्वाधिकार अंश एवं ऋण पूंजी तीनों हो तो EBT की गणना करते समय EBIT में से ऋण पत्रों पर देय ब्याज को घटाया जा सकता है । पूर्वाधिकार अंश लाभांश को सकल करके घटाते हैं।

वित्तीय उत्तोलक की गणना के संबंध में पूंजी संरचना की तीन स्थितियाँ हो सकती हैं:-

1. जब कम्पनी की पूंजी संरचना में सामान्य अंश एवं ?ण पूंजी हो ।
2. जब कम्पनी की पूंजी संरचना में सामान्य अंश एवं पूर्वाधिकार अंश हो - जब पूंजी संरचना में सामान्य अंश पूंजी एवं पूर्वाधिकार अंश पूंजी हो, तो ऐसी स्थिति में कर से पूर्व आय में से पूर्वाधिकार अंश लाभांश की सकल राशि घटायी जाती है । पूर्वाधिकार अंश लाभांश को सकल बनाने हेतु निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है:-

$$\text{Grossed up Dividend} = \frac{\text{Preference Share Dividend}}{1 - \text{Tax Rate}}$$

3. जब कम्पनी की पूँजी संरचना में सामान्य अंश. पूर्वाधिकार अंश एवं ऋण पूँजी हो- जब पूँजी संरचना में सामान्य अंश, पूर्वाधिकार अंश एवं ऋण पूँजी तीनों हो,तो कर एवं ब्याज से पूर्व लाभ की राशि में से सर्वप्रथम ऋण पर देय व्याज को घटाया जाता है, तत्पश्चात् पूर्वाधिकार अंशों पर देय लाभांश की सकल राशि घटायी जाती है ।

Illustration 3:

A Company has a choice of the following three financial plans. You are required to calculate the financial leverage in each case:

एक कम्पनी निम्न वित्तीय योजनाओं में से किसी एक को चुनने का विकल्प रखती है । आप प्रत्येक स्थिति में वित्तीय उत्तोलक की गणना कीजिये ।

	Financial Plan (Rs.)		
	A	B	C
Equity Capital	40,000	20,000	60,000
Debt	40,000	60,000	20,000
Operating Profit (EBIT)	8,000	8,000	8,000
Interest @ 10% on debts in all cases			

Solution :

Computation of the Financial Leverage

	Financial Plane (Rs.)		
	A	**B**	**C**
Operating Profit			
(OP or EBIT)	8,000	8,000	8,000
Less : Interest (10% on debt)	4,000	6,000	2,000
Earning Leverage			
$=\left(\frac{EBIT}{EBT}\right)$	$\frac{8,000}{4,000}=2$	$\frac{8,000}{2,000}=4$	$\frac{8,000}{6,000}=1.33$

2. जब कम्पनी की पूँजी संरचना के सामान्य अंश एवं पूर्वाधिकार अंश हों–

Illustration :4

The Capital Structure of a company consosts of the following securities;

एक कम्पनी की पूंजी संरचना के संबंध में निम्न सूचना उपलब्ध है -

Equity Share Capital (Rs.100 each)	Rs. 5,00,000
8% Percentage Share Capital	Rs. 3,00,000

The Amount of EBIT is Rs. 2,00,000 . The rate of Income Tax is 50%. You are required to calculate the Financial Leverage.

EBIT की राशि 2,00,000 रू. है एवं कर की दर 50% है तो वित्तीय उत्तोलक की गणना कीजिये ।

Solution :

Computation of Financial Leverage

EBIT or Operating Profit		2,00,000
Less ; Preference /Divided $= \left(\frac{24,000}{1-.50}\right)$		48,000
	EBT	1,52,000
Financial Leverage $= \frac{EBIT}{EBT} =$	$\frac{2,00,000}{1,52,000}$	=1.315

Illustration: 5

Alpha Ltd.'s earning before interest And taxes(EBIT) amounts to Rs. 15,000.It has 10% debentures of Rs. 20,000, 18% preference shares of Rs. 25,000 and 1,000 equity shares of Rs.10,000. The tax is 50% assuming the BFIT being Rs. 24,000 and Rs. 12,000, what would be the earnings per share (EPS), Financial Leverage and degree of financial Leverage?

एल्फा लिमिटेड की चालू वर्ष की ब्याज व कर से पूर्व अर्जने 15,000 रू. है । कम्पनी के पास 20,000 रू. के 10% ऋण पत्र ; 25,000 रू. के 8% अधिमान अंश तथा 10,000 रू. के 1,000 समता अंश हैं । आयकर की दर 50% है । यदि ब्याज व कर से पूर्व अर्जने 24,000 रू. एवं 12,000 रू. हो जाये तो प्रति अंश अर्जने, वित्तीय उत्तोलक एवं वित्तीय उत्तोलक की मात्रा क्या होगी?

EPS for Various Levels

	Present Situation	Assumed Situation(i)	Assumed Situation(ii)
	Rs	Rs	Rs
Earnings before Interest and Tax (EBIT)	15,000	24,000	12,000
Less: Interest on Debentures	2,000	2,000	2,000

Earnings before Taxes	13,000	22,000	10,000
Less : Taxes(50%)	6,500	11,000	5,000
Earning after Taxes (EAT)	6,500	11,000	5,000
Less: Preference Dividend	2,000	2,000	2,000
Earnings Available for equity shareholders (a)	4,500	9,000	3,000
No. of Equity Shares (b)	1,000	1,000	1,000
Earnings Per share (EPS) (a/b)	4.50	9.00	3.00
% Change in EBIT	-	+ 60%	-20%
%Change in EPS	-	+ 100%	-33.33%
$DFL = \frac{\%\ Change\ in\ EPS}{\%\ Change\ in\ EBIT}$	-	$=\frac{100}{60}=1.67$	$=\frac{33.33}{20}=1.67$
Financial Leverage $(FL) = \frac{EBIT}{EBT}$	$\frac{15,000}{9,000}$ =1.67	$\frac{24,000}{18,000}$ =1.33	$\frac{12,000}{6,000}$ =2

EBT = EBIT- Interest- Grossed up Preference Share Dividend

Grossed up preference share dividend = 2,000x100/50=4,000

वित्तीय उत्तोलक का महत्व (Importance of Financial Leverage)

1. **पूंजी ढांचे के निर्माण में सहायक (Helpful of Financial Leverage)** प्रत्येक फर्म अपने पूंजी ढांचे में ऋण व समता का मिश्रण इस प्रकार करना चाहती है कि न्यूनतम लागत पर पूंजी प्राप्त कर समता अंशधारियों की अर्जनों को अधिकतम किया जा सके । वित्तीय उत्तोलक का संबंध ऋण व समता पूंजी में उचित संतुलन से होता है, अत: फर्म पूंजी संरचना के विभिन्न विकल्पों पर वित्तीय उत्तोलक की गणना कर लाभार्जन क्षमता का पता लगा सर्वश्रेष्ठ पूंजी ढांचे का चुनाव कर सकती है ।
2. **वित्तीय जोखिम का ज्ञान (Knowledge about Financial Risk)** ऊँचे वित्तीय उत्तोलक की स्थिति में ब्याज एवं कर से पूर्व की अर्जनों (EBIT) में थोड़ी सी कमी होने पर प्रति अंश अर्जनों (EPS) में कई गुना कमी हो जाती है । अर्थात ऊँचे उत्तोलक की स्थिति में जोखिम अधिक तथा निम्न उत्तोलकों की स्थिति में जोखिम कम रहती है । यह जानकारी प्रबंधकीय निर्णयन का आधार होती है ।
3. **समता पर व्यापार (Trading on Equity)** यदि भावी लाभार्जन क्षमता अनुकूल रहने की संभावना हो तो फर्म ऊँचे उत्तोलक की स्थिति में समता पर व्यापार कर, समता अंशधारियों की प्रत्याय में उल्लेखनीय वृद्धि कर सकती है । इसके विपरीत यदि भावी लाभार्जन क्षमता घटने की संभावना हो तो फर्म अपनी स्थिर वित्तीय लागतों को घटकर वित्तीय जोखिम कम कर सकती है ।
4. **वित्तीय समविच्छेद बिन्दु की जानकारी (Knowledge of Financial Break Even Point)** वह बिन्दु जहां पर EBIT की राशि 'स्थिर वित्तीय व्ययों के ठीक बराबर होती है, वित्तीय समविच्छेद बिन्दु कहलाता है । इस बिन्दु पर EPS शून्य होती है, इस बिन्दु के पश्चात् EBIT में वृद्धि होने पर EPS में आनुपातिक रूप से अधिक वृद्धि होगी क्योंकि

स्थिर वित्तीय व्यय ज्यों के त्यों रहेंगे । अत: इस बिन्दु की जानकारी के आधार पर प्रबंधक वित्तीय सुरक्षा सीमा की जानकारी भी प्राप्त कर सकते हैं ।

5. **अंशधारियों की आय में वृद्धि (Increase in Share Holder's Income)** अनुकूल वित्तीय उत्तोलक होने पर कम्पनी अपने अंशधारियों को अधिक लाभांश दे सकती है । परिणामत: अंशों के बाजार मूल्य में वृद्धि होगी । बाजार मूल्य में वृद्धि का संस्था की साख पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है । साख में वृद्धि होने से नीची -ब्याज दर पर आसानी से ऋण उपलब्ध हो जायेंगे ।
6. **ऋण प्राप्तियों में सहायक (Helpful in availability of Loans)** वित्तीय उत्तोलकों के अनुकूल होने पर लाभ बढ़ने से संस्था की ऋण क्षमता में वृद्धि होती है एवं बाजार में साख बढ़ने से आसान शर्तों व कम ब्याज दर पर ऋण मिलना संभव हो जाता है ।

वित्तीय उत्तोलकों की सीमायें (Limited of Financial Leverage)

1. वित्तीय उत्तोलक ज्ञात करते समय यह माना जाता है कि ऋण की लागत हमेशा स्थिर रहती है । वास्तव में ऋण की मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ जोखिम बढ़ने से ब्याज दरों में वृद्धि होती जाती है । अत: स्थिर वित्तीय लागतों में परिवर्तन होने से वित्तीय उत्तोलक का तुलनात्मक महत्व समाप्त हो जाता है ।
2. वित्तीय उत्तोलक ज्ञात करते समय अस्पष्ट लागतों की अवहेलना की जाती है । वित्तीय उत्तोलक की अवधारणा यह मानती है कि अनुकूल वित्तीय उत्तोलक होने पर ?ण की मात्रा बढ़ने से EPS में तुलनात्मक रूप से अधिक वृद्धि होती है जबकि ऋण बढ़ने से वित्तीय जोखिम में वृद्धि होने के कारण समता अंशों के बाजार मूल्य में कमी से अस्पष्ट लागतें उत्पन्न होती हैं । इस अस्पष्ट लागत को ध्यान में रखे बिना पूंजी की संरचना संबंधी निर्णय भ्रामक होगा ।

परिचालन उत्तोलक एवं वित्तीय उत्तोलक में अन्तर **(Difference between Operating and Financial Leverage)**

अंतर का आधार	**परिचालक उत्तोलक**	**वित्तीय उत्तोलक**
1. संबंध	परिचालक उत्तोलक परिचालन लाभों व बिक्री में संबंध को दर्शाता है ।	वित्तीय उत्तोलक परिचालन लाभों व समता पर प्रत्याय में सम्बंध को दर्शाता है।
2. उद्देश्य	विक्रया में परिवर्तन के कारण परिचालन लाभों में होने वाले परिवर्तन को दर्शाने हेतु परिचालन उत्तोलक की गणना की जाती है ।	वित्तीय उटोलक का उद्देश्य परिचालन लाभों में परिवर्तन के कारण प्रति अंश अर्जनों में दर्शाना है।
3. उत्पति	यह स्थिर परिचालन लागतोंयथा किराया बीमा आदि के कारण उत्पन्न होता है	यह स्थिर वितत्य लागतों यथा ब्याज, लाभांश के कारण उत्पन्न होता है ।
4. जोखिम	यह व्यवसायी जोखिम में वृद्धि करता है ।	यह वितत्य जोखिम में वृद्धि करता है।
5. चिट्ठे से सम्बंध	यह छठे के संपाती पक्ष से सम्बंध है ।	यह चिट्ठे के दायित्व पक्ष से सम्बंध है।
6. लाभों पर प्रभाव	परिचालन उत्तोलक संस्था की परिचालन क्रियों पर आधारित होने के कारण ब्याज एवं कर से	वितत्य उत्तोलक व्याज एवं कर के पश्चात लाभों को प्रभावित करता है।

	पूर्व लाभों को प्रभावित करता है।	
7. निर्णय	परिचालन उत्तोलक विनियोग निर्णयों से संबन्धित होता है।	वितत्य उत्तोलक वित्त- पूर्ति निर्णयों से संबन्धित होता है।

Illustration: 6

Form the following information you are required to calculate Operating Leverage and Financial Leverage of Prachi Ltd.

प्राची लिमिटेड की निम्न सूचना से परिचालन एवं. वित्तीय उत्तोलक की गणना कीजिये:-

Sales: Rs. 4,00000; Variable Cost: Rs. 2,00000

Fixed cost: Rs. 1,00000 Interest: Rs. 60,000

Solution:

	Rs.
Sales	4,00,000
Less: Variable cost	2,00,000
Contribution	2,00,000
Less: Fixed cost	1,00,000
EBIT	1,00,000
Less: Interest	40,000
EBT	60,000

(A)Operating Leverage $= \frac{Contribution}{EBIT}$

$$\frac{2,00,000}{1,00,000} = 2$$

(B) Financial Leverage $= \frac{EBIT}{EBT}$

$$\frac{1,00,000}{40,000} = 2.5$$

10.8 तटस्थता बिन्दु का निर्धारण (Determination of Indifference Point)

तटस्थता बिन्दु व्याज एवं कर से पूर्व आय (EBIT) का वह स्तर है जहाँ विभिन्न ऋण समता मिश्रणों (Debt–Equity mix) के अन्तर्गत प्रति अंश अर्जन समान होती है । ऐसी स्थिति में विनियोग व अर्जन दर व्याज दर के समान होने से प्रति अंश अर्जन उत्तोलक स्तर से अप्रभावित रहेगी । तटस्थतो बिन्दु का निर्धारण करने हेतु निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है:-

$$= \frac{(x - i_1)(1 - T)}{S_1} = \frac{(x - i_2)(1 - T)}{S_2}$$

जबकि

X= EBIT का तटस्थता बिन्दु

i_1 = प्रथम विकल्प में ब्याज की राशि

i 2 = द्वितीय विकल्प में व्याज की राशि

T = कर की दर

S1 = प्रथम विकल्प में समता अंशों की संख्या

S2 = द्वितीय विकल्प में समता अंशों की संख्या

Illustration 7:

प्रतीक लिमिटेड 10 लाख रू0 के अतिरिक्त वित्त की व्यवस्था या तो 10% ऋण पत्र निर्गमन द्वारा या 10 रू० प्रति अंश की दर से अतिरिक्त समता पूंजी निर्गमन द्वारा कर सकती है । कम्पनी का वर्तमान पूंजी ढांचा 5 लाख समता अंशों से बना है तथा कोई ऋण नहीं है । व्याज व कर पूर्व आय (EBIT) के किस स्तर पर प्रति अंश आय (EPS) समान होगी, चाहे पूंजी समता अंश निर्गमन द्वारा अथवा ऋण पत्र निर्गमन द्वारा एकत्र किये जावें । निगम कर की दर 30% मानिये ।

Solution :

EBIT का वह स्तर जहाँ पूँजी संरचना के दोनों स्तरों पर EPS समान होगी, का निर्धारण निम्न सूत्र से किया जा सकता है -

$$=\frac{(x-i_1)(1-T)}{S_1}=\frac{(x-i_2)(1-T)}{S_2}$$

$$=\frac{(x-1,00,000)(1-.30)}{5,00,000}=\frac{(x-0)(1-.30)}{6,00,000}$$

$$=\frac{0.7\times-70,000}{5,00,000}=\frac{0.7X}{6,00,000}$$

42000 x - 42000000000 = 350000x

70000 x = 42000000000

X = 6,00,000

अत: EBIT = 6,00,000 रू0 होने पर दोनों विकल्पों में EPS समान होगा ।

Alternative I Rs.	Alternative I Rs.	Alternative II Rs.
EBIT	6,00,000	6,00,000
Less: Interest on Debentures	1,00,000	–
Earning Before Tax	5,00,000	6,00,000
Less: Tax @ 30%	1,50,000	1,80,000
Earning after tax	3,50,000	4,20,000
$EPS=\frac{EAT}{No.of\ Equity\ Shares}$	$=\frac{3,50,000}{5,00,000}$	$=\frac{4,20,000}{6,00,000}$
	Rs. 0.70	**Rs. 0.70**

10.9 संयुक्त उत्तोलक (Combined Leverage)

परिचालन उत्तोलक स्थायी परिचालन लागतों से संबंधित होता है, जबकि वित्तीय उत्तोलक स्थायी वित्तीय लागतों के आधार पर ज्ञात किया जाता है । चूँकि दोनों ही उत्तोलक स्थायी लागतों को वसूल करने की योग्यता से संबंधित होते हैं । अत: सभी स्थायी लागतों का प्रभाव जानने हेतु दोनों उत्तोलकों को मिलाकर संयुक्त उत्तोलक की गणना को जाती है ।

I) EBIT का एक ही स्तर दिया होने पर संयुक्त उत्तोलक की गणना परिचालन उत्तोलक तथा वित्तीय उत्तोलक के सूत्रों के गुणनफल द्वारा की जाती है -

Combined Leverage = Operating Leverage x Financial Leverage

अथवा

$$=\frac{Contribution}{EBIT}\times\frac{EBIT}{EBT}$$

अथवा

$$=\frac{Contribution}{EBIT}$$

II) संयुक्त उत्तोलक की मात्रा (Degree of Combined Leverage) संयुक्त उत्तोलक की मात्रा की गणना परिचालन उत्तोलक की मात्रा तथा वित्तीय उत्तोलक की मात्रा के गुणनफल से की जाती है ।

Degree of Combined Leverage = Degree of Operating Leverage xDegeree of Financial Leverage

अथवा

$$DCL=\left(\frac{\%\,Change\,in\,EBIT}{\%\,Change\,in\,Sales}\right)\times\left(\frac{\%\,Change\,in\,EPS}{\%\,Change\,in\,EBIT}\right)$$

अथवा

$$DCL=\left(\frac{\%\,Change\,in\,EPS}{\%\,Change\,in\,Sales}\right)$$

संयुक्त उत्तोलक अंशदान (विक्रय-परिवर्तनशील लागत) एवं कर पूर्व अर्जन (EBT) में संबंध को दर्शाता है 1 जबकि संयुक्त उत्तोलक की मात्रा द्वारा बिक्री में प्रतिशत परिवर्तन के कारण प्रति अंश अर्जनों (EPS) में होने वाले प्रतिशत परिवर्तनों का माप किया जाता है ।

Illustration: 8

A company has sales of Rs. 1 lakh. The variable costs are 50% of the sales while the fixed operating costs amount to Rs. 25,000.The amount of interest on long- term debt is Rs. 15,000

You are required to calculate the composite leverage and illustrate its impact if sales is increased by10%

एक कम्पनी का विक्रय 1 लाख रूपये है । परिवर्तनशील लागतें विक्रय का 50% है, जबकि स्थायी लागतें 25,000 रूपये है । दीर्घकालीन ऋण पर व्याज 15,000 रूपये है । आय संयुक्त उत्तोलक की गणना कीजिये तथा इसका प्रभाव प्रदर्शित कीजिये यदि विक्रय 10% बढ़ जाये।

Solution :

Statement Showing Computation of Composition Leverage

	Present situation	Assumed situation 10% increase in sales
	Rs.	Rs.
Sales	1,00,000	1,10,000
Less: Variable Costs (50% of sales)	50,000	55,000
Contribution (c)	50,000	55,000
Less: Fixed operating Costs	25,000	25,000
Earnings before Interest and Tax (EBIT) or Operating Profit (OP)	25,000	30,000
Less: Interest	15,000	15,000
Taxable Income (EBT)	10,000	15,000
Composite Leverage = $=\frac{C}{EBT}$	$=\frac{50,000}{10,000}=5$	$=\frac{55,000}{15,000}=3.67$

संयुक्त उत्तोलक '5' यह दर्शाता है कि विक्रय में प्रत्येक 1% वृद्धि होने से EBT में 5% की वृद्धि होती है । अत: विक्रय में 10% की वृद्धि होने पर EBT में 50% की वृद्धि होगी।

$$\% \text{ increase in EBT} = \frac{15,000-10,000}{10,000}\times 100 = 50\%$$

Illustration

Neha Ltd., has sales of Rs. 10, 00,000; variable costs of Rs. 6, 00,000; Fixed Costs of Rs. 4, 00,000 at 10% interest. Calculate Operating, Financial and Combined leverages

नेहा लिमिटेड की बिक्री 10,00,000 रू. परिवर्तनशील लागतें 6,00,000 रू., स्थायी लागतें 2,00,000 रू. तथा 10.. ब्याज पर ऋण पत्र 4,00,000 रू. है । परिचालन, वित्तीय एवं संयुक्त उत्तोलक की गणना कीजिये ।

Solution

Profitability Statement

	Rs.
Sales	10,00,000
Less: Variable Costs	6,00,000
Contribution (c)	4,00,000
Less : Fixed Costs	2,00,000

Earnings before Interest and tax (EBIT)	2,00,000
Less: Interest	40,000
Earning before Tax (EBT)	1,60,000

i. Operating Leverage (OL) = $=\frac{Contribution}{EBIT}=\frac{Rs.4,00,000}{2,00,000}=2$

ii. Financial Leverage (FL) $=\frac{EBIT}{EBT}=\frac{Rs.2,00,000}{Rs.1,60,000}=1.25$

iii. Combined leverage (CL) = Operating Leverage × Financial Leverage

= 2 × 1.25 = 2.5

अथवा

$$CL=\frac{C}{EBIT}\times\frac{EBIT}{EBT}=\frac{C}{EBIT}$$

$$=\frac{Rs.4,00,000}{Rs.2,00,000}\times\frac{Rs.2,00,000}{Rs.1,60,000}$$

$$=\frac{Rs.4,00,000}{Rs.1,60,000}=2.5$$

10.10 उत्तोलकों की उपयोगिता (Utility of Leverages)

उत्तोलकों का विश्लेषण विनियोग एवं वित्त पूर्ति निर्णयों में सहायक होता है । दोनों ही उत्तोलकों के उच्च होने पर व्यावसायिक जोखिम में वृद्धि होता है, इसके विपरीत दोनों के निम्न होने पर समता पर व्यापार का लाभ नहीं मिल पाता है ।

अत: समता अंशधारियों की प्रत्याय को अधिकतम करने हेतु निम्न परिचालन उत्तोलक व उच्च वित्तीय उत्तोलक के मिश्रण का उपयोग करना चाहिए । परिचालन उत्तोलक के नीचा होने पर स्थायी परिचालन लागतों की शीघ्र वसूली होने से स्थिर वित्तीय लागतों का भुगतान करने के लिए पर्याप्त लाभ शेष रहेंगे । ऐसे में उच्च वित्तीय उत्तोलक का प्रयोग किया जा सकता है तथा ब्याज का भुगतान बचे हुए लाभों में से किया जा सकता है । अब यदि विक्रय में वृद्धि का प्रयास किया जाये तो अंशधारियों की अर्जनों में आनुपातिक रूप से अधिक वृद्धि होगी । अत: अनुकूलतम जोखिम पर अंशधारियों की प्रत्याय को अधिकतम करने के लिए निम्न परिचालन उत्तोलक तथा उच्च वित्तीय उत्तोलक का उपयोग करना चाहिए ।

10.11 तकनीकी शब्दावली (Technical Terms)

उत्तोलक (Leverage) – यांत्रिक अर्थ में उत्तोलक का अभिप्राय उस तकनीक से है जिसमें कम शक्ति में अधिक भार उठाया जा सके । वित्तीय प्रबंध के क्षेत्र में उत्तोलक का अभिप्राय: ऐसी सम्पत्तियाँ एवं कोष के प्रयोग से जिसके लिए संस्था स्थायी लागत

		चुकाती है ।
परिचालन उत्तोलक (Operating Leverage)	–	यह उत्तोलक स्थायी लागतों के उपयोग के परिणामस्वरूप विक्रय मात्रा में परिवर्तन की तुलना में लाभों में परिवर्तन की स्थिति की व्याख्या करता है ।
परिचालन उत्तोलक की मात्रा (Degree of Operating Leverage)	–	यह परिचालन लाभों में प्रतिशत परिवर्तन का विक्रय में प्रतिशत परिवर्तन से अनुपात है ।
वित्तीय उत्तोलक (Financial Leverage)	–	वित्तीय उत्तोलक स्थायी वित्तीय व्ययों के उपयोग से संस्था को प्रति अंश अर्जनों पर परिचालन लाभों में परिवर्तन के प्रभाव की व्याख्या करता है ।
वित्तीय उत्तोलक की मात्रा (Degree of Financial Leverage)	–	यह परिचालन लाभों में प्रतिशत परिवर्तन अर्जनों में प्रतिशत परिवर्तन से अनुपात है ।
संयुक्त उत्तोलक (Combined Leverage)	–	परिचालन एवं वित्तीय उत्तोलकों को मिलाकर सभी स्थायी लागतों पर प्रभाव की व्याख्या करता है ।

10.12 स्वपरख प्रश्न

1. उत्तोलक क्या है?
2. परिचालन उत्तोलक से आप क्या समझते हैं?
3. परिचालन उत्तोलक की मात्रा से आपका क्या आशय है?
4. वित्तीय उत्तोलक क्या है? सूत्र दीजिये ।
5. वित्तीय उत्तोलक की मात्रा से क्या आशय है? सूत्र दीजिये ।
6. परिचालन एवं वित्तीय उत्तोलक से क्या अंतर है?
7. संयुक्त उत्तोलक क्या है?
8. एक कम्पनी की बिक्री 7,00,000 रू., परिवर्तनशील लागतें बिक्री का 60% तथा स्थायी व्यय 2,00,000 रू. हो तो परिचालन उत्तोलक कितना होगा ?
9. एक फैक्ट्री की स्थापित क्षमता 12,000 इकाइयाँ प्रति वर्ष है । वास्तविक प्रयोगिता क्षमता 8,000 इकाइयाँ वार्षिक है । प्रति इकाई विक्रय मूल्य 10 रूपये तथा परिवर्तनशील लागत 6 रूपये इकाई है । निम्न तीन स्थितियों में प्रत्येक स्थिति में परिचालन उत्तोलक की गणना कीजिये एवं व्याख्या कीजिये:
   i. जब स्थायी लागत 8,000 रूपये वार्षिक हो ।
   ii. जब स्थायी लागत 20,000 रूपये वार्षिक हो ।
   iii. जब स्थायी लागत 24,000 रूपये वार्षिक हो ।

1. एक कम्पनी की पूंजी संरचना निम्न प्रतिभूतियों से निर्मित है :

	Rs.

10% Preference Share Capital	5,00,000
Equity Share Capital (RS.10 each)	5, 00,000

The amount of EBIT is Rs. 3,00,000. The rate of income tax is 50%

आप वित्तीय उत्तोलक की गणना कीजिये ।

You are required to calculate the financial leverage.

11. मीना लिमिटेड़ के वित्त प्रबन्धक द्वारा यह प्रत्याशित है कि इसकी ब्याज व कर पूर्व आय (EBIT) चालू वर्ष में 50,000 रूपये होगी । कम्पनी में 5% वाले कुल 2,00,000 रूपये के ऋण-पत्र हैं, 10% वाले पूर्वाधिकार अंश 1,00,000 रूपये के हैं । कम्पनी के पास 5,000 समता अंश 10% रूपये मूल्य के हैं । वित्तीय उत्तोलक की मात्रा ज्ञात कीजिये । यदि उपरोक्त स्थिति में (अ) EBIT 30,000 रूपये तथा (ब) EBIT 70,000 रूपये हों । कम्पनी की कर दर 50% मान लें ।

12. निम्न आकड़ों से (i) परिचालक उत्तोलक (ii) वित्तीय उत्तोलक तथा (iii) संयुक्त उत्तोलक की गणना कीजिये ।

    Sales 1,00,000 units @ Rs,2 per unit = Rs. 2,00,000

    Variable Cost per unit @ Re. o.70

    Fixed Cost : Rs. 3,688.

13. प्रेक्षा लिमिटेड का विश्लेषणात्मक विवरण नीचे दिया गया है, यह 40,000 इकाईयों के उत्पादन स्तर पर आधारित है ।

	Rs.
Sales	4,80,000
Variable Cost	2,80,000
Revenue before fixed costs	2,00,000
Fixed Costs	1,20,000
	80,000
Interest	30,000
Earning before tax	50,000
Tax	25,000
Net Income	25,000

उपर्युक्त आकड़ों से (i) परिचालक उत्तोलक (ii) वित्तीय उत्तोलक तथा (iii) संयुक्त उत्तोलक ज्ञात करो ।

10.13 संदर्भ ग्रंथ

1. Khan Jain : Financial Management
2. M. Pandey : Financial Management

3. Agarwal M.R. : Management Accounting
4. Sahaf M.A. : Management Accounting : Principle and Practices

इकाई-11: पूँजी बजटन - I (Capital Budgeting - I)

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 पूँजी बजटन का अर्थ एवं परिभाषायें
11.3 पूँजी बजटन की मुख्य विशेषतायें
11.4 पूँजीगत बजटन की आवश्यकता
11.5 पूँजी बजटन के उद्देश्य
11.6 पूँजी व्यय या पूँजी परियोजनाओं के प्रकार
11.7 पूँजी बजटन की प्रक्रिया
11.8 पूँजी बजटन निर्णयों के प्रकार
11.9 पूँजी बजटन के महत्वपूर्ण घटक
11.10 पूँजी बजटन का महत्व
11.11 पूँजी बजटन की सीमाएँ
11.12 पूँजी बजटन प्रविधियाँ
11.13 तकनीकी शब्दावली
11.14 स्वपरख प्रश्न
11.15 संदर्भ ग्रंथ

11.0 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के पश्चात् आप समझ पायेंगे-

- पूँजी बजटन क्या है?
- व्यावसायिक उपक्रम के लिए पूँजी बजटन की क्या उपयोगिता है?
- पूँजीगत परियोजनायें कितने प्रकार की होती हैं?
- पूँजीगत बजटन की प्रक्रिया क्या होती है?
- पूँजीगत निर्णयन किस तरह लिये जाते हैं?
- पूँजी बजटन की परंपरागत प्राविधियों में किस प्रकार निर्णयन किये जाते हैं?

11.1 प्रस्तावना

व्यवसाय के सफल संचालन के लिए वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता होती है । इन वित्तीय संसाधनों का विनियोग दो प्रकार की सम्पत्तियों (चालू एवं स्थायी सम्पत्तियों) में किया जाता है । चालू सम्पत्तियों में विनियोग वह व्यय है जिनका लाभ संस्था को अधिक से अधिक एक वर्ष की अवधि में प्राप्त होता है, इन्हें आयगत व्यय भी कहा जाता है । विभिन्न क्रियात्मक बजट बनाकर आयगत व्ययों का नियोजन एवं नियंत्रण किया जाता है । स्थायी सम्पत्तियों

में विनियोग वह व्यय है जिसका लाभ संस्था को एक से अधिक वर्षों में प्राप्त होता है । व्यवसाय की दीर्घकालीन पूंजी का अधिकांश हिस्सा इन्हीं सम्पत्तियों में विनियोजित होता है । ये सम्पत्तियां व्यवसाय को आधार प्रदान करती है, अत: इन्हें ढांचागत या आधारभूत सम्पत्तियां कहा जाता है । स्थायी सम्पत्तियों पर किये जाने वाले व्यय को पूंजीगत व्यय कहा जाता है । इस व्यय के अन्तर्गत स्थायी सम्पत्तियों के क्रय, नवीनीकरण, आधुनिकीकरण, प्रतिस्थापन, खोज एवं अनुसंधान, नयी तकनीक के विकास आदि पर किये जाने वाले व्यय को सम्मिलित किया जाता है ।

चूंकि पूँजी का अधिकांश भाग स्थायी सम्पत्तियों में विनियोजित रहता है अत: यह आवश्यक है कि ऐसे व्यय बहुत सोच समझ कर किये जाये । किसी भी प्रकार का गलत निर्णयन दीर्घकाल तक प्रभाव डालता है । इससे भावी अर्जन, उत्पादन क्षमता, उत्पादन किस्म, लाभ मात्रा एवं रोजगार क्षमता आदि प्रभावित होती है । इस स्थिति में प्रबंधकों का यह दायित्व हो जाता है कि पूंजीगत व्यय करने से पूर्व उनके संदर्भ में सही निर्णय लें । जिससे भावी जोखिम न्यूनतम हों एवं अर्जनों की प्रत्याशा अधिकतम । पूँजी बजटन तकनीक का उपयोग कर प्रबन्धक इस दायित्व निर्वहन भली भाँति कर सकते हैं । पूँजी बजटन प्रबंध की वह तकनीक है जिसके अन्तर्गत पूँजीगत व्यय का इस प्रकार नियोजन होता है जिससे इन व्ययों के उद्देश्य को सरलता पूर्वक प्राप्त किया जा सके । इसके अन्तर्गत पूँजीगत पूंजी विनियोग के समस्त अवसरों एवं विकल्पों का विश्लेषण कर सर्वश्रेष्ठ विकल्प 7 अवसर का चुनाव किया जाता है । पूंजी बजटन तकनीक को अलग-अलग नाम से पुकारा जाता है । इस तकनीक में पूँजी व्यय संबंधी निर्णय किये जाते हैं, अत: इसे **'पूँजी व्यय निर्णय'** (Capital Expenditure Decision), दीर्घकालीन पूँजीगत व्ययों का प्रबंध इसके माध्यम से किया जाता है, अत: **'पूँजी व्यय प्रबंध** (Capital Expenditure Management), या **'दीर्घकालीन विनियोग निर्णय'** (Long Term Investment Decision), स्थायी सम्पत्तियों का नियोजन इस तकनीक के आधार पर किया जाता है अत: **स्थायी सम्पत्तियों का प्रबंध** (Management of Fixed Assets), विशिष्ट परियोजना के निर्णय में उपयोग किये जाने के कारण इसे **परियोजना बजटन विधियों** (Project Budgeting) आदि नामों से भी पुकारा जाता है ।

11.2 पूँजी बजटन का अर्थ एवं परिभाषायें (Meaning and Definition of Capital Budgeting)

साधारण शब्दों में पूँजी बजटन का आशय उस प्रक्रिया से होता है, जिसमें उन परियोजनाओं में धन लगाने या न लगाने के बारे में निर्णय किया जाता है, जिनकी लागतें एवं लाभ दीर्घकाल तक उदय एवं प्राप्त होते हैं ।

पूँजी बजटन एक प्रबन्ध तकनीक है जिसका प्रस्तावित पूँजी व्ययों एवं उनके अर्थ-प्रबन्धन पर विचार करने तथा उपलब्ध साधनों से सर्वोत्तम विनियोजन की योजना बनाने तथा उसे क्रियान्वित करने के लिए प्रयोग किया जाता है । इसकी कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्न प्रकार हैं :-

आर.एम. लिंच के अनुसार - "पूँजी व्यय बजटन उपलब्ध पूँजी के विकास के नियोजन से सम्बन्धित है, जिसका फर्म की दीर्घकालीन लाभदायकता को अधिकतम करने के लिए प्रयोग किया जाता है ।''

आर.एन. एन्थोनी के अनुसार - "पूँजी बजटन प्रबन्ध द्वारा विश्वास की गई उचित परियोजनाओं के लिए मांगी गई नई पूँजी सम्पत्तियों की सूची है जिसमें परियोजना की अनुमानित लागत भी दी हुई होती है ।"

चार्ल्स टी हार्नग्रेन के शब्दों में - "पूँजी बजटन प्रस्तावित पूँजी व्ययों को रोकने एवं उनका वित्त प्रबन्ध करने का दीर्घकालीन नियोजन है ।"

केलर एवं फरेरा के अनुसार - "पूँजी बजट किसी बजट अवधि में स्थायी सम्पत्तियों में विनियोग एवं व्यय के लिए बनाई गई योजनाओं का प्रतिनिधित्व करता है । "

मिल्टन एच. स्पेन्सर के शब्दों में - "पूँजी बजटन सम्पत्तियों के लिए व्ययों का नियोजन है जिनसे भावी अवधियों में प्रत्यायें प्राप्त होगी । "

इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि पूंजी बजटन वह प्रबन्धकीय तकनीक है, जिसके द्वारा फर्म के दीर्घकालीन लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य से विभिन्न विनियोग प्रस्तावों के उद्भव, मूल्यांकन, निर्णयन अनुवर्तन संबंधी प्रक्रिया पूर्ण की जाती है ।

11.3 पूँजी बजटन की मुख्य विशेषतायें (Main Characteristics of Capital Budgeting)

पूंजी बजटन निर्णय व्यवसाय के सामान्य निर्णयों से भिन्न होते हैं और ये निर्णय व्यवसाय के साथ-साथ निवेशकर्त्ताओं के भविष्य को भी प्रभावित करते हैं । पूंजी बजटन की मुख्य विशेषतायें निम्न प्रकार हैं -

1. **बड़े कोषों का विनियोग (Investment of Large Funds)** : पूंजी बजटन निर्णयों के तहत संस्थानों की विशाल योजनाओं में बड़े कोषों का विनियोग किया जाता है । इस तकनीक के माध्यम से बड़ी-बड़ी परियोजनाओं के बारे में निर्णय किये जाते हैं कि उन्हें लागू करना है या नहीं, अत: कोषों का कुशल बजटन आवश्यक है ।
2. **भावी पूँजी निवेश योजनाओं का अध्ययन (Study of Future Capital Project)** : पूँजी बजटन प्रक्रिया के अन्तर्गत संस्था की विभिन्न भावी निवेश योजनाओं का विस्तृत एवं गहन अध्ययन किया जाता है जिससे यह निर्णय किया जा सकता है कि कौन सी परियोजना कितनी लाभदायक है ।
3. **तुलनात्मक विश्लेषण (Comparative Analysis)** : पूँजी बजटन की दूसरी विशेषता यह है कि इस प्रक्रिया के अन्तर्गत भावी निवेश की विभिन्न योजनाओं की लागतों एवं संभावित लाभों का तुलनात्मक विश्लेषण किया जाता है । इसके अन्तर्गत यह भी देखा जाता है कि किस-किस योजना को क्रियान्वित करने में कितना-कितना समय लगेगा ।
4. **निर्णय करना (Decision Making) -** सभी परियोजनाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् यह निर्णय किया जाता है कि कौन सी परियोजना में विनियोजन करना है । चूँकि

यह निर्णय दीर्घकाल तक प्रभाव डालता है, अत: परियोजना की लागत, उपलब्ध संसाधनों की मात्रा, भावी लाभ की संभावना आदि बातों पर गहराई से विचार करके ही निर्णय लिया जाना चाहिए ।

5. **निर्णय अपरिवर्तनीय (Unchangeable Decisions)** - व्यावसायिक संस्थान में पूँजी बजटन सम्बन्धी निर्णय प्राय: अपरिवर्तनीय होते हैं । एक बार पूँजी विनियोजन योजना लागू करने के बाद उसमें परिवर्तन करना संभव नहीं हो पाता है । अत: पूँजीगत विनियोग के संबंध में विवेकपूर्ण निर्णय लेना अत्यन्त आवश्यक है ।
6. **लाभदायकता पर दीर्घकालीन प्रभाव (Long–term Effects on Profitability)** - पूँजी बजटन निर्णयों का व्यावसायिक संस्था की लाभदायकता पर दीर्घकालीन प्रभाव पड़ता है । अत: विशाल कोषों का विनियोग पूँजी बजटन तकनीक को ध्यान में रखकर दीर्घकालीन लाभ के लिये किया जाना चाहिए ।

11.4 पूँजीगत बजटन की आवश्यकता (Need of Capital Budgeting)

पूँजीगत सम्पत्तियों में विनियोग एक बहुत ही महत्वपूर्ण परन्तु कठिन समस्या है । बजटन स्वयं में एक आवश्यक यन्त्र है । परन्तु पूँजीगत सम्पत्तियों के बजटन की आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से और भी अधिक हो जाती है :-

1. **तुलनात्मक रूप से अधिक लागत (Relatively High Cost) -** पूँजीगत परियोजनाओं में बहुत अधिक धन का विनियोग होता है । अत: उनका कुशल बजटन आवश्यक है ।
2. **दीर्घकालीन प्रभाव (Long–term Effects) -** पूँजीगत परियोजनायें व्यवसाय के आगामी कई वर्षों की अर्जनों को प्रभावित करती है । उदाहरण के लिए श्रम के स्थान पर मशीन के प्रतिस्थापन से व्यवसाय की स्थिर लागतें बढ़ जाती हैं ।
3. **स्थायी विनियोग (Permanent Investment) -** पूँजीगत परियोजनाओं में विनियोजित धन एक स्थायी विनियोग है । बिना महत्वपूर्ण हानि के इनसे धन तुरन्त वापिस नहीं लिया जा सकता है ।
4. **लाभप्रदता व वित्तीय स्थिति पर प्रभाव पड़ना (Vitally affects Profits and Financial Position)** - पूँजीगत विनियोगों से संस्था की लाभप्रदता तथा वित्तीय स्थिति तुरन्त प्रभावित होती है तथा प्रबन्ध अपनी संस्था के वित्तीय लोच के लिए भावी घटनाओं पर आश्रित हो जाता है । अत: ये विनियोग बड़ी सावधानी से करने चाहिये ।
5. **अनिश्चितता व जोखिम (Uncertainty and Risk)** - दीर्घकालीन विनियोग निर्णयों की पेचीदगियाँ अल्पकालीन निर्णयों से अधिक विस्तृत होती है क्योंकि एक तो इन निर्णयों का प्रभाव चालू वर्ष से भी आगे तक रहता है और इनकी शुद्धता का तुरन्त सही अनुमान नहीं लगाया जा सकता । दूसरे इन परियोजनाओं का प्रभाव आगामी बहुत वर्षों तक रहने के कारण इनमें अनिश्चितता व जोखिम भी अधिक होती है ।

   उपर्युक्त कारणों से यह आवश्यक हो जाता है कि पूँजीगत व्ययों को करने या न करने के बारे में निर्णय लेने से पूर्व उपलब्ध विकल्पों का सम्यक विश्लेषक एवं सावधानीपूर्वक मूल्यांकन

किया जाये । इस महत्वपूर्ण दायित्व के निर्वाह हेतु अपनाई जाने वाली तकनीक को वित्तीय प्रबंध में पूँजी बजटन कहा जाता है ।

11.5 पूँजी बजटन के उद्देश्य (Objectives of Capital Budgeting)

व्यावसायिक संस्थानों में पूँजी बजटन निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये किया जाता है -

1. **पूँजी व्यय परियोजना का मूल्यांकन (Evaluation of Capital Expenditure Projects) -** पूँजी बजटन का प्रमुख उद्देश्य संस्थान के समक्ष उपलब्ध विभिन्न प्रस्तावित पूँजी व्यय परियोजनाओं का मूल्यांकन करना है, जिससे लाभप्रद परियोजना के चयन का कार्य सरल हो जाता है ।
2. **प्राथमिकता निर्धारित करना (Determination of Priority) -** पूँजी बजटन तकनीक अपनाने पर विभिन्न परियोजनाओं को उनकी सही लाभप्रदता का क्रम में विन्यासित किया जाता है । इससे प्रबन्ध को परियोजनाओं के संबंध में विस्तृत जानकारी प्राप्त होने के साथ-साथ उनकी संस्थान में उपयोगिता व लाभदायकता के क्रम की जानकारी मिल जाती है ।
3. **समन्वय (Coordination) -** बड़े संस्थान के अन्तर्गत कार्य अनेक विभागों में विभाजित किया जाता है, किन्तु प्रभावी नियंत्रण हेतु इनके मध्य समन्वय बनाये रखना अति आवश्यक होता है । पूँजी बजटन के माध्यम से विभिन्न विभागों के पूँजी व्यय में संतुलन स्थापित किया जा सकता है ।
4. **पूँजी व्ययों पर प्रभावी नियन्त्रण (Effective Control on Capital Expenditure) :** पूँजी बजटन में भी अन्य बजटों के समान ही परियोजना पर किये जाने वाले व्ययों के लिए बजट का निर्माण किया जाता है, जिससे विभिन्न विभागों द्वारा किये जाने वाले पूँजी व्ययों पर नियंत्रण किया जा सकता है । इसमें भी वास्तविक व्ययों की पूर्व निर्धारित व्ययों से तुलना करके इन पर प्रभावकारी नियंत्रण रखा जा सकता है ।
5. **पूँजी व्ययों के लिए वित्त व्यवस्था (Financing of Capital Expenditure) :** पूँजी बजटन से प्रबन्ध को इस बात की पहले से जानकारी हो जाती है कि कब कितनी राशि का पूँजी विनियोजन करना होगा । जिससे संस्था के प्रबन्धक समय पर उस राशि के लिए उचित व्यवस्था भी कर सकते हैं ।
6. **भूतकालीन निर्णयों का विश्लेषण (Analysis of Past Decisions) :** पूँजी बजटन के तहत् गत अवधि में लिये गये निर्णयों का विश्लेषण करके यह पता लगाया जा सकता है कि वे निर्णय कहाँ तक उपयुक्त थे ।
7. **भावी हानियों से सुरक्षा (Safety from Future Losses) :** पूँजी बजटन में प्रत्येक पूँजीगत व्यय का विस्तृत अध्ययन होने से जोखिमों एवं अनिश्चितताओं की पूर्व में जानकारी हो जाती है । इससे सुरक्षात्मक कदम उठाकर भावी हानियों से बचा जा सकता है ।
8. **स्थायी सम्पत्तियों का मूल्यांकन (Evaluation of Fixed Assests) -** पूँजी बजटन के माध्यम से स्थायी सम्पत्तियों का समय-समय पर मूल्यांकन होता है जिससे कम्पनी के चिट्ठे में इन्हें बताने में सुविधा रहती है।

11.6 पूँजी व्यय या पूजी परियोजनाओं के प्रकार (Type of Capital Expenditure)

पूँजीगत व्यय से तात्पर्य व्यवसाय में किये जाने वाले ऐसे समस्त खर्चो से होता है जो व्यवसाय के दीर्घकालीन विशेष उद्देश्यों एवं कार्यो के लिये किये जाते हैं । इन खर्चो से प्रारम्भ होने वाली परियोजनायें आय में वृद्धि करने वाली (Revenue Generating) अथवा लागत घटाने वाली (Cost Reducing) किसी भी प्रकार की हो सकती है । इन परियोजनाओं को निम्नवत् श्रेणीबद्ध किया जा सकता है :-

i. **नयी परियोजनायें (New Projects) -** नयी परियोजना से तात्पर्य नई फर्म को बाजार में लाने से है । इस नयी स्थापित होने वाली फर्म में भूमि, भवन, प्लान्ट मशीनरी, स्थापना कार्य आदि पर पूँजीगत व्यय करने होते हैं । इन परियोजनाओं की उपयुक्तता का निर्णय अपरिहार्यता पर आधारित होता है ।

ii. **विस्तार परियोजनायें (Expansion Project)** - चालू व्यवसाय का विस्तार करने के लिए संचालित की जाने वाली परियोजनाओं को इस श्रेणी में सम्मिलित किया जाता है । यह विस्तार बाजार हिस्सा बढ़ाने के लिए विद्यमान क्षमता के विस्तार या नये उत्पाद, नवीन बाजार, अतिरिक्त निर्माण से संबंधित हो सकता है, अत: इन्हें आय में वृद्धि करने वाली (Revenue Generating) परियोजनायें कहा जाता है । इनकी उपयुक्तता का निर्णय विनियोग की लागत एवं इनसे उत्पन्न होने वाले प्रत्याशित लाभ के आधार पर किया जाता है ।

iii. **प्रतिस्थापन परियोजनायें (Replacement Project)** : मशीनों का लगातार प्रयोग करने से वे नष्ट हो जाती है । कुछ मशीनें नष्ट तो नहीं होती है परन्तु अच्छी किस्म की नई मशीनों के आ जाने के कारण अप्रचलित हो जाती है । दोनों ही स्थितियों में मशीनों का पुनर्स्थापन आवश्यक होता है । पुनर्स्थापन निर्णय मशीनों के लगाने से प्रचालन व्ययों में होने वाली बचतों तथा अधिक उत्पादन के कारण प्राप्त होने वाले अतिरिक्त लाभों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए ।

iv. **उत्पादन अथवा प्रक्रिया विकास परियोजनायें (Product or Process Improvement) :** नये उत्पादों का विकास करने अथवा पुराने उत्पादों के निर्माण की प्रक्रिया में सुधार करके लागत कम करने अथवा लाभ बढ़ाने के उद्देश्य से इस तरह की परियोजनाएं प्रारंभ की जाती हैं । इन परियोजनाओं में मानव श्रम को मशीनों से प्रतिस्थापित करने की परियोजनाएं भी आती हैं ।

v. **शोध एवं विकास परियोजनायें (Research and Development Projects)** : संस्थान द्वारा उत्पादित वस्तुओं की किस्म में सुधार, परिवर्तन, विक्रय संवर्द्धन हेतु नये डिजाइन, आकार, मॉडलों आदि के लिए लगातार शोध एवं विकास कार्य कराया जाता है । इस हेतु जो परियोजनाएं बनायी जाती हैं उन्हें शोध एवं विकास परियोजनायें कहते हैं ।

vi. **अन्य परियोजनाए (Other Project):** ये ऐसी परियोजनाएं होती हैं जो संस्था के मूल उद्देश्य से प्रत्यक्षत: संबंधित नहीं होती हैं, किन्तु इनका क्रियान्वयन विवशता में अथवा वैधानिक या

सामाजिक दायित्व की पूर्ति करने के लिए किया जाता है । ऐसी परियोजनाओं के उत्पादन एवं लाभदायकता पर अप्रत्यक्ष रूप सें अनुकूल प्रभाव पड़ता है :-

a. **शैक्षणिक एवं प्रशिक्षण परियोजनायें (Education and Training Projects)** कर्मचारियों की कार्यकुशलता में सुधार, उत्पादन तकनीक, कार्य करने की तकनीक, विक्रय संवर्द्धन आदि की जानकारी के लिए शैक्षणिक एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाये जाते हैं ।

b. **प्रतिष्ठा परियोजनायें (Prestige Projects)** - जनता में अथवा ग्राहकों की दृष्टि में संस्था की प्रतिष्ठा के लिए बाहरी दिखावा भी आवश्यक होता है । आकर्षक व सुन्दर प्रशासनिक भवन, अतिथिगृह या सुविधायुक्त विक्रय विभागों का निर्माण आदि कार्य ऐसे है जिनसे संस्था की प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है!

c. **कर्मचारी कल्याण योजनाएं (Employees Welfare Project) -** श्रमिकों को अभिप्रेरित करने एवं संतुष्ट करने के लिए स्थापित परियोजनाएं कर्मचारी कल्याण परियोजनाएं कहलाती हैं, जैसे श्रमिकों के आवास भवन, केंटीन, मनोरंजन केन्द्र, चिकित्सालय, शिक्षण संस्था आदि का निर्माण करवाना ।

11.7 पूँजी बजटन की प्रक्रिया (Technique of Capital)

व्यवसायिक संस्थानों में पूँजीगत व्यय बजट बनाने की कोई सर्वमान्य विधि नहीं है क्योंकि उत्पादन संस्थान एवं उनकी परियोजनाओं की प्रकृति, प्राथमिकता में भिन्नता होती है । सामान्यतया एक बडी फर्म में पूंजी बजटन की निम्न प्रक्रिया अपनायी जाती है :-

1. **विनियोग प्रस्तावों का उद्‌गम (Origin of Investment Proposals) :** पूँजी बजटन की प्रक्रिया का पहला कदम विनियोग प्रस्तावों का उद्‌गम होना हे । व्यावसायिक संस्थान में विनियोग प्रस्तावों का उद्‌गम प्रबन्ध के किसी भी स्तर पर या संस्था के बाहर से हो सकता है । संस्थान का उच्च प्रबन्ध यह विचार ला सकता है या संस्थान में कार्यरत कोई पक्ष जैसे मजदूर, फोरमेन फैक्ट्री मैनेजर आदि ऐसा विचार उच्च प्रबन्ध के समक्ष रख सकता है, जिन पर आगे विचार किया जाता है । विक्रय अभियान, मेलों, सभा व संगोष्ठियों, शोध एवं विकास संस्थाओं से भी विभिन्न प्रकार की परियोजनाओं की जानकारी मिलती रहती है ।

2. **प्रस्तावों का प्रस्तुतिकरण (Presentation of Project)** : विभागीय प्रबंधकों द्‌वारा उपर्युक्त प्रस्तावों को उचित प्रारूप में तैयार किया जाता है, तत्पश्चात् उन्हें बजट / योजना समिति के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, इनमें सामान्यत: निम्नांकित सूचनाएं दी जाती हैं :
   - विभाग का नाम
   - प्रस्ताव की दिनांक एवं प्रस्ताव संख्या
   - प्रस्तावित परियोजना का उद्देश्य एवं विवरण
   - परियोजना से प्राप्त होने वाले संभावित लाभ / आय एवं निहित जोखिमों का विवरण
   - परियोजना में लगने वाला समय
   - परियोजना का जीवनकाल

- परियोजना की अनुमानित लागत
- शुद्ध बचत एवं प्रत्याय की दर

3. **प्रस्तावों की जाँच (Screening the Proposals)** : विभिन्न विभागों द्वारा भेजे गये विनियोग प्रस्तावों की बजट समिति द्वारा गहराई से जाँच की जाती है । यह जाँच उच्च प्रबन्ध तथा बजट समिति द्वारा स्थापित मापदण्डों के अनुसार की जाती है, बजट समिति देखती है कि प्रस्ताव संस्था के दीर्घकालीन विकास कार्यक्रमों के अनुसार है या नहीं । ये प्रस्ताव अन्य विभागों में असन्तुलन तो उत्पन्न नहीं करेंगे । संस्था इनकी वित्त व्यवस्था कर सकेगी या नहीं । इन सब बातों पर बजट समिति विचार करती है तथा जिन प्रस्तावों को जाँच के बाद उपर्युक्त पाया जाता' है उनका आगे आर्थिक विश्लेषण किया जाता हैं ।
4. **परियोजना मूल्यांकन (Project Evaluation)** पूँजी बजटन प्रक्रिया में अगला कदम विभिन्न परियोजनाओं की लाभप्रदता का मूल्यांकन करना है । उसके लिए (i) रोकड़ प्रवाहों में लाभों एवं लागतों का अनुमान लगाना तथा (ii) परियोजना में लगने वाला समय के निर्धारण (iii) परियोजनाओं की उपयुक्तता आंकने के लिए एक उपर्युक्त मापदण्ड का चयन आवश्यक है । रोकड़ प्रवाहों का मूल्यांकन भावी अनिश्चितताओं पर निर्भर करता है । अत: सम्बद्ध जोखिम का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करना चाहिए तथा विभिन्न प्रकार की जोखिमों के लिए पर्याप्त आयोजन करना चाहिए । इस संबंध में विशेषज्ञों की राय लेनी चाहिए । परियोजना के मूल्यांकन के लिए अनेक विधियों का प्रयोग किया जाता है, जिनका इस अध्याय में आगे विस्तार से विवेचन किया गया है ।
5. **परियोजना का चयन (Project Selection)** : जब विभिन्न परियोजनाओं का लाभदायकता मूल्यांकन किया जाता है तब उनमें से उन परियोजनाओं को छोड़ दिया जाता है जो अनार्थिक अथवा अलाभप्रद होती है । जो लाभदायक परियोजनायें बच जाती है उनमें से संस्था के पास उपलब्ध कोषों को देखते हुए विभिन्न परियोजनाओं को फर्म की पूर्व निर्धारित प्राथमिकताओं के अनुसार चुना जाता है । फर्म की प्राथमिकताएं अलग-अलग समयों पर अलग-अलग होती है । ये प्राथमिकताएं चालू अथवा अपूर्ण परियोजना को शीघ्र पूरा करने, प्रतिस्थापन परियोजनाओं को स्वीकार करने, लागत में कमी लाने वाली परियोजनाओं को स्वीकार करने अथवा वैधानिक आवश्यकताओं को पूरा करने के संबंध में हो सकती है ।
6. **अन्तिम अनुमोदन (Final Approval)** : उपयुक्त एवं साध्य परियोजना के चयन एवं प्राथमिकता निर्धारण के पश्चात् परियोजना के प्रस्तावों को अंतिम अनुमोदन के लिए संचालक मण्डल के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है । संचालक मण्डल द्वारा अच्छी तरह परीक्षण करने के उपरांत योग्य प्रस्तावों को स्वीकृति प्रदान की जाती है ।
7. **पूँजी बजट तैयार करना (Preparation of Capital Budget) :** संचालक मण्डल के अनुमोदन के पश्चात् परियोजना को वार्षिक पूँजी बजट में शामिल कर लिया जाता है । वित्त विभाग द्वारा परियोजना के लिए बजट का आवंटन, अवधिवार अनुमानित व्यय

का निर्धारण तथा पूँजी स्त्रोतों को ध्यान में रखते हुए पूँजी व्यय बजट तैयार किया जाता है ।

8. **पूँजी व्यय की स्वीकृति एवं क्रियान्वयन (Sanction of Expenditure and Execution of Project)** : वित्त विभाग द्वारा पूंजी व्यय बजट का निर्माण करने के बाद विभिन्न विभागाध्यक्षों को इस बात के लिए अधिकृत किया जाता है कि वे अपने विभाग के लिए स्वीकृत विशिष्ट योजना पर इस वर्ष में निर्धारित राशि खर्च कर सकते हैं । तदुपरांत विभागाध्यक्ष परियोजना के क्रियान्वयन की कार्यवाही प्रारम्भ करता है । इस हेतु परियोजना को विभिन्न चरणों में विभाजित किया जाता है । पहले क्या करना है का निर्धारण किया जाता है । उसी अनुसार कार्य प्रारंभ कर वास्तविक व्यय किया जाता है।
9. **निष्पति समीक्षा एवं अनुवर्तन (Performance Review and Follow up)** - अन्त में परियोजना की निष्पति की, उनके जीवनकाल में एवं समाप्ति के पश्चात् वास्तविक निष्पादन की बजट अनुमानों से तुलना कर समीक्षा की जाती है । विचरण की जानकारी प्राप्त कर उनके कारणों का पता लगाया जाता है । आवश्यकता होने पर प्रमापों में संशोधन किया जाता है अथवा लागत नियंत्रण के लिए प्रभावी कदम उठाये जाते हैं ।

11.8 पूँजी बजटन निर्णयों के प्रकार (Type of Capital Budgeting Decision) :

पूँजी बजटन के अन्तर्गत परियोजनाओं का मूल्यांकन एवं विश्लेषण करने के पश्चात् लाभदायक परियोजनाओं के चयन के बारे में निर्णय करना पड़ता है । निर्णय की प्रक्रिया प्रत्येक संस्था की भिन्न-भिन्न हो सकती है । सामान्यत: निर्णय को तीन भागों में विभाजित किया जाता है :

1. **स्वीकृत-अस्वीकृत (Accept–Reject Decision)** : वे परियोजनायें एक दूसरे की प्रतिस्पर्धी नहीं है, अर्थात् एक की स्वीकृति अन्य को स्वीकृत होने से नहीं रोकती है, स्वतंत्र परियोजनायें कहलाती हैं । इन परियोजनाओं के संबंध में स्वीकृत अथवा अस्वीकृत निर्णय लिये जाते है । विभिन्न परियोजनाओं का विश्लेषण करने के बाद जो परियोजनाएं निर्धारित मापदण्डों पर खरी उतरती है, उन्हें स्वीकार कर लिया जाता है तथा शेष परियोजनाओं को अस्वीकार कर दिया जाता है । सामान्यत: उन परियोजनाओं को स्वीकार किया जाता है जिनकी प्रत्याय दर (Rate of Return) पूँजी की लागत (Cost of Capital) से अधिक होती है ।
2. **परस्पर अपवर्जी निर्णय (Mutually Exclusive Decision)** : परस्पर अपवर्जी निर्णय का आशय उस निर्णय से है जिसमें किसी एक प्रस्ताव को स्वीकार कर लिये जाने पर अन्य सभी प्रस्ताव अस्वीकृत हो जाते हैं अर्थात् किसी प्रस्ताव की स्वीकृति अन्य वैकल्पिक प्रस्तावों की बलि देकर की जाती है । ये निर्णय उस समय महत्वपूर्ण हो जाते हैं, जब स्वीकृत, अस्वीकृत निर्णय के अन्तर्गत एक से अधिक प्रस्ताव स्वीकार्य हों । ऐसी स्थिति में उनमें से सर्वोत्तम का चयन किया जाता है । इस सर्वोत्तम विकल्प की स्वीकृति स्वत: ही अन्य विकल्पों को विलुप्त कर देती है ।

3. **पूँजी समभाजन निर्णय (Capital Rationing Decision)** : पूँजीगत साधनों की सीमितता के कारण सभी लाभदायक परियोजनाओं का चयन करना सम्भव नहीं होता । ऐसी स्थिति में परियोजना की पूँजी की लागत के सन्दर्भ में कट ऑफ बिन्दु निर्धारित कर दिया जाता है तत्पश्चात् लाभप्रदता के आधार पर प्रस्तावों को क्रम प्रदान किया जाता है । जो प्रस्ताव उक्त निर्धारित कट ऑफ बिन्दु की सीमा में आ जाते हैं, उन्हें स्वीकार कर लिया जाता है, शेष अस्वीकृत कर दिये जाते हैं ।

11.9 पूँजी बजटन के महत्वपूर्ण घटक (Important Factors of Capital Budgeting):

पूँजीगत निवेश निर्णय लागत एवं उसके फलस्वरूप प्राप्य भावी आगम की सूचना पर निर्भर करते हैं । विभिन्न पूँजी व्यय प्रस्तावों का मूल्यांकन कर सर्वोत्तम विकल्प चयन करने के लिए पूँजी बजटन की किसी भी तकनीक का प्रयोग करने से पूर्व निम्नांकित घटकों या सूचनाओं की आवश्यकता होती है:-

1. **शुद्ध विनियोग राशि अथवा रोकड बहिर्वाह (Net Investment or Cash Outflows)** : यह परियोजना की लागत होती है, अर्थात् यह वह राशि है जो किसी परियोजना पर खर्च की जाती है । इसकी गणना निम्नलिखित तरीके से की जाती है ।

   i. **नवीन परियोजना (New Project) :** नवीन परियोजना की दशा में विनियोजन राशि ज्ञात करने के लिए सम्पत्ति की लागत में सम्पत्ति स्थापना संबंधी व्यय, अवसर लागत एवं अतिरिक्त आवश्यक कार्यशील पूंजी को जोड़ा जाता है ।

   अर्थात्

Calculation of Net Cash Outflows–

	Rs.
Purchase Price of New Machine / Project (Including Duties and Taxes)	……..
Add– i. Installation Cost	..……
ii. Insurance & Freight	……..
iii. Additional Working Capital Required	……..
iv. Net Opportunity Cost	……..
Less– i. Investment Allowance	…….
ii. Saving in Working Capital	……...
Net Cash Outflows	…….

   ii. **प्रतिस्थापन परियोजना (Replacement Project)** - ऐसी परियोजना में पुरानी सम्पत्ति को नयी सम्पत्ति से प्रतिस्थापित किया जाता है । अत: नयी सम्पत्ति के रोकड़ बहिर्वाह की गणना निम्नानुसार की जाती है :-

Computation of Net Cash Outflows (Replacement Project)

	Rs
Purchase Price of the Asset (including Taxes and duties)	…….
Add– i. Installation, Freight	…….
ii. Installation Cost	…….
Iii. Net Opportunity Cost (if any)	……
iv. Increase in Working Capital	…….
v. Increase in Tax Liabilities	…….

Less– i. Sales Proceeds of old Machine	……
ii. Decrease in working capital	……
iii. Decrease in tax Liabilites	……..
iv. Investment Allowance	……..
Net Cash Outflows	……

2. **शुद्ध रोकड अन्तर्वाह (Net Cash Inflows) -** परियोजना के कारण रोकड़ में होने वाली शुद्ध वृद्धि ही शुद्ध रोकड़ अन्तर्वाह होती है, इसे हम शुद्ध रोकड़ लाभ भी कह सकते हैं । किन्तु यह लेखांकन लाभ नहीं है, क्योंकि लेखांकन लाभ की गणना ह्रास, आयोजन, उपार्जनों को ध्यान में रखते हुए की जाती है । जबकि रोकड़ अन्तर्वाह से आशय हास पूर्व किन्तु कर पश्चात् की नकद आय से है । यदि गैर रोकड़ी व्यय जैसे ख्याति का अपलेखन, आयोजन का निर्माण, जिन्हें कर पश्चात् लाभों की गणना के लिये पहले घटाया जा चुका हो, को भी पुन: जोड़ देना चाहिए । ये रोकड़ अन्तर्वाह परियोजना के जीवनकाल में प्रतिवर्ष समान हो सकते हैं अथवा एक वर्ष से दूसरे वर्ष में परिवर्तित हो सकते है । संक्षेप में शुद्ध प्राप्त राशि की गणना निम्न प्रकार लाभदायकता विवरण बनाकर की जा सकती है:-

a. Profitablity Satetment (New Project or In Revenue Increasing Decisions)

	Rs
Annual Sales Revenue	……..
Less– Operating Expenditure including depreciation	……..
Earning Before Tax (EBT)	……..
Less– Income tax	……
Earning After Tax (EAT)	……...
Add– Depreciation	…….
Net Cash Inflows	**……**

b. Profitability Statement (Replacement Projects or its Cost Reduction Decisions)

	Rs.
Saving in Cost (Due to replacement)	……
Less: i. Additional Depreciation	……
ii. Any other additional cost	……
Net Savings before tax	……
Less– Taxes on savings	……
Savings after tax	……
Add– Additional Depreciation	……...
Net Cash Inflows	……..

टिप्पणी -

i. विद्यमान सम्पत्ति की बिक्री से प्राप्त रोकड़ को अंतिम वर्ष का रोकड़ अन्तर्वाह माना जाता है ।

ii. अंतिम वर्ष के रोकड़ प्रवाह की गणना करते समय मुक्त की गई कार्यशील पूंजी की राशि भी सम्मिलित की जायेगी ।

iii. रोकड़ अन्तर्वाहों की गणना करते समय डूबत लागतों को ध्यान में नहीं रखा जाता है । ये लागतें वे हैं जिन्हें संस्था वसूल नहीं कर सकती हैं अत भावी निर्णयों के ये असंबद्ध लागतें होती हैं ।

Illustration : 1

Prachi Ltd. Is considering the introduction of a new product. The firm estimates that it can sell annual 15,000 units of this product at Rs. 20 per units. Variable expenses to produce are estimated at Rs. 10 per units. It will also involve fixed costs of Rs. 20,000 per annum. The plant to manufacture the product is available for. 2,00,000. Further, Rs. 50,000 will needed to install the plant. The life of plant is 10 years. A working capital investment of Rs. 50,000 would be required in the year of installing the plant. The firm uses the straight line method of depreciation on plant. Assuming 50% tax rate for this firm, you are required to calculate-

a. Net Cash Outflow; (b) Annual net cash inflow.

प्राची लिमिटेड एक नया उत्पाद जारी करने पर विचार कर रही है । संस्था का अनुमान है कि यह इस उत्पाद की प्रति वर्ष 15,000 इकाइयाँ 20 रूपये प्रति इकाई की दर से बेच सकती है । उत्पाद के निर्माण एवं बिक्री में परिवर्तनशील व्यय प्रति इकाई 10 रूपये अनुमानित किये गये हैं । इसमें 20,000 रूपये प्रति वर्ष स्थायी व्यय भी लगेंगे ।

उत्पाद का निर्माण करने के लिए संयंत्र 2,00,000 रूपये में उपलब्ध है । इसके अतिरिक्त 50,000 रूपये की आवश्यकता इसे संस्थापित करने हेतु होगी । संयंत्र का 1० वर्षा का जीवनकाल है । संयंत्र की स्थापना वाले वर्षों में 50,000 रूपये की कार्यशील पूँजी विनियोग के लिये आवश्यकता होगी । संस्था संयंत्र पर सीधी रेखा पद्धति से दास अपलिखित करती है । संस्था की 50% आयकर की दर मानते हुए गणना कीजिये -

(अ) शुद्ध रोकड़ बहिर्वाह (ब) वार्षिक शुद्ध रोकड़ अन्तर्वाह

Solution-

Computation of Cash Flow (New Project)

a. Initial Investment or Cash Outflows		**Rs.**
Cost of the Plant		2,00,000
Add: Installation cost		50,000
Add: Increase in net working capital		50,000
Net Cash Outflow		3,00,000
b. Net Annual or Operating Cash Inflows		
Sales Revenue (15,000 x Rs. 20)		3,00,000
Less: Operating expenses :		

Variable Costs (15,000 x Rs. 10)	1, 50,000	
Fixed Costs	20,000	1,70,000
		1,30,000
Less: Depreciation$\left(Rs.\frac{2,50,000}{10}\right)$		25,000
Income after tax		1,05,000
Less ; Tax @ 50%		52,500
Income after tax		52,500
Add : Depreciation		25,000
Net Annual or Operating Cash Inflows		**77,500**

Illustration: 2

Rishi Limited is considering replacement if it's existing machine by a new machine. The existing machine bought a few year ago has book value of Rs.3, 00,000 and it can be sold to realize after tax salvage value of Rs. 2, 00,000. It has a remaining life of five years after which its net salvage value is expected to be Rs. 1, 50,000. The working capital required for the existing machine is Rs. 2, 00,000

The new machine cost Rs. 10, 00,000. It is expected the fetch after salvage value of Rs. 5, 00,000 after 5 year when it will no longer be required. The new working capital required for this new machine is Rs. 3,50,000. The new machine is expected to bring a saving of Rs. 2,50,000 annually in manufacturing costs (other then depreciation Straight line method

Calculate the relevant cash flows with this replacement decision.

ऋषि लिमिटेड अपनी विद्यमान मशीन को नई मशीन से प्रतिस्थापित करने का विचार कर रही है । विद्यमान मशीन जिसे कुछ वर्षों पूर्व खरीदा गया था, का पुस्तक मूल्य 3,00,000 रूपये है और इसे बेचने पर कर पश्चात् निस्तारण मूल्य 2,00,000 रूपये प्राप्त किया जा सकता है । इसका शेष जीवनकाल 5 वर्ष है जिसके बाद इसका निस्तारण मूल्य 1,50,000 रूपये संभावित है । विद्यमान मशीन के लिए आवश्यक कार्यशील संभावित पूंजी 2,00,000 रूपये है ।

नयी मशीन की लागत 10,00,000 रूपये है । पाँच वर्ष पश्चात् जब इसकी आवश्यकता नहीं होगी तब इसका कर पश्चात् निस्तारण मूल्य 5,00,000 रूपये होगा । नयी मशीन के लिए 3,50,000 रूपये शुद्ध कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी । नयी मशीन से वार्षिक उत्पादन लागतों (ह्रास के अतिरिक्त) में 2,50,000 रूपये की बचत अपेक्षित है । कम्पनी की आयकर की दर 50 प्रतिशत है तथा ह्रास सीधी रेखा पद्धति से लगाया जाता है ।

इस प्रतिस्थापन निर्णय से सम्बन्धित रोकड़ प्रवाहों की गणना कीजिये ।

Solution:

Computation of Cash Flows (Replacement Project)

		Rs.
A.	**Initial Investment or Cash Outflows**	
	Cost of New Machine	10,00,000
	Add: Increase in Working Capital (Rs. 3, 50,000-2,00,000	1,50,000
		11,50,000
	Less: After tax sales value of old machine	2,00,000
	Initial Investments	9,50,000
B.	**Net Annual or Operating Cash Inflows Savings in Manufacturing costs**	2,55,000
	Less: Additional Depreciation	
	Depreciation on New Machine (Rs. 10,00,000-5,00,000)/5	1,00,000
	Depreciation on Old Machine (Rs. 3,00,000-1,50,000)/5	30,000
	Income before tax	1,80,000
	Less: Tax @ 50%	90,000
	Income after tax	90,000
	Add. Depreciation	70,000
	Net Annual or Operating Cash Inflows	**1,60,000**

3. **परियोजना का जीवनकाल (Project Life) :** यह वह अवधि होती है जिसमें परियोजना से आय प्राप्त होती रहेगी । जीवनकाल का निर्धारण सम्पत्ति का उपयोग, सम्भावित तकनीकी परिवर्तन, परियोजना की प्रकृति, रखरखाव आदि तत्वों को ध्यान में रखकर किया जाता है । अर्थात् यह परियोजना का आर्थिक जीवनकाल होती है, भौतिक जीवनकाल नहीं ।

4. **वांछित न्यूनतम प्रत्याय दर (Cut off Rate or Minimum required Rate of Return)** : न्यूनतम प्रत्याय दर वह दर होती है जिसके प्राप्त न होने पर विनियोग प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया जाता है । यह प्राय: संस्था की "पूँजी की औसत" लागत के बराबर होती है ।

5. **उपलब्ध कोष (Available Funds)** : पूँजी व्यय निर्णयों का सम्बन्ध लम्बे समय तक अधिक धन के विनियोजन से होता है । अत: परियोजना को स्वीकार करने का निर्णय संस्थान के पास उपलब्ध या उपलब्ध होने वाले संसाधनों को ध्यान में रखकर करना चाहिए।

6. **अप्रचलन से जोखिम (Risk of Obsolescence) :** वर्तमान में बहुत तेजी से तकनीकी परिवर्तनों के कारण प्रचलित उत्पादन विधियाँ, मशीनें, उपकरण अप्रचलित हो जाते हैं, एवं उनका स्थान नवीन विधियाँ, मशीनें ले लेती है । अत: प्रबन्ध को परियोजना लाग करने से पूर्व अप्रचलन की जोखिम पर गहराई से विचार कर लेना चाहिए । ऐसी परियोजना को चुना जा सकता है जिसकी पुनर्भुगतान अवधि कम हो ताकि लागत की शीघ्र वसूली हो सके ।

7. **अवसर लागत (Opportunity Cost)** : अवसर लागत वह आय है जो कोषों का अन्यत्र विनियोग करने पर प्राप्त हो सकती थी । पूँजी व्यय निर्णयों में अवसर लागत का महत्व है क्योंकि वांछित न्यूनतम प्रत्याय दर की गणना करते समय इसकी आवश्यकता होती है ।
8. **प्रबन्ध का प्रकार (Type of Management).** पूंजी विनियोजन निर्णय प्रबन्ध की सोच पर निर्भर करते हैं । यदि प्रबन्ध आधुनिक एवं प्रगतिशील विचारधारा का है तो संस्था में शोध एवं विकास परियोजनाओं को प्रोत्साहन दिया जाएगा । इसके विपरीत प्रबन्ध की रूढ़िवादी विचारधारा होने पर परम्परागत विधियाँ प्रयुक्त की जायेगी । नवीन विनियोजन व शोध को ज्यादा महत्व नहीं दिया जायेगा ।
9. **बाजार की स्थिति (Market Situation) :** बाजार में उत्पाद की मांग भी दीर्घकालीन विनियोजन निर्णयों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । यदि भावी पूर्वानुमान से यह पता लगता है कि दीर्घकाल में उत्पाद का विस्तृत बाजार है तो नवीन पूंजी विनियोजन का निर्णय अवश्य लिया जायेगा ।
10. **राजकोषीय नीति (Fiscal Policy).** सरकार की कर नीतियां यथा नये विनियोग पर छूट, विनियोग आय पर कर छूट, ह्रास स्वीकृति की विधि, कर की दरें आदि विनियोग निर्णयों को प्रभावित करती है ।
11. **प्रतिस्पर्धी की व्यूहरचना (Competitors Strategy) :** प्रतिस्पर्धी की व्यूह रचना भी पूंजी विनियोजन निर्णय लेते समय महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है । यदि प्रतिस्पर्धी द्वारा उत्पादन वृद्धि हेतु नया प्लान्ट स्थापित किया जाता है या शोध एवं विकास द्वारा उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार किया जाता है तो विचाराधीन संस्था को भी अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए ऐसा ही करना होगा ।
12. **गैर आर्थिक कारक (Non–Economic Factors) :** पूँजी व्यय निर्णय केवल वित्तीय पहलुओं के आधार पर नहीं किये जाते हैं, गैर आर्थिक घटकों पर भी विचार करना होता है । चुनी गई परियोजना का संस्था में कार्यरत कर्मचारियों के मनोबल पर क्या प्रभाव पड़ेगा? संस्था की ख्याति पर इसका क्या प्रभाव होगा? सरकारी नीतियां ऐसी परियोजना के अनुकूल है या प्रतिकूल? श्रम संघ क्या इसका विरोध करेगा?, आदि पर भी विचार करना चाहिए ।

परियोजना नियोजन (Project Planning) :

परियोजना का आशय लाभ के लिये किये गये किसी विनियोग अवसर से होता है तथा लक्ष्य निर्धारित करने तथा उनकी प्राप्ति के लिये कार्यक्रम तैयार करने को नियोजन कहा जाता है । अत: किसी विनियोग अवसर की सम्भावित लागत और आगम की तुलनात्मक समीक्षा करके उसको स्वीकार करने अथवा अस्वीकार करने के सम्बन्ध में निर्णय लेने की प्रक्रिया परियोजना नियोजन कहलाती है । इसके अन्तर्गत विभिन्न परियोजनाओं की लागतों की उनसे सम्भावित आगमों से तुलना करके अधिक आय देने वाली परियोजना का चयन किया जाता है एवं उसे व्यावहारिक रूप देने के लिये आवश्यक सुविधायें विकसित की जाती है । इस प्रकार परियोजना नियोजन के दो पहलू होते हैं- (1) **वांछनीयता अध्ययन** (Preparing feasibility study) और

(2) **परियोजना प्रतिवेदन का अभिकल्पन** (designing of project report) इसमें से पहला परियोजना की आर्थिक सुदृढ़ता के मूल्यांकन से सम्बन्ध रखता है जबकि बाद वाला पहले चुनी गई परियोजना की विस्तृत रूपरेखा प्रतिवेदन है ।

पूँजी बजटन और परियोजना नियोजन में अन्तर - पूंजी बजटन एवं परियोजना नियोजन दोनों ही नियोजनों व निर्णयन की तकनीक है, किन्तु इन दोनों में प्रमुख अन्तर निम्नलिखित है:

1. पूँजी-बजटन पूँजीगत व्ययों के नियोजन की तकनीक है जबकि परियोजना नियोजन विनियोग अवसरों के नियोजन की तकनीक है ।
2. पूँजी बजटन किसी विद्यमान कम्पनी द्वारा किया जाता है जबकि परियोजना नियोजन एक नयी कम्पनी की स्थापना के सम्बन्ध में हो सकता है अथवा किसी विद्यमान कम्पनी के व्यवसाय के विकास, विस्तार एवं पुनर्गठन हेतु हो सकता है ।
3. पूँजी बजटन में प्रतिवेदन कार्य महत्वपूर्ण नहीं होता है जबकि परियोजना नियोजन में परियोजना प्रतिवेदन का अभिकल्पन बहुत महत्वपूर्ण होता है ।

11.10 पूँजीगत बजटन का महत्व (Importance of Capital Budgeting)

पूँजीगत बजटन का महत्व इसलिये ही नहीं है कि पूँजीगत परियोजनाओं में अधिक धन का तथा दीर्घकालीन के लिये विनियोग होता है और इन निर्णयों का व्यवसाय के आगामी अर्जनों पर गहरा प्रभाव पड़ता है बल्कि इसका महत्व निम्नलिखित कारणों से और भी है :-

1. स्थायी सम्पत्तियों का विस्तार भावी विक्रयों को ध्यान में रखते हुए किया जाता हे । अत: पूँजीगत बजटन विक्रय बजट में दिखलाई गई अतिरिक्त विक्रय राशि को पूरा करने के लिये उत्पादन सुगमताओं के संवर्द्धन की सम्भावनाओं को दृष्टिगत करता है ।
2. पूँजीगत बजटन से पूँजीगत सम्पत्तियों के क्रय के लिये आवश्यक वित्त की उचित व्यवस्था की जा सकती है जिससे समय पर इस कार्य में वित्तीय कठिनाइयों के कारण बाधा उत्पन्न नहीं हों ।
3. यह दीर्घकालीन नियोजन और नीति निर्धारण में सहायता प्रदान करता है । उचित पूँजीगत बजटन से सम्पत्तियों के क्रय तथा वर्तमान सम्पत्तियों की किस्म में सुधार के उचित समय की जानकारी होती है ।
4. पूँजीगत बजटन से एक फर्म बाजार में पूँजीगत माल की माँग और पूर्ति की स्थिति को ध्यान में रखते हुए अपने लिये अपेक्षित सम्पत्तियों के क्रय का उचित समय निर्धारित कर सकती है ।
5. यह नष्ट प्राय: या अप्रचलित सम्पत्तियों के पुर्नस्थापन के लिये उपलब्ध विभिन्न वैकल्पिक सम्पत्तियों की तुलनात्मक स्थिति प्रकट करता है ।
6. यह ह्रास व सम्पत्तियों के पुर्नस्थापन की सुदृढ़ नीति तैयार करने में सहायता प्रदान करता है ।

7. यह लागत घटाने के तरीकों पर विचार करने में लाभदायक सिद्ध हो सकता है । लागत घटाने के लिये आधुनिकतम मशीनों के क्रय पर भी विचार किया जाता है ।
8. यह रोकड बजट को पूरा करने के लिए आवश्यक सूचनायें प्रदान करता है ।
9. यह मानव के स्थान पर मशीनों के प्रयोग की वांछनीयता पर प्रकाश डालता है ।
10. पूँजीगत बजटन ह्रास, बीमा व्ययों एवं अन्य स्थायी व्ययों पर पूँजीगत लागत के पड़ने वाले प्रभाव की जांच में सहायक है ।
11. यह कार्य दशाओं या सुरक्षा सुविधाओं में सुधार की पूँजीगत लागत का अनुमान प्रस्तुत करता है साथ ही श्रम कल्याण योजनाओं के निर्माण में भी सहायक होता है ।

11.11 पूँजी बजटन की सीमाएँ (Limitations of Capital Budgeting)

यद्यपि पूँजी बजटन में विनियोग प्रस्तावों के मूल्यांकन की विभिन्न विधियों द्वारा वैकल्पिक प्रस्तावों का व्यवस्थित विश्लेषण किया जाता है जिससे प्रबन्ध द्वारा सही निर्णय लिये जाने की सम्भावना रहती है । किन्तु मूल्यांकन के लिए प्रयुक्त समंकों के अशुद्ध होने पर इन विधियों से सदैव सर्वोत्तम विकल्प के चुने जाने की आशा नहीं की जा सकती । अत: पूँजी बजटन प्रक्रिया में कुछ कठिनाईयाँ प्रबन्धकों के समक्ष आती है जिनका उपयुक्त हल आवश्यक है । ये कठिनाईयाँ अथवा सीमाएँ निम्न हैं :-

1. **पूँजी की लागत का अनुमान लगाना कठिन:** पूँजी की लागत को अनुमानित करना पूँजी व्यय निर्णय के लिए प्रथम आवश्यकता है क्योंकि जो राशि विनियोग के लिए प्राप्त की गई है उसकी कुछ न कुछ लागत अवश्य लगेगी । किन्तु इस लागत का एक निश्चित अवधि तक अनुमान लगाना बहुधा एक कठिन कार्य होता है । बहुत सी मान्यताओं के आधार पर ही पूँजी लागत का अनुमान लगाया जा सकता है ।
2. **अवधि का अनुमान लगाना कठिन:** विनियोग प्रतिवर्ष कितना करना पड़ेगा और कितने वर्षों तक करना होगा तथा आय कितने वर्षों तक प्राप्त होती रहेगी यह सब भी जानना आवश्यक है; तभी किसी सम्पत्ति में विनियोग किया जाए, इस सम्बन्ध में उचित निर्णय लिया जा सकता है । सामान्यत: इन अवधियों का निर्धारण भी एक कठिन समस्या है।
3. **प्रत्याय दर का अनुमान कठिन:** विनियोजित पूँजी से भविष्य की अवधि में कितना लाभ मिलेगा इसे अनुमानित करना भी आसान कार्य नहीं है । प्राय: भविष्य अनिश्चित ही रहता हे और जैसे कि पहले बताया गया है, आज का युग अनिश्चितताओं एवं जोखिमों का युग है । अत: ऐसी स्थिति में भविष्य का पूर्वानुमान एक जटिल प्रक्रिया है ।
4. **मौद्रिक मूल्यांकन कठिन:** परियोजना प्रस्तावों का अध्ययन करते समय परियोजना से सम्बन्धित अनेक घटक ऐसे हैं जो कि विनियोग निर्णयों को प्रभावित करते हैं किन्तु जिनका परिणात्मक माप सम्भव नहीं, जैसे कर्मचारी मनोबल, देश का आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक वातावरण आदि । ये कारक भी पूँजीगत विनियोगों पर निर्णय को जटिल बनाते हैं । फलत: पूंजी बजटन तकनीक के द्वारा लिये गये निर्णयों की सफलता संदिग्ध हो जाती है ।

5. **निर्णय का परिणाम अनिश्चित यह कहना बड़ा कठिन:** है कि भविष्य में वही परिस्थितियाँ रहेंगी जो वर्तमान में है । प्रतिस्पर्धा एवं विकास के युग में यह कहना अत्यन्त कठिन है कि जिस आधार पर पूंजी व्यय का निर्णय किया गया है वह बनी रहेगी और उसी के अनुसार परिणाम भी मिलेंगे । नये संयंत्र को काम में लाने के लिए नई तकनीक प्रयोग में लेनी पड़ती है तथा श्रमिक इस नई तकनीक को समझकर कितना सहयोग कर पाते हैं, इस सम्बन्ध में पहले से लगाया गया अनुमान बाद में गलत निकल सकता है ।

11.12 पूँजी बजटन प्रविधियाँ (Capital Budgeting Techniques)

पूँजी व्यय प्रस्तावों को स्वीकार या अस्वीकार किये जाने से पूर्व सम्भावित प्रत्याय दर एवं लाभदायकता का मूल्यांकन किया जाना चाहिए । मूल्यांकन करने के लिए हमें ऐसी तकनीक का प्रयोग करना चाहिए जो विभिन्न परियोजनाओं का विश्लेषण करके यह जानकारी दे सके कि कौनसी परियोजना कितनी लाभप्रद है । इस कार्य के लिए अनेक विधियाँ प्रयोग में लाई जाती है उनमें से प्रमुख अग्रलिखित है :-

पूँजी बजटन विधियाँ (Capital budgeting Techniques)

I. **परम्परागत विधियाँ (Traditional Method)**

इन विधियों के अन्तर्गत भविष्य में प्राप्त राशियों के वर्तमान मूल्य को ध्यान में नहीं रखा जाता है अत: इन्हें असमायोजित समय विधियाँ (Unadjusted Time Method) भी कहा जाता है । इसमें निम्न विधियाँ सम्मिलित की जाती है :-

1. **अपरिहार्यता विधि (Urgency Method)** - दीर्घकालीन पूंजी विनियोजन करने के लिए परियोजना की लाभदायकता अदायगी अवधि आदि अनेक तथ्यों पर विचार किया जाना जरूरी होता है । किन्तु अनेक बार ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती है, जब परियोजना की अपरिहार्यता के कारण उसमें पूंजी विनियोजन तुरन्त आवश्यक हो जाता है, यदि ऐसा निर्णय नहीं लिया जाये तो संस्था को अत्यधिक हानि हो सकती है । अत: आपातकालीन या संकटकालीन परिस्थितियों में निर्णय अपरिहार्यता के आधार पर लिए जाते हैं । उदाहरणार्थ - किसी कार्यरत प्लान्ट के खराब हो जाने पर जांच के दौरान यह तथ्य पता चलता है कि अब इसकी मरम्मत कराने के स्थान पर इसे प्रतिस्थापित कर लेना उत्तम रहेगा । ऐसी परिस्थिति में लाभदायकता, अवधि आदि तथ्यों पर विचार करने के ब्याज अपरिहार्यता के कारण तुरन्त नया प्लान्ट लगाने का निर्णय करना ही उचित रहेगा ।

   अपरिहार्यता विधि के गुण (Merits of Urgency Method)

   1. यह विधि सरल है ।
   2. परियोजना की जांच की आवश्यकता नहीं होने के कारण यह मितव्ययी भी है ।
   3. संकटकालीन परिस्थितियों में संस्था को बड़ी हानि से बचाया जा सकता है ।

अपरिहार्यता विधि के दोष (Demerits of Urgency Method)

1. अत्यधिक धन विनियोजन वाली परियोजनाओं में निर्णय मात्र अपरिहार्यता के आधार पर नहीं लिया जा सकता है ।
2. दीर्घकालीन परियोजनाओं हेतु भी यह विधि उपयुक्त नहीं है ।
3. यह विधि वैज्ञानिक विश्लेषण पर आधारित नहीं है ।
4. अपरिहार्यता ऐसी अवधारणा है जिसका कोई सर्वमान्य मापदण्ड नहीं है । अर्थात् इस विधि में वस्तुनिष्ठता का अभाव है ।

   अत: इस विधि के आधार पर निर्णय विशेष परिस्थितियों में अत्यन्त आवश्यक होने पर ही लिया जाना चाहिये । इस सम्बन्ध में जी डेविन क्यीरिन का कथन - "किसी मापदण्ड के अभाव में विनियोजन परियोजनाओं के चयन में अपरिहार्यता मापदण्ड का प्रयोग इसके अन्तर्निहित आशय से प्राय: कुछ अधिक ही हो जाता है । " ठीक प्रतीत होता है ।

2. पुनर्भुगतान / अदायगी अवधि विधि (Pay back Period Method)

पूंजी व्यय का मूल्यांकन करने के लिए प्रयुक्त की जाने वाली विधियों में यह सबसे सरल एवं प्रचलित विधि है । इसे पे. ऑफ विधि, रोकड़ वसूली विधि आदि नामों से भी जाना जाता है ।

अदायगी विधि वह अवधि है जिसके अन्तर्गत शुद्ध रोकड़ अन्तर्वाह विनियोग की मूल लागत अर्थात् रोकड़ बहिर्वाह के समान होता है । अर्थात् वह अवधि जिसमें परियोजना की लागत के वसूल होने की सम्भावना होती है, अदायगी अवधि कहलाती है ।

दीर्घ अवधि में उत्पादन तकनीक, मांग, रूचियां, फैशन, सरकारी नीतियों आदि में परिवर्तन होने तथा परियोजना के अप्रचलित होने की जोखिमें बढ़ जाती है । यही कारण है कि (एक विवेकशील विनियोजक लागत को शीघ्र वसूल करने का प्रयास करता है । इस विधि के अन्तर्गत उस परियोजना को सर्वोत्तम माना जाता है जिसकी पुनर्भुगतान अवधि न्यूनतम हो, तथा वह अवधि निर्धारित अधिकतम अवधि से अधिक न हो । पूंजी परियोजनाओं के मूल्यांकन की यह विधि अमेरिका एवं इंग्लैण्ड में बहुत लोकप्रिय है ।

अदायगी अवधि की गणना निम्न प्रकार की जाती है :-

I. समान रोकड़ अन्तर्वाहों की दशा में गणना (Even Cash Flows)

यदि परियोजना से प्रतिवर्ष समान राशि वसूल होती है तो ऐसी स्थिति में अदायगी अवधि की गणना अग्रांकित सूत्र के आधार पर की जाती है :-

$$\text{Pay back Period} = \frac{Initial\ Investment}{Annual\ Cash\ Flows} = \frac{I}{C}$$

उदाहरणार्थ यदि एक मशीन को स्थापित करने की लागत 1,00,000 रूपये हो तो 7 वर्षों तक उससे 20,000 रू. वार्षिक शुद्ध रोकड़ अन्तर्वाह होने की सम्भावना हो तो अदायगी अवधि निम्नानुसार होगी :-

Pay back Period $= \frac{I}{C} = \frac{1,00,000}{20,000} = 5 Year$

II. असमान रोकड अन्तर्वाहों की दशा में गणना (Uneven Cash Flow)

ऐसी स्थिति में अदायगी अवधि की गणना संचयी रोकड़ अन्तर्वाहों द्वारा की जाती है । रोकड़ अन्तर्वाहों का तब तक संचयीकरण किया जाता है जब तक कि इनकी राशि कुल विनियोजन के बराबर नहीं हो जाती, अर्थात् जिस वर्ष संचयी रोकड़ अन्तर्वाह प्रारम्भिक विनियोग के बराबर हो जाता है वहाँ तक की अवधि को अदायगी अवधि कहते हैं ।

इस विधि से पुनर्भुगतान अवधि ज्ञात करते समय उस समय समस्या उत्पन्न होती है जब विनियोग की कुल लागत के बराबर राशि ज्ञात करने के लिए वार्षिक प्रवाह के थोड़े से ही भाग का प्रयोग करना पड़े । ऐसी स्थिति में वार्षिक प्रवाह को पूरे वर्ष में समान रूप से प्राप्त किया हुआ मानकर अनुपातिक रूप से गणना की जाती है । इसे निम्न उदाहरण से समझा जा सकता है -

Illustration: 3

Priya Ltd. Is considering the purchase of a machine. Two machines are available in that market. A and B each costing Rs. 1,00,000. Earnings after tax before depreciation are expected to be follows :-

प्रिय लिमिटेड एक मशीन क्रय करने पर विचार कर रही है । बाजार में दो मशीनें अ तथा ब उपलब्ध है, प्रत्येक की लागत 1,00,000 रूपये है । कर पश्चात् किन्तु ह्रास पूर्व की अपेक्षित अर्जनें इस प्रकार है:

Year	1	2	3	4	5
Cash Inflows:	Rs.	Rs.	Rs.	Rs.	Rs.
Machine A	25,000	25,000	25,000	25,000	25,000
Machine B	22,500	27,500	30,000	40,000	42,000

Evaluate the two alternative according to Pay-back Method

अदायगी अवधि विधि अनुसार दोनों विकल्पों का मूल्यांकन कीजिये ।

Solution:

Calculation of Pay back Period:-

Machine A : - समान रोकड अन्तर्वाह होने के कारण प्रथम सूत्र द्वारा गणना की जायेगी।

Pay back Period $= \frac{Initial\ Investment}{Annual\ Cash\ Flows} = \frac{I}{C}$

$= \frac{1,00,000}{25,000} = 4 Years$

Machine B: - मशीन **B** के लिए रोकड़ अन्तर्वाह असमान है अत: इसके लिए संचयी रोकड़ अन्तर्वाहों की गणना की जायेगी ।

Calculation of pay back Period

Years	Net Cash Inflows	Cumulative Cash Inflows
1	22,5000	22,500
2	27,500	50,000
3	30,000	80,000
4	40,000	1,20,000
5	42,000	1,62,000

Pay back Period $= 3\,yrs. + \frac{1,00,000 - 80,000}{40,000}\,yrs.$

$= 3\,yrs. + \frac{20,000}{40,000}\,yrs.$

$= 3 + \frac{1}{2} = 3\frac{1}{2}$ years

अनुशंसा - मशीन B की पुनर्भुगतान अवधि कम है अत: B मशीन को खरीदने की अनुशंसा की जाती है ।

Illustration: 4

The management of Prateek Limited is marking a preliminary screening of capital project proposals. The following are under consideration:-

प्रतीक लिमिटेड का प्रबन्ध पूंजीगत परियोजना प्रस्तावों की प्रारम्भिक जांच कर रहा है । निम्नलिखित प्रस्ताव विचाराधीन है :-

Proposals	Investments(Rs.)	Annual Net Cash Inflow (after Tax) (Rs.)	Life in Years
A	70,000	10,000	8
B	1,25,000	25,000	10
C	1,60,000	40,000	20
D	2,00,000	50,000	20

Give rank for the proposals according to Pay back Period. The period of Pay back should not exceed 6 years.

पुनर्भुगतान अवधि की पद्धति के आधार पर विभिन्न प्रस्तावों को क्रम दीजिए । पुनर्भुगतान की अवधि 6 वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए ।

Solution:

Ranking according to Pay back Period

Proposals	Investment Rs.	Annual Cash Inflows (after tax) Rs.	Pay back Period	Rank

A	70,000	10,000	7 Years	-
B	1,25,000	25,000	5 Years	2
C	1,60,000	40,000	4 Years	1
D	3,00,000	50,000	6 Years	3

परियोजना A पर विचार नहीं किया जायेगा, क्योंकि इसकी अदायगी अवधि न्यूनतम स्वीकार्य अवधि (6 वर्ष) से अधिक है एवं C परियोजना को प्राथमिकता प्रदान की जायेगी ।

अदायगी अवधि विधि के गुण या लाभ (Merits or Advantages of Pay back Period Method)

1. **सरल (Simple)** - यह विधि गणना करने एवं समझने दोनों दृष्टिकोणों से सरल है । तरलता पर बल
2. **तरलता पर बल (Emphasis on Liquidity)** - ऐसी संस्थाओं के लिए जिनमें रोकड़ की कमी है अथवा जिनमें अर्थ प्रबन्धन ऋण लेकर किया जाता है, इस विधि का बहुत अधिक महत्व है । संस्था की तरलता स्थिति नाजुक होने पर उन विनियोग प्रस्तावों को प्राथमिकता प्रदान की जाती है जिनसे विनियोग लागत शीघ्र वसूल हो सके अर्थात् इस विधि में लाभदायकता के स्थान पर तरलता को प्राथमिकता दी जाती है ।
3. **मितव्ययी (Economic)** - इस विधि हेतु अत्यन्त कुशल विशेषज्ञों की आवश्यकता नहीं होती है, क्योंकि गणना प्रक्रिया आसान व कम समय लेने वाली होती है, अत: कम खर्चीली विधि है ।
4. **अप्रचलन का भय नहीं (No danger of obsolesce)** - एक ऐसे उद्योग जिसमें बहुत अधिक प्रौद्योगिक व तकनीकी विकास हो रहे हों, विनियोग की लागत की वापसी का लघुकालीन दृष्टिकोण अपनाने से सम्पत्ति के अप्रचलन से होने वाली हानि से सुरक्षा मिलती है । किसी परियोजना की अदायगी अवधि जितनी कम होगी, उतनी ही अप्रचलन से उत्पन्न हानि से सुरक्षा की मात्रा बढ़ती है ।
5. **जोखिम में कमी (Low Risk)** - अधिक अवधि वाली परियोजना की तुलना में कम अवधि वाली परियोजना कम जोखिमपूर्ण होती है । अत: इस विधि को अपनाने से जोखिम में कमी आती है ।

अदायगी अवधि विधि के दोष या सीमायें (Demerits or Limitation of Pay back Period)

1. लाभदायकता की उपेक्षा (Overlooks Profitability) - वाणिज्य के नियमों के अनुसार विनियोग का मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना होता है, विनियोग की अदायगी नहीं । इस विधि में पूजी की वापसी पर ही ध्यान दिया जाता है, लाभदायकता की उपेक्षा की जाती है, जबकि लाभ लागत की वसूली के पश्चात् ही उत्पन्न होते हैं, पहले नहीं ।
2. **विनियोजन की कुल आय पर ध्यान नहीं (Ignorance of total income of investments)** - एक संस्था के समक्ष 20,000 रू. की लागत की दो मशीनों के क्रय का विकल्प है । प्रथम मशीन से 10,000 रू. वार्षिक आय दो वर्ष तक होगी जबकि दूसरी

मशीन से 5,000 रू. वार्षिक आय 6 वर्षों तक होगी । अदायगी अवधि के अनुसार प्रथम मशीन को स्वीकृत माना जाएगा, क्योंकि इसकी अदायगी अवधि 2 वर्ष है जबकि दूसरी की 4 वर्ष । अर्थात् इस विधि में विनियोग राशि की अदायगी पर ही ध्यान केन्द्रित किया जाता है, यह नहीं देखा जाता है कि उस परियोजना से कुल कितनी आय होनी है ।

3. **पूंजी की लागत का ध्यान रखना (Ignorance of Cost of Capital)** - पूंजी की लागत किसी भी परियोजना में विनियोग करने का निर्णय लेने का आधार स्तम्भ होता है, किन्तु इस विधि में इसकी अवहेलना की जाती है । यह विधि मूल लागत वसूल होने पर जोर देती है, ब्याज व लाभ पर नहीं ।
4. **अवशिष्ट मूल्य की उपेक्षा (Ignorance residual value)** - वर्तमान समय में कोई भी परियोजना अप्रचलित होने या उपयोगी न रहने पर भी बाजार में उसका अवशिष्ट मूल्य अवश्य मिलता है । किन्तु इस विधि में परियोजना पर विचार करते समय अवशिष्ट मूल्य का ध्यान नहीं रखा जाता है ।
5. **रोकड अन्तर्वाहों के आकार एवं समय की उपेक्षा (Ignores size and time of Cash Inflows)-** इस विधि में विभिन्न समयों एवं विभिन्न मात्राओं में प्राप्त रोकड़ अन्तर्वाहों में कोई अन्तर नहीं किया जाता है अर्थात् यदि एक परियोजना प्रारम्भ के वर्षों में अधिक व अन्तिम वर्षों में कम तथा दूसरी परियोजना प्रारम्भ में कम तथा अन्त में अधिक रोकड़ अर्जित करती है तो कम अदायगी अवधि के आधार पर निर्णय अलाभकारी हो सकता है।
6. **रोकड़ अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य की उपेक्षा (Ignores Present Value of Minimum Approved Period) -** अदायगी अवधि में यह माना जाता है कि विभिन्न वर्षों में प्राप्त होने वाली रोकड़ आय के वर्तमान मूल्य समान है । जबकि हम जानते हैं कि एक रूपये का जो वर्तमान मूल्य है, वह एक वर्ष अथवा दो वर्ष बाद मिलने वाले रूपये से अधिक होता है । इसलिए इस विधि में वर्तमान मूल्य की अवहेलना की जाती है ।
7. **न्यूनतम स्वीकृत अवधि ज्ञात करना कठिन (Difficult to Calculate Minimum Approved Period**) परियोजना की न्यूनतम स्वीकृत अवधि ज्ञात करना कठिन होता है उच्च प्रबन्ध केवल अनुभव व अपनी मानसिकता के आधार पर ही यह निर्धारित करता है । इसके लिए कोई उचित मापदण्ड या तकनीक विद्यमान नहीं है ।

अदायगी अवधि की उपयुक्तता (Suitability of Pay back Period Method)

उक्त सीमाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अदायगी अवधि के अनुसार लिया गया निर्णय अनुचित होगा, किन्तु आज भी कम लागत वाली परियोजनाओं हेतु, कोष की सीमितता होने या ऋण द्वारा पूंजी की व्यवस्था होने, अप्रचलन का भय होने पर निर्णय लेने हेतु यह विधि सर्वाधिक उपयुक्त मानी जाती है ।

अदायगी अवधि में सुधार (Improvements is Pay back Period) :

अदायगी अवधि विधि की उपयोगिता तथा विस्तृत प्रयोग के कारण इसकी उपर्युक्त कमियों को दूर करने के लिए इस विधि में कुछ सुधार किए गए हैं जो निम्न प्रकार है:-

I **अदायगी अवधि के पश्चात् लाभप्रदता की गणना (Post Pay back Profitability) -** जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, अदायगी अवधि विधि में परियोजना की अदायगी अवधि

के पश्चात् के रोकड़ अन्तर्वाहों की उपेक्षा की जाती है । जिसके कारण इस विधि द्वारा परियोजना की लाभदायकता की जाँच न होकर केवल तरलता की जाँच ही हो पाती है । अत: इस कमी को दूर करने के लिए विभिन्न परियोजनाओं की अदायगी अवधि के पश्चात् के शेष जीवन काल के अर्जनों की गणना की जाती है । ऐसा करते समय अन्तिम वर्ष में सम्पत्ति के रोकड अवशिष्ट मूल्य को भी सम्मिलित कर लिया जाता है । जिस परियोजना की अदायगी अवधि के पश्चात् की अर्जने सर्वाधिक होगी उस परियोजना को सर्वोत्तम माना जाएगा । अदायगी अवधि के पश्चात् की लाभदायकता की गणना के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है:-

Post Pay back Profitability = Total Cash Inflows in life + Scrap Value - Initial Cost

OR

= Annual Cash Inflows (working life - Pay back Period) + Scrap Value

यदि अन्य बातें समान है तो जिस परियोजना की अदायगी अवधि के पश्चात् की अर्जने सर्वाधिक होगी, वह ही सर्वोत्तम मानी जायेगी । इस अर्जनों की मात्रा जितनी अधिक होती है, वह परियोजना उतनी ही अधिक आकर्षक मानी जायेगी । यदि विभिन्न परियोजनाओं की लागत में पर्याप्त भिन्नतायें हैं तो अदायगी अवधि के पश्चात् लाभप्रदता निर्देशांक की गणना की जा सकती है । इसके लिये निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है :-

Illustration: 5

Maya Ltd. Is considering to purchase machine. Two machines A and B are available with following details :-

माया लिमिटेड एक मशीन के क्रय पर विचार कर रही है । दो मशीनें अ तथा व उपलब्ध है जिनके विवरण इस प्रकार हैं -

	Machine A	Machine B
Cost	25,000	30,000
Estimated Scrap	3,000	4,000

Estimated Cash Inflows: (Rs.)

Year	1	2	3	4	5	6
Machine A	2,500	4,000	7,000	8,000	7,000	6,500
Machine B	7,000	8,000	9,000	9,000	4,500	4,500

Evaluate the two alternative using: (i) Pay back Period Method, and (ii) Post Pay back Period Method

(i) अदायगी अवधि विधि, तथा (ii) अदायगी अवधि पश्चात् लाभप्रदता विधि का प्रयोग करते हुए दोनों विकल्पों का मूल्यांकन कीजिये ।

Solution:

(i) Pay Back Period Method:

Year	Machine A (25,000)		Machine B (Rs. 30,000)	
	Cash Inflows Rs..	Cumulative Cash Inflows Rs	Cash Inflows Rs.	Cummulative Cash InflowsRs.
1.	2,500	2,500	7,000	7,000
2.	4,000	6,500	8,000	15,000
3.	7,000	13,500	9,000	24,000
4.	8,000	21,000	9,000	33,000
5.	7,000	28,500	4,500	37,000
6.	6,500	35,000	4,500	42,000
Pay–back Period $=4yrs.+\frac{25,000-21,500}{7,000}years$ $= 4+\frac{1}{2} = 4\frac{1}{2}\ years$ **= 4 years 6 months**			$=3yrs.+\frac{30,000-24,000}{9,000}years$ $= 3y+\frac{2}{3} = 3\frac{2}{3}\ years$ **= 3 years 8 months**	

अनुशंसा - मशीन ब की अदायगी अवधि मशीन अ की अदायगी अवधि से कम है, अत: मशीन ब को चुना जायेगा ।

ii. Post pay back Period

	Machine A	Machine B
Life	6 years	6 years
Pay back Period	4 ½ years	$3\frac{2}{3}$ years
Post Pay back Period	1 ½ years	$2\frac{1}{3}years$
Cash Inflow over the post pay-back period:	Rs. 10,000	Rs. 12,000
Add : Scrap Value	Rs. 3,000	Rs. 4,000
Surplus Cash Inflows	**Rs. 13,000**	**Rs. 16,000**

अनुशंसा - इस विधि के अनुसार भी मशीन ब ही श्रेष्ठ है ।

Preeti Ltd. Is considering the purchase of a new machine which will carry out some operations performed by labour. X and y are alternative models. From the following information, you are required prepare a profitability statement and which will you select on the basis of (a) pay-back period and (b) post pay-back profitability. Tax rate is 50%. Ignore depreciation for calculation of tax

प्रीति लिमिटेड एक नयी मशीन के क्रय पर विचार कर रही है जो कि श्रम द्वारा की जाने वाली क्रियाओं को करेगी । X तथा Y वैकल्पिक प्रतिरूप है । नीचे दी गई सूचना से लाभदायकता विवरण बनाइये और (i) अदायगी अवधि विधि तथा (ii) अदायगी अवधि विधि के पश्चात् लाभप्रदता को आधार लेते हुए सर्वोत्तम का चयन कीजिये । कर की दर 50% है । ह्रास का ध्यान नहीं रखना है ।

	Machine X	Machine Y
Estimated life of machine (years)	6 years	5 years
Cost of machine	2,25,000	2,70,000
Cost of indirect materials	9,000	10,000
Estimated savings in scrap	15,000	20,000
Additimated	16,000	20,000
Estimated saving in direct wages:		
Employees not required (no.)	200	260
Wages Per employee	500	500

Solution:

Statement of Profitability

Particulars	MachineX	Machine Y
Estimated savings in scrap	15,000	20,000
Estimated savings in direct wages	1,00,000	1,30,000
Total Saving (a)	**1,15,000**	**1,50,000**
Cost of indirect materials	9,000	10,000
Additional cost of maintenance	16,000	20,000
Total cost (b)	**25,000**	**30,000**
Net saving before tax (a) - (b)	90,000	1,20,000
Less : Tax @ 50%	45,000	60,000
Net saving per year (after tax)	**45,000**	**60,000**

i. Pay-back Period = $=\frac{Investment}{Savings\ perYear}$

Machine X $=\frac{2,25,000}{45,000}=5 Years$

Machine Y = $=\frac{2,70,000}{60,000}=4.5 Years$

मशीन Y की पुनर्भुगतान अवधि कम है अत: मशीन Y का चयन किया जायेगा ।

ii. Post Pay-back Profitability = Total saving in life - Cost

Machine X = (Rs. 45,000 × 6) - Rs. 2, 25,000 = Rs. 45,000

Machine Y = (Rs. 60,000 × 5) - Rs. 2, 70,000 = Rs. 30,000

Or = Savings per year x (Total Life - Pay-back Period)

Machine X = 45,000 (6-5) = Rs. 45,000

Machine Y = 50,000 (5 - 4.5) = Rs. 30,000

पुनर्भुगतान अवधि के बाद की लाभदायकता के आधार पर मशीन Y का चयन किया जायेगा।

iii. बेलआउट पुनर्भुगतान अवधि विधि (bailout Pay–back Period Method): यदि परियोजनाओं के मूल्यांकन में जोखिम एक महत्वपूर्ण कारक है तो बेल आउट अदायगी अवधि की गणना की जानी चाहिये ।

इसके लिये सबसे पहले सम्पत्ति के सम्पूर्ण जीवन काल में उसके निस्तारण मूल्य (Salvage Value) की गणना की जाती है और फिर प्रत्येक वर्ष के रोकड़ अन्तर्वाहों का संचयी योग ज्ञात किया जाता है । इसके पश्चात् प्रत्येक वर्ष के संचयी रोकड़ अन्तर्वाहों में उस वर्ष के अन्त के सम्पत्ति के निस्सारण मूल्य को जोड़ा जाता है जिस वर्ष यह योग विनियोग की लागत के बराबर हो जाता है, वह ही परियोजना की बेल आउट अदायगी अवधि कहलाती है ।

जिस परियोजना की बेल आउट अदायगी अवधि जितनी कम होगी, उस परियोजना में भावी जोखिमों से उतनी ही अधिक सुरक्षा होगी । विभिन्न परियोजनाओं के मूल्यांकन में यदि अन्य बातें समान हैं तो वह परियोजना सर्वोत्तम मानी जायेगी, जिसकी बेल आउट अदायगी अवधि सबसे कम है ।

Illustration: 7

Following is the information related to a project :

निम्नलिखित सूचना एक परियोजना से सम्बन्धित है.

	Project A	**Project B**
Cost of Project	Rs. 2, 00,000	Rs. 1,50,000
Life of the Project	10 years	8 years
Net annual Cash inflows	Rs. 40,000	Rs. 27,500

Salvage value at the end of the 1st year Rs. 1, 20,000 and 1,00,000 respectively. Annual decrease of salvage value from the second year and onwards Rs. 20,000. Calculate Bailout Back Period.

प्रथम वर्ष के अन्त में अवशिष्ट मूल्य क्रमश : 1,20,000 रू. व 1,00,000 रू. है जो विनियोग के अवशिष्ट मूल्य के दूसरे व उसके आगे वाले वर्षों में क्रमश: 20,000 रू वार्षिक कम होगी । बेल-आउट पुनर्भुगतान अवधि की गणना कीजिये ।

Solution:

Project A

Year	Annual Cash Flow	Cummulative Cash Flow	Salvage Value	Total (3+4)	Remarks if any
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
1.	40,000	40,000	1,20,000	1,60,000	-
2.	40,000	80,000	1,00,000	1,80,000	–
3.	40,000	1,20,000	80,000	2,00,000	Bailout Period

4.	40,000	1,60,000	60,000	2,20,000	

Project B

Year	Annual Cash Flow	Cumulative Cash Flow	Salvage Value	Total (3 + 4)	Remarks if any
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
1.	27.500	27,500	1,00,000	1,27,000	-
2.	27,500	55,000	80,000	1,35,000	
3.	27,000	82,500	60,000	1,42,500	-
4.	27,000	1,10,000	40,000	1,50,000	Bailout Period
5.	27,000	1,37,500	20,000	1,57,500	-

परियोजना का चयन किया जायेगा, क्योंकि इसकी बेल आउट अवधि कम है ।

iv. **अदायगी अवधि व्युत्क्रमों की गणना (Calculating the Pay–back Reciprocals)** × परम्परागत पद्धति में विनियोग से प्राप्त अर्जनों के समय कारक पर ध्यान नहीं दिया जाता है और न इसमें विनियोग पर प्रत्याय की दर की गणना की जाती है । अदायगी अवधि व्युत्क्रम द्वारा इन दोनों ही कमियों को दूर किया जाता है ।

इस पद्धति के अनुसार विनियोग की अदायगी अवधि का व्युत्क्रम ही विनियोग पर समय समायोजित प्रत्याय दर होती है । उदाहरण के लिये यदि किसी विनियोग की अदायगी अवधि 4 वर्ष है तो इस अवधि का व्युत्क्रम अर्थात् 25% हुआ । यह 25% ही इस विनियोग की समय समायोजित प्रत्याय दर (Time adjusted Rate of Return) होगी । सूत्र रूप में -

T.A. Rate of Return or Pay–back Reciprocal= $\frac{C}{I}$ x 1oo

इस पद्धति के प्रयोग से बहुत ही सरल तरीके से विनियोगों पर समय समायोजित प्रत्याय दर ज्ञात की जा सकती है परन्तु इस पद्धति का प्रयोग तभी करना चाहिये जबकि -

1. प्रतिवर्ष रोकड़ अन्तर्वाह समान दर पर हो ।
2. विनियोग का जीवन-काल अदायगी अवधि 'से कम से कम दुगुना अवश्य हो ।

3. लेखांकन/औसत प्रत्याय दर विधि (Accounting / Average rate of Return Method)

इस विधि को लेखांकन प्रत्याय दर पद्धति (Accounting Rate of Return Method) या वित्तीय विवरण पद्धति (Financial Statement Method) या विनियोग पर प्रत्याय पद्धति (Return on Investment Method) भी कहते हैं क्योंकि इसमें प्रयोग किये जाने वाले प्रमुख समंक लेखांकन विवरणों से ही प्राप्त किए जाते हैं । यह पद्धति विनियोगों पर प्रत्याय दर के अनुमान प्रस्तुत करती है । इसे असमायोजित प्रत्याय-दर पद्धति भी कहा जाता है, क्योंकि इसमें विभिन्न वर्षों की अर्जनों के वर्तमान मूल्य के अन्तरों का ध्यान नहीं रखा जाता है । इस विधि के अन्तर्गत किसी परियोजना में विनियोजित कोषों से प्राप्त शुद्ध आय या बचत की दर की गणना की जाती है । विभिन्न वैकल्पिक परियोजनाओं

में से सर्वश्रेष्ठ परियोजना के चुनाव के लिये इनकी प्रत्याय-दरों की तुलना की जाती है तथा जिस परियोजना की प्रत्याय-दर सबसे अधिक होती है, उस परियोजना की ही सिफारिश की जाती है । प्रबन्ध के इस प्रत्याय-दर से सन्तुष्ट होने पर ही वह परियोजना क्रियान्वित की जाती है ।

इस पद्धति से निकाले गये परिणाम दीर्घ कार्य-जीवन वाली परियोजना के लिए ही अधिक सत्य होते हैं ।

विनियोगों पर प्रत्याय-दर निकालने के लिये प्रयोग किये जाने वाले सूत्रों के सम्बन्ध में लेखापालों में मतभेद है । कुछ लेखापाल 'औसत वार्षिक शुद्ध आय' में विनियोग की 'मूल लागत' का भाग देकर प्रत्याय-दर निकालते हैं । ऐसी दर को विनियोग पर प्रत्याय (Return on Investment) कहते हैं । दूसरी ओर अन्य लेखापाल इसके लिये 'औसत वार्षिक शुद्ध आय' में 'औसत विनियोग' का भाग देते हैं । इस दर को औसत प्रत्याय दर (Average Rate of Return) कहते हैं । हमारी राय में दूसरा मत अधिक तर्कसंगत है क्योंकि प्रतिवर्ष ह्रास घटाने से सम्पत्ति का मूल्य कम होता जाता है अर्थात् प्रतिवर्ष विनियोजित कोष कम होते जाते हैं । अत: सम्पत्ति के समस्त कार्य जीवन में उसकी मूल लागत को प्रत्याय दर का आधार बनाना गलत होगा । इसलिये प्रत्याय दर की गणना औसत अप्राप्त पूँजी (Average Unrecovered Capital) अथवा औसत विनियोग पर ही करनी चाहिए ।

1. **औसत विनियोग पर प्रत्याय दर (Rate of Return on Average Investment):** औसत प्रत्याय दर की गणना औसत वार्षिक शुद्ध आय में औसत विनियोग राशि का भाग देकर ज्ञात की जाती है एवं प्रतिशत दर ज्ञात करने के लिए उसे 100 से गुणा किया जाता है । सूत्र के रूप में

   i. यदि कर एवं ह्रास के पश्चात् के लाभ दिये हों -

$$ARR = \frac{Average\ Annual\ Income\ after\ tax\ and\ depreciation}{AverageInvestment} \times 100$$

   ii. यदि वार्षिक रोकड़ अन्तर्वाह दिये हों -

$$ARR = \frac{Average\ Net\ Annual\ Cash\ Flows - Annual\ depreciation}{AverageInvestment} \times 100$$

2. मूल विनियोग पर प्रत्याय दर (Rate of Return on Original Investment) इसकी गणना औसत वार्षिक शुद्ध आय में मूल विनियोग का भाग देकर ज्ञात की जाती है । सूत्र के रूप में

$$ARR = \frac{Average\ Annual\ Cash\ Flows - Income\ after\ tax\ and\ depreciation}{Original\ Investment} \times 100$$

3. प्रतिस्थापन परियोजनाओं में औसत प्रत्याय दर (Average Investment in Replacement Project) - इसकी गणना पुरानी मशीन के स्थान पर नयी मशीन लगाने के कारण भावी वार्षिक अर्जनों में होने वाली वृद्धि की राशि में संवर्द्धात्मक विनियोग

(Incremental Investment) की कुल या औसत राशि का भाग देकर की जाती है । सूत्र रूप में -

$$ARR = \frac{Increase\ in\ expected\ future\ annual\ net\ earning}{Average\ or\ initial\ increase\ in\ Investment} \times 100$$

सूत्र के विभिन्न तत्वों की गणना निम्न प्रकार कोई जाती है -

ह्रास एवं कर पश्चात् औसत वार्षिक आय (Average Annual Income after Depreciation & Tax) x इसकी गणना रोकड़ प्रवाह पर आधारित न होकर लेखांकन सिद्धान्त पर की जाती है । शुद्ध आय निकालने के लिए उस वर्ष की समस्त आयों एवं व्ययों को सम्मिलित किया जाता है, चाहे उनसे रोकड़-प्रवाह होता हो अथवा नहीं । इस प्रकार -

1. यदि किसी परियोजना से प्राप्त संभावित आय सभी वर्षों के लिए समान है, तब वार्षिक आय ही औसत आय है ।
2. परियोजना के जीवन काल की जानकारी दी जाने पर ऐसी सभी आयों के योग में जीवन काल का भाग देकर औसत वार्षिक शुद्ध आय की गणना कर ली जाती है ।
3. यदि वार्षिक रोकड़ प्रवाह दिये हुए हो तो लेखांकन आय में परिवर्तित करने के लिए वार्षिक ह्रास की राशि (सीधी रेखा पद्धति पर आधारित) को घटा देना चाहिए ।

औसत विनियोग (Average Investment) प्रारम्भिक विनियोग में निस्तारण मूल्य को जोड़कर औसत ज्ञात किया जाता है । औसत विनियोग की गणना निम्न सूत्र से की जा सकती है -

$= \frac{1}{2}$ (Initial Investment + Salvage Value)

इस प्रकार, औसत प्रत्याय दर का सूत्र निम्न प्रकार है -

$$ARR = \frac{Average\ Annual\ Income\ after\ tax\ and\ depreciation}{\frac{1}{2}(Initial\ Investment + Savage\ Value)} \times 100$$

यदि परियोजना के प्रारम्भिक वर्ष में अतिरिक्त कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है जो केवल परियोजना के जीवनकाल के अन्त में ही मुक्त की जा सकती है । अन्य शब्दों में, अतिरिक्त पूंजी की यह राशि परियोजना के जीवनकाल में रुकी रह जाती है तो इसे उपरोक्त तरीके से गणना की गई औसत राशि में जोड़ देनी चाहिए । इसका सूत्र इस प्रकार होगा -

$= \frac{1}{2}$ (Initial Investment + Salvage Value) + NWC

Illustration: 8

Find average investment with the help of the following information

नीचे दी गई सूचना से ओसत विनियोग की गणना कीजिये -

Initial investment	50,000
Salvage value	5000
Working capital	10,000
Expected life of the project	4 years

Solution:

Average Investment = $\frac{1}{2}$ (Initial Investment + Salvage Value) + NWC

= $\frac{1}{2}$ (50,000 + 5000) + 10,000

= 27,500 + 10,000

= 37,500

Illustration: 9

A project costs Rs. 16000 and has a scrap value of Rs. 4000.Its stream of income before depreciation and taxes during first five years is Rs. 3,000; Rs. 3,600; Rs. 4,800 and Rs. 6,000. Assuming tax rate at 50% and depreciation on straight line basis, calculate average rate of return for the project.

उदाहरण - एक परियोजना की लागत 16,000 तथा अवशिष्ट मूल्य 4000 है । इससे ह्रास एवं कर से पूर्व प्रथम पाँच वर्षों में आय का प्रवाह क्रमश: 3,000 रू.; 3,600 रू.; 4,200 रू;. 4,800 रु. तथा 6,000 रू. है । परियोजना के लिए औसत प्रत्याय दर की गणना यह मानते हु ये कीजिये कि आयकर की दर 50% है तथा हास सीधी रेखा पद्धति से अलिखित किया जाता है ।

Solution:

Calculation of Average Rate of Return

Year	1	2	3	4	5	Total	Average
Rs.	Rs.	Rs.	Rs.	Rs.	Rs.	Rs.	
Income before depreciation And taxes	3,000	3,600	4,200	4,800	6,000	21,600	4,320
Less: Depreciation	2,400	2,400	2,400	2,400	2,400	12,000	2,400
Net Income before taxes	600	1,200	1,800	2,400	3,600	9,600	1,920
Less: Income taxes @ 50%	300	600	900	1,200	1,800	4,800	960
Net Income after taxes	300	600	900	1,200	1,800	4,800	960

$$ARR = \frac{Average\ \ Annual\ Income\ after\ tax\ and\ depreciation}{AverageInvestment} \times 100$$

$$ARR = \frac{Rs.960}{Rs.10,000} \times 100 = 9.60\%$$

AI = $\frac{1}{2}$ (Initial Investment + Salvage Value)

AI = $\frac{1}{2}$ (16,000 + 4,000)

AI = 10,000 Rs.

स्वीकृति मापदण्ड (Acceptance Criterion)

इसमें प्रत्याय की एक न्यूनतम दर निश्चित कर दी जाती है । इस आधार पर जो परियोजनाएं इस निर्धारित न्यूनतम दर से कम प्रत्याय दर (ARR) देती है, उन्हें पूर्णत: अस्वीकार कर दिया जाता है तथा अधिक प्रत्याय दर वाली परियोजना को स्वीकृत कर लिया जाता है । अनेक परियोजनाओं की दशा में सभी परियोजनाओं को प्रत्याय दर के अनुसार आरोही या अवरोही

क्रम में व्यवस्थित कर लिया जायेगा । तत्पश्चात् वांछित न्यूनतम प्रत्याय दर से कम औसत प्रत्याय वाली परियोजनाओं को अस्वीकृत किया जाता है तथा अधिक दर वाली परियोजनाओं में प्राथमिकता के आधार पर चयन कर लिया जाता है ।

Illustration: 10

Calculation ARR and arrange the following investment proposals according to their profitability:

निम्नांकित विनियोग प्रस्तावों को औसत प्रत्याय दर पद्धति से उनकी लाभदायकता के क्रम में व्यवस्थित कीजिये :-

Project	A	B	C	D
Initial outlay (Rs.)	30,000	5,000	10,000	40,000
Annual Cash Flows (Rs.)	4,500	2,500	3,000	10,000
Life in years	10	8	5	10

Solution:

Ranking according to Average Rate of Return Method

Project	Initial Outlay Rs.	Average Investment [(2) ÷ (2)] Rs.	Life in years	Annual cash Flow Rs.	Annual Depreciation [(2) ÷ (6)] Rs.	Net Income [(5)-(6)]	% Rate of Return [(7) ÷ (3)] x 100	Rank
1	2	3	4	5	6	7	8	9
A	30,000	15,000	10	4,500	3,000	1,500	10	IV
B	5,000	2,500	8	1,500	625	875	35	I
C	10,000	5,000	5	3,000	2,000	1,000	20	III
D	40,000	20,000	10	10,000	4,000	6,000	30	II

Illustration: 11

Rank the following investment in order of their profitability according to Average Rate of Return Method:-

निम्नांकित विशेष प्रस्तावों को औसत प्रत्याय दर पद्धति से उनकी लाभदायकता के क्रम में व्यवस्थित कीजिये -

Project	P	Q	R	S	T
Initial outlay (Rs.)	30,000	3,000	12,000	20,000	20,000
Annual Cash Flows (Rs.)	4,500	1,000	2,000	4,000	5,000
Life in years	10	5	8	10	6

Solution :

Ranking according to Average Rate of Return Method

Project	Initial Outlay	Average Investment	Life in years	Annual cash Flow	Annual Depreciation	Net Income	% Rate of Return	Rank

	Rs.	[(2) ÷ (2)] Rs.		Rs.	[(2) ÷ (6)] Rs.	[(5)-(6)]	[(7) ÷ (3)] x 100	
1	2	3	4	5	6	7	8	9
P	30,000	15,000	10	4,500	3,000	1,500	10	4
Q	3,000	1,500	5	1,000	600	400	27	1
R	12,000	6,000	8	2,000	1,000	500	8	5
S	20,000	10,000	10	4,000	2,000	2,000	20	2
T	20,000	10,000	6	5,000	3,333	1,667	16.67%	3

औसत प्रत्याय दर की विधि के लाभ (Advantage of ARR)

1. **सरलता**: औसत आय एवं औसत विनियोग के आधार पर गणना की है । अत: यह विधि समझने की दृष्टि से बहुत सरल है एवं इसमें गणना प्रक्रिया भी बहुत आसान है । इसे लेखांकन समंकों से ही ज्ञात किया जा सकता है । परियोजना के रोकड़ प्रवाहों के लिए किसी प्रकार के समायोजन की आवश्यकता नहीं है ।
2. **ह्रास के बाद शुद्ध आय पर विचार** - इस विधि में शुद्ध आय की गणना करने के लिए ह्रास की राशि घटा दी जाती है जो कि सैद्धान्तिक दृष्टि से उचित है ।
3. **लाभदायकता की जाँच** - इसमें परियोजनाओं की लाभदायकता की जांच की जाती है तथा विनियोगों से प्राप्त सभी वर्षों के लाभों पर विचार किया जाता है । अत: विभिन्न परियोजनाओं की तुलना करके अधिक लाभदायक परियोजनाओं को चुना जा सकता है।
4. **दीर्घकालीन परियोजना के विश्लेषण में उपयोगी** - इस विधि में परियोजनाओं की सम्पूर्ण जीवन अवधि पर ध्यान दिया जाता है । अत: यह विधि दीर्घकालीन परियोजनाओं के विश्लेषण में उपयोगी रहती है ।

औसत प्रत्याय दर की सीमाएँ (Limitation of ARR)

1. **मुद्रा के समय मूल्य पर विचार नहीं** - यह विधि मुद्रा के समय मूल्य पर विचार नहीं करती है । विभिन्न परियोजनाओं के तुलनात्मक अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि इन परियोजनाओं में भविष्य के विभिन्न वर्षों की आय का वर्तमान मूल्य निकालना चाहिए।
2. **लेखांकन लाभों का उपयोग (Use of Accounting Profits)** - इस विधि में प्रत्याय दर की गणना के लिए लेखांकन विवरणों द्वारा प्रदर्शित लाभों का प्रयोग किया जाता है । किन्तु इन लाभों को रोकड अन्तर्वाहों का सही रूप नहीं मान सकते हैं ।
3. **उचित प्रत्याय दर का निर्धारण कठिन (Difficultto Determination of Acceptance Rule)** - प्रत्येक संस्था में उच्च प्रबंध द्वारा एक न्यूनतम प्रत्याय दर निश्चित कर दी जाती है । इस दर से कम प्रत्याय वाली परियोजनाओं को अस्वीकृत कर दिया जाता है । किन्तु इस प्रकार की न्यूनतम दर का निर्धारण अत्यन्त कठिन होता है ।
4. **विनियोग व आय की धारणा अस्पष्ट** - इस विधि में प्रयुक्त सूत्रों में आय एवं विनियोग शब्दों का प्रयोग किया जाता है जिनके अनेक अर्थ होते हैं । उदाहरणार्थ कुछ लोग विनियोग का आशय मूल विनियोग से लेते हैं तो कुछ विद्वान इसका आशय औसत विनियोग से लेते हैं । इसी तरह अर्जनों की गणना ह्रास से पूर्व अथवा ह्रास के बाद की जा सकती है । अत: इस विधि में निश्चितता का गुण नहीं है ।

5. **व्यावसायिक लाभों पर पड़ने वाले सूक्ष्म प्रभावों की जाँच संभव नहीं -** यह विधि व्यवसाय के लाभों को औसत रूप में देखती है । अत: इस विधि द्वारा व्यवसाय के कुल लाभों पर पड़ने वाले सूक्ष्म प्रभावों को नहीं मापा जा सकता है ।

11.13 तकनीकी शब्दावली (Technical Terms)

बजटन (Budgeting) : एक निश्चित भावी अवधि के लिए बनायी गयी योजना एवं नीतियों के औपचारिक लेख को बजटन कहते हैं ।

आयगत व्यय (Revenue Expenditure) : ऐसे व्यय जो चालू सम्पत्तियों में एवं नियमित प्रक्रिया में विनियोजित हो, आयगत व्यय कहलाते हैं ।

व्ययगत व्यय (Capital Expenditure) : स्थायी दीर्घकालीन सम्पत्तियों में विनियोग को पूंजीगत व्यय कहलाते हैं ।

प्रतिस्थापन परियोजना (Replacement Project) : किसी पुरानी परियोजना के स्थान पर नयी/आधुनिक परियोजना लागू करना, जिससे नवीन तकनीक का प्रयोग हो सके ।

स्वतंत्र परियोजना (Independent Project) : जो एक-दूसरे के प्रतिस्पर्धी नहीं हो, वह स्वतंत्र परियोजना होती है ।

प्रतिस्पर्धी परियोजना(Competitive) : जो एक दूसरे के प्रतिस्पर्धी हो इस स्थिति को श्रेष्ठ को स्वीकार एवं शेष अन्य को अस्वीकार किया जाता है ।

11.14 स्वपरख प्रश्न

1. पूंजी बजटन से आप क्या समझते हैं?
2. पूंजी बजटन क्या है? पूंजी बजटन की विशेषतायें बताते हुए इसके उद्देश्यों का वर्णन कीजिये।
3. "पूँजी बजटन पूँजी व्यय विकल्पों के उद्भव, मूल्यांकन, चयन तथा अनुवर्तन की प्रक्रिया है", समझाइये ।
4. रोकड़ प्रवाह क्या होता है? इसे कैसे ज्ञात किया जाता है?
5. पूंजी परियोजना के प्रकार बताते हुए पूंजी बजटन की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए ।
6. पूंजी बजटन की सीमायें बताइये ।
7. अदायगी अवधि विधि से आप क्या समझते हैं? इसकी गणना किस प्रकार की जाती है? इस विधि के लाभ एवं दोषों का वर्णन कीजिए ।
8. औसत प्रत्याय दर द्वारा परियोजना का मूल्यांकन किस प्रकार किया जाता है' इस विधि की सीमायें बताइये।
9. The cost of a project is Rs. 5,00,000. Possibilities of the annual cash received from the project is Rs. 2,00,000. Calculation Pay back Period

   एक परियोजना की लागत 5,00,000 रू. है तथा उससे प्रतिवर्ष 2,00,000 रू. की आय होना संभावित है । अदायगी अवधि की गणना कीजिए ।

10. ZrbraLtd. Is considering to purchase a machine. Two machines X and Y are available in the market. Cost of each machine is Rs. 2,00,000. Expected cash inflows are as follow:-

जेब्रा लिमिटेड एक मशीन खरीदने पर विचार कर रही है । बाजार में इस हेतु दो मशीनें एक्स व वाई उपलब्ध है । प्रत्येक मशीन की लागत 2,00,000 रू. है । अपेक्षित रोकड अन्तर्वाह निम्नानुसार है :-

Years	1	2	3	4	5
Cash Inflows Machine X	60,000	60,000	60,000	60,000	60,000
Cash Inflows Machine Y	50,000	60,000	80,000	60,000	40,000

Evaluate the two alternatives according to pay-back Period Method.

अदायगी अवधि विधि के अनुसार दोनों विकल्पों का मूल्यांकन कीजिये ।

11. Rekha Lt. wants to replace the manual operation by a machine. There are two alternative models A and B. From the following information suggest which manchine is more suitable according to Pay back Period Method.

रेखा लिमिटेड मानव श्रम को मशीन से प्रतिस्थापित करना चाहती है । इसके लिए बाजार में 'ए' व 'बी दो मॉडल उपलब्ध हैं । नीचे दी गई सूचनाओं से पुनर्भुगतान अवधि विधि के आधार पर यह सुझाव दीजिये कि कौन सी मशीन अधिक उपयुक्त है ।

	Machine A	Machine B
Original Investment (Rs.)	15,000	30,000
Estimated life in years.	5	6
Estimated savings in scrap(Rs.)	1,500	2,000
Estimated saving in wages (Rs.)	7,000	10,000
Additional cost of maintenance (Rs.)	600	1,500
Additional cost of supervision (Rs.)	1,600	1,500

Tax rate is 50%

कर की दर 50% मानिये

12. From the following information evaluate the proposals using (i) Pay back Period Method (ii) Post pay Back Profitability Method.

निम्न विवरण के आधार पर पुनर्भुगतान अवधि विधि तथा पुनर्भुगतान अवधि के बाद की लाभप्रदता विधि का प्रयोग कर प्रस्तावों का मूल्यांकन कीजिये ।

	A	**B**
Cost of Machine (Rs.)	1,00,000	1,20,000
Estimated Scrap (Rs.)	10,000	12,000
Estimated life in years	6 yrs.	9 yrs.

Estimated earnings after tax and dap. Are as follows:-

Years	1	2	3	4	5	6	7	8	9
Machine A	5000	4000	7000	6000	9000	8000	-	-	-
Machine B	6000	4000	5000	9000	7000	6000	9000	12000	13000

13. A project costing is Rs. 2,00,000 and has scrap value of Rs. 20,000. Its stream of income before depreciation and taxes during five years is Rs. 40,000, Rs. 48,000, Rs. 56,000, Rs. 64,000 and Rs. 72,000. Assume a 50% tax rate and depreciation on straight line basis. Calculate the accounting rate on original cost for the project.

    एक परियोजना की लागत 2,00,000 रू. है और इसका अवशिष्ट मूल्य 20,000 रू. है । इसकी प्रथम वर्ष से पाँचवें वर्ष के दौरान ह्रास एवं करों के पहले की आय 40,000 रू. 48,000 रू. 56,000 रू., 64,000 रू. तथा 72,000 रू. है । कर की दर 50 प्रतिशत तथा सीधी रेखा पद्धति से हास लगाना है । परियोजना के लिए मूल मूल्य पर औसत प्रत्याय दर की गणना कीजिए ।

14. Rank the following investment proposal in order of their profitability according to average rate of return method :

    निम्न विनियोग प्रस्तावों को प्रत्याय दर विधि से उनकी लाभदायकता के अनुसार क्रमबद्ध कीजिए:

Project	A	B	C	D
Initial outlays (Rs.)	2, 50,000	30,000	1,20,000	2,00,000
Annual Cash Flow (Rs.)	30,000	10,000	20,000	40,000
Life in Years	10	5	8	10

11.15 संदर्भ ग्रंथ

1. Ravi M. Kishore : Financial Management
2. Arora M.N. : Cost and Management
3. Khan, jai : Financial Management
4. Pandey I.M. : Financial Management

इकाई - 12: पूँजी बजटन-II (Capital Budgeting - II)

ईकाई की रूप रेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 अपहारित रोकड़ प्रवाह विधियाँ
12.3 शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि
12.4 आंतरिक प्रत्याय दर विधि
12.5 शुद्ध वर्तमान मूल्य एवं आंतरिक प्रत्याय दर की तुलना
12.6 अन्य विधियाँ
12.7 पूँजीगत व्ययों पर नियंत्रण
12.8 जोखिम एवं अनिश्चितता की स्थिति में पूँजी बजटन
12.9 तकनीकी शब्दावली
12.10 स्वपरख प्रश्न
12.11 सन्दर्भ ग्रंथ

12.0 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के पश्चात् आप समझ पायेंगे -

- पूंजी बजटन की अपहारित रोकड़ प्रवाह प्रावधियाँ क्या होती हैं?
- अपहारित रोकड़ प्रवाह विधियाँ द्वारा पूँजी बजटन निर्णय किस प्रकार किये जाते हैं?
- परम्परागत विधियों की तुलना में वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ये अधिक उपयोगी कैसे हैं?
- अन्य आधुनिक विधियाँ कौन-कौन सी हैं?

12.1 प्रस्तावना

पिछले अध्याय में आपने पूंजी बजटन की विशेषतायें, आवश्यकता, पूंजी बजटन के उद्देश्य प्रकार, पूँजी बजटन की प्रक्रिया, इसके महत्त्वपूर्ण घटक, पूंजी बजटन की प्राविधियों में परम्परागत तकनीक के आधार पर किस प्रकार पूँजी विनियोग निर्णयन किये जाते हैं के बारे में अध्ययन किया है । परंपरागत विधियों का भी अपना महत्व है परन्तु इन विधियों की अपनी सीमायें भी हैं, विशेष रूप से इन विधियों में भविष्य में होने वाली अर्जनों के वर्तमान मूल्य की गणना नहीं की जाती है जबकि यह सभी जानते हैं कि पूंजी विनियोग वर्तमान में किया जाता है एवं इनसे अर्जने भविष्य में प्राप्त होती हैं साथ ही भविष्य में प्राप्त होने वाली अर्जनों का मूल्य वर्तमान मूल्य से कम होता जाता है । अत: उक्त मूल्यों की गणना आवश्यक है तब ही पूंजी बजटन संबंधी निर्णयन उचित तरीके से लिये जा सकते हैं ।

12.2 अपहारित रोकड़ प्रवाह विधियाँ (Discounted Cash Flow Methods)

पूँजी बजटन की परम्परागत विधियों में किसी परियोजना से भविष्य के वर्षों में प्राप्त होने वाली रोकड़ प्रवाहों के वर्तमान मूल्य अर्थात् मुद्रा के समय मूल्य (Time value of Money) पर विचार नहीं किया जाता है । चूँकि बजटन में भविष्य के बारे में सभी निर्णय वर्तमान में लिये जाते है, इसलिए भविष्य में प्राप्त होने वाली अर्जनों का वर्तमान मूल्य ज्ञात कर निर्णय लेना उपयुक्त है । इस विधि को समय समायोजित प्रत्याय दर विधि अथवा अपहारित रोकड़ प्रवाह विधि भी कहते हैं क्योंकि इस विधि में परियोजना के भावी रोकड़ प्रवाहों को समय के संदर्भ में समायोजित किया जाता है अथवा एक निश्चित ब्याज दर से कटौती की जाती है । इसके अंतर्गत निम्न प्रमुख विधियाँ हैं :-

- शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि (Net Present Value Method)
- शुद्ध वर्तमान मूल्य सूचकांक विधि (NPV Index Method)
- -आंतरिक प्रत्याय दर विधि (Internal Rate of Return Method)

वर्तमान मूल्य अवधारणा (Present Value Concept)

पूँजी बजटन की परम्परागत विधियों में रोकड़ प्रवाहों के वर्तमान मूल्य अर्थात् समय कारक (Time Factor) पर विचार नहीं किया जाता है । अत: वे विधियाँ दोषपूर्ण मानी जाती हैं । आज वित्तीय प्रबन्ध के भावी वचनबद्धता (Future Commitments) तथा परियोजनाओं से सम्बन्धित निर्णयों में समय-समायोजित दर अत्यधिक महत्वपूर्ण औजार बन गई है ।

समय-समायोजित प्रत्याय दर विधि इस धारणा पर आधारित है कि आज के एक वर्ष बाद या किसी अन्य अवधि के बाद प्राप्त होने वाला एक रूपया वर्तमान में प्राप्त होने वाले एक रूपये से कम मूल्यवान होता है । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि भविष्य में प्राप्त होने वाले एक रूपये का मूल्य वर्तमानकाल के एक रूपये से कम ही होगा । परियोजना पर विनियोग वर्तमान में किया जाता है एवं प्राप्तियाँ भविष्य में होंगी । अत: भविष्य में प्राप्त आय को वर्तमान मूल्य पर समायोजित करना आवश्यक होगा ।

यदि किसी व्यवसाय में विनियोजित कोषों पर 10% प्रत्याय प्राप्त हो सकती है तो व्यवसाय में विनियोजित 100 रूपये की राशि विभिन्न वर्षों में निम्न प्रकार बढ़ेगी -

Table

प्रारम्भिक विनियोग	एक वर्ष के पश्चात् (1+.10)	दो वर्ष के पश्चात् $(1+.10)^2$	तीन वर्ष के पश्चात् $(1+.10)^3$	n वर्षों के पश्चात् $(1+.10)^n$
रूपये	रूपये	रूपये	रूपये	रूपये
100 बढ़कर	110	121	133.1	$(1+01)_n$

वर्तमान मूल्य के दृष्टिकोण से यह कहा जा सकता है कि प्रथम वर्ष के अंत में प्राप्त (1.10) रू. का वर्तमान मूल्य (1+.10) रू 0.909 रू. है । द्वितीय वर्ष के अंत में प्राप्त $(1+.10)^2$ या 1.21 रू. का वर्तमान मूल्य $1/(1+.10)^2$ अथवा 0.826 रू. है । इसी तरह जैसे-जैसे समय

बढ़ता जायेगा भविष्य में प्राप्त होने वाले रूपये की वर्तमान राशि कम होती जायेगी । **वर्तमान मूल्य ज्ञात करने की यह विधि मुख्यत: चक्रवृद्धि करने (Compounding)** या भावी मूल्य विधि के विपरीत है ।

विभिन्न वर्षों के रोकड़ अंतर्वाहों के वर्तमान मूल्य की गणना: भावी रोकड़ अंतर्वाहों के वर्तमान मूल्य ज्ञात करने के लिए गणित के निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया जा सकता है

$$PV = \frac{C_1}{(1+r)^1} + \frac{C_2}{(1+r)^2} + \frac{C_3}{(1+r)^3} + \ldots\ldots\ldots \frac{C_n}{(1+r)^n}$$

जबकि'

PV = भावी रोकड़ अन्र्तवाहों का वर्तमान मूल्य (Present Value of Future Cash Inflows);

r = रोकड़ अन्तर्वाह (Cash Inflows);

n = ब्याज दर या वांछित अर्जन दर (Rate of Interest or Required Earnings rate)

n = वर्षा की संख्या (Number of Tables)

वर्तमान मूल्य सारणियाँ (Present Value Tables)

वर्तमान मूल्य की गणना हेतु वर्तमान मूल्य सारणियाँ तैयार की गई है जिनमें 1 रू. का विभिन्न ब्याज की दरों पर विभिन्न वर्षों का वर्तमान मूल्य दिया होता है । किसी वर्ष की आय का वर्तमान मूल्य ज्ञात करने के लिये वर्तमान मूल्य सारणी से उस वर्ष के सामने निर्दिष्ट दर पर एक रूपये का वर्तमान मूल्य ज्ञात करते हैं ओर फिर उसे उस वर्ष की आय से गुणा करके उसका वर्तमान मूल्य ज्ञात किया जाता है अर्थात् असमान रोकड़ अन्तर्वाहों की दशा में प्रत्येक वर्ष का वर्तमान मूल्य असंचयी वर्तमान मूल्य सारणियों की सहायता से ज्ञात किया जाता है । यदि विनियोग से आय लगातार एवं समान दर से होती है तो इनका वर्तमान मूल्य ज्ञात करने के लिये संचयी वर्तमान मूल्य सारणी का प्रयोग किया जा सकता है । इस सारणी में संचयी अंक दिये होते हैं । अर्थात् यह सारणी एक रूपया प्रति वर्ष लगातार प्राप्त होने पर उसका विभिन्न वर्षों में तथा विभिन्न ब्याज की दरों पर वर्तमान मूल्य प्रदर्शित करती है । इस सारणी से किन्हीं भी दो समयों के बीच लगातार समान दर पर प्राप्त आय का वर्तमान मूल्य भी ज्ञात किया जा सकता है । इसके लिये उस अवधि के अंतिम वर्ष के मूल्य से प्रारंभिक वर्ष से पूर्व के वर्ष का मूल्य घटाना होता है । जैसे यदि 4 से 8 वर्ष तक लगातार प्राप्त आय का वर्तमान मूल्य ज्ञात करना है तो इसके लिये निर्दिष्ट दर पर आठवें वर्ष के कारक में से चौथे वर्ष का कारक घटाकर प्राप्त शेष को चौथे से आठवें वर्ष तक प्राप्त वार्षिक आय से गुणा किया जायेगा । इस संदर्भ में निम्न बातें ध्यान रखनी चाहिए:-

1. सम्पत्ति के जीवनकाल के अंत में प्राप्त अवशेष मूल्य को अंतिम वर्ष की अर्जनों में सम्मिलित किया जाता है ।
2. विनियोग से आय की गणना में ब्याज तथा ह्रास नहीं घटाये जाते हैं ।
3. आयों के वर्तमान मूल्य की गणना में इन्हें वर्ष के अंत में प्राप्त हुआ माना जाता है ।

अत: किसी परियोजना का चयन करने से पूर्व परियोजना की लागत तथा उसकी भावी आयों के वर्तमान मूल्य की तुलना करके निर्णय लेना चाहिये । यदि वर्तमान मूल्य परियोजना की लागत से अधिक है तो प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाता है ।

Illustration: 1

The management of Rani Ltd. wants to invest Rs. 8,500 in a project. The earnings after tax and before depreciation will be Rs. 2,500in the first year, Rs. 3,000 in the second year, Rs. 4,000 in the third year, Rs. 1,500 in the fourth year and Rs. 1,000 in the fifth year.

Please suggest management whether this project is worth - while to be taken, if management wants 10% rate as minimum return.

रानी लिमिटेड का प्रबंध एक परियोजना में 8500 रू. विनियोग करना चाहता है । कर के बाद परन्तु ह्रास सें पूर्व आय प्रथम वर्ष में 2500 रूपये, द्वितीय वर्ष में 3000 रू. तृतीय वर्ष में 4000 रूपये, चतुर्थ वर्ष में 1500 रूपये तथा पंचम वर्ष में 1000 रू0 प्राप्त होगी ।

प्रबन्धक पूंजी पर न्यूनतम प्रत्याय दर 10% चाहते हैं तो आप प्रबन्ध को सलाह दीजिये कि इस परियोजना को स्वीकार किया जाये या नहीं ।

Solution:

सर्वप्रथम परियोजना से अगले पाँच वर्षों में प्राप्त होने वाले रोकड़ अन्तर्वाहों का 10% बट्टा दर से वर्तमान मूल्य ज्ञात किया जायेगा ।

Year	Cash Inflow	Present Value of Re 1 at 10% Rate Discounting Rate	Total Present value at 10% Discounting
1	2,500	0.909	2272.5
2	3,000	0.826	2478
3	4,000	0.751	2,004
4	1,500	0.683	1024.5
5	1,000	0.621	621
		Total	**9400**

अनुशंसा - 10% बट्टा दर पर रोकड़ अन्तर्वाहों का वर्तमान मूल्य (9400 रू.), विनियोग की लागत 8500 रू. से अधिक है अत: प्रस्ताव स्वीकृत किया जायेगा ।

12.3 शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि (Net Present Value Method)

विनियोजन प्रस्तावों के मूल्यांकन की यह सर्वोत्तम विधि है । एक विनियोग प्रस्ताव के **शुद्ध वर्तमान मूल्य** (NPV) से आशय भावी रोकड़ अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य तथा रोकड़ बहिर्वाहों के वर्तमान मूल्य के अंतर से है । डॉ. एस.पी. सिंह के शब्दों में 'शुद्ध वर्तमान मूल्य की गणना रोकड अंतर्वाहों के वर्तमान मूल्य के योग में रोकड़ बहिर्वाहों के वर्तमान मूल्य को घटाकर की जाती है, जबकि अन्तर्वाहों एवं बहिर्वाहों की संस्था की पूँजी लागत के मूल्य बट्टा दर से कटौती की जाती है ।" इसे Excess Present Value Method या Net Gain Method या Investors Method भी कहते हैं ।

इस विधि के अन्तर्गत न्यूनतम बट्टा दर का निर्धारण प्रबंधकों द्वारा कर दिया जाता है । इस विधि के अनुसार भावी मानी अर्जनों का इस न्यूनतम बट्टा दर पर वर्तमान मूल्य मूल विनियोग से अधिक है तो परियोजना स्वीकृत अन्यथा अरचीकृत करनी चाहिए । दो वैकल्पिक परियोजनाओं की स्थिति में उस परियोजना को स्वीकार करना चाहिए जिसका शुद्ध वर्तमान मूल्य अधिक हों ।

शुद्ध वर्तमान मूल्य की गणना (Computation of Net Present Value)

शुद्ध वर्तमान मूल्य की गणना की विधि निम्न प्रकार है :-

1. **न्यूनतम प्रत्याय दर का निर्धारण (Determination of Minimum Rate of Return)** - रोकड़ प्रवाहों को अपहारित करने के लिए अपेक्षित अर्जनों की दर का प्रयोग किया जाता है जो सामान्यत: संस्था की पूँजी लागत होती है । न्यूनतम प्रत्याय दर वह दर है जिसे विनियोजक प्रस्तावित विनियोग पर प्राप्त करने की अपेक्षा करता है ।
2. **रोकड अन्तर्वाहों एवं बहिर्वाहों के वर्तमान मूल्य की गणना (Computation of Present Value Cash Inflows and Cash Outflows)** - अपेक्षित प्रत्याय दर अर्थात पूँजी लागत की सहायता से रोकड अन्तर्वाहों का वर्तमान मूल्य तथा रोकड़ बहिर्वाहों का वर्तमान मूल्य ज्ञात किया जाता है । इस हेतु पूर्व में वर्णित सूत्र या सारणी का प्रयोग किया जाता है । परियोजना में विनियोग क्योंकि वर्ष के प्रारम्भ में किया जाता है, इसलिये इसकी लागत ही वर्तमान मूल्य होती है । यदि बाद के वर्षा में कुछ बहिर्वाह होता है तो बाद के वर्षों के रोकड़ बहिर्वाहों का वर्तमान मूल्य बट्टा दर का प्रयोग करते हुए ज्ञात किया जाता है।
3. **शुद्ध वर्तमान मूल्य (NPV) (C0mputation of NPV)** - रोकड़ अन्तर्वाहों के कुल वर्तमान मूल्य तथा रोकड बहिर्वाहों के कुल वर्तमान मूल्य का अन्तर ही शुद्ध वर्तमान मूल्य (NPV) होता है । इसकी गणना हेतु निम्न सूत्र का प्रयोग भी किया जा सकता है?

$$NPV = \left[\frac{C_1}{(1+r)^1} + \frac{C_2}{(1+r)^2} + \frac{C_3}{(1+r)^3} + \ldots\ldots\ldots \frac{C_n}{(1+r)^n} \right] - I$$

जबकि

NPV	= शुद्ध वर्तमान मूल्य (Net Present Value);
C_1, C_2, C_3,	= वर्षा के लिए रोकड़ अन्तर्वाह (Cash inflows firm years);
I	= प्रारम्भिक विनियोग (Initial Investment);
R	= बट्टा दर या ब्याज दर (Discount factor or interest rate)

समान रोकड अन्तर्वाहों की दशा में संचयी वर्तमान मूल्य सारणी का प्रयोग किया जा सकता है ।

स्वीकृति मापदण्ड : यदि परियोजना से NPV धनात्मक हो तो उस परियोजना को स्वीकार किया जाता है एवं NPV ऋणात्मक हो तो परियोजना को अस्वीकार किया जाता है । परस्पर अपवर्जी परियोजनाओं की दशा में जिस प्रस्ताव पर यह आधिक्य अधिकतम हो, वही श्रेष्ठ माना जायेगा ।

Illustration: 2

Alpha Ltd., decided to undertake a project for placing a new product on the market. The Company's cut-off rate is 10%. It was estimated that the project would cost Rs. 45,00,000 in plant and machinery in addition to working capital of Rs. 10,00,000. The scrap value of plant and machinery at the end of 5 years was estimated at Rs. 8,00,000. After providing for depreciation on straight line basis, profits after tax were estimated as follow:

एल्फा लिमिटेड ने बाजार में एक नया उत्पाद जारी करने के लिए एक परियोजना प्रारम्भ करने का निश्चय किया । कम्पनी की पूँजी लागत 10% है । यह अनुमानित किया गया कि 1000000 रू. कार्यशील पूँजी के अतिरिक्त परियोजना में संयंत्र और मशीनरी की लागत 4500000 रू. होगी । संयंत्र एवं मशीनरी का 5 वर्ष के अन्त में अवशिष्ट मूल्य 800000 रू. अनुमानित किया गया । सीधी रेखा पद्धति पर ह्रास लगाने के उपरान्त कर पश्चात् अनुमानित लाभ निम्न प्रकार थे -

Year	1	2	3	4	5
Rs.	4,00,000	7,00,0000	10,00,000	6,00,000	3,00,000

The present value factors at 10% per annum are given below:

10% वार्षिक दर पर एक रूपये का वर्तमान मूल्य कारक नीचे दिया गया है -

Year	1	2	3	4	5
PV Factor	0.909	0.846	0.751	0.683	0.621

Ascertain the Net Present Value of the Project.

परियोजना के शुद्ध वर्तमान मूल्य की गणना कीजिये ।

Solution :

Statement of Net Present Value

Year	Profit after tax (A) Rs.	Depreciation (B) Rs.	cash Inflows (A+B) Rs.	PV Factor at 10% Rs.	Present Value of Cash Inflows Rs.
1	4,00,000	7,40,000	11,40,000	0.909	1036260
2	7,00,000	7,40,000	14,40,000	0.826	1189440
3	10,00,000	7,40,000	17,40,000	0.751	1306740
4	6,00,000	7,40,000	13,40,000	0.683	915220
5	3,00,000	7,40,000	10,40,000	0.621	645840
					50,93,500
Scrap Value at the end of 5 years			8, 00,000	0.621	4, 96,800
Working Capital at the end of5 years			10,00,000	0.621	6,21,000
Total Present Value of Cash Inflows					**62,11,300**
Less: Initial Outlay 45 + 10 (in Lakh)					55,00,000

Net Present Value	**7,11,300**

Working Note: Calculation of Depreciation

$$= \frac{Initial\ Investment - Scrap\ Value}{Estimated\ Life}$$

$$= \frac{45,00,000 - 8,00,000}{5} = Rs.7,40,000$$

Illustration: 3

Swati Limited is considering for purchase of a machine. There are two possible machines which will produce the additional output. Details of these machines are as follows:

स्वाति लिमिटेड़ एक मशीन खरीदने के बारे में विचार कर रही है । दो संभावित मशीनें ऐसी है जो अतिरिक्त उत्पादन का निर्माण कर सकती हैं । इन मशीनों के विवरण निम्न प्रकार है -

	Machine P	**Machine R**
	Rs.	**Rs.**
Capital Cost	90,000	90,000
Sales at Standard Price	1,20,000	1,00,000
Costs :		
Labour	12,000	8,000
Materials	10,000	12,000
Factory Overheads (excluding Depreciation)	10,000	10,000
Administration Cost	4,000	4,000
Selling Costs	4,000	4,000
Expected Life in Years	2	3

Other Informations: (a) Sales and Annual Expenditures are expected to continue at the rates showen for each year for the full life of each machine; (b) Tax to be paid may be assumed at 50% of net earnings; (c) Interest on capital is to be ignored; (d) appropriate rate of interest for converting to present value may be taken at12%

On the basis of the facts gives above, show the most profitable investment by the following methods: (a) Pay-back Period, (b) Accounting Rate of Return, and (c) Net Present Value on Investment.

अन्य सूचनाएँ - (अ) प्रत्येक मशीन के पूर्ण जीवनकाल के लिए बिक्री एवं वार्षिक व्यय समान रहेंगे । (ब) भुगतान किये जाने वाला कर शुद्ध आय के 50% की दर पर माना जा सकता

है; (स) पूँजी पर ब्याज को ध्यान में नहीं रखना है; (द) वर्तमान मूल्यों में परिवर्तन करने के लिए उचित व्याज की दर 12% ली जा सकती है ।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर निम्नलिखित विधियों द्वारा सर्वोत्तम लाभदायक विनियोगों को दिखाइये -

अदायगी अवधि 2. लेखांकन प्रत्याय दर 3. विनियोगों पर प्रत्याय का शुद्ध वर्तमान मूल्य

The Present Value Factor at 12%per annum are as follows:

Year	1	2	3	4	5
Pv Factor	0.8929	0.7972	0.7118	0.6335	0.5674

Solution :

Profitability Statement

Particulars	**Machine P**	**Machine R**
Sales (A)	1,20,000	1,00,000
Cost of Production	32,000	30,000
Administration Cost	4,000	2,000
Selling and Distribution Cost	4,000	2,000
Total Cost (B)	40,000	34,000
Profit before Depreciation (A-B)	80,000	66,000
Less : Depreciation	45,000	30,000
Profit before tax	35,000	36,000
Less: Income taxes ate 50%	17,500	18,000
Net Profit after tax	17,500	18,000
Add : Depreciation	45,000	30,000
Net Cash Inflows	62,500	48,000

$$Depreciation = \frac{Initial\ Investment - Scrape Value}{Estimate\ Life\ in\ Years}$$

$$Machine\ P = \frac{90,000 - 0}{2} = Rs\ 45,000$$

$$Machine\ R = \frac{90,000 - 0}{3} = Rs\ 30,000$$

A. $$Pay\ back\ Peroid = \frac{Initial\ Investment}{Net\ Annual\ Cash\ Inflow}$$

$$Machine\ P = \frac{90,000}{62500} = 1.44 Yrs$$

$$Machine\ R = \frac{90,000}{48000} = 1.875 Yrs$$

मूल्यांकन - अदायगी अवधि विधि के आधार पर मशीन P को प्राथमिकता दी जायेगी ।

B. According Rate of Return Method

$$ARR = \frac{Average\ \ Annual\ Income\,(after\ tax\ and\ depreciation)}{Average\ Investmant} \times 100$$

$$Machine\ P = \frac{17,500}{90000/2} \times 100 = \frac{17,500}{45000} \times 100 = 38.88\%$$

$$Machine\ R = \frac{18,000}{90000/2} \times 100 = \frac{18,000}{45000} \times 100 = 40\%$$

मूल्यांकन - इस पद्धति के आधार पर मशीन R को प्राथमिकता दी जायेगी ।

C. Net Present Value Method -

Statement of Net Present Value

Years	Cash Inflows		P.v Factor	Present value of Cash Inflows	
	Machine P	Machine R	at 12% Rate	Machine P	Machine R
1	62500	48000	0.8929	55806	42859
2	62500	48000	0.7972	49825	38266
3	-	48000	0.7118	-	34166
Total Present Value				105631	115291
Less : Initial Outlay				90000	90000
Net Present Value				15631	90000

मूल्यांकन - इस विधि के अनुसार भी मशीन नR को प्राथमिकता दी जायेगी ।

शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि के लाभ (Advantages of NPV)

1. **सम्पूर्ण जीवन काल के लाभों पर विचार -** इसमें आय प्राप्ति की दृष्टि से परियोजना के सम्पूर्ण जीवन काल में प्राप्त लाभों पर विचार किया जाता है । अत: दीर्घकालीन तक प्रत्याय देने वाली परियोजनाओं के मूल्यांकन में लिए यह विधि अधिक उपयुक्त है ।
2. **समय कारक का महत्व**: इसमें आय प्राप्ति के समय कारक को उचित महत्व दिया जाता है । यह इस विधि का प्रमुख लाभ है क्योंकि अदायगी अवधि एवं ओसत प्रत्याय दर में इस कारक पर ध्यान नहीं दिया जाता है। अत: यह विधि अधिक यथार्थपरक है ।
3. **अधिकतम कल्याण:** यह विधि लेखांकन लाभों के बजाय रोकड़ प्रवाहों पर आधारित है । अत: यह व्यवसाय स्वामियों के अधिकतम कल्याण के उद्देश्य से मेल खाती हैं ।
4. **असमान अर्जनों की दशा में उपर्युक्त**: यह विधि परियोजना के जीवनकाल में असमान अर्जनों की दशा में भी श्रेष्ठ है क्योंकि असमायोजित प्रत्याय विधि की तुलना में इसमें शुद्धता की मात्रा अधिक होती है ।

शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि के दोष (Disadvantages of NPV)

1. **समझने में कठिनाई:** इस विधि को समझने एवं प्रयोग करने में परंपरागत विधियों की तुलना में थोड़ी कठिनाई होती है । वर्तमान मूल्य की गणना करना कठिन कार्य है ।

2. **बट्टा दर निर्धारण में कठिनाई** : इसमें रोकड़ अंतर्वाहों की एक पूर्व-निर्धारित दर, जो कि सामान्यत: पूँजी की लागत होती है, पर कटौती की जाती है; किन्तु पूँजी लागत का सही निर्धारण करना कठिन है ।
3. **विभिन्न लागत वाली परियोजनाओं की दशा में अनुपयुक्त**: विभिन्न विनियोग राशियों वाली परियोजनाओं की तुलना करने पर इस विधि से संतोषप्रद हल नहीं निकल सकता । किसी परियोजना में अधिक विनियोग की आवश्यकता होती है तो उससे अधिक शुद्ध वर्तमान मूल्य प्राप्त होने पर उसे श्रेष्ठ मानना उचित नहीं होगा ।
4. **जीवनकाल की गणना कठिन**: परियोजना के जीवनकाल का पूर्ण शुद्धता से अनुमान लगाना कठिन है साथ ही यदि परियोजनाओं का जीवनकाल समान नहीं है तो इस विधि से निर्णय नहीं लिया जा सकता है ।
5. **लाभदायकता का सही मूल्यांकन नहीं**: इस विधि के आधार पर मूल्यांकन करने के लिए मूल्य ह्रास नहीं घटाया जाता है अत: मूल्य ह्रास को घटाये बिना लाभदायकता का वास्तविक मूल्यांकन संभव नहीं होता है ।
6. **अप्रचलन की जोखिम पर ध्यान नहीं.** प्रारंभ में कम प्रत्याय देने वाली परियोजना का शुद्ध वर्तमान मूल्य, प्रारंभ में अधिक प्रत्याय देने वाली परियोजना से अधिक है तो इस विधि के आधार पर प्रथम परियोजना का चयन किया जायेगा जबकि अप्रचलन की जोखिम अधिक जीवन काल होने पर ज्यादा होती है ।
7. **सापेक्षिक लाभदायकता का निर्धारण नहीं** इस विधि में वास्तविक अर्थात् निरपेक्ष लाभ ज्ञात किया जाता है जबकि सांख्यिकीय नियमों के आधार पर तुलना सापेक्ष मापो की ही की जा सकती है ।

लाभदायकता सूचकांक या वर्तमान मूल्य सूचकांक विधि (Profitability Index or Present Value Index Method)

शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि में परियोजना की लाभदायकता की जांच निरपेक्ष मूल्यों के आधार पर की जाती है । अत: ऐसी परियोजनायें जिनकी विनियोजन लागत भिन्न-भिन्न हो, उनकी लाभदायकता का सही मूल्यांकन संभव नहीं होता है । इस कमी को दूर करने के लिए लाभदायकता सूचकांक ज्ञात किये जाते हैं । भावी रोकड़ अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य का प्रारंभिक विनियोग लागत से अनुपात ही लाभदायकता सूचकांक कहलाता है, इस विधि को लाभ लागत अनुपात (Benefit-Cost Ratio) भी कहा जाता है । लाभदायकता सूचकांक की गणना निम्नलिखित सूत्र से भी की जा सकती है:

$$Pl\ or\ PVI = \frac{\text{Pr}esent\ Value\ of\ Cash\ Inflow}{\text{Pr}esent\ Value\ of\ Cash\ Outflows}$$

जबकि ;

P I = लाभदायकता सूचकांक (Profitability Index)

PVI= वर्तमान मूल्य सूचकांक (Present Value Index)

स्वीकृति मापदण्ड: यदि लाभदायकता सूचकांक एक या इससे अधिक आता है तो परियोजना लाभदायक मानी जाती है । सूचकांक के एक से कम होने पर प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया

जाता है । यदि एक से अधिक परियोजनाओं में से चयन करना हो तो जिस परियोजना का लाभदायकता सूचकांक सर्वाधिक हो, उसे चुन लिया जाता है । शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि एवं लाभदायकता सूचकांक की तुलना: शुद्ध वर्तमान मूल्य के धनात्मक होने एवं वर्तमान मूल्य सूचकांक के एक से अधिक होने पर परियोजना का चयन किया जाता है । अत: परियोजना चयन हेतु दोनों में समान नियम लागू होते है, किन्तु परस्पर अपवर्जी परियोजनाओं की दशा में दोनों विधियों में अलग-अलग चयन हो सकता है, यदि मूल विनियोग अलग हो । ऐसे में यदि पूँजी समभाजन की समस्या नहीं हो तो शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि सर्वाधिक उपयुक्त मानी जाती है । पूँजी समभाजन होने पर परियोजना चयन हेतु लाभदायकता सूचकांक का प्रयोग किया जायेगा ।

Illustration : 4

A company manager is considering three projects which are not mutually connected and any of them can independendently be selected. The company has necessary funds but cannot take up more than one project. The overall cost of capital of the Company is 10% and the expected cash flow from the project are given below:

एक कम्पनी प्रबंधन तीन परियोजनाओं पर विचार कर रहा है जो आपस में संबंधित नहीं है तथा इनमें से कोई स्वतंत्रतापूर्वक चुनी जा सकती है । कम्पनी के पास पर्याप्त कोष है किन्तु एक से अधिक परियोजना को नहीं ले सकती है । कम्पनी की पूँजी लागत 100 है तथा परियोजनाओं से संभावित रोकड़ प्रवाह नीचे दिये गये हैं -

Cash Flows (Income)

Project No	Investment required	year1	Year2	Year3	Year4	Year5
A	1,00,000	120000	30000	—	—	—
B	1,40,000	—	—	100000	50000	70000
C	90,000	—	40000	50000	50000	20000

You are required to advise the management as to what project they should take up, give reason for your advice.

आपको प्रबन्ध को सलाह देनी है कि कौनसी परियोजना ली जाये । अपनी सलाह के कारण भी दीजिये ।

Solution :

Present Value of Cash Inflows

Year	Cash Inflows			P.V. Factor @ 10%	Present Value		
	Project A Project Cost 100000	Project B Cost Rs. 140000	Project C Cost Rs. 90000		Project A	Project B	Project C
	Rs.	Rs.	Rs.		Rs.	Rs.	Rs.

1	120000	-	-	0.909	109080	-	-
2	30000	-	40000	0.826	24780	-	33040
3	-	100000	50000	0.751	751000	37550	
4	-	50000	50000	0.683	34150	34150	
5	-	70000	20000	0.621	43470	12420	
		Total			**133860**	**152720**	**117160**

चूँकि तीनों परियोजनाओं की लागत में भिन्नता है, अत: लाभदायकता के मूल्यांकन के लिए वर्तमान मूल्य सूचकांक की पद्धति उपयुक्त होगी -

$$\text{Present Value Index} = \frac{P.V.\ of\ Cash\ Inflows}{P.V.\ of\ Cash\ Outflows}$$

$$\text{Project } A = \frac{Rs.1,33,860}{Rs.1,00,000} = 1.339$$

$$\text{Project } B = \frac{Rs.1,52,720}{Rs.1,40,000} = 1.091$$

$$\text{Project } C = \frac{Rs.1,17,160}{Rs.90,000} = 1.302$$

अनुशंसा - चूँकि परियोजना A का वर्तमान मूल्य सूचकांक अर्थात् प्रति रूपया लाभप्रदता सर्वाधिक है, अत: इस परियोजना को ही स्वीकृत किया जाना चाहिए ।

12.4 आंतरिक प्रत्याय दर विधि (Internal Rate of Return Method)

वर्तमान मूल्य विधि अथवा शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि में अपेक्षित प्रत्याय दर का पहले से ज्ञान होता है । अत: भावी अर्जित राशियों का वर्तमान मूल्य सरलतापूर्वक निकाला जा सकता है । यदि हम यह मान लें कि हमें अपेक्षित प्रत्याय दर ज्ञात नहीं है तो ऐसी स्थिति में भविष्य में प्राप्त होने वाली राशियों के वर्तमान मूल्य को प्रारंभिक विनियोग के बराबर करना होगा । इसके लिए जिस दर का प्रयोग किया जाता है, उसे रोकड़ प्रवाहों के अपलेखन की बट्टा दर (Discounting Cash Flow Rate), समय समायोजित दर (Time Adjusted Rate), प्रत्याय की आंतरिक दर (Internal Rate of Return), उपार्जित दर (Yield Rate), परियोजना प्रत्याय दर (Project Return Rate) पूंजी की सीमान्त उत्पादकता (Marginal Efficiency of Capital) विनियोक्ता विधि (Investor's Method) आदि अनेक नामों से जाना जाता है । अमेरिका की लेखपालों की परिषद् के अनुसार, "समय समायोजित प्रत्याय दर ब्याज की वह अधिकतम दर है जो किसी परियोजना पर बिना किसी हानि के विनियोजन के जीवनकाल में लगी पूँजी पर चुकाई जा सकती है ।"

एस.पी. सिंह के अनुसार - आंतरिक प्रत्याय दर प्रत्याय की एक ऐसी दर है जो विनियोजन से प्राप्त होने वाले प्रत्याशित कुल अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य को विनियोजन की लागत तुल्य (Equates) कर देती है ।"

अत: यह कहा जा सकता है कि प्रत्याय की आंतरिक दर वह दर होती है जिससे किसी परियोजना के वार्षिक रोकड़ अन्तर्वाहों का वर्तमान मूल्य उस परियोजना के वर्तमान विनियोग मूल्य अथवा

परियोजना की वर्तमान लागत के बराबर हो जाता है । इस विधि में भी समय घटक का ध्यान रखा जाता है ।

इस विधि में प्रबन्धक सर्वप्रथम परियोजना में विनियोजित होने वाली राशि तथा उस परियोजना से प्राप्त होने वाले रोकड अन्तर्वाहों का अनुमान लगाते हैं । तत्पश्चात् परियोजना से प्राप्त रोकड़ अन्तर्वाहों को किसी दर से वर्तमान मूल्य परियोजना की विनियोजित राशि के बराबर किया जाता है । यदि यह दर इच्छित दर या कट ऑफ रेट (Cut off Rate) से अधिक होती है तो परियोजना को स्वीकार कर लिया जाता है अन्यथा अस्वीकार कर दिया जाता है ।

सूत्र रूप में इसे निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है:

$$= \frac{C_1}{(1+r)^1} + \frac{C_2}{(1+r)^2} + \frac{C_3}{(1+r)^3} + \ldots\ldots\ldots \frac{C_n}{(1+r)^n} = I$$

जबकि

C_1 ,C_2, C_n = n वर्षों के लिये शुद्ध रोकड़ अन्तर्वाह (Net cash inflows for n years);

I = प्रारंभिक विनियोग (Initial Investment);

r = आंतरिक प्रत्याय दर (Internal rate of Return)

यदि बहुत सी परियोजनाओं का मूल्यांकन करना हो तो अधिकतम आंतरिक प्रत्याय दर वाली परियोजनाओं को प्रथम स्थान पर, उससे कम दर वाली को दूसरे स्थान पर तथा इसी क्रम में सबसे कम आंतरिक प्रत्याय दर वाली परियोजना को सबसे नीचे अंतिम स्थान पर रखा जायेगा । परियोजना को ऊपर से नीचे की ओर उस समय तक स्वीकार किया जायेगा जब तक पूँजी का अवरोध (Capital Constraint) नहीं है ।

प्रत्याय की आंतरिक दर की गणना.

प्रत्याय की आंतरिक दर ज्ञात करने हेतु निम्न दो परिस्थितियाँ हो सकती हैं -

1. प्रति वर्ष रोकड़ अन्तर्वाह की राशि समान होने पर
2. प्रति वर्ष रोकड अन्तर्वाह की राशि असमान होने पर

1. प्रति वर्ष रोकड अन्तर्वाह की राशि समान होने पर

यदि परियोजना के प्रारंभ में केवल एक ही रोकड़ बहिर्वाह है तथा समान रोकड़ अन्तर्वाहों की एक श्रृंखला है तो सर्वप्रथम निम्नलिखित सूत्र से वर्तमान मूल्य घटक (Present Value Factor) ज्ञात किया जायेगा -

$$P.V.Factor = \frac{Initial\ Investment}{Annual\ Cash\ Inflow} = \frac{I}{C}$$

वर्तमान मूल्य घटक की गणना के पश्चात् संचयी वर्तमान मूल्य सारणी में परियोजना के जीवनकाल के वर्ष की पंक्ति में उक्त घटक देखकर परियोजना की अनुमानित दर ज्ञात की जायेगी । सामान्यत: उपर्युक्त सूत्र से गणना किया गया वही वर्तमान मूल्य घटक सारणी में नहीं मिला है । वह सारणी किन्हीं दो दरों के मध्य स्थिति हो सकता है ऐसे में वास्तविक आंतरिक प्रत्याय दर की गणना हेतु आन्तरगणन किया जायेगा अर्थात् दोनों दरों के वर्तमान मूल्य की गणना कर निम्न सूत्र का प्रयोग किया जायेगा-

$$IRR = LDR + \frac{P_1 - C}{P_1 - P_2} \times 2(HDR - LDR)$$

जबकि ;

LRD = Lower Discount Rate

HDR = Higher Discount Rate

P_1 = Present values at lower rate of interest

P_2 = Present values at higher rate of interest

C = Net Cash Outflow

टिप्पणी: बट्टा दर तथा वर्तमान मूल्य में विपरीत संबंध होता है अत: वर्तमान मूल्य को बढ़ाने के लिए बट्टा दर में कमी की जाती है तथा वर्तमान मूल्य को कम करने के लिए बट्टा दर को बढ़ाया जाता है ।

Illustration : 5

Find out Investment of Return of the project from the following data

निम्नलिखित आकड़ों से आंतरिक प्रत्याय दर की गणना कीजिए:

Initial Investment Rs.	87,010
Annual Cash Inflows Rs.	35,000
Project Life	3 years

Solution:

$$\text{Present Value Factor} = \frac{I}{C} = \frac{87,010}{35,000} = 2.486$$

संचयी वर्तमान मूल्य सारणी में 3 वर्ष वाली कतार में 2.486 वर्तमान मूल्य 10% की दर वाले खाने में दिया हुआ है, अत: आंतरिक प्रत्याय की दर 10% मानी जायेगी ।

Illustration: 6

A project costs an initial investment of Rs. 50,000 and is expected to generate annual cash inflows of Rs.20, 000 for 4 years. Calculate internal rate of return (IRR)

Present Value of Re. 1 at varying discount rates for a period of 4 years is given below.

एक परियोजना में प्रारम्भिक विनियोग 50000 रू. है तथा 4 वर्षों के लिए वार्षिक रोकड़ अन्तर्वाह 20000 रूपये होने का अनुमान है । आंतरिक प्रत्याय दर की गणना कीजिये ।

4 वर्ष की अवधि के लिए विभिन्न बट्टा दरों पर एक रूपये का वर्तमान मूल्य -

Years	18%	20%	22%
1	0.847	0.8333	0.8196
2	0.718	0.6944	0.6719

3	0.609	0.5787	0.5507
4	0.516	0.4823	0.4514
Total	2.690	2.5887	2.4936

Solution:

$$P.V.Factor = \frac{I}{C} = \frac{50,000}{20,000} = 2.5$$

विभिन्न बट्टा दरों पर 4 वर्ष के लिए एक रूपये का वर्तमान मूल्य के योग वाली पंक्ति में 25 कारक 24936 एवं 25887 के बीच पड़ता है । अत: आंतरिक प्रत्याय दर 22% एवं 20% के मध्य पड़ती है ।

P.V. of Cash Inflows at 20% = 20,000 x 2.5887 = 51774

P.V. of Cash Inflows at 22% = 20,000 x 2.4936 = 49872

आन्तरगणन द्वारा

$$IRR = LDR + \frac{P_1 - C}{P_1 - P_2} \times (HDR - IDR)$$

$$IRR = 2 + \frac{51774 - 50000}{51774 - 49872} \times (22 - 20)$$

$$= 20 + \frac{1774}{1902} \times 2$$

= 20 +1.865

= 21.865

2. प्रति वर्ष रोकड़ अन्तर्वाह की राशि असमान होने पर:

यदि रोकड़ अन्तर्वाहों की राशियाँ विभिन्न वर्षा के समान नहीं होती है तो 'भूल एवं सुधार विधि' द्वारा आंतरिक प्रत्याय दर ज्ञात की जाती है । भूल एवं सुधार से आशय है कि कई दरों पर रोकड़ अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य की गणना की जाती है एवं अंत में जिस दर पर रोकड़ अन्तर्वाहों का योग रोकड़ बहिर्वाहों के बराबर हो जाता है -वही वास्तविक आंतरिक प्रत्याय दर मानी जाती है । इस हेतु गणना विधि निम्न प्रकार है: -

1. सर्वप्रथम रोकड़ अन्तर्वाहों का औसत ज्ञात किया जाता है ।
2. औसत रोकड़ अन्तर्वाहों के आधार पर वर्तमान मूल्य घटक ज्ञात किया जाता है ।

$$P.V.Factor = \frac{Initial\ Investment}{Average\ Annual\ Cash\ Inflow}$$

3. उक्त वर्तमान मूल्य घटक को संचयी वर्तमान मूल्य सारणी में देखकर निकटतम कारक के आधार पर प्रथम जांच दर का निर्धारण किया जाता है । इस दर से सभी वर्षों के रोकड़ अन्तर्वाहों का वर्तमान मूल्य ज्ञात किया जाता है ।

4. यदि प्रथम जांच दर के आधार पर ज्ञात वर्तमान मूल्य विनियोग की लागत से अधिक आता है तो पहले से ऊँची दर का प्रयोग कर रोकड अन्तर्वाहों का वर्तमान मूल्य ज्ञात किया जायेगा, किन्तु यदि वर्तमान मूल्य विनियोग की लागत से कम आये तो अगली

जांच के लिये पहले से नीची दर का प्रयोग किया जायेगा । जिस दर पर वर्तमान मूल्यों का योग विनियोग की लागत के बराबर होगा, वही आंतरिक प्रत्याय दर कहलायेगी ।

5. यदि वास्तविक प्रत्याय दर प्रथम जांच दर व द्वितीय जांच दर के मध्य होती है तो समान रोकड़ प्रवाह की दशा में वर्णित सूत्र का प्रयोग कर आन्तरगणन विधि द्वारा सही आंतरिक प्रत्याय दर ज्ञात की जायेगी ।

Illustration: 7

Initial Investment	Rs. 20,000
Cash Inflows	Rs.
First Year	10,000
Second Year	10,000
Third Year	4,000

आंतरिक प्रत्याय दर की गणना कीजिये ।

Calculate Internal Rate of Return.

Solution:

1. $$Average\,Cash\,Flows = \frac{10,000 + 10,000 + 4,000}{3}$$

$$= \frac{24,000}{3} = Rs.8,000$$

2. $$P.V.Factor = \frac{20,000}{8,000} = 2.5$$

3. वर्तमान मूल्य सारणी में 3 वर्ष वाली पंक्ति में 2.5 घटक लगभग 10% प्रत्याय दर के करीब आता है । अत: 10% दर पर रोकड अन्तर्वाहों का वर्तमान मूल्य ज्ञात किया जायेगा ।

Year	Cash Inflows	P.V. Factor	Present Value
1	10,000	0.999	9090
2	10,000	0.826	8260
3	4,000	0.751	3004
		Total	**20354**
Less: Initial Investment			20,000
Excess Present Value			354

4. चूँकि रोकड अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य का योग मूल विनियोग लागत से अधिक है अत: पहले से ऊँची जांच दर का प्रयोग किया जायेगा ।

5. वर्तमान मूल्य की गणना 12%० दर पर निम्न प्रकार होगी -

Year	Cash Inflows	P.V. Factor	Present Value
1	10,000	0.893	8930
2	10,000	0.797	7970
3	4,000	0.712	2848

		Total	**19748**

6. वास्तविक आंतरिक प्रत्याय दर आन्तरगणन विधि द्वारा निम्नानुसार ज्ञात की जायेगी-

$$I--RR = LDR + \frac{P_1 - C}{P_1 - P_2} \times (HDR - IDR)$$

$$= 10 + \frac{20354 - 20000}{20354 - 19748} \times (22 - 20)$$

$$= 10 + \frac{354}{606} \times 2$$

= 10+1.168

अत: आंतरिक प्रत्याय दर 11.168 होगी ।

Sun limited desires to purchase a new machine in order to increase its present level of production. The cost of machine will be Rs. 7,000 and the net cash flow during its life will be as follows:

सन् लिमिटेड अपने वर्तमान उत्पादन स्तर को बढ़ाने के लिए नयी मशीन क्रय करना चाहती है । मशीन की लागत 7000 रूपये होगी तथा मशीन के जीवन काल में शुद्ध रोकड़ प्रवाह इस प्रकार होंगे -

Year 1 2 3 4 5

Net Cash Flows (Rs.) 5,000 4,000 2,000 1,000 1,000

प्रबन्ध द्वारा निर्धारित न्यूनतम प्रत्याय दर 30% वार्षिक है । क्या विनियोग वांछनीय है? आंतरिक प्रत्याय दर विधि के अनुसार विवेचना कीजिये ।

Year	1	2	3	4	5
35%	.741	.549	.406	.301	.223
40%	.714	.510	.364	.260	.186

Solution:

Present Value at First Trial Rate of Return

Year	Cash Inflows	P.V. Factor at 35%	Present Value
1	5,000	.741	3,705
2	4,000	.549	2,196
3	2,000	.406	812
4	1,000	.301	301
5	1,000	.223	223
		Total	**7237**

35% प्रत्याय दर पर रोकड़ अन्तर्वाहों का कुल वर्तमान मूल्य (7237 रू.) विनियोग की लागत (7000 रू.) से अधिक आता है, अत: अगली जांच इससे ऊँची दर अर्थात 40% पर की जाएगी जो इस प्रकार होगी -

Present Value at Second Trial Rate of Return

Year	Cash Inflows	P.V. Factor at 35%	Present Value
1	5,000	.714	3,570
2	4,000	510	2,040
3	2,000	364	728
4	1,000	.260	260
5	1,000	.186	186
		Total	**6784**

प्रत्याय की दर (40%) पर रोकड़ अंतर्वाहों का कुल वर्तमान मूल्य (6,784 रू०) विनियोग की लागत (7,000 रू०) से कम है' अत: प्रत्याय दर 40% से कम होगी । अत: आंतरिक प्रत्याय दर (IRR) 35% व 40% के मध्य है जिसकी गणना आन्तरगणन विधि से निम्न प्रकार की गई है -

IR R - LDR + $\frac{P_1 - C}{P_1 - P_2} \times \quad (HDR - LDR)$

$35 + \frac{7237 - 7000}{7237 - 6784} \times (40 - 35)$

= $35 + \frac{237}{453} \times 5$

35 + 2.62 = 37.62%

निर्णय - अत: 37.62% प्रत्याय दर पर पांच वर्षों के रोकड़ अंतर्वाहों का योग विनियोग लागत के बराबर होगा । उपर्युक्त उदाहरण में यह प्रत्याय दर प्रबन्ध द्वारा वांछित प्रत्याय दर (30%) से अधिक है । अत: परियोजना को स्वीकृत कर लिया जायेगा ।

Illustration: 9

Y Co. Ltd. Is considering two mutually exclusive projects. The following are the information for the same :-

वाई कम्पनी लिमिटेड दो परस्पर अपवर्जी परियोजनाओं पर विचार कर रही है । उपरोक्त के लिए निम्नलिखित सूचनाएँ हैं -

Initial Investment	Rs. 2,00,000
Life time of the Project	5 years
Required Rate of Return	10%
Tax Rate	50%

The Net Cash Inflows before tax and depreciation are:

परियोजना से शुद्ध रोकड़ अंतर्वाह कर तथा ह्रास से पूर्व निम्न है -

Year	1	2	3	4	5
Project A (Rs.)	80,000	80,000	80,000	80,000	80,000

Project B (Rs.) 1,00,000 80,000 40,000 1,00,000 1,00,000

The project will be depreciated on straight line method. You are required to calculate:

i. The pay back period of each project.

ii. The average rate of return for each project.

iii. The net present value and profitability index for each project.

iv. The internal rate of return for each project.

v. Which project should be accepted and why?

परियोजनाओं पर दास सीधी रेखा पद्धति पर लगाया जाता है । आपको अपनी गणना करनी है

i. प्रत्येक परियोजना की पुनर्भुगतान विधि ।

ii. प्रत्येक परियोजना की ओसत प्रत्याय ।

iii. प्रत्येक परियोजना का शुद्ध वर्तमान मूल्य तथा लाभदायकता सूचकांक ।

iv. प्रत्येक परियोजना की आंतरिक प्रत्याय दर ।

v. किस परियोजना को चुना जाये और क्यों?

बट्टा कारक / Discount Factor

Year	10%	15%	16%	18%
1	.909	.870	.862	.847
2	.826	.756	.743	.718
3	.751	.658	.641	.609
4	.683	.572	.552	.516
5	.621	.497	.476	.431
Total	3.49	3.353	3.274	3.121

Calculation of Cash inflows after Tax

Particulars	Project A (Equal for each year) Rs.	Project B				
		I yr. Rs.	II Yr. Rs.	III Yr. Rs.	IV Yr. Rs.	V Yr. Rs.
Cash Inflows (Before Taxes and Dep.)	80000	100000	80000	40000	100000	100000
Less : Depreciation	40000	40000	40000	40000	40000	40000
Income before Tax	40000	60000	40000	—	60000	60000
Less : Tax @ 50%	20000	30000	20000	—	30000	30000
Net Income	20000	30000	20000	—	30000	30000
Add : Depreciation	40000	40000	40000	40000	40000	40000
Net Cash Inflows	60000	70000	60000	40000	70000	70000
Cumulative Cash Inflows	-	70000	130000	240000	2400000	310000

i. Pay - back Period

Project A = $\frac{\text{Intial Investment}}{\text{Annual Net Cash Inflows}}$

$\frac{Rs.\ 2,00,000}{Rs.\ 60,000} = 3.33$ years

Project B $= 3 + \frac{2,00,000 - 1,70,000}{70,000}$

$= 3 + \frac{3}{7} = 3.43$ years

ii. Average Rate of Return

AFR = $\frac{\text{Average Annual Income after tax and depreciation}}{\text{Average Investment}} \times 100$

Project A = $\frac{Rs.\ 20,000}{Rs.\ 1,00,000} \times 100 = 20\%$

Project B = $\frac{Rs.\ 22,000}{Rs.\ 10,000} \times 100 = 22\%$

Average Income (B) = Rs. 30,000+20,000+0+30,000/5 = Rs. 22,000

Average Investment = ½ (2,00,000)

iii. Net Present Value and Profitability Index

Calculation of Net Present Value

Year	Cash Inflows		P.V. Factor at 10%	Present Value	
	Project A Rs.	Project B Rs.		Project A Rs.	Project B Rs.
1	60,000	70,000	.909	54,540	63,630
2	60,000	60,000	.826	49,560	49,560
3	60,000	40,000	.751	45,060	30,040
4	60,000	70,000	.683	40,980	47,810
5	60,000	70,000	.621	37,260	43,470
			Total	**2,27,400**	**2,34,510**

Net Present Value = Total P.V. - Initial Investment

Project A = Rs. 2,27,400 - Rs. 2,00,000 = Rs. 27,400

Project B = Rs. 2,34,510 - Rs. 2,00,000 = Rs. 34,510

Profitability Index = $\frac{\text{Present Value of Cash Inflows}}{\text{Present Value of Cash Outflows}}$

Project A $= \frac{Rs.\ 2,27,400}{Rs.\ 2,00,000} = 1.137$

$$\text{Project B} = \frac{Rs.\ 2,34,510}{Rs.\ 2,00,000} = 1.173$$

iv. Internal Rate of Return

Project A

इस परियोजना की रोकड़ अंतर्वाहों की राशि प्रति वर्ष समान है, अत: सर्वप्रथम वर्तमान मूल्य कारक या अदायगी अवधि की गणना की जायेगी ।

$$\text{P.V. Factor } \frac{1}{C} = \frac{Rs.\ 2,00,000}{Rs.\ 60,000} = 3.33$$

संचयी वर्तमान मूल्य सारणी में परियोजना के जीवन काल अर्थात् 5 वर्ष वाली पंक्ति में इस वर्तमान मूल्य कारक पर प्रत्याय दर 15% है । इस 15% की दर पर संचयी मूल्य कारक 3.352 है जो 3.333 से अधिक है । अत: वास्तविक प्रत्याय दर 15% एवं व 16% के मध्य होनी चाहिए । वास्तविक दर आन्तरगणन विधि द्वारा ज्ञात की जायेगी ।

P.V. At 15% = Rs. 60,000 x 3.352 = Rs. 2,01,120

P.V. at 16% = Rs. 60,000 x 3.274 = Rs. 1,96,440

$$IR\ \text{R} = \text{LDR} + \frac{P_1 - C}{P_1 - P_2} \times \quad (HDR - LDR)$$

$$= 15 + \frac{Rs.\ 2,01,120 - 2,00,000}{Rs.\ 2,01,120 - 1,96,440} \times (16 - 15)$$

$$= 15 + \frac{1120}{4680} \times 1$$

= 15+0.24 - 15.24%

Project B

रोकड़ प्रवाह समान नहीं है, अत: भूल एवं सुधार विधि का प्रयोग किया जायेगा । इसके लिए वर्तमान मूल्य की गणना इस प्रकार की गई है -

$$\text{P.V. Factor} = \frac{\text{Intial Investment}}{\text{Average Annual Cash Inflows}}$$

$$= \frac{Rs.\ 2,00,000}{Rs.\ 3,10,000/5}$$

$$= \frac{Rs.\ 2,00,000}{Rs.\ 62,000} = 3.23$$

संचयी वर्तमान मूल्य सारणी में 5 वर्ष को पंक्ति में इस मूल्य कारक (3.23) पर प्रत्याय दर लगभग 18% है । अत: इस प्रत्याय दर पर विभिन्न वर्षों के रोकड़ अंतर्वाहों का वर्तमान मूल्य ज्ञात करके विनियोग लागत से तुलना की जायेगी ।

Present Value at Different Trial Rates

Year	Cash Inflows	Trial No. 1		Trial No. 2	
	Rs.	P.V. Factor	P.V. Rs.	P.V. Factor	P.V. Rs.

		at 18%		at 16%	
1	70,000	.847	59,29	.862	60,340
2	60,000	.718	43,080	.743	44,580
3	40,000	.609	24,360	.641	25,640
4	70,000	.516	36,120	.552	38,640
5	70,000	.431	30,170	.476	33,320
Total Present Value			**1,93,020**		**2,02,520**

चूँकि रोकड़ अंतर्वाहों का वर्तमान मूल्य 18% प्रत्याय दर पर विनियोग लागत से कम है, अत: आगामी जांच इससे नीचे 16% ली गई है । इस दर पर रोकड़ अंतर्वाहों का वर्तमान मूल्य विनियोग की लागत से अधिक है, अत: प्रत्याय दर 16% से अधिक होगी । वास्तविक प्रत्याय दर 16% व 18% के मध्य होगी जिसकी गणना आन्तरगणन के सूत्र से इस प्रकार की गई है -

$$IR\ \mathrm{R} = \mathrm{LDR} + \frac{P_1 - C}{P1 - P2} \times \quad (HDR - LDR)$$

$$= 16 + \frac{Rs.\ 2,02,520 - 2,00,000}{Rs.\ 2,02,520 - 1,93,020} \times (18 - 16)$$

$$= 16 + \frac{2520}{9500} \times 2$$

= 16 + .53 = 16.53%

निष्कर्ष :

	Project A	Project B
i. Pay-back Period	3.33 yrs.	3.43 yrs.
ii. ARR	20%	22%
iii. NPV	Rs. 2,740	Rs. 3,451
iv. Profitability Index	1.137	1.173
v. IRR	15.24%	16.53%

केवल अदायगी अवधि विधि को छोडकर परियोजना मूल्यांकन की अन्य सभी विधियों से परियोजना B का चयन लाभप्रद है । अदायगी अवधि परियोजना A की कम है किन्तु समय में अंतर अत्यन्त कम है ।

आंतरिक प्रत्याय दर विधि के लाभ (Advantage of IRR)

1. **समय कारक (Time Factor)** - शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि की भांति इसमें भी समय कारक पर विचार किया जाता है अर्थात् भविष्य में प्राप्त होने वाली आय को उपयुक्त दर से अपहारित करके वर्तमान मूल्य ज्ञात किया जाता है, अत: यह विधि यथार्थपरक है ।

2. **पूँजी लागत आवश्यक नहीं (No Need of Cost of Capital)** - इस विधि में परियोजना के मूल्यांकन से पहले ही न्यूनतम वांछित प्रत्याय दरें निश्चित करने की आवश्यकता नहीं होती है ।
3. **सम्पूर्ण जीवनकाल पर विचार (Consideration on Whole Life of Project)**- इस विधि में विनियोग पर आय प्राप्ति की दृष्टि से परियोजना के पूरे जीवन पर विचार किया जाता है । अवशिष्ट मूल्य, मुआ कार्यशील पूँजी पर भी विचार किया जाता है । इस प्रकार यह विधि परियोजना का समग्र रूप से मूल्यांकन करती है ।
4. **तुलनात्मक लाभदायकता (Comparative Profitability)** - प्रबन्धक विभिन्न विनियोजन प्रस्तावों की प्रत्याय की दरों की संसार की पूँजी की लागत से तुलना कर निर्णय आसानी से ले सकता है कि किस प्रस्ताव का चुनाव किया जाये । जिस प्रस्ताव की प्रत्याय दर पूँजी की लागत से अधिक होगी, उसे स्वीकार किया जायेगा ।

आंतरिक प्रत्याय दर विधि के दोष : (Disadvantages of IRR)

1. **समझने में कठिन (Difficult to Understand)** - पूँजी बजटन की विभिन्न विधियों में से यह विधि सबसे अधिक कठिन है । इसमें गणनायें एवं सूत्र दोनों आसानी से समझ में नहीं आते हैं ।
2. **अनिश्चितता (Uncertainty)** - यह विधि इस मान्यता पर आधारित है कि संस्था को वार्षिक रोकड़ अंतर्वाहों का पुनर्विनियोजन करने से प्रत्याय की दर के बराबर आय प्राप्त होती है । किन्तु रोड अंतर्वाहों का अनुमान विक्रय व लागत के अनुमानों पर आधारित होता है जो कि स्वयं अनिश्चित होते हैं ।
3. **निर्णय में कठिनाई (Difficulties in Decision - Making)** - यह विधि भूल व सुधार सिद्धान्त पर आधारित है । अत: कभी-कभी इस विधि की सहायता से सही निर्णय लेना कठिन हो जाता है क्योंकि असमान रोकड़ अंतर्वाहों की दशा में दो या उससे अधिक उत्तर प्राप्त होने लगते हैं । ऐसी स्थिति में यह समस्या उत्पन्न होती है कि कौन सा उत्तर अधिक उचित होगा ।

12.5 शुद्ध वर्तमान मूल्य एवं आंतरिक प्रत्याय दर की तुलना (Comparison between NPV and IRR)

शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि एवं आंतरिक प्रत्याय दर विधि दोनों ही पूँजीगत विनियोगों के मूल्यांकन की रोकड़ प्रवाहों की तकनीक के दो स्वरूप हैं । जहाँ तक समानता का प्रश्न है, इन दोनों विधियों में, समय कारक को ध्यान में रखा जाता है । साथ ही विनियोग प्रस्ताव के स्वीकृत अथवा अस्वीकृत होने के संबंध में दोनों विधियों से समान परिणाम ही निकलते हैं, किन्तु इन समानताओं के बावजूद भी इन दोनों विधियों के कुछ अंतर है जो इस प्रकार है -

1. **निष्कर्षों में भिन्नता (Different Conclusion) -** दो परस्पर अपवर्जी परियोजनाओं की दशा में दोनों विधियों से ज्ञात निष्कर्ष समान नहीं होते हैं । परस्पर अपवर्जी परियोजनाओं से आशय ऐसी परियोजनाओं से है जिनमें यदि एक को स्वीकृत कर लिया

जाता है तो दूसरी परियोजना प्रभावहीन हो जाती है । ऐसी परियोजनाओं के जीवनकाल में भिन्नता अथवा रोकड़ लागत में भिन्नता अथवा अंतर्वाहों के स्वरूप में मित्रता के कारण होता है ।

2. **वांछित प्रत्याय दर (Required Rate of Return)** - आंतरिक प्रत्याय दर विधि में न्यूनतम वांछित प्रत्याय दर अज्ञात चर (Unknown Variable) होता है जबकि शुद्ध वर्तमान मूल्य पद्धति में वांछित प्रत्याय दर की पूर्व जानकारी दी जाती है ।
3. **मान्यता (Assumption)** - शुद्ध वर्तमान मूल्य पद्धति इस मान्यता पर आधारित है कि रोकड़ अंतर्वाहों के पुनर्विनियोजन से अपेक्षित प्रत्याय दर प्राप्त होती रहेगी जो कि सामान्यत: पूँजी लागत की दर होती है । आंतरिक प्रत्याय दर इस मान्यता पर आधारित है कि रोकड़ अंतर्वाहों का पुनर्विनियोजन परियोजना के पूरे जीवनकाल में आंतरिक प्रत्याय दर से होता रहेगा ।
4. **दर की गणना का आधार (Basis of Rate Commutation)** - आंतरिक प्रत्याय दर विधि में पुनर्विनियोजन दर की गणना रोकड़ अंतर्वाहों के आधार पर की जाती है । इसके विपरीत वर्तमान मूल्य विधि के अंतर्गत पुनर्विनियोजन दर पूँजी की लागत के आधार पर निर्धारित की जाती है ।
5. **प्रत्याय दर का उद्देश्य (Object of Rate of Return)** - आंतरिक प्रत्याय दर विधि से ज्ञात की गई प्रत्याय दर परियोजना के लिए कोषों की प्राप्ति पर देय व्याज की अधिकतम दर निर्धारित करती है । अन्य शब्दों में, परियोजना में विनियोजित पूँजी की लागत इस प्रत्याय दर से अधिक नहीं होनी चाहिए । दूसरी ओर, शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि यह बतलाती है कि किसी परियोजना में अधिकतम कितनी राशि विनियोजित की जाये जिससे इस परियोजना से प्राप्त अर्जने परियोजना में लगी पूँजी के बाजार दर पर ब्याज सहित भुगतान के लिए उपयुक्त हो ।

12.6 अन्य विधियाँ (Other Methods)

पूँजी बजट बनाने की अन्य विधियाँ भी हैं, इनका वर्णन निम्न प्रकार है :-

A. मापी प्रणाली (MAPI Method)

प्रतिस्थापन निर्णयों का मूल्यांकन करने के लिए अमरीका के जार्ज टरबार्ग ने मापी प्रणाली का विकास किया है । इस प्रणाली के अन्तर्गत अगले वर्ष की प्रत्याय दर (प्रतिस्थापन को एक वर्ष टालने के बजार अभी करने से प्राप्त प्रत्याय) ज्ञात की जाती है । इस दर की गणना विधि इस प्रकार है -

1. नयी मशीन के चलने से अगले वर्ष में प्राप्त होने वाली परिचालन लाभ (अर्थात् पुरानी की तुलना आगमों में वृद्धि या लागतों में बचत) की गणना की जायेगी ।
2. पुरानी मशीन चालू रखने पर अगले वर्ष की पूँजी क्षय (अर्थात एक वर्ष के अन्तर्गत पुरानी मशीन के अवशेष मूल्य में कमी और अगले वर्ष में पुरानी मशीन के नवीनीकरण के व्यय का योग) की राशि, जिसे प्रतिस्थापन के बाद बचा लिया जायेगा, ज्ञात करेंगे ।
3. नयी मशीन के लगाने पर अगले वर्ष में आय में शुद्ध वृद्धि की राशि पर देय आयकर की राशि की गणना की जायेगी ।

4. नयी मशीन को प्रयोग में लाने से अगले वर्ष उसके मूल्य में गिरावट की राशि ज्ञात करना । यद्यपि यह एक कठिन कार्य है किन्तु मापी प्रणाली में इसे ज्ञात करने के लिये एक चार्ट की रचना की जाती है ।
5. उपरोक्त (1) और (2) के योग से (3) और (4) का योग घटाकर शुद्ध लाभ या शुद्ध बचत की राशि ज्ञात करते हैं ।
6. नयी मशीन की प्राप्ति लागत और उसके संस्थापन व्यय (Installation Expenses) के योग से पुरानी मशीन का अवशेष मूल्य या उसका ट्रेड-इन मूल्य (Trade-in Value) और नयी मशीन के लगाने पर ऐसा कोई व्यय जिसे अब नहीं करना पड़ेगा (जैसा पुरानी मशीन के ओवर-हालिंग का व्यय) घटाया जायेगा तथा पुरानी मशीन के बेचने पर देय पूँजी लाभ-कर की राशि यदि कोई है, को जोड़ा जायेगा । इसे शुद्ध विनियोग कहा जाता है ।
7. अन्त में मापी प्रत्याय दर ज्ञात की जाती है । यह शुद्ध विनियोग की राशि पर शुद्ध लाभ की प्रतिशत-दर होती है । यह शुद्ध लाभ की राशि को शुद्ध विनियोग की राशि से भाग देकर तथा उसे 100 से. गुणा करके ज्ञात की जाती है । उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मापी प्रणाली में मुद्रा के समय-मूल्य तथा अवसर लागतों और वृद्धिशील लागतों की अवधारणाओं, सभी का ध्यान रखा जाता है जो कि एक तर्क-संगत निर्णय के लिये अनिवार्य है ।

B. अंतिम मूल्य विधि (Terminal Value Method)

यह विधि शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि पर एक सुधार है । इस विधि के अन्तर्गत यह माना जाता है कि प्रत्येक वर्ष प्राप्त होने वाले रोकड़ अन्तर्वाहों का एक निश्चित ब्याज पर परियोजना की समाप्ति अवधि तक विनियोग कर दिया जाता है अर्थात् इस विधि में रोकड़ प्रवाहों को बट्टा कृत करने के बजाय चक्रवृद्धि किया जाता है । तत्पश्चात् इन चक्रवृद्धि मूल्यों के वर्तमान मूल्य की गणना की जाती है ।

स्वीकृत मापदण्ड. यदि रोकड़ अन्तर्वाहों के चक्रवृद्धित मूल्यों का वर्तमान मूल्य रोकड़ बहिर्वाहों के वर्तमान मूल्य से ज्यादा होता है तो परियोजना स्वीकार करली जाती है । इसके विपरीत होने पर परियोजना अस्वीकृत कर दी जायेगी ।

परस्पर अपवर्जी परियोजनाओं की दशा में जिस परियोजना के चक्रवृद्धित मूल्यों का वर्तमान मूल्य सर्वाधिक होगा उसे स्वीकार किया जायेगा । शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि एवं अंतिम मूल्य विधि में केवल इतना ही अंतर है कि प्रथम विधि में मूल्यों को बट्टाकृत किया जाता है जबकि द्वितीय मूल्यों को चक्रवृद्धित किया जाता है, किन्तु यदि बट्टा एवं ब्याज की दर एक ही हो तो शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि एवं अंतिम मूल्य विधि से प्राप्त परिणाम समान होंगे ।

Illustration: 10

Sanchi Ltd. Has the following details in respect of a project under Consideration.

सांची लिमिटेड की एक विचाराधीन परियोजना के विवरण निम्नानुसार है -

Initial Investment	Rs. 4, 00,000
Cash Inflows	Rs. 2,00,000 p.a. for 5 years
Cost of capital	10% p.a.

Expected Interest rate at which each inflows will be reinvested.

पुनर्विनियोजन पर ब्याज दर निम्नानुसार है -

End of the year	1	2	3	4	5
Interest Rate (%)	7	7	8	9	9

वित्तीय सलाहकार के रूप में आपको प्रबंध का मार्गदर्शन करना है कि क्या अंतिम मूल्य मापदण्ड के आधार पर इस परियोजना को स्वीकार कर लिया जाये ।

Solution:

Statement Showing Compounded Value of Cash Inflows

Year	Cash Inflows	Rate of Interest	Years of Investment	Compounding Factor	Compounded Value Rs.
1	2,00,000	7%	4	1.311	262200
2	2,00,000	7%	3	1.225	245000
3	2,00,000	8%	2	1.166	233200
4	2,00,000	9%	1	1.090	218000
5	2,00,000	9%	0	1.000	200000
	10,00,000			**Total**	**11,58,400**

Present Value of the total compounded Cash Inflows

$$\text{P.V.} \quad \frac{\textit{Compounded}\ \text{value of cash inflows}}{\frac{1}{(1+k)^5}}$$

$$= \frac{1158400}{\frac{1}{(1+.10)^5}}$$

$$= \frac{1158400}{1} \times .6209$$

= Rs. 719275

अनुशंसा - चक्रवृद्धित रोकड़ अन्तर्वाहों का वर्तमान मूल्य 719275 रूपये, मूल विनियोग 400000 रूपये से अधिक है । अत: परियोजना को स्वीकार किया जा सकता है ।

C. अपहरित अदायगी अवधि विधि (Discounted Pay Back Method)

यह विधि अदायगी अवधि विधि अर्थात् परंपरागत विधि का सुधरा हुआ रूप है । इस विधि में रोकड़ अन्तर्वाहों की वांछित प्रत्याय दर पर कटौती की जाती है। तत्पश्चात् इन रोकड़ प्रवाहों के वर्तमान मूल्य को परियोजना के प्रारंभ से उस समय तक संचित किया जाता

है जब तक कि वर्तमान मूल्यों का योग परियोजना की मूल लागत के बराबर न हो जाये । यह अवधि ही अपहरित अदायगी अवधि कहलाती है ।

Illustration : 11

Using the following information calculate Pay Back Period under (i) Traditional Pay back Period (ii) Discounted Payback period.

नीचे दी गई सूचना का उपयोग करते हुए (i) परंपरागत अदायगी विधि तथा (ii) अपहरित अदायगी अवधि विधि से अदायगी अवधि की गणना कीजिये ।

Initial Investment					Rs. 1,00,000
Estimated Life					5 years
Year	1	2	3	4	5
Profit after tax Rs.	7500	17500	30000	20000	NIL

Depreciation has been calculated under straight line method. The present value factor at 12% p.a. are given below:

ह्रास की गणना सीधी रेखा पद्धति के आधार पर की जाती है । 12% वार्षिक दर एक रूपये का वर्तमान मूल्य कारक नीचे दिया गया है :-

Year	1	2	3	4	5
P.V. Factor	0.8929	0.7972	0.7118	0.6355	0.5674

Solution:

Calculating of Cash inflows

Years	Profit after tax Rs.	Depreciation Rs.	Cash Inflows Rs.	Cumulative Cash Inflows Rs.
1	7500	20000	27500	27500
2	17500	20000	37500	65000
3	30000	20000	50000	115000
4	20000	20000	40000	155000
5	NIL	20000	20000	175000

$$Depreciation = \frac{\text{Intial Investment - Scrap Value}}{\text{Estimated Life in Years}}$$

$$\frac{100000-0}{5}$$

= 20000

Pay back Period (Traditional Method)

$$= 2 \text{ years} + \left(\frac{100000-65000}{50000}\right) yrs.$$

$$2 \text{ years} + \frac{35000}{50000}.yers$$

= 2 yrs. + .7 yrs.

= 2.7 years

Calculation of Present Value of Cash Inflows

Years	Cash Inflows	P.V. Factor of 12%	P.V. of Cash Inflows	Commulative P.V. of Cash Inflows
1	27500	0.8929	24555	24555
2	37500	0.7972	29895	54450
3	50000	0.7118	35590	90040
4	40000	0.6355	25420	115460
5	20000	0.5674	11348	126808

ii. Discounted Pay back Period :

$$= 3 \text{ years} + \left(\frac{100000-90040}{25420}\right) yrs.$$

$$= 3 \text{ years} + \frac{9960}{25420}.yrs.$$

= 3 yrs + .39 yrs.

= 3.39 years

पूँजी समभाजन (Capital Rationing)

व्यवसाय में पूँजी की पूर्ति सीमित होती है और उसकी लागत भी होती है । अत: पूँजी बजटन की मुख्य समस्या उपलब्ध पूँजी के विभिन्न वैकल्पिक विनियोगों में बंटवारे की है । प्रबंध को इस सीमित पूँजी को विभिन्न प्रतियोगी विनियोगों में इस प्रकार बांटना चाहिये जिससे लाभ अधिकतम हो सके । यह आवंटन ही पूंजी का राशनिंग कहलाता है ।

यह तो स्पष्ट ही है कि किसी भी परियोजना को स्वीकार तब ही किया जाता है जबकि उस परियोजना से प्राप्त प्रत्याय उसके लिये अपेक्षित पूँजी की लागत से अधिक हो । विभिन्न परियोजनाओं के क्रमबद्ध करने के पश्चात् उन परियोजनाओं को छोड़ दिया जाता है । जिन पर प्रत्याय पूँजी की लागत से कम है । शेष परियोजनाओं को उनकी लाभप्रदता के कम में रखकर प्राथमिकतायें निर्धारित की जाती है ।

पूँजी बजटन का प्रमुख उद्देश्य संस्था की दीर्घकालीन लाभार्जन क्षमता में वृद्धि कर संपदा अधिकतम करना होता है । एक फर्म में बहुत सी लाभप्रद परियोजनायें हो सकती हैं लेकिन इन सभी के लिये पर्याप्त पूँजी का उपलब्ध करना संभव नहीं होता । इसके अतिरिक्त विभिन्न परियोजनाओं की लागत एवं लाभप्रदता में ही अंतर हो सकता है अत: इन परियोजनाओं को उनकी लाभप्रदता के अनुसार क्रमबद्ध किया जाता है तथा इन क्रमबद्ध विनियोग प्रस्तावों का चयन तब तक करते जाते हैं जब तक कि बजट सीमा समाप्त नहीं हो जाती है ।

12.7 पूंजीगत व्ययों का नियंत्रण (Control on Capital Expenditures)

औद्योगिक इकाइयों में मशीनीकरण और स्वचालन के कारण पूँजीगत व्ययों का नियंत्रण बहुत जरूरी हो गया है । पहले की तुलना में आजकल स्थायी सम्पत्तियों में विनियोग बहुत बढ़

गया है । इन व्ययों से कम्पनी की भावी नीति और दीर्घकालीन लाभप्रदता प्रभावित होती है । अत: इन व्ययों पर समुचित नियंत्रण जरूरी हो जाता है । इसके लिये प्रबन्ध लेखापाल पूँजीगत व्ययों पर नियंत्रण की एक प्रणाली लागू कर सकता है, जिसकी मुख्य बातें निम्नलिखित होती हैं :-

1. **नयी पद्धतियों. प्रक्रियाओं और उत्पादों की खोज (Search for New Method, Processes and Production)** चूँकि पूँजीगत व्यय व्यवसाय की दीर्घकालीन लाभप्रदता के आधार होते हैं । अत: प्रबन्ध को वर्तमान पद्धतियों, प्रक्रियाओं तथा उत्पादों में सुधार के लिये निरन्तर प्रयत्न करना चाहिये ।
2. **नियोजित विकास (Planned Development)** पूँजीगत सम्पत्तियों में विनियोग इस प्रकार किया जाये जिससे कि कम्पनी के लिये एक सुदृढ़ संगठन की स्थापना की जा सकती है । इसके लिये एक 'बजटन विनियोजन समिति' बनायी जा सकती है जो कि प्रत्येक परियोजना की सुदृढ़ता व कम्पनी के संतुलित विकास के लिये उत्तरदायी होगी । प्रबन्ध के अनुमोदन के पश्चात् भी जब परियोजना का वास्तव में कार्य प्रारंभ हो, उस समय भी इसकी सुदृढ़ता पर पुनर्विचार किया जाना चाहिये ।
3. **पूँजीगत बजट (Capital Budget)** कम्पनी में चाहे बजटरी नियंत्रण की एक पूर्ण पद्धति न भी हो तो भी पूँजीगत बजट बनाया जाना चाहिये । परियोजना के लिये आवश्यक रोकड़ की उपलब्धता (Availability of Cash) और सम्पत्ति की प्राप्ति को आश्वस्त (Ensure) करने के लिए पूँजीगत विनियोजनों और भुगतान का पूर्वनियोजन जरूरी हो जाता है ।
4. **मूल्यांकन की तर्कसंगत पद्धतियों का प्रयोग (Use of Rational Methods of Evaluation)** पूँजीगत परियोजनाओं पर निर्णय कोषों की उपलब्धता के संबंध में अल्पकालीन परिस्थितियों और दूरव्यापी पूँजीगत योजनाओं को ध्यान में रखते हुए ही करने चाहिये तथा विभिन्न वैकल्पिक प्रस्तावों की लाभप्रदता का एक या अधिक मूल्यांकन पद्धतियों से मूल्यांकन कर क्रमबद्ध करना चाहिये तथा इसके परिणामों के आधार पर विषय परक होकर निर्णय लेना चाहिये ।
5. **फार्म और कार्यप्रणाली (Forms and Procedure)** पूँजीगत व्ययों पर नियंत्रण के लिये एक निश्चित विधि (Routine) होनी चाहिये । प्रत्येक चरण पर (परियोजना की प्रार्थना, स्वीकृति, प्रगति और अंकेक्षण) एक निश्चित कार्य प्रणाली अपनायी जाये । इसके लिये छपे हुये फार्मों का प्रयोग किया जा सकता है, जिन्हें पूरा करके प्रबन्ध के समक्ष प्रस्तुत करना होता है । इससे कार्य प्रणाली सरल एवं सुविधाजनक हो जाती है ।
6. **प्रगति अभिलेख (Progress Record)** प्रत्येक स्वीकृत परियोजना के लिये एक पूँजीगत परियोजना पत्र (Capital Project Sheet) रखा जाना चाहिये जिस पर उस परियोजना का पूर्ण विवरण दिया जाये । जब किसी परियोजना पर कार्य चल रहा हो तो उसके अधिकृत व्ययों और वास्तविक व्ययों की एक निश्चित अवधि के बाद तुलना कर अंतर ज्ञात किये जाने चाहिये एवं प्रबंध को परियोजना की प्रगति तथा वास्तविक व बजटीय व्ययों के अंतरों

की नियमित सूचना दी जाये यदि परियोजना की वास्तविक लागत मूल अनुमानों से अधिक हो तो इसके लिये पूरक मंजूरी (Supplementary Sanctions) ली जाये अथवा योजना को संशोधित किया जाये । इसी तरह यदि परियोजना के पूरा होने में अधिक समय लगने की संभावना है तो इससे प्रबन्ध को अवगत करवा देना चाहिये जिससे प्रबन्ध समय रहते आवश्यक सुधारात्मक कार्यवाही कर सकता है ।

7. **लाभप्रदता अंकेक्षण (Profitability)** नियमित जांच के अतिरिक्त जब किसी परियोजना पर कार्य पूरा हो जाये तो प्रबन्ध-लेखापाल को परियोजना की लाभप्रदता के वास्तविक अंकों की उसके अनुमानों से तुलना करनी चाहिये । इस प्रकार पुनर्विचार करने से नियंत्रण की पद्धति की अंकुशताओं का पता लगता है । इसके अनुभव से भविष्य में पुन: उसी प्रकार की गलतियों से बचा जा सकता है ।

12.8 जोखिम एवं अनिश्चितता की स्थिति में पूँजी बजटन (Capital Budgeting under Risk and Uncertainty Condition)

पूँजी बजटन की पूर्व वर्णित विधियों में जोखिम एवं अनिश्चितता पर ज्यादा विचार नहीं किया जाता है, जबकि ये दोनों तत्व परियोजना के साथ-साथ व्यवसाय के मूल्यों को भी प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं । जोखिम एवं अनिश्चितता परियोजना के भावी अनुमानित प्रवाहों में परिवर्तनशीलता से दृष्टिगोचर होती है अर्थात् प्रत्यायों में अस्थिरता एवं जोखिम में सीधा संबंध होता है । प्रत्याय में जोखिम या अनिश्चितता देश में आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, औद्योगिक परिवर्तनों, उपभोक्ताओं की रूचि, फैशन, मांग में परिवर्तन से प्रभावित होती है। जोखिम एवं अनिश्चितता के लिए समायोजन विधियाँ (Adjustment Methods for Risk and Uncertainty) जोखिम एवं अनिश्चितता का समायोजन पूँजीगत विनियोग करते समय करना आवश्यक है इस हेतु निम्न विधियों का प्रयोग किया जा सकता है:-

1. **रोकड़ अन्तर्वाहों की संभावना का निर्धारण (Probability)** इस विधि में रोकड़ अन्तर्वाहों का प्राथमिकता के आधार पर समायोजन कर वास्तविक अन्तर्वाहों की गणना की जाती है ।
2. **प्रमाप विचलन का प्रयोग (Use of standard Deviation)** विभिन्न पूँजी प्रस्तावों से प्राप्य संभावित रोकड़ अन्तर्वाहों की माध्यम से अ तर ज्ञात कर प्रमाप विचलन के आधार पर तुलना की जा सकती है । जिस प्रस्ताव का प्रमाप विचलन अधिक होगा उसमें जोखिम अधिक होगी, इसके विपरीत होने पर जोखिम कम होगी ।
3. **विचरण गुणा (Coefficient of Variation)** प्रमाप विचलन निरपेक्ष माप है अत: समान अर्न्तवाहों की दशा में इसके आधार पर निर्णय लिया जा सकता है किन्तु असमान अर्न्वाह होने पर प्रमाप विचलन में माध्य का भाग देकर विचरण गुणांक ज्ञात किये जाते है । विचरण गुणांक के कम होने पर जोखिम कम एवं अधिक होने पर परियोजना जोखिमपूर्ण होगी ।

4. **जोखिम समायोजित अपहरित दर (Risks Adjusted Discount Rate)** इस विधि में पूँजी परियोजना के अधिक जोखिमपूर्ण होने पर ऊँची प्रत्याय दर का निर्धारण या अतिरिक्त जोखिम दर का निर्धारण कर विभिन्न प्रस्तावों की तुलना की जाती है ।
5. **निर्णय वृक्ष (Decision Tree)** इस विधि में रेखाचित्र के माध्यम से वर्तमान एवं भावी निर्णयों, घटनाओं एवं परिणामों के मध्य संबंधों को दर्शाया जाता है एवं पूर्वानुमान के माध्यम से संभावित परिणामों को स्पष्ट किया जाता है ।
6. **निश्चितता तुल्यमान (Certainty Equivalent)** रोकड़ अन्तर्वाहों को जोखिम की मात्रा के आधार पर समायोजित करते हेतु इस विधि में निश्चितता अनुपातों की गणना की जाती है । तत्पश्चात् रोकड़ अर्न्तवाहों को इस अनुपात से गुणाकर वास्तविक रोकड़ अन्तर्वाह ज्ञात किये जाते है ।
7. **सूक्ष्म ग्राह्यता विश्लेषण (Sensitivity Analysis)** इस विधि में विनियोजन से प्राप्त होने वाली प्रत्याय का अनुमान तीन दरों पर किया जाता है । पहली आशावादी दर (Optimistic Rate) दूसरी संभावना दर (Most Likely Rate) एवं तीसरी निराशावादी दर (Pessimistric Rate) । आशावादी एवं निराशावादी दर में अंतर जोखिम को प्रदर्शित करता है ।

12.9 तकनीकी शब्दावली (Technical Terms)

वर्तमान मूल्य (Present Value) : भावी रोकड़ अन्तर्वाहों का एक निश्चित कटौती दर पर वर्तमान मूल्य ।

शुद्ध वर्तमान मूल्य (Net Present Value) भावी रोकड़ अन्तर्वाहों का निश्चित कटौती पर ज्ञात वर्तमान मूल्य में से रोकड़ बहिर्वाह मूल्य को घटाने पर ज्ञात मूल्य ।

लाभदायकता सूचकांक (Profitability) : भावी रोकड़ अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य का प्रारंभिक विनियोग से अनुपात ।

आन्तरिक प्रत्याय दर (Internal rate of Return) : वह दर जो विनियोजन से प्राप्त होने वाले प्रत्याशित कुल अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य को विनियोजन की लागत तुल्य कर देती है ।

मापी प्रणाली (MAPI Method) : प्रतिस्थापन को एक निश्चित अवधि तक टालने के बजाय वर्तमान में करने पर प्राप्त प्रत्याय दर ।

अंतिम मूल्य विधि (Terminal Value Method) : प्रत्येक वर्ष प्राप्त होने वाले रोकड़ अन्तर्वाहों का एक निश्चित दर पर परियोजना समाप्ति तक विनियोग से प्राप्त मूल्य ।

पूँजी समभाजन (Capital Rationing) : सीमित पूँजी को विभिन्न प्रतियोगी विनियोगों में आवश्यकतानुसार वितरित करना जिससे अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके ।

12.10 स्वपरख प्रश्न

1. अपहारित रोकड़ प्रवाह विधि क्या है? इसमें वर्तमान मूल्य किस प्रकार ज्ञात किया जाता है?

2. शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि की गणना किस प्रकार की जाती है? इस विधि के लाभ एवं दोषों का वर्णन कीजिए ।
3. आंतरिक प्रत्याय दर क्या होती है? इसकी गणना किस प्रकार की जाती है? उदाहरण से समझाइये ।
4. शुद्ध वर्तमान मूल्य एवं आंतरिक प्रत्याय दर विधि को तुलना कीजिए ।
5. निम्न पर टिप्पणी लिखिये -

   i. मापी ii.अंतिम मूल्य विधि

   iii.अपहारित अदायगी अवधि विधि iv.पूँजी समभाजन
6. Find out the Net Present Value for a project which requires an initial investment or Rs. 50,000 and which involves a net cash inflow of Rs. 20,000 each year for 3 years. The cost of funds is 8%. There is no scrap value (P.V. of an annuity of Re. 1 for 5 year at 8% per annum is Rs. 3.993)

   एक परियोजना का शुद्ध वर्तमान मूल्य ज्ञात कीजिये जिसके लिए 50000 रू. प्रारम्भिक विनियोजन की आवश्यकता है तथा जिससे 5 वर्षा तक प्रति वर्ष 20000 का शुद्ध रोकड़ अन्तर्वाह होगा । कोषों की लागत 8% है । कोई अवशिष्ट मूल्य नहीं है । एक रूपये की वार्षिकी का 5 वर्ष के लिए 8% की दर पर वर्तमान मूल्य 3.993 है ।
7. The management of Shruti Ltd. wants to invest Rs. 80,000 in a project which will give earnings for five years. The earnings after tax and before depreciation will be Rs. 20,000 in the first year, Rs. 40,000 in the second year, Rs 40,000 in the third year, Rs. 20,000 in the fourth year and Rs. 10,000 in the fifth year.

   Please suggest management whether this project is worth-while to be taken, if management has suggested 12% discount rate for the computation of present value.

   श्रुति लिमिटेड का प्रबन्ध एक परियोजना में 80000 रू. विनियोग करना चाहता है जिससे पांच वर्ष तक आय प्राप्त होगी । कर के बाद परन्तु दास से पूर्व आय प्रथम वर्ष में 20000 रू., द्वितीय वर्ष में 40000 रू., तृतीय वर्ष में 40000 रू., चतुर्थ वर्ष में 20000 रू. तथा पंचम वर्ष में 10000 रू. प्राप्त होगी ।

   यदि प्रबन्ध ने वर्तमान मूल्य की गणना के लिए 12 की दर निर्धारित की है तो आप प्रबन्ध को सलाह दीजिये कि इस परियोजना को स्वीकार किया जाये या नहीं ।
8. Mona Ltd. Is considering the purchase of a machine. Two machines, A and B are available each costing Rs. 1, 50,000. Earnings before tax and dep. Are expected to be as follows : -

मोना लिमिटेड का प्रबन्ध एक मशीन को खरीदने का विचार कर रहा है । 4 एवं 8 दो मशीनें प्रत्येक 150000 रू. की लागत पर उपलब्ध है । ह्रास एवं कर से पूर्व अर्जने निम्न प्रकार हैं :

Cash Flow

Year	Machine A	Machine B
1	45,000	15,000
2	60,000	45,000
3	75,000	60,000
4	45,000	90,000
5	20,000	60,000

Evaluate the two alternative according to:

a. The pay-back method.

b. The Discounted pay-back method.

c. Return on investment method. And

d. Net present value method.

If, Tax rate is 50%. Discount rate is 10%. Present Value factor at 10% for five years are 0.909, 0.826, 0.751, 0.683 and 0.621.

निम्न विधियों के आधार पर दोनों विकल्पों का मूल्यांकन कर निर्णय कीजिये :-

i. अदायगी अवधि विधि

ii. अपहरित अदायगी अवधि विधि

iii. औसत प्रत्याय दर विधि

iv. शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि ।

कर की दर 50% है एवं कटौती की दर 10% है । जिस पर 5 वर्षों का वार्षिक मूल्य क्रमश: 0.909, 0.826,0.751, 0.663 और 0.621 है ।

9. Sapna Mills Ltd. Is considering the purchase of a new machine which will carry out some operations which are at present performed by labour. X and Y alternatives models. The following information are available: -

सपना मिल्स लिमिटेड एक नई मशीन खरीदने का विचार कर रही है जो कि वर्तमान में श्रमिकों द्वारा किये जा रहे कार्य को करेगी । पी तथा क्यू वैकल्पिक मॉडल हैं निम्न सूचना उपलब्ध है :-

	Machine P	**Machine Q**
	Rs.	**Rs.**
Cost of Machine	20,000	30,000
Estimated life of machine	5 years	6 years

Estimated saving in scrap p.a.	2,000	2,500
Estimated cost of indirect material p.a.	600	800
Estimated savings in direct wages p.a.	8,000	11,000
Additional cost of maintenance p.a.	700	1,100
Additional cost of supervision p.a.	2,2000	2,600

Depreciation will be charged on a straight line basis. A tax rate of 50% is assumed. Evaluate the alternative according to:

a. The pay-back method.

b. Unadjusted return on average investment method ; and

c. Net present value index method (cost of capital 8%)

Note: - The present value of Re. 1 @ 8% per annum received annually for 5 years in 3.993 and for 6 year is 4.623

ह्रास सीधी रेखा पद्धति पर लगाया जायेगा । कर की दर 5% होगी । निम्नांकित विधियों के आधार पर दोनों विकल्पों का मूल्यांकन कीजिये ।

अ. पुनर्भुगतान विधि;

ब. औसत विनियोग पर असमायोजित प्रत्याय विधि तथा

स. शुद्ध वर्तमान मूल्य सूचकांक पद्धति (पूँजी की लागत 8 प्रतिशत)

टिप्पणी: 8% की दर पर 1 रू. वार्षिक 5 वर्ष के प्राप्त होता रहने पर वर्तमान मूल्य 3.993 रू. तथा 6 वर्ष तक के लिए प्राप्त होता रहने पर वर्तमान मूल्य 4.623 रू. है ।

10. Initial Investment Rs. 20,000

Cash Inflows:

First year	Rs. 10,000
Second year	Rs. 10,000
Third year	Rs. 4,000

आंतरिक प्रत्याय दर की गणना कीजिये ।

Determine the Internal Rate of Return.

10. Calculate internal rate of return for Project 'X'

परियोजना 'एक्स' की आंतरिक प्रत्याय दर ज्ञात कीजिए :

		Rs.
Initial cost		Rs. 10,000
Net Cash Inflows at the		
End of year	1	2,000
	2	4,000
	3	3,000
	4	4,000

11. Ram Toys Ltd. Is considering two mutually exclusive projects. Both require an initial investment of Rs. 30,000 each and have a life of five years. The required rate of return by the company is 10% and pays tax at 50% rate. The projects will be depreciated on a straight line basis. The net cash flows to be generated by the projects before tax and depreciation are as under :

राम टोयज लिमिटेड दो परियोजनाओं पर विचार कर रहे हैं, ये दोनों परियोजनाएं परस्पर अपवर्जी हैं । दोनों के प्रारम्भिक विनियोग 20000 रू. है, आवश्यक प्रत्याय 10% है तथा कम्पनी 50% की दर से कर चुकाती है । परियोजना पर ह्रास सीधी रेखा विधि द्वारा काटा जाता है । शुद्ध रोकड़ प्रवाह कर तथा ह्रास के पूर्व निम्न प्रकार हैं -

Year	1	2	3	4	5
Project A Rs.	12,000	12,000	12,000	12,000	12,000
Project B Rs.	15,000	12,000	6,000	15,000	15,000

Calculate the Internal Rate of Return for each project.

प्रत्येक परियोजना की आंतरिक प्रत्याय दर की गणना कीजिये ।

12.11 सन्दर्भ ग्रंथ (Reference Books)

1. Maheshwari S.N. : Principles of Management Accounting.
2. .Arora M.N. : Cost and Management Accounting.
3. Sahaf M.A. : Management Accounting: principles and Practices.
4. Shrivastava R. M. : Financial Decision making Text, Problems and Cases.
5. Ravi M Kishore : Advance Management Accounting.

इकाई-13 :आय का प्रबंध एवं प्रतिधारण नीति (Management of Income and Retention Policy)

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 आय के प्रबंध का अर्थ
13.3 आय के प्रबंध का क्षेत्र
13.4 आय के निर्धारण का महत्व
13.5 स्थिर आय
13.6 अधिशेष
13.7 कोष/संचय
13.8 लाभों का पुर्नविनियोजन अथवा प्रतिधारण नीति
13.9 लाभ के पुनर्विनियोग को प्रभावित करने वाले तत्त्व
13.10 लाभों के पुर्नविनियोजन से लाभ
13.11 तकनीकी शब्दावली
13.12 स्वपरख प्रश्न
13.13 सन्दर्भ ग्रंथ

13.0 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के पश्चात् आप समझ पायेंगे -

- आय प्रबंधन क्या होता है?
- आय प्रबंधन के संबंध में कौन-कौनसे दृष्टिकोण प्रचलन में हैं ।
- आय के निर्धारण का क्या महत्व है?
- लाभों का पुर्नविनियोजन या प्रतिधारणा नीति क्या है?
- इस नीति की आवश्यकता क्यों होती है?
- प्रतिधारणा नीति के क्या लाभ हैं?

13.1 प्रस्तावना

जैसा कि आप जानते हैं कि एक साहसी का प्रमुख उद्देश्य अपने पास उपलब्ध संसाधनों से अधिकतम आय अर्जित करना होता है । वित्तीय प्रबंधकों के दृष्टिकोण से आय अर्जित करने के साथ-साथ आय का प्रबंधन करना भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है । आय प्रबंधन के अन्तर्गत अर्जित आय का वितरण किस प्रकार किया जाये अर्थात् कितना भाग वितरित किया जाये एवं कितना भाग भावी आवश्यकताओं के लिए प्रतिधारित किया जाये का अध्ययन किया जाता है ।

प्रत्येक संस्था के वित्त प्रबन्धन का मुख्य उद्देश्य स्वामियों की समता में वृद्धि करना होता है । इस हेतु प्रबंधक न्यूनतम लागत पर कोष प्राप्त करके उनका अनुकूलतम उपयोग करता है एवं अधिकतम लाभ अर्जित करने का प्रयास करता है। ये अर्जित लाभ ही सामान्यत: सफलता का मापदण्ड माने जाते हैं साथ ही व्यवसाय की सफलता इस उपार्जित लाभ/आय की कुशल व्यवस्था पर भी आधारित होती है । यदि इन अर्जित लाभों का उचित उपयोग न किया जाये तो संस्था पूंजी पर प्रतिफल अर्थात् लाभांश चुकाने, विभिन्न दायित्वों का निर्वहन करने, विकास कार्यो हेतु कोषों का उपयोग करने, आपातकाल हेतु आंतरिक कोषों का निर्माण करने में समर्थ नहीं होगी । ऐसी संस्था न तो सफल होगी तथा न ही प्रगति कर पायेगी । अत: उपार्जित आय का कुशल एवं दूरदर्शिता पूर्ण प्रबंध संस्था की भावी सफलता का आधार माना जाता है। आय के प्रबंध को समझने से पूर्व अर्थशास्त्री एवं लेखांकन दोनों दृष्टिकोणों से आय शब्द का अर्थ जानना आवश्यक है ।

अ. **अर्थशास्त्रीय दृष्टिकोण:** कुल आगम में से कुल खर्चो एवं पूँजी व स्वामी की अवसर लागत को घटाने पर जो अधिशेष बचता है वह आय कहलाती है । पूँजी की अवसर लागत से अभिप्राय, यदि पूँजी को अन्यत्र विनियोजित किया जाता है तो उस पर कितना प्रत्याय प्राप्त होता है, से है एवं स्वामी की अवसर लागत से तात्पर्य यह है कि यदि स्वामी अन्यत्र कार्य करता है तो उसे कितना पारिश्रमिक मिलता उससे लिया जाता है । अर्थशास्त्र में लाभ की गणना करने हेतु इन दोनों लागतों को भी अन्य व्यावसायिक व्ययों के साथ कुल लागत में से घटाया जाता है ।

सूत्रानुसार:-

कुल आय = कुल आगम-कुल व्यय-पूँजी की अवसर लागत-स्वामी की अवसर लागत

ब. **लेखांकन दृष्टिकोण**: कुल आगम (विक्रय + अन्य आय) में से कुल खर्चे घटाने के बाद बची राशि आय होती है । वाल्टर मेगस के अनुसार "व्यापारिक क्रियाकलापों के फलस्वरूप स्वामी समता में वृद्धि को लेखांकन में लाभ के नाम से जाना जाता है ।" लेखांकन में स्वामी समता में वृद्धि तभी संभव है जबकि कुल आय का मुल खर्चे पर आधिक्य हो । सूत्रानुसार

कुल आय = कुल आगम - कुल व्यय

दोनों दृष्टिकोणों का अपना-अपना महत्व है परन्तु वित्तीय विश्लेषण की दृष्टि से 'आय' से अभिप्राय 'लेखांकन आय' से ही होता है ।

13.2 आय के प्रबंध का अर्थ (Meaning of Management of Income)

आय के प्रबंध के अन्तर्गत संस्था की छोटी से छोटी गतिविधि को सम्मिलित किया जाता है क्योंकि प्रत्येक व्यावसायिक गतिविधि का संबंध आय या व्यय से अवश्य होता है । गैस्टनबर्ग के शब्दों में - "विस्तृत अर्थ में आय के प्रबंध में संस्था के व्यवसाय सम्बन्धी प्रत्येक पहलू की व्यवस्था सम्मिलित है, क्योंकि व्यवसाय की प्रत्येक छोटी से छोटी क्रिया भी संस्था की आय अथवा व्यय को प्रभावित करती है ।" वित्तीय प्रबंध के अन्तर्गत आय के निर्धारण व आय के वितरण से संबंधित समस्याओं का अध्ययन किया जाता है ।

इस प्रकार आय के प्रबंध का आशय अर्जित आय का इस प्रकार प्रबंध करना है कि व्यवसाय की उन्नति के साथ-साथ व्यवसाय के स्वामियों को इनके द्वारा विनियोजित पूंजी पर उचित प्रत्याय मिल सके । संस्था में लगायी गयी पूँजी को कायम रखना, कोषों का निर्माण करना, उचित ह्रास की व्यवस्था करना तथा अंशधारियों को उचित लाभांश का वितरण करना, आय का प्रबंध कहलाता है ।

13.3 आय के प्रबंध का क्षेत्र (Scope of Management of Income)

आय अर्जित करना तो संस्था का मुख्य उद्देश्य होता ही है इसके साथ ही संस्था की सफलता इस बात पर भी निर्भर करती है कि अर्जित आय का वितरण किस प्रकार किया गया है, आय प्रबंधन में आय के अर्जन के साथ-साथ उसके वितरण का भी अध्ययन किया जाता है, इस प्रकार आय के प्रबंध में मुख्यत: दो कार्य आते हैं :

अ. **आय की राशि का निर्धारण (Detecting the amount of Income)**

ब. आय का वितरण : (Appropriation of Income)

अ. आय की राशि का निर्धारण (Detecting the amount of income) सर्वप्रथम आय की राशि का निर्धारण किया जाता है, यह राशि दो रूप में सकल एवं शुद्ध आय के रूप में निर्धारित होती है ।

a. सकल आय का निर्धारण: एक व्यावसायिक संस्था को निम्नलिखित साधनों से प्राप्त आय का योग सकल आय कहलाती है:-

i. **मुख्य व्यवसाय से आय (Income from Main Business)** जिस कार्य हेतु व्यावसायिक संस्था की स्थापना की जाती है, वह कार्य उस संस्था का मुख्य व्यवसाय कहलाता है, यह व्यवसाय निर्माण, उत्पादन, वितरण, परिवहन, बैंकिंग, बीमा आदि किसी भी गतिविधि से संबंधित हो सकता है । मुख्य व्यवसाय कार्य से जो आय प्राप्त होती है वह आय ही व्यवसाय के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । व्यवसाय की प्रगति एवं सफलता में मुख्य व्यवसाय से प्राप्त होने वाली आय पर ही निर्भर करती है । यह आय जितनी अधिक होगी आंतरिक वित्त प्रबंधन एवं प्रतिधारित अर्जनों हेतु उतनी ही अधिक राशि उपलब्ध होगी । अत: प्रबंधकों का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे इस साधन से प्राप्त होने वाली आय के प्रति पूर्ण जागरूक रहें । इस हेतु प्रबंधकों को जागरूक रहकर निम्न तथ्यों का विश्लेषण करना चाहिये -

- अर्जित आय एवं विनियोजित पूंजी के अनुपात की गणना कर यह पता लगाया जाना चाहिए कि आय पूँजी अनुपात में पर्याप्त है या नहीं ।
- आय का बिक्री से अनुपात ज्ञात कर व्यावसायिक क्रियाओं, का औचित्य ज्ञात किया जाना चाहिए ।
- गत कुछ वर्षों के अनुपातों का विश्लेषण कर प्रवृत्ति ज्ञात की जा सकती है ताकि यह पता लगाया जा सके कि आय में नियमितता व स्थिरता है या नहीं ।

ii. **सहायक क्रियाओं से आय (Income from Secondary Business**) कम्पनी अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिए एवं प्रमुख कार्यो के कुशलता एवं सरलता पूर्वक

सम्पादित करने के लिए या प्रमुख कार्यो के साथ कुछ सहायक कार्य भी कर सकती है । कम्पनी प्रबंध को दोनों कार्यो के आय-व्यय का हिसाब अलग-अलग रखना चाहिये । यदि एक से अधिक सहायक गतिविधियाँ हो तो प्रत्येक का अलग-अलग हिसाब रखना भी आवश्यक है ताकि ऐसी सहायक क्रियाओं को बंद किया जा सके जो कम्पनी के लिए लाभदायक नहीं हैं ।

iii. **विनियोगों से आय (Income from Investment)** प्रत्येक संस्था के पास समय-समय पर अतिरिक्त धन उपलब्ध होता है, जिसको कम्पनी विनियोजित कर आय कमाने का प्रयास करती है । ऐसी राशि सरकारी या अन्य प्रतिभूतियों में सहायक कम्पनी के अंशों व ऋणपत्रों में या अन्य वित्तीय संस्थाओं जैसे बैंक आदि में विनियोजित की जा सकती है । विनियोजन से पूर्व प्रबंधकों को विनियोजित राशि की सुरक्षित है, जोखिम कम है, सरलता एवं पर्याप्त आय होगी, ऐसे सभी तथ्यों पर चतुराई व दूरदर्शिता पूर्वक विचार करना चाहिये ।

iv. **अन्य आयें (Other Income)** अन्य आयों के अन्तर्गत विशेष एवं असाधारण परिस्थिति में होने वाली आय आती है । ऐसी आयें कभी भी निश्चित व नियमित नहीं होती है, जैसे - स्वामी की सम्पत्ति को बेचने से होने वाली आय, अंशों के हरण या समर्पण से होने वाली आय, अंशों के प्रीमियम पर निर्गमन से प्राप्त प्रीमियम आदि । ऐसी आय का अलग हिसाब रख विशेष कोष बना लेना चाहिए, तथा विशेष प्रयोजनों हेतु ही इसका उपयोग किया जाना चाहिये ।

b. शुद्ध आय का निर्धारण

उपर्युक्त वर्णित चारों साधनों से प्राप्त आय सकल आय (Gross Income) कहलाती है । सकल आय में से व्यवसाय के सभी व्ययों को घटा दिया जाये तो शेष आय शुद्ध आय (Net Income) होगी । इस प्रकार **शुद्ध आय = सकल आय - व्यावसायिक व्यय**

ब. **आय का वितरण (Distribution of Income) एक व्यावसायिक संस्था में आय का वितरण मुख्यतया निम्न चार रूप में किया जाता है :-**

1. **ह्रास व्यवस्था (Depreciation)** व्यवसाय में आय अर्जित करने हेतु स्थायी सम्पत्तियों का प्रयोग किया जाता है । इन स्थायी सम्पत्तियों के मूल्य में निरन्तर प्रयोग, घिसावट, समय व्यतीत होने एवं अप्रचलन के कारण धीरे-धीरे होने वाली कमी को ह्रास कहते हैं । चूंकि इन स्थायी सम्पत्तियों का उपयोग व्यवसाय चलाने के लिए किया जाता है, अत: इन पर हास की व्यवस्था भी आय में से ही की जानी चाहिए । लाभ के सही निर्धारण, सम्पत्ति प्रतिस्थापन हेतु कोष बनाने, सम्पत्ति को वास्तविक उचित मूल्य पर लाने, पूंजी में से लाभांश वितरण रोकने एवं कम्पनी अधिनियम की अनिवार्यताओं के तहत भी ह्रास आयोजन आवश्यक है । ह्रास की गणना सम्पत्ति का मूल्य, सम्पत्ति का कार्यशील जीवन, अवशेष मूल्य को ध्यान में रखते हुए उचित विधि के प्रयोग द्वारा की जाती है ।

2. **आयकर (Income Tax)** कम्पनी को आयकर अधिनियम में करदाता माना गया है, अत: उसे प्रतिवर्ष अर्जित होने वाली आय पर आयकर का भुगतान करना होता है । आयकर हेतु कर योग्य आय का निर्धारण आवश्यक है अत: इसे आय का वितरण माना गया है । कम्पनियों द्वारा आयकर की चालू दरों को ध्यान में रखते हुए वर्ष के दौरान आयकर के लिए प्रावधान कर लिया जाता है । अंतिम कर निर्धारण होने पर इस प्रावधान में से आयकर का भुगतान कर दिया जाता है ।
3. **संचय व अधिशेष (Reserves and Surplus)** भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु आय में से रोकी गयी राशि संचय कहलाती है । ये संचय सम्पत्तियों के मूल्य में होने वाली कमी को पूरा करने जैसे - ह्रास संचय, डुबत ऋण संचय आदि या वे दायित्व जिनका कही अनुमान न लगाया जा सके, के लिए बनाये जा सकते हैं । कुछ राशि कम्पनी द्वारा लाभ-हानि समायोजन खाते में रोक ली जाती है जिसे अधिशेष कहा जाता है । इन कोषों की सहायता से कम्पनी पूंजी निर्माण करती है । ये कोष विकास योजना में सहायक होते हैं एवं आर्थिक संकटों के समय कम्पनी को सुदृढ़ता प्रदान करते हैं ।
4. **लाभांश (Dividend)** अंशधारियों को उनके द्वारा लगायी गई पूंजी पर लाभांश चुकाया जाता है । कितना लाभांश वितरित किया जायेगा यह वित्तीय प्रबंधकों की नीतियों से प्रभावित होता है । यदि यह शुद्ध लाभ करों का भुगतान करने, कोषों का निर्माण करने एवं लाभांश भुगतान के लिए पर्याप्त होता है तो यह कहा जा सकता है कि संस्था उचित लाभ अर्जित कर रही है । शुद्ध लाभ के तुलनात्मक अध्ययन एवं विश्लेषण हेतु लाभदायकता अनुपातों (Profitability Ratios) का प्रयोग किया जाता है । विभिन्न उद्योगों में अथवा एक ही उद्योग की विभिन्न कम्पनियों में प्रचलित अनुपातों की तुलना करके उचित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं ।

13.4 आय के निर्धारण का महत्व (Importance of determination of Income)

शुद्ध आय कम्पनी की कार्यकुशलता एवं सफलता का मापदण्ड मानी जाती है । अत: इसकी सही गणना आवश्यक है । विभिन्न दृष्टिकोणों से आय के निर्धारण की उपयोगिता निम्न प्रकार है:-

1. **कर निर्धारण का आधार** : किसी व्यावसायिक संस्था की कर क्षमता का निर्धारण करने के लिए आय का निर्धारण जरूरी है । सामान्यत: लेखांकन आय को कर निर्धारण का आधार माना जाता है ।
2. **लाभांश नीति का आधार :** लाभांश नीति का निर्धारण शुद्ध आय के आधार पर ही किया जाता है । इसमें यह निर्धारित किया जाता है कि व्यवसाय की आय का कितना भाग स्वामियों में वितरित किया जाये तथा कितना भाग व्यवसाय के विस्तार क्रियाओं के लिए रोका जाये ।

3. शुद्ध आय की सहायता से ही प्रबंध द्वारा निर्धारित नीतियों एवं क्रियाओं के नियंत्रण करने की योग्यता का मूल्यांकन किया जा सकता है ।
4. शुद्ध आय के आधार पर ही अंशधारी यह अनुमान लगा सकते हैं कि उनके द्वारा प्रदत्त पूँजी का कुशलतम उपयोग किया जा रहा है या नहीं ।
5. **ऋण सुविधा :** एक व्यावसायिक संस्था की आय जितनी अधिक होगी उसके लिए ऋण लेना उतना ही आसान होगा । ऋण प्रदाता, ऋण स्वीकृत करने से पूर्व कम्पनी की आय का उचित विश्लेषण कर कम्पनी की आय प्राप्ति क्षमता का अनुमान लगाते हैं ।
6. **एकीकरण का आधार** : अंशों के क्रय-विक्रय के लिए, किसी सम्पूर्ण व्यवसाय का अधिग्रहण करने के लिए तथा पुर्नगठन की योजना तैयार करने के लिए संस्था का मूल्यांकन शुद्ध आय के आधार पर ही होता है ।

13.5 स्थिर आय (Stable Income)

किसी भी व्यावसायिक संस्था की सुदृढ़ता विस्तार व विकास में अर्जित आय का महत्त्वपूर्ण स्थान है, किन्तु आय के अर्जन के साथ इसमें स्थिरता एवं नियमितता आवश्यक है । स्थिर आय से तात्पर्य ऐसी आय से नहीं है जिसमें कभी कोई परिवर्तन नहीं होता है, वरन् ऐसी आय से है जिसमें बहुत अधिक उतार-चढ़ाव नहीं होते हैं तथा पर्याप्त मात्रा में आय की निश्चितता व निरन्तरता बनी रहती है । स्थिर आय के आधार पर ही भावी योजनायें बनायी जाती है । स्थिर आय ही सुदृढ़ विनियोग नीति, लाभांश नीति मूल्य नीति के पालन का आधार होती है । आय की स्थिरता निम्न तत्वों पर निर्भर करती है:-

1. **व्यवसाय की प्रकृति (Nature of Business)** आय की स्थिरता को व्यवसाय की प्रकृति सर्वाधिक प्रभावित करती है । उपभोग की वस्तुओं में व्यवहार करने वाली संस्थाओं की आय स्थिर रहती है, क्योंकि इनकी माँग और पूर्ति में अधिक उतार-चढ़ाव नहीं होता जिससे संस्था की आय स्थिर रहती है । दूसरी ओर, विलासिता की वस्तुओं का निर्माण करने वाली संस्थाओं की आय अधिक हो सकती है, किन्तु इन संस्थाओं के उत्पादनों की मांग में फैशन बदलने या बाजार में नई या अच्छी किस्म की वस्तुएँ आ जाने से आय स्थिर नहीं हो सकती है ।
2. **व्यवसाय का आकार (Size of Business)** छोटे व्यवसायों की अपेक्षा बड़े आकार के व्यवसायों में आय के साधनों की अधिकता होती है । यदि किसी एक साधन से प्राप्त होने वाली आय में कमी होती है, तो उसकी पूर्ति अन्य किसी साधन से कुल आय में संतुलन बनाये रखा जा सकता है । छोटे आकार की संस्थानों की आय कम होने एवं आय के साधनों में विविधता का अभाव होने के कारण उनकी आय में स्थिरता कायम रखना मुश्किल होता है ।
3. **कुशल प्रबन्ध (Efficient Management)** किसी संस्था की आय व आय की स्थिरता प्रबंधकों की कुशलता व दूरदर्शिता पर निर्भर करती है । योग्य एवं अनुभवी प्रबन्धक इस बात को भली प्रकार समझते हैं कि पर्याप्त आय ही कम्पनी की प्रगति का मुख्य आधार

है । अत: उनके सारे प्रयत्न आय की स्थिरता को बनाये रखने में लग जाते हैं । इसके विपरीत अकुशल प्रबंधक अत्यधिक साधनों से भी पर्याप्त आय अर्जित नहीं कर पाते हैं।

4. **विशेषाधिकार (Special rights)** ऐसी कम्पनियाँ जिन्हें माल के उत्पादन अथवा उसके क्षेत्रीय विक्रय के विषय में विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं । ट्रेडमार्क एवं पेटेण्टराइट आदि भी इसी श्रेणी में आते हैं, उनकी आय अन्य संस्थाओं की तुलना में स्थिर बनी रह सकती है, क्योंकि ऐसी कम्पनियाँ इनके आधार पर एक प्रकार से एकाधिकार का लाभ उठा सकती हैं ।
5. **व्यापार चक्र (Trade Cycle)** व्यापार चक्र भी व्यवसाय की आय की स्थिरता पर प्रभाव डालते हैं । 1930 की विश्वव्यापी आर्थिक मंदी के समय अच्छी-अच्छी कम्पनियों की आय में भी कमी हो गई थी, किन्तु जैसे ही द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ हुआ, उनकी आय तेजी से बढ़ने लगी ।
6. **सरकारी नीतियाँ (Government Policies)** सरकार की कर एवं प्रशुल्क, लाइसेंस, श्रम एवं मूल्य आदि के संबंध में नीतियां आय की स्थिरता पर प्रभाव डालती है । इस प्रकार अनेक तत्व आय की स्थिरता को प्रभावित करते हैं । प्रबंधक का प्रयास स्थिरता बनाये रखना होना चाहिए ताकि कर्मचारियों, ऋणपत्रधारियों, अंशधारियों के विश्वास को बनाये रखते हुए संस्था के मूल्य को बढ़ाया जा सके ।

13.6 अधिशेष (Surplus)

अधिशेष के विषय में विभिन्न विद्वानों के विचारों में भिन्नता है । इसकी सुनिश्चित एवं स्पष्ट परिभाषा आज तक नहीं दी जा सकी है ।

"सम्पत्तियों का दायित्वों पर आधिक्य अधिशेष होता है ।" - **गस्टनबर्ग**

"अधिशेष से अभिप्राय संस्था की सम्पत्तियों के पुस्तक मूल्यों तथा कुल दायित्वों एवं पूंजी के योग के अन्तर से है । " **हागलैल्ड**

प्रथम अर्थ में अधिशेष को व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया गया है, जबकि द्वितीय अर्थ में अधिशेष आय का वह भाग है जो कम्पनी के पास समस्त व्ययों एवं लाभांश आदि घटाने के बाद शेष रहता है ।

अधिशेष के प्रकार (Types of Surplus) अधिशेष को निम्नानुसार वर्गीकृत किया जा सकता है:-

अ. **अर्जित अधिशेष (Types of surplus)** व्यवसाय की सामान्य संचालन क्रियाओं से यह अधिशेष उत्पन्न होता है । वर्ष के अंत में अर्जित समस्त आय में से समस्त व्ययों को घटाने, विभिन्न कोषों एवं करों के लिए प्रबंध करने के पश्चात् जो शेष बचता है, वह

अर्जित अधिशेष कहलाता है । इसके अतिरिक्त पिछले वर्षों के संचित लाभ एवं ऐसे कोष जिनकी अब कोई आवश्यकता नहीं रह गई है, इस अधिशेष का भाग बन जाते हैं । अर्जित अधिशेष की समस्त राशि का उपयोग लाभांश वितरण हेतु नहीं किया जाकर इसका एक भाग व्यवसाय में रोक लेना चाहिए । अर्जित अधिशेष का उपयोग निम्न कार्यो में किया जा सकता है:

i. नव स्थापित एवं विद्यमान कम्पनियाँ विस्तार कार्यो के लिए अन्य स्त्रोतों से पूंजी उपलब्धता में कठिनाई होने पर इस स्त्रोत का सरलता पूर्वक उपयोग कर सकती है।
ii. ऐसे वर्षों में जिसमें लाभांश कम प्राप्त हुआ हो या लाभ अपर्याप्त हो तो इन कोषों का उपयोग कर कम्पनी स्थिर लाभांश दर पर लाभ वितरित कर सकती है ।
iii. व्यापार चक्र की अवस्था से निपटने में कोषों का उपयोग किया जा सकता है ।
iv. अन्य संचयों की पूर्ति हेतु भी कोषों का उपयोग किया जा सकता है ।
v. कम्पनी अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप पर्याप्त कोष उपलब्ध होने पर बोनस अंश आदि का निर्गमन किया जा सकता है ।

ब. **अनार्जित अधिशेष (Unearned Surplus)** इस प्रकार का अधिशेष सम्पत्तियों के पुनर्मूल्यांकन से उत्पन्न होता है। अत: इसे पुनर्मूल्यांकन अधिशेष (Revaluation Surplus) भी कहा जाता है । चूंकि सम्पत्तियों के पुनर्मूल्यांकन पर न तो सम्पत्तियों का विक्रय किया जाता है तथा न ही किसी कोष के रूप में कोई धनराशि प्राप्त होती है, अत: इसे अनार्जित अवशेष के नाम से जाना जाता है । जब संस्था की स्थायी सम्पत्तियों के मूल्य में वृद्धि होती है एवं लाभ की अच्छी संभावना के साथ कम्पनी का भविष्य उज्ज्वल प्रतीत होता है तब सम्पत्तियों का पुर्नमूल्यांकन कर पुस्तक मूल्य में वृद्धि की जाती है । यह वृद्धि अनार्जित अधिशेष कहलाती है ।

स. पूंजी अधिशेष (Capital Surplus) वह अधिशेष जो सम्पत्तियों में वृद्धि अथवा दायित्वों में कमी के कारण उत्पन्न होता है, पूँजी अधिशेष कहलाता है । इसका संबंध व्यवसाय की नियमित क्रियाओं से नहीं होता है । यदि सम्पत्तियों के मूल्य में वृद्धि हो जाये तो दायित्वों की राशि उसी अनुपात में नहीं बढ़े अथवा यदि दायित्वों के मूल्य में कमी हो जाये, किन्तु सम्पत्तियाँ उसी अनुपात में कम न हो तो इसके फलस्वरूप जो आधिक्य प्राप्त होगा वह पूंजी अधिशेष कहलायेगा ।

– स्थायी सम्पत्तियों की बिक्री से होने वाला लाभ, अंशों की प्रीमियम पर निर्गमित करने पर प्राप्त प्रीमियम, अंशों के हरण पर, अंश हरण खाते की राशि आदि साधनों से पूंजी अधिशेष उत्पन्न होता है । इसी प्रकार पूंजी को घटाने, अंशधारियों द्वारा कठिनाई के समय अंशदान देने, कम्पनी के पुर्नगठन एवं संविलयन के परिणामस्वरूप भी अधिशेष प्रकट होता है ।

– अधिशेषों का प्रयोग सामान्यत: अमूर्त सम्पत्तियों को अपलिखित करने, सम्पत्तियों के मूल्य को कम करने, परिचालन हानियों के अपलिखित करने के लिये किया जाना चाहिये । लाभांश वितरण हेतु इसका प्रयोग तब ही किया जा सकता है जबकि (i) अधिशेष नकद

प्राप्त हुआ हो, (ii) समरस सम्पत्तियों व दायित्वों का पुनर्मूल्यांकन करने के बाद भी बचता हो, (iii) तरलता को ज्यादा प्रभावित न करता हो, (iv) कम्पनी के अर्न्तनियम अनुमति देते हो ।

13.7 कोष/संचय (Reserves)

भविष्य अनिश्चित होता है, वर्तमान अच्छा होते हुए भी भविष्य में अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है । दूरदर्शी वित्तीय प्रबंधक संभावित वित्तीय हानियों एवं दायित्वों को पूर्ण करने के लिए या वित्तीय हितों को साधने के लिए वर्तमान आय में से कुछ भाग प्रति वर्ष संचय के रूप में रख लेते हैं । जिससे भावी वित्तीय अनिश्चितताओं का सामना किया जा सके । लेखांकन की दृष्टि से इस प्रकार रोकी गयी आय को कोष/संचय कहते हैं। संचय के अन्तर्गत वह राशि आती है जो भविष्य में होने वाली हानि की पूर्ति के लिए अप्रत्याशित दायित्वों का भुगतान करने के लिये एक संस्था की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए वर्तमान में संस्था के लाभों में बचायी जाती है । सामान्यत: विद्यार्थी संचय एवं आयोजन को पर्यायवाची समझते हैं तकनीकी दृष्टि से दोनों में भिन्नता है । आयोजन का आशय किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिये किये जाने वाले प्रावधान से है जैसे सम्पत्तियों पर ह्रास के लिए प्रावधान, डुबत ऋणों के लिए आयोजन, मरम्मत एवं नवीनीकरण के लिए आयोजन किया जाता है । कोष का उपयोग उसी उद्देश्य हेतु किया जाता है जबकि संचय का उपयोग किसी भी प्रकार की हानियाँ या दायित्व के निस्तारण के लिए ।

गस्टनबर्ग के अनुसार "संचय लेखा प्रणाली का एक ऐसा तरीका है जिसका प्रयोग किसी ज्ञात अथवा संभाव्य दायित्व को पूरा करने के लिए, सम्पत्ति के लेख मूल्यों को कम करने के लिए अथवा संचित लाभों का समायोजन करने के लिए किया जाता है ।" आधुनिक वित्तीय प्रबंधक सामान्यत: निम्न उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए संचयों का निर्माण करते हैं:-

i. भावी हानियाँ / दायित्वों का सामना करने के लिए,
ii. लाभों के समानीकरण के लिए,
iii. भावी वित्तीय आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए,
iv. कम्पनी की शुद्ध सम्पदा मूल्य में वृद्धि के लिए,
v. भावी विस्तार एवं आधुनिकीकरण योजनाओं के लिए, एवं
vi. दायित्वों के पुर्नभरण के लिए ।

13.8 लाभों का पुर्नविनियोजन अथवा प्रतिधारण नीति (Ploughing Back of Profits or Retention Policy)

जब एक कम्पनी के समस्त अर्जित लाभों का वितरण अंशधारियों में लाभांश के रूप में नहीं किया जाकर उसके कुछ भाग को कम्पनी में ही रोक लिया या पुर्नविनियोजन कर दिया जाता हे तो वह लाभों का पुर्नविनियोजन (Ploughing Back of Profits) कहलाता है । यह कम्पनियों के वित्त पोषण का महत्वपूर्ण आंतरिक साधन है, अत: इसे स्वयं वित्त पोषण (Self-Financing) अथवा आंतरिक वित्त पोषण (Internal Financing) भी कहा जाता

है । यह पुनर्विनियोग द्वारा कोष, विकास कोष, सिकिंग फण्ड, लाभांश संतुलन कोष, सुरक्षित कोष आदि में किया जाता है ।

चूँकि वित्त पोषण के इस साधन पर कोई प्रत्याय नहीं चुकानी होती है अत: विद्यमान कम्पनी की उन्नति विस्तार एवं आधुनिकीकरण की योजनाओं की वित्त पूर्ति एवं उन उद्देश्यों की पूर्ति, जिनके लिए इनका निर्माण किया गया है, का यह सर्वोत्तम साधन माना जाता है । कम्पनियों द्वारा शुद्ध लाभ का उपयोग - (i) करों के भुगतान (ii) कोषों का निर्माण जिसका उपयोग संस्था के विकास में किया जाता है एवं इससे भविष्य में आने वाली अस्थिरता को भी दूर किया जा सकता है । कोषों का निर्माण प्रतिवर्ष करने पर इनमें कुछ वर्षों बाद पर्याप्त राशि जमा हो जाती है एवं (iii) लाभांश वितरण में किया जाता है ।

13.9 लाभ के पुनर्विनियोग को प्रभावित करने वाले तत्व (factors affecting Plouging Back of Profits)

लाभों का पुर्नविनियोग अनेक तत्वों पर निर्भर होता है । कम्पनियाँ लाभ का कितना भाग व किस सीमा तक संचित करे । इस हेतु कोई सूत्र नहीं बनाया जा सकता है । इसी प्रकार समान लाभ होने पर भी लाभ के पुर्नविनियोजन की राशि विभिन्न संस्थाओं में अलग-अलग हो सकती है । किन्तु यह नीति उन्हीं संस्थाओं द्वारा सफलतापूर्वक अपनाई जा सकती है, जिनकी आय स्थिर होती है । सामान्यत: लाभों का पुनर्विनियोग निम्न तत्वों से प्रभावित होता है:-

1. **कम्पनी की अर्जने (Earnings of the company)** कम्पनी की अर्जनों एवं लाभों के पुर्नविनियोजन में सीधा संबंध होता है । समस्त खर्चो का भुगतान करने के बाद प्रबंध के समक्ष यह प्रश्न उपस्थित होता है कि शेष लाभ का कितना भाग लाभांश के रूप में वितरित किया जाये तथा कितना भाग व्यवसाय में रोक (Retain) लिया जाये । यदि व्यापार में पर्याप्त लाभ होता है तो प्रबंधक बडी मात्रा में आय का संचय कर उद्योग का निर्बाध एवं सफलतापूर्वक संचालन कर सकते हैं ।
2. **लाभांश नीति (Dividend Policy)** कम्पनी की लाभांश नीति लाभों के पुनर्विनियोग को प्रभावित करती है । यदि कम्पनी उदार लाभांश नीति अपनाती है तो लाभों का पुर्नविनियोजन अधिक नहीं हो सकेगा, इसके विपरीत कठोर लाभांश नीति अपनाने पर अधिक मात्रा में लाभों का पुर्नविनियोजन संभव हो सकेगा ।

   वैसे समता अंशधारियों को लाभांश देना आवश्यक नहीं है, यदि कम्पनी चाहे तो अपने समस्त लाभों का पुनर्विनियोग कर सकती है, किन्तु कुछ विनियोक्ता लाभांश प्राप्ति की आशा में ही विनियोजन करते हैं, ऐसे विनियोजक अपने अंशों को बेचना प्रारंभ कर देते हैं, जिससे कम्पनी संकट में आ सकती है । अत: लाभांश नीति व प्रतिधारण नीति में उचित संतुलन होना आवश्यक है ।
3. **भावी वित्तीय आवश्यकतायें (Future Financial Needs)** संस्था की भावी आवश्यकताऐ भी लाभों का पुर्नविनियोजन को प्रभावित करती है । यदि संस्था के पास

निकट भविष्य में विकास एवं विस्तार की लाभप्रद परियोजनाएँ हैं तो लाभों का पुर्नविनियोजन अधिक किया जायेगा । इसके विपरीत यदि संस्था को अतिरिक्त पूंजी की आवश्यकता नहीं है या बाजार से सस्ती दरों पर ऋण उपलब्ध है तो वह लाभांश बांटकर अंशधारियों को संतुष्ट करेगी ।

4. **सरकार की कर नीति (Taxation Policy)** सरकार की कर नीति की कम्पनी के लाभों के वितरण व पुर्नविनियोजन को प्रभावित करती है । कर की दरें ऊँची होने पर वितरण योग्य लाभ कम रह जाते हैं । ऐसे में लाभांश वितरण करने के बाद पुन: विनियोजन हेतु बहुत कम राशि बचती है ।
5. **प्रबंधकीय दृष्टिकोण (Managerial Attitude)** यदि प्रबंधक आंतरिक वित्त व्यवस्था में संस्था का विकास करना चाहते हों तो वे लाभों के पुर्नविनियोजन को अधिक महत्व देंगे । यदि प्रबंधक कम्पनी की वर्तमान आय से ही संतुष्ट हैं तो वे भावी विकास का प्रयत्न नहीं करेंगे तथा ऐसी स्थिति में अधिकतर लाभों का वितरण लाभांश के रूप में किया जायेगा।
6. **अन्य तत्त्व : (Other Factors)** उपरोक्त वर्णित तत्त्वों के अतिरिक्त भी अनेक तत्व लाभों के पुर्नविनियोजन पर प्रभाव डालते हैं । इनमें देश-विदेश की सामान्य आर्थिक दशाएँ, व्यापार चक्र की स्थिति, उद्योग में प्रचलित परम्परायें, स्वामित्व का ढांचा इत्यादि प्रमुख हैं ।

13.10 लाभों के पुर्नविनियोजन से लाभ (Advantages of Ploughing Back of Profits)

लाभों के पुनर्विनियोजन से कम्पनी, अंशधारी, समाज सभी पक्ष लाभांवित होते हैं, जिनका विवेचन निम्नानुसार है -

अ. कम्पनी के लाभ (Advantages for Company)

1. **विकास का सर्वोत्तम साधन (Best source for Expansaion)** आंतरिक साधन कम्पनी के विकास हेतु उत्तम आधार प्रस्तुत करते हैं । वित्तपोषण को इस साधन पर प्रत्यक्षतः कोई प्रत्याय नहीं देनी होती है । अत: मितव्ययी साधन माना जाता है साथ ही कम्पनी को विस्तार, विकास के लिए आवश्यक कोषों की प्राप्ति हेतु वित्तीय संस्थाओं, जन-निक्षेपों व ऋणपत्रों पर निर्भर नहीं रहना पड़ता । डॉ एस. के. सूर के अनुसार "कम्पनी की बचते एक कम्पनी के कार्य के और अधिक विकास के लिए अंश पूँजी बढ़ाये बिना और शायद नियंत्रण संतुलन में परिवर्तन किये बिना अथवा ऋण पूँजी की आवश्यकता दूर करके या कम करके, साधन प्रदान करती है । ये अधिक पूंजी मिलान (High earning of Capital) अर्थात लाभों में पूर्वाधिकारियों के उच्च अनुपात की दशा को दूर करती है ।"
2. **लाभांश नीति में स्थायित्व (Stability in Dividend Policy)** लाभों के पुर्नविनियोजन के आधार पर कम्पनी स्थिर एवं संतुलित लाभांश नीति अपना सकती है । ऐसे वर्षों में जब लाभ अधिक हो धन बचाकर कोषों में जमा रखा जा सकता है तथा उन वर्षों में समान

लाभांश दिया जा सकता है जबकि लाभ कम हो या न हो । इससे अंशधारियों में संतोष बना रहता है तथा पूंजी बाजार में कम्पनी के अंशों के मूल्य में उतार-चढ़ाव कम होने से कम्पनी की साख बढ़ती है ।

3. **कार्यकुशलता में वृद्धि (Increase in Efficiency)** लाभों के पुर्नविनियोजन से संस्था के पास नवीनीकरण व मरम्मत तथा प्रतिस्थापन के लिए पर्याप्त कोष एकत्रित हो जाते है जिनके आधार पर कम्पनी अपनी मशीनों एवं उपकरणों को उत्तम स्थिति में रखकर कार्यकुशलता के उच्चस्तर को बनाये रख सकती है । इससे उत्पादन की मात्रा एवं लाभ दोनों में वृद्धि होती है ।
4. **ऋणों की अदायगी में सुविधा (Easy Repayment of Borrowings)** लाभों के पुर्नविनियोजन के माध्यम से एकत्रित कोषों (Redemption Fund) से कम्पनी दीर्घकालीन ऋणों ऋणपत्रों या बन्धपत्रों का आसानी से भुगतान कर सकती है । इससे ब्याज आदि का स्थायी भार कम होने से लाभों में वृद्धि होती है ।
5. **व्यावसायिक उतार-चढ़ाव से सुरक्षा (Safety from Trade Cycles)** व्यवसाय में समय सदा एक सा नहीं रहता । कभी तेजी का चक्र आरम्भ होता है तो कभी मंदी का काल आ जाता है । मंदी के समय में वे ही कम्पनियाँ आर्थिक संकट का सामना कर सकती हैं जिनके पास पर्याप्त आंतरिक साधन उपलब्ध होते हैं ।
6. **प्रबन्धकों के मनोबल में वृद्धि (Increase Morals of Managers)** पर्याप्त आंतरिक साधन प्रबन्धकों को भावी आर्थिक संकटों की चिंता से मुक्त करते हैं इससे उनके मनोबल में वृद्धि होती है ओर वे अपना समरस ध्यान कम्पनी की प्रगति के लिए केन्द्रित कर सकते हैं ।

ब. अंशधारियों को लाभ (advantages for Shareholders)

1. **अंशों के बाजार मूल्य में वृद्धि (Increased Market Value of Shares)** लाभों के पुनर्विनियोजन से कम्पनी द्वारा स्थिर लाभांश नीति का अनुसरण किया जा सकता है । स्थिर एवं नियमित लाभांश के भुगतान से कम्पनी की ख्याति बढ़ती है, जिससे बाजार में उसके अंशों के मूल्य में वृद्धि होती है । बढ़े हुए मूल्य पर अंश बेचकर अंशधारी पूँजी लाभ अर्जित कर सकते हैं ।
2. **आय में वृद्धि (Increased Income)** संस्था द्वारा लाभों का पुर्नविनियोजन किये जाने पर लाभांश नीति में स्थायित्व आने से अंशधारियों को निश्चित आय प्राप्त होने लगती है, साथ की संस्था की सम्पत्ति एवं कार्य-कुशलता में वृद्धि होने के कारण भी लाभों में वृद्धि होती है, जिससे अंशधारियों को अधिक आय कमाने का अवसर मिल जाता है ।
3. **ऋण क्षमता में वृद्धि (Increased in Borrowing Power)** अंशों का बाजार मूल्य बढ़ जाने पर एवं कम्पनी की साख अच्छी होने के कारण अंशधारी अंशों की जमानत पर आसानी से अधिक ऋण प्राप्त कर सकते हैं ।
4. **विनियोग की सुरक्षा (Safe Investment)** पर्याप्त आंतरिक कोष उपलब्ध होने से संस्था की व्यापार चक्रों से सुरक्षा हो जाती है साथ ही संस्था की लाभांश नीति में स्थायित्व होने से बाजार में उनके अंशों के मूल्य में वृद्धि हो जाती है । अत: अंशधारी व्यावसायिक

उतार-चढ़ाव से होने वाले प्रभावों की चिन्ता से मुक्त हो जाते हैं । विनियोग का आधार सुदृढ़ होने से कम्पनी में उनकी समता का अवशिष्ट मूल्य (Residues value) भी बढ़ जाता है ।

5. **नियंत्रण की कमी नहीं (No. Dilution of Control)** लाभों के पुर्नविनियोजन के कारण कम्पनी के पर्याप्त कोष उपलब्ध रहते हैं जिनका उपयोग पूंजी सम्बन्धी भावी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जाता है । नये अंशों का निर्गमन नहीं करने से विद्यमान अंशधारियों के नियंत्रण में कमी (Dilution) नहीं होती है ।

स. समाज को लाभ (Advantages for Society) -

1. **पूँजी निर्माण में वृद्धि (Increased Capital Formation)** कम्पनियों द्वारा की गयी आंतरिक बचत राष्ट्र के पूंजी निर्माण का प्रमुख स्त्रोत होती है । व्यक्तिगत बचतों की अपेक्षा संस्थागत बचते किसी देश के पूंजी निर्माण में अधिक योगदान देती है । इसके आधार पर विनियोग की दर बढ़ने से देश के आर्थिक विकास एवं औद्योगीकरण की गति तेज हो जाती है ।
2. **वित्तीय स्थायित्व (Financial Stability)** लाभों के पुर्नविनियोजन के कारण संस्थायें व्यापार चक्रों के प्रभाव के बावजूद भी स्थिरता पूर्वक बाजार में टिकी रह सकती है । स्थापित तथा नवीन उद्योगों के सुचारू रूप से तथा निरन्तर चलते रहने से समाज की आय में वृद्धि होती है जिससे समाज में वित्तीय स्थायित्व आता है । संचित कोषों के अभाव में अनेक उद्योग असफल हो जाते हैं जिससे विनियोक्ता वर्ग तथा समाज पर बुरा प्रभाव पड़ता है ।
3. **उचित मूल्य पर वस्तुओं की उपलब्धि (Availability of Commodities at Reasonable Prices)** संचित कोषों से औद्योगीकरण की गति में वृद्धि होने एवं अधिक मात्रा में उत्पादन के कारण समाज को कम मूल्य पर अधिक अच्छी व नवीन वस्तुयें प्राप्त होती है, साथ ही देश में रोजगार के अवसरों में वृद्धि होने के कारण जनसाधारण के रहन-सहन का स्तर भी ऊँचा उठता है एवं समाज की आर्थिक सम्पन्नता बढती है ।

लाभों के पुर्नविनियोजन की सीमायें (Limitations of Ploughing Back of Profits)

उक्त वर्णित लाभों से यह प्रतीत होता है कि लाभों का पुर्नविनियोजन व्यवसाय में सदैव वरदान सिद्ध होता है, अत: कम्पनियों को पुर्नविनियोजन की पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिये, लेकिन वस्तुस्थिति यह नहीं है । प्रतिधारण नीति एक उचित सीमा तक ही उपयोगी होती है और जब यह इस सीमा को पार कर जाती है तो स्वयं कम्पनी व समाज के लिए अनेक कठिनाईयाँ उत्पन्न करती हैं, किन्तु लाभों के पुर्नविनियोजन की सीमा निर्धारित करने का कोई सर्वमान्य सूत्र नहीं दिया जा सकता है । यह सीमा उद्योग एवं अर्थव्यवस्था की विशेषताओं पर निर्भर करती है । लाभों के अत्यधिक पुनर्विनियोजन से निम्न दोष उत्पन्न हो जाते हैं :-

1. **एकाधिकार का निर्माण (Creation of monopoly)** लाभों के अत्यधिक पुर्नविनियोजन से विद्यमान इकाइयों को धीरे-धीरे बहुत अधिक शक्तिशाली बना देता है । इसमें पूँजी संचय में वृद्धि होती है जो एकाधिकार की प्रवृत्ति को बढ़ावा देती है । थोड़े से व्यक्तियों

को समाज का आर्थिक शोषण करने का अवसर मिल जाता है एवं नयी व छोटी संस्थाओं के आगे बढ़ने की संभावना कम हो जाती है ।

2. **अतिपूँजीकरण की आशंका (Fear of Over Capitalisation)** तेजी के समय संचित लाभों के पूंजीकरण द्वारा पूंजी की बढ़ी हुई मांग कीपूर्ति कर ली जाती है, किन्तु जैसे ही मंदीकाल आता है तथा व्यवसाय के उत्पादों की बाजार में मांग कम हो जाती है तब संस्था अपने को अतिपूंजीकरण की स्थिति में महसूस करने लगती है । ऐसी स्थिति में कम्पनी की अर्जने विनियोक्ताओं को उचित प्रत्याय देने के लिए पर्याप्त नहीं होती है ।
3. **बचत का दुरुपयोग (Misuse of Savings)** वास्तव में लाभों का पुर्नविनियोजन ही पर्याप्त नहीं है बल्कि इस राशि का सदुपयोग होना आवश्यक है । अनेक स्वार्थी प्रबन्धक संचित बचतों को अपने गुट की दूसरी संस्थाओं में दुरुपयोग करते हैं, जिससे विनियोक्ताओं के हितों को ठेस पहुंचती है । इसी प्रवृत्ति पर रोक लगाने के लिए भारतीय कम्पनी अधिनियम में संशोधन करके अन्त: कम्पनी विनियोगों की सीमायें निर्धारित कर दी गई हैं।
4. **अंशधारियों में असंतोष (Dissatisfaction among Shareholders)** प्रतिधारण नीति के कारण वर्तमान लाभांश की दर कम रखी जाती है । फलत: अंशधारियों में असंतोष रहता है ।
5. **सट्टे की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन (Encouragement to Speculative Tendencies)** कठोर लाभांश नीति का पालन करने अर्थात् लाभों का अत्यधिक पुनर्विनियोजन करने से कम्पनी के सामान्य अंशों के बाजार मूल्य में कमी हो जाती है । ऐसा इसलिए होता है क्योंकि अनेक विनियोक्ता लाभांश की चाहत में विनियोग करते हैं । लाभांश कम या नहीं मिलने से वे अंश बेचना प्रारम्भ कर देते है । अत्यधिक विक्रय व साख गिरने से अंशों का बाजार मूल्य गिर जाता है इस गिरे हुए मूल्य पर प्रबंधक अंशों का क्रय कर लेते हैं । बाद में ऊँची लाभांश नीति अपनाने से अंशों का बाजार मूल्य बढ़ जाता है, जिस पर प्रबंधक अपने पूर्व में खरीदे हुए अंशों को बेचकर अधिक लाभ कमा सकते है । ऐसा करने से सट्टे की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है ।
6. **कर दायित्व में बचत (Savings in Tax Liability)** लाभांश कर का भुगतान कम्पनी को करना होता है । लाभों का पुनर्विनियोजन करने से लाभांश का भुगतान नीची दरों पर किया जाता हे । फलत: कर कम चुकाये जाते हैं । बाद में संचित कोषों में से बोनस अंश वितरित कर दिये जाते हैं । इस प्रकार संस्थायें कर दायित्व से बच जाती हैं ।
7. **पूंजी के स्वतंत्र प्रवाह पर रोक (Restricted Capital Circulation)** लाभों का संचय करने से पूंजी का वह भाग बाजार में नहीं आ पाता है जिससे इस पूंजी का वैकल्पिक उपयोग नहीं हो पाता है एवं विनियोक्ताओं की विनियोग स्वतंत्रता भी बाधित होती है, इसलिए प्रो. पीगू ने ठीक ही लिखा है - "लाभों का अत्यधिक पुर्नविनियोजन सामाजिक बर्बादी है, क्योंकि मुद्रा उनको उपलब्ध नहीं हो पाती जो समाज के सर्वाधिक हित में उसका उपयोग कर सकते हैं, बल्कि उनके द्वारा रख ली जाती है जिन्होंने इसे कमाया है ।"

13.11 तकनीकी शब्दावली

कुल आगम (Total Revenue) : व्यवसाय में कुल आय को कुल आगम कहते हैं ।

कुल व्यय (Total Expenses) : विभिन्न क्रियाओं पर होने वाले प्रत्यक्ष व्यय कुल व्यय कहलाते हैं ।

पूँजी की अवसर लागत (Opportunity Cost of Capital) : पूँजी के अन्य विकल्प में उपयोग से होने वाली आय ।

बसकल आय (Gross Income) : मुख्य व्यवसाय से आय, सहायक क्रियाओं से आय, विनियोगों से आय एवं अन्य आयों का योग ।

शुद्ध आय (Net Income) : सकल आय में से व्यावसायिक व्यय घटाने के बाद बची आय । वितरण योग्य आय। वितरण योग्य आय (Distributable Income) : वह आय जो ह्रास, प्रावधान एवं संचयों में हस्तान्तरण के बाद अंशधारियों के वितरण हेतु उपलब्ध होती है, वितरण योग्य आय कहलाती है ।

अधिशेष (Surplus) : सम्पत्तियों का दायित्वों पर आधिक्य अधिशेष कहलाता है ।

संचय (Reserves) : भावी हानियाँ, अनिश्चितताओं एवं आवश्यकताओं के पूर्ण करने हेतु निर्माण आयोजन, विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति हेतु किया जाने वाला आयोजन ।

प्रतिधारण (Retention) : वर्तमान आय का वह भाग जो प्रबंधकों द्वारा वितरित न किया जाकर रोक लिया जाता है ।

13.12 स्वपरख प्रश्न

1. आय के प्रबंध से आय क्या समझते हैं?
2. आय प्रबंध के क्षेत्र का वर्णन कीजिए ।
3. सकल आय एवं शुद्ध आय में भेद कीजिए ।
4. अधिशेष क्या है?
5. आय की स्थिरता से क्या आशय है? इसको प्रभावित करने वाले तत्व बताइये ।
6. अधिशेष क्या होता है? अर्जित अधिशेष का उपयोग किन-किन कार्यो में किया जा सकता है?
7. संचय क्या है? इसके निर्माण के क्या उद्देश्य हैं?
8. आय प्रबंधन का अर्थ बताते हुए इसके महत्व का वर्णन कीजिये ।
9. लाभों के पुर्नविनियोजन का क्या आशय है? इसको प्रभावित करने वाले तत्वों का वर्णन कीजिये ।
10. लाभों के पुर्नविनियोजन सामाजिक बर्बादी हैं? क्या आप उक्त कथन से सहमत है।

13.13 सन्दर्भ ग्रंथ

1. Srivastava R.M. : Financial Decision Making : Problems, Cases and Solutions
2. Pandey I.M. : Financial Management
3. Maheshwari S.N. : Cost and Management Accounting

इकाई-14: लाभांश नीति एवं सिद्धान्त (Dividend Policy and Theories)

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 लाभांश का अर्थ एवं परिभाषायें
14.3 लाभांश के प्रकार
14.4 लाभांश नीति का अर्थ
14.5 लाभांश एवं ब्याज में अन्तर
14.6 लाभांश नीति को प्रभावित करने वाले तत्व
14.7 सुदृढ़ लाभांश नीति के आवश्यक तत्व
14.8 लाभांश नीति के प्रकार
14.9 लाभांश नीति एवं फर्म का मूल्य
14.10 लाभांश के सिद्धान्त
14.11 बोनस अंश के रूप में लाभांश
14.12 तकनीकी शब्दावली
14.13 स्वपरख प्रश्न
14.14 संदर्भ ग्रन्थ

14.0 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के पश्चात् आप समझ जायेंगे -

- लाभांश क्या होता है?
- लाभांश नीति कितने प्रकार की होती है?
- लाभांश नीति को प्रभावित करने वाले तत्व कौन-कौन से होते हैं?
- लाभांश नीति एवं फर्म के मूल्य को कैसे प्रभावित करती है?
- लाभांश प्रमेय का उपयोग कर लाभांश निर्णयन किस प्रकार किये जाते हैं?

14.1 प्रस्तावना

जैसा कि हम जानते हैं कि व्यवसाय का प्रमुख उद्देश्य लाभ अर्जित करना होता है । एकाकी व्यापार में लाभ पर पूर्ण अधिकार एकाकी स्वामी का होता है तथा साझेदारी व्यापार में लाभ आपस में तय किये गये अनुपात में विभाजित कर लिया जाता है । कम्पनियों में पूंजी अंशधारियों द्वारा विनियोजित होती है, अत: अंशधारियों की इच्छा रहती है कि विनियोजित पूंजी पेर कम्पनी को लाभ होने पर पर्याप्त मात्रा में लाभांश मिले । इस प्रकार कम्पनी को प्राप्त लाभांश में से कितना लाभांश अंशधारियों को उचित नीति के आधार पर वितरित किया

जाये जिससे अंशधारियों को भी पर्याप्त लाभांश मिल सके, भावी आवश्यकताओं के मध्य नजर कम्पनी के पास भी पुर्नविनियोजन के लिए पर्याप्त कोष उपलब्ध हो सके एवं बाजार में फर्म का मूल्य भी स्थिर हो, इस हेतु संतुलित लाभांश नीतियां अपनाया जाना आवश्यक है । इस अध्याय में आप इन्हीं तथ्यों का अध्ययन करेंगे ।

अंशधारियों द्वारा पूंजी लगाने का उद्देश्य निरन्तर आय अर्जित करना होता है जो उन्हें लाभांश के रूप में प्राप्त होती है । कम्पनी की सकल आय में से समस्त व्ययों को घटाने के पश्चात् शेष राशि का उपयोग (i) ह्रास व्यवस्था (ii) आयकर भुगतान (iii) कोषों का निर्माण एवं अधिशेष एवं (iv) लाभांश वितरण हेतु किया जाता है । कम्पनी प्रबंधकों को लाभांश वितरण एवं प्रतिधारण के बीच सामंजस्य बैठाना होता है । एक ओर अंशधारी अपने विनियोजन पर अधिकाधिक उत्पाद चाहते है । यदि अंशधारियों को उचित प्रतिफल का भुगतान नहीं किया गया तो असंतोष उत्पन्न होने से अंशों के बाजार मूल्य एवं साख दोनों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है । दूसरी ओर यदि अधिकतम लाभांश चुका दिया जाये तो भावी विकास, विस्तार हेतु पूंजी के लिए बाह्य स्त्रोतों पर निर्भर रहना पड़ेगा जो उचित नीति नहीं कही जा सकती है, अत: लाभों का पुर्नविनियोजन भी आवश्यक है । हालांकि बचे हुए लाभों पर भी अंशधारियों का ही अधिकार होता है, किन्तु वर्तमान प्राप्ति भावी संभावना से ज्यादा सुखद होती है । अत: प्रबंध की मुख्य समस्या लाभांश नीति का इस प्रकार निर्माण से है कि अंशधारियों को संतुष्ट करते हुए कम्पनी का संचय के साधनों से विकास किया जा सके ।

14.2 लाभांश का अर्थ एवं परिभाषायें (Meaning & Definition of Dividend)

कम्पनी की अर्जनों का वह भाग जो पूंजी प्रदाताओं को प्रत्याय के रूप में वितरित किया जाता है, लाभांश कहलाता है । किन्तु लाभांश वितरण से पूर्व विभाजन योग्य लाभ की गणना आवश्यक है । ऐसे लाभ जो अंशधारियों को लाभांश के लिए उपलब्ध है एवं जिनकी गणना कम्पनी अधिनियम 1956 की धारा 394 एवं धारा 205 के प्रावधानों को ध्यान में रखकर की गई है, विभाजन योग्य लाभ कहलाते हैं । इस प्रावधानों में यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि लाभांश की घोषणा तब ही की जा सकती हे, जबकि (i) कम्पनी के पास पर्याप्त लाभ हो (ii) लाभ वितरण हेतु संचालक मण्डल सिफारिश करे (iii) वार्षिक साधारण सभा में अंशधारियों द्वारा स्वीकृति प्रदान की जाये ।

सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार "लाभांश कम्पनी के लाभों का वह भाग है जो अंशधारियों में बांटने के लिए नियत कर दिया गया है ।"

इन्स्टीटयूट ऑफ चार्टर्ड एकाउण्टेन्ट्स ऑफ इण्डिया के अनुसार "उपलब्ध लाभों एवं रिजर्व में से अंशधारियों को किया गया वितरण ही लाभांश है ।"

एस. एम. शाह के अनुसार "लाभांश एक व्यवसायिक कम्पनी के लाभ हैं, जो उसके सदस्यों में अंशों के अनुपात में बांटे जाते हैं"

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कम्पनी को प्राप्त समस्त लाभों में से समायोजन के पश्चात् जो लाभ अंशधारियों में वितरण हेतु उपलब्ध कराया जाता है, उसे लाभांश कहते हैं। कम्पनी किसी वर्ष के लिए लाभांश का वितरण (i) चालू वर्ष के आयगत लाभ तथा (ii) चालू वर्ष के पूर्व वर्षों के आयगत लाभ (iii) उपरोक्त आयगत लाभ का योग तथा (iv) लाभांश वितरण हेतु केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार द्वारा गारंटी के अन्तर्गत प्राप्त राशि में से किया जा सकता है, उपर्युक्त तीन साधनों में से चालू मूल्यह्रास, मूल्य ह्रास की बकाया राशि तथा पिछली राशियों को घटाने के पश्चात् बची राशि को लाभांश के रूप में बांटा जा सकता है ।

14.3 लाभांश के प्रकार (Kinds of Dividend)

कुल उपलब्ध लाभ	घटाइये	
(1) चालू वर्ष के आयगत लाभ (2) पूर्व वर्षों के आयगत लाभ (3) लाभांश वितरण हेतु केन्द्र / राज्य सरकार द्वारा प्राप्त गारन्टी राशि	(1) चालू मूल्य ह्रास (2) मूल्य ह्रास की पूर्व की बकाया राशि (3) कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत अन्य समायोजन	**शुद्ध उपलब्ध लाभ** (लाभांश)

प्रतिभूति के प्रकार, भुगतान के समय एवं माध्यम को ध्यान में रखते हुए लाभांश के निम्न विभिन्न रूप हो सकते हैं :-

1. **अधिमान अंश लाभांश (Preference Share Dividend)** - वह लाभांश जो कम्पनी द्वारा निर्गमित अधिमान अंशों पर चुकाया जाता है, अधिमान अंश लाभांश कहलाता है । इन अंशों पर लाभांश की दर अंश निर्गमन के समय ही निश्चित कर दी जाती है । जिसका भुगतान लाभ होने पर समता अंशधारियों को भुगतान से पूर्व किया जाता है । अधिमान अंशों के प्रकार के अनुसार कुछ अधिमान अंशों पर वर्तमान में लाभ नहीं होने पर भविष्य में चुकाया जाता है (संचयी अधिमान अंश), कुछ अंशधारियों को पूर्व निश्चित दर के अतिरिक्त समता अंशों को चुकाने के पश्चात् बचे लाभ में भी हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार (अवशिष्टभागी अधिमान अंश) होता है ।
2. **समता अंश लाभांश (Equity Share Dividend)** - कम्पनी के सामान्य अंश जिन्हें समता अंश या वास्तविक मालिक के नाम से जाना जाता है, पर चुकाये जाने वाले लाभांश को समता अंश लाभांश कहा जाता है । इन अंशों पर लाभांश दिया जाये या नहीं, लाभांश की दर कितनी होगी, लाभांश कब व कैसे चुकाया जाये आदि का निर्धारण करने में संचालक मण्डल पूर्णत: स्वतंत्र होता है, संचालक मण्डल द्वारा प्रस्तावित दर का अनुमोदन वार्षिक साधारण सभा द्वारा आवश्यक है । किन्तु साधारण सभा को दर में वृद्धि करवाने का अधिकार नहीं होता है ।
3. **अंतरिम लाभांश (Interim Dividend)** - वह लाभांश जो दो वार्षिक साधारण सभाओं के मध्य वर्ष के अनुमानित लाभ के आधार पर संचालकों द्वारा घोषित किया जाता है, अंतरिम लाभांश कहलाता है । यह अंतिम खाते बनाने से पूर्व (साधारणत: लेखा वर्ष के मध्य में) अधिक लाभ होने की संभावना को देखते हुए दिया जाता है । संचालक मण्डल उक्त घोषणा पार्षद

अंतर्नियमों द्वारा अधिकृत होने पर ही कर सकता है वर्ष के अंत में लाभ कम रह जाने पर संचालक मण्डल को पूँजी में कमी का दोषी माना जाता है अत: अंतरिम लाभांश देने से पूर्व लाभों का सही निर्धारण अत्यावश्यक है।

4. **अंतिम या नियमित लाभांश (Final or Regular Dividend)** - संचालक मण्डल की सभा में घोषित लाभांश जिसे साधारण सभा की स्वीकृति मिलने पर अंशधारियों में वितरित कर दिया जाता है, अंतिम या नियमित लाभांश कहलाता है । ऐसी घोषणा वर्ष के अंत में की जाती है, लाभांश नीति का निर्धारण मुख्यत: इस लाभांश पर ही निर्भर करता है ।
5. **नकद लाभांश (Cash Dividend) -** जो लाभांश नकद रूप में वितरित किया जाता है, नकद लाभांश कहलाता है, लाभांश का यह सबसे लोकप्रिय एवं प्रचलित स्वरूप है । साधारणतया अंशधारी लाभांश का भुगतान नकद में ही प्राप्त करने के इच्छुक होते हैं । भारतीय कम्पनी अधिनियम की धारा 205 के अनुसार भारतीय कम्पनियाँ नकद के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से (बोनस अंश को छोड़कर) लाभांश का भुगतान नहीं कर सकती है ।
6. **बंध पत्रों के रूप में लाभांश (Bond Dividend)** - लाभांश वितरण के इस रूप में लाभांश नकद में नहीं दिया जाकर बंध पत्रों या ऋण पत्रों के रूप में दिया जाता है । इन बंध पत्रों में लाभांश की राशि को कम्पनी भविष्य में एक निश्चित तिथि पर ब्याज सहित भुगतान करने का वायदा करती है । भुगतान तिथि पर धारक उक्त राशि का भुगतान ब्याज सहित प्राप्त कर लेते हैं ।
7. **सम्पत्ति लाभांश (Property Dividend)** - नकद के अतिरिक्त लाभांश का वितरण सम्पत्ति के रूप में भी हो सकता है । अन्य कम्पनियों या सरकारी प्रतिभूतियों को लाभांश के विकल्प में अंशधारियों को वितरित कर दिया जाता है । भारतीय कम्पनियाँ बंध पत्र एवं सम्पत्ति लाभांश का वितरण नहीं कर सकती है ।
8. **प्रतिज्ञा पत्र लाभांश (Promissory Note Dividend) -** कम्पनी द्वारा लाभांश का वितरण नकद रूप में न किया जाकर प्रतिज्ञा पत्र के रूप में भी किया जा सकता है, इसे स्क्रिप लाभांश (Scrip Dividend) भी कहा जाता है । इन पर निश्चित प्रतिशत ब्याज भी दिया जाता है।
9. **बोनस अंश या स्कन्ध लाभांश (Bonus Shares or Stock Dividend)** - संचय एवं आधिक्य में अत्यधिक शेष होने या कम्पनी की तरलता स्थिति ठीक नहीं होने पर संचित कोषों के पूँजीकरण द्वारा वितरित अंश बोनस अंश कहलाते हैं । संचित कोषों में से पूँजी के अनुपात में अंश जारी किये जाते हैं, अत: इसे लाभों का पूँजीकरण भी कहा जाता है । यह पूँजीकरण (i) पूर्ण प्रदत्त नये अंशों के निशुल्क निर्गमन द्वारा या (ii) आंशिक दत्त अंशों को पूर्ण प्रदत्त बनाकर किया जा सकता है ।
10. **समापन लाभांश (Liquidation Dividend)** - कम्पनियों के स्थायी रूप से बंद होने अर्थात् कम्पनी का समापन होने पर कम्पनी की सम्पत्तियों एवं अधिशेषों का वितरण कार्य ही समापन लाभांश को बताता है ।

14.4 लाभांश नीति का अर्थ (Meaning of Dividend Policy)

लाभांश नीति बहुत ही व्यापक एवं लोच पूर्ण शब्द है । लाभांश से तात्पर्य कम्पनी द्वारा अर्जित आय में से अंशधारियों को मिलने वाले हिस्से से है । व्यवहार में 'तरीके' या 'कार्य करने के सिद्धान्तों' को नीति कहा जाता है । अत: संचालक मण्डल द्वारा लाभांश हेतु अपनायी जाने वाली नीति को लाभांश नीति कहा जाता है । इस प्रकार लाभांश की दर के निर्धारण एवं वितरण हेतु जिन सिद्धान्तों, नियमों व योजनाओं का पालन किया जाता है, लाभांश नीति कहलाती है ।

वित्तीय प्रबन्धक को प्रतिधारित अर्जनों एवं लाभांश के भुगतान के मध्य संतुलन स्थापित करना होता है, ऊँची दरों में लाभांश वितरित करने पर लाभों का पुनर्विनियोजन कम होने से विकास, विस्तार हेतु वित्त के आंतरिक साधनों में कमी आती है वही नीची दर से वितरण अंशधारियों में रोष उत्पन्न करता है । अत: वित्त प्रबन्धक का ऐसी नीति के पालन की ओर अग्रसर होता है जहाँ दोनों के मध्य संतुलन स्थापित करते हुए विकास के नये आयाम स्थापित किये जा सके, अत: लाभांश नीति का आदर्श एवं समुचित होना आवश्यक है ।

साधारण अर्थ में लाभांश नीति का आशय उस नीति से है, जो संचालक मण्डल लाभांश वितरण हेतु अपनाते हैं । व्यापक अर्थ में लाभांश नीति का आशय उस नीति से है जिसमें लाभांश वितरण के सिद्धान्तों के नियमों के आधार पर कार्य प्रणाली निश्चित कर लाभांश वितरित करने हेतु कार्य योजना बनायी जानी है । इस प्रकार लाभांश नीति संचालकों द्वारा अपनायी वह योजना है जो लाभांश वितरण हेतु निर्धारित की जाती है । यह नीति केवल समता अंशों को लाभांश वितरण हेतु ही निर्धारित होती है, पूर्वाधिकार अंशों के लिए नहीं ।

लाभांश नीति को परिभाषित करते हुए वैस्टन एवं ब्रिंघम ने लिखा है, "लाभांश नीति अर्जनों का अंशधारियों को भुगतान एवं प्रतिधारित अर्जनों में विभाजन निश्चित करती है ।" अत: लाभांश वितरण के सम्बन्ध में संचालकों द्वारा अपनायी गई कार्यकारी योजना को लाभांश नीति कहा जाता है । लाभांश नीति समता अंश पूँजी से सम्बन्धित नीति है । पूर्वाधिकार अंश पूँजी पर लाभांश की घोषणा एवं दर पूर्व निर्धारित होने के कारण ये अंश लाभांश नीति से सम्बन्धित नहीं होते हैं।

14.5 लाभांश एवं ब्याज दर में अन्तर (Difference between Dividend and Interest)

लाभांश एवं ब्याज में मौलिक रूप से अन्तर होता है, जिसे निम्नानुसार समझा जा सकता है -

1. पक्षकार	लाभांश का भुगतान अंशधारियों को किया जाता है ।	ब्याज का भुगतान ऋणदाताओं को किया जाता है ।
2. दरों का निर्धारण	लाभांश की दर वर्ष प्रतिवर्ष अर्जित लाभों एवं संस्था की नीतियों पर निर्भर करती है	ब्याज की दर का निर्धारण ऋण लेते या ऋणपत्रों का निर्गमन करते समय ही कर दिया जाता है।

3. भुगतान की अनिवार्यता	कम्पनी में शुद्ध लाभ होने पर ही लाभांश का भुगतान किया जाता है।	लाभ हो या हानि, ब्याज का भुगतान अनिवार्यतः करना होता है ।
4. दरों की घोषणा	लाभांश की दर की घोषणा कम्पनी की वार्षिक साधारण सभा में संचालकों द्वारा की जाती है ।	ब्याज की दर ऋण प्राप्ति के समय कम्पनी एवं ऋणदाता के आपसी समझौते के निर्णय स्वरूप निर्धारित की जाती है।

14.6 लाभांश नीति को प्रभावित करने वाले तत्व (Factors determining Dividend Policy)

कम्पनी अधिनियम में वर्णित वैधानिक प्रावधानों के अन्तर्गत संचालक मण्डल को लाभांश घोषित करने का अधिकार होता है । परन्तु लाभांश घोषित करने के पूर्व उन आन्तरिक एवं बाह्य परिस्थितियों पर विचार आवश्यक हो जो कम्पनी की स्थिति पर प्रभाव डालती हो अत: लाभांश की घोषणा विवेकपूर्ण होनी चाहिए । ए.एस. डेविंग के अनुसार "शुद्ध अर्जन जिन्हें अंशधारियों को वितरित किया जाना है, मुख्यत: कम्पनी की साख को सुदृढ़ करने के लिए संचित कोषों की आवश्यकता कार्यशील पूँजी में वृद्धि, विस्तार संबंधी परियोजना की वित्त पूर्ति एवं भावी खतरों के लिए संदिग्धताओं की व्यवस्था पर निर्भर करती है । इस प्रकार लाभांश नीति निर्धारित करने में संचालकों को यह संतुलन स्थापित करना आवश्यक है कि कितना भाग अंशधारियों को वितरित किया जाय ।" यहाँ उन आन्तरिक एवं बाह्य परिस्थितियों का अध्ययन आवश्यक है जो लाभांश नीति को प्रभावित कर सकते हैं ।

(अ) आन्तरिक तत्व

1. **लाभ की मात्रा -** कम्पनी को प्राप्त लाभ की मात्रा पर ही लाभांश नीति निर्भर करती है यदि कम्पनी को लाभांश पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो रहा हो तो लाभांश का वितरण सुगमता से किया जा सकता है एवं शेष भाग प्रतिधारण हेतु रोका जा सकता है । लाभ प्राप्ति की प्रवृत्ति - लाभ पर्याप्त मात्रा में होने के साथ-साथ यह भी जानना आवश्यक है कि लाभ प्राप्ति की प्रवृत्ति कैसी है अर्थात् लाभ प्राप्ति में निरन्तरता है अथवा नहीं । यदि लाभ स्थायी रूप से निरन्तर प्राप्त हो रहे हों तो अधिक भाग लाभांश के रूप में वितरित किया जा सकता है ।
2. **तरलता -** संस्था की तरल स्थिति कैसी है, इस पर लाभ भुगतान क्षमता निर्भर करती है । लाभांश के भुगतान से कोषों का बर्हिगमन होता है । अत: तरलता पर विचार आवश्यक है । यदि पर्याप्त मात्रा में तरल संसाधन उपलब्ध है तो लाभांश भुगतान क्षमता अधिक होगी इसके अभाव में लाभ पर्याप्त होते हुए भी लाभांश की घोषणा संभव नहीं होती है । पर्याप्त लाभांश होने पर इस स्थिति में नकद लाभांश वितरित करने के स्थान पर बोनस अंश वितरित किए जा सकते हैं ।
3. **भविष्य की आवश्यकतायें** - लाभांश संबंधी निर्णय संस्था की भावी आवश्यकताओं पर भी निर्भर करते हैं । आन्तरिक वित्तीय स्त्रोतों में अर्जित लाभ एक महत्वपूर्ण वित्त स्त्रोत है । अत: यदि कम्पनी को भावी विस्तार योजनायें बनाती हैं एवं कोई लाभकारी विनियोजन प्रस्ताव

कम्पनी के पास हो तो लाभांश वितरित करने से पूर्व विचार आवश्यक है, इस स्थिति में लाभांश का वितरण कम करके संचित कोष का निर्माण करना चाहिए ।

4. **नियंत्रण** - लाभांश नीति कम्पनी को नियन्त्रण की स्थित को भी प्रभावित करती है । यदि उदार लाभांश नीति के परिणामस्वरूप तरलता में कमी आ जाती है एवं इसकी पूर्ति एवं भावी विनियोग कार्यक्रम की पूर्ति हेतु वित्त पोषण के लिए नये अंशों का निर्गमन करना हो तो संस्था पर नियन्त्रण की स्थिति प्रभावित हो सकती है । कोई नया समूह अधिक मात्रा में अंश क्रय कर संचालक मण्डल पर वर्चस्व कर सकता है । ऐसी स्थिति में उदार लाभांश नीति के स्थान पर कठोर लाभांश नीति अपनाना भी उचित हो सकता है ।

(ब) बाह्य तत्व

1. **सरकारी नीतियाँ -** सरकार की मौद्रिक नीति लाभांश नीति को प्रभावित करती है, यदि सरकार मौद्रिक नीति के अन्तर्गत बैंक एवं ब्याज दर में वृद्धि करती है तो बाह्य स्त्रोतों से प्राप्त ऋण महंगा होगा इस स्थिति में लाभांश का पुनर्विनियोजन लाभप्रद होता है । सरकार कई बार एक निश्चित सीमा से अधिक लाभांश वितरण पर भी प्रतिबन्ध लगा देती है । इस स्थिति में उस प्रतिबंध के अनुरूप ही लाभ घोषित करना होता है ।

2. **कर नीति** - सरकार द्वारा निर्धारित कर नीति लाभांश नीति को प्रभावित करती है । यदि सरकार निगम कर की दरें बढ़ाती है तो वितरण हेतु लाभांश कम मात्रा में उपलब्ध होगा । एक कम्पनी की तरलता भी प्रभावित होगी अत: इस स्थिति में अंशधारियों में वितरण हेतु लाभांश राशि कम उपलब्ध होगी परिणामस्वरूप लाभांश दरें प्रभावित होंगी ।

3. **वैधानिक प्रावधान एवं प्रतिबन्ध -** कम्पनी अधिनियम की धारा 205 के अनुसार लाभांश का भुगतान ह्रास एवं पूर्व की हानियों की पूर्ति करने के उपरान्त चालू वर्ष के लाभों, गत वर्षों के लाभों या दोनों के योग अथवा सरकार द्वारा प्रतिभूति के अधीन दी गयी राशि में से ही किया जा सकता है । कम्पनी लाभों का संचयों में हस्तान्तरण नियमन, 1975 के अनुसार लाभांश की घोषणा से पूर्व एक निश्चित प्रतिशत (अधिकतम 10 प्रतिशत) संचयों में हस्तान्तरण करना आवश्यक है । अत: उपरोक्त वैधानिक प्रतिबंधों के अन्तर्गत ही लाभांश नीति निर्धारित करनी चाहिए ।

4. **अंशधारियों की मनोवृत्ति -** वर्तमान प्रावधान के अनुसार लाभांश आय अंशधारियों के लिए कर मुक्त होती है अत: अंशधारियों की सामान्यत: यह मनोवृत्ति रहती है कि उन्हें नियमित रूप से ऊँची दर पर लाभांश मिलता रहे । इसी दृष्टिकोण के आधार पर लाभांश नीति प्रभावित होती है । वर्तमान में कई कम्पनियां इस प्रकार की उदार नीतियां अपना रही हैं उनका विश्वास है कि अंशधारियों में पेठ के कारण नये निर्गमन या अधिकार निर्गमन द्वारा सरलतापूर्वक कोष उपलब्ध करवाये जा सकते हैं ।

5. **कम्पनी की पूँजी बाजार में साख** - पूँजी बाजार में यदि कम्पनी की साख अच्छी हो तो उदार लाभांश नीति अपनायी जा सकती है । क्योंकि साख अच्छी होने पर पर्याप्त संसाधन प्राप्त करने में, कठिनाई नहीं होती है एवं आवश्यकतानुसार कम्पनी अंश ऋणपत्र आदि निर्गमन कर तरल कोष प्राप्त कर सकती है ।

14.7 सुदृढ़ लाभांश नीति के आवश्यक तत्व (Essentials of Sound Dividend Policy)

लाभांश नीति द्वारा कम्पनी की साख प्रभावित होती है, अत: कम्पनी को लचीली लाभांश नीति के स्थान पर सुदृढ़ लाभांश नीति अपनानी चाहिए । सुदृढ़ लाभांश नीति के अन्तर्गत अनुकूलता एवं प्रतिकूलता दोनों स्थिति में स्थिरता रहती है । जिससे अंशधारियों में पर्याप्त विश्वास जमा रहता है । सामान्यत: एक सुदृढ़ लाभांश नीति में निम्नलिखित तत्व आवश्यक हैं :-

1) लाभांश का भुगतान नकद में हों
2) लाभांश दर में क्रमिक वृद्धि हों
3) लाभांश वितरण में स्थायित्व हों
4) लाभांश नीति कम्पनी की भावी नीति के अनुरूप हों
5) कम्पनी अधिनियम एवं सरकार प्रतिबंधों के अनुरूप हों ।

14.8 लाभांश नीति के प्रकार (types of Dividend Policy)

लाभांश नीति के निर्धारण के लिए ऐसा कोई सूत्र नहीं दिया जा सकता है जो प्रत्येक स्थिति में लागू होता हो, क्योंकि यह कम्पनी की परिस्थितियों एवं प्रबंधकों की नीतियों पर निर्भर करती है । ऐसी नीति जो अंशधारियों एवं कम्पनी दोनों के लिए लाभकारी सिद्ध हों, उसे ही सुदृढ़ व सुसंगत नीति कहा जा सकता है । सिद्धान्तत: लाभांश नीति के प्रकार निम्नलिखित हैं :

(अ) कठोर लाभांश नीति (Conservative Dividend Policy) - इस नीति में प्रबंधक अर्जित लाभ के अधिकांश भाग को व्यवसाय में पुनर्विनियोजित करना चाहत हैं तथा अंशधारियों को लाभांश भुगतान कम से कम करना चाहते हैं । अत: वह नीति जिसमें लाभ भुगतान अनुपात (Dividend Payment Ratio) बहुत कम या कभी-कभी शून्य होता है, कठोर या अनुदार लाभांश नीति कहलाती है । इस नीति को अपनाने वाले प्रबंधक अंशधारियों की वर्तमान आशाओं के स्थान पर कम्पनी की वित्तीय सुदृढ़ता को अधिक महत्व देते हैं । यह नीति निम्न परिस्थितियों में ही अपनायी जाती है :- (i) यदि कम्पनी नवस्थापित हो, जिसे भावी विकास हेतु अतिरिक्त पूँजी की आवश्यकता हों (ii) यदि वर्तमान में पूँजी बाजार से पूँजी प्राप्त करने में ऊँची लागत लगती हों (iii) अंशधारी वर्तमान में नकद लाभांश के स्थान पर भविष्य में बोनस अंश प्राप्त करने के इच्छुक हों (iv) वर्तमान में तरल साधनों की कमी हों ।

(ब) उदार लाभांश नीति (Liberal Dividend Policy) - इस नीति में प्रबंधक अर्जित लाभ का अधिकांश भाग लाभांश के रूप में वितरित कर देते हैं अर्थात् लाभांश का लाभ अनुपात (Payments Ratio) उच्च होता है । लाभों का पुनर्विनियोजन उतना ही किया जाता है जितना अत्यन्त आवश्यक हो । उदार लाभांश नीति के पालन से भावी विकास व विस्तार हेतु आंतरिक साधनों की कमी आ जाती है तथा अंशों के मूल्य में सट्टे की प्रवृत्त बढ़ने से वित्तीय सुदृढ़ता को भी हानि पहुँचती है । कभी-कभी प्रबंधकों द्वारा अपने स्वार्थ की सिद्धि या प्रबंधकीय दक्षता

को प्रदर्शित करने के लिए उच्च दर से लाभांश वितरण हेतु अनुचित तरीकों का प्रयोग किया जाता है । जिसके दुष्परिणाम कम्पनी को वहन करने पडते हैं ।

(स) स्थिर लाभांश नीति (Stable Dividend Policy) - स्थिर लाभांश से आशय वर्ष-प्रतिवर्ष लाभांश भुगतान में एकरूपता होने से है, अर्थात् जब प्रबंधक व्यवसाय की आय में उतार-चढ़ाव होते हुए भी प्रति अंश लाभांश स्थिर बनाये रखने की नीति अपनाते हैं तो यह स्थिर लाभांश नीति कहलाती है । इस नीति में सदस्यों की वर्तमान अपेक्षाओं व कम्पनी की भावी आवश्यकताओं को समान महत्व दिया जाता है । अधिक लाभ वाले वर्षों में भी स्थिर दर से लाभांश वितरित कर शेष राशि से कोषों का निर्माण कर लिया जाता है । जिससे प्रतिकूल परिस्थिति वाले वर्षा में लाभ कम होते हुए भी स्थिर लाभांश नीति का अनुसरण किया जा सके । किन्तु स्थिर लाभांश नीति से आशय यह नहीं है कि जीवन पर्यन्त एक ही दर से लाभांश दिया जायेगा । कम्पनी की आय के निरन्तर वृद्धि होने पर प्रबन्धक वर्तमान दर में वृद्धि कर सकते हैं । किन्तु इस नीति के बनाये रखने के लिए कम्पनी के स्वामित्व ढाँचे व प्रबंध में भी स्थायित्व आवश्यक है । यदि प्रबन्धक निरन्तर बदलते रहते हों तो स्थिर लाभांश नीति के पालन में कठिनाईयां आती हैं जो स्थिर लाभांश नीति का आशय दो प्रकार से लिया जा सकता है :-

(i) **स्थिर लाभांश भुगतान अनुपात (Stable Payment Ratio)** - भुगतान अनुपात से आशय लाभांश का अर्जनों से अनुपात से है, अर्थात् सूत्रानुसार -

$$\text{Dividend Payment ratio} = \frac{\qquad}{\text{Earning Per Share}} \times 100$$

अर्थात् जब अर्जनों का एक निश्चित प्रतिशत प्रतिवर्ष देने की नीति अपनाई जाती है तो यह स्थिर भुगतान अनुपात नीति कहलाती है । इस नीति में कम्पनी की आय में परिवर्तन के साथ प्रति अंश लाभांश की राशियाँ परिवर्तित होती रहती हैं, जैसे यदि भुगतान अनुपात 70% निश्चित कर लिया जाये तो यदि प्रति अंश अर्जन 8 रू. होने पर 560 रू. प्रति अंश लाभांश होगा एवं 2.40 प्रतिधारित कर लिये जायेंगे, इसी प्रकार प्रति अंश अर्जन 6 रू. हो जाने पर 420 रू. प्रति अंश वितरण किया जायेगा एवं 1.60 रू. प्रतिधारित कर लिये जायेंगे, अर्थात लाभांश की राशि का संबंध अर्जनों से होता है । कम्पनी के दृष्टिकोण से यह नीति अच्छी होती है क्योंकि स्थिर नीति होते हुए भी लाभ कम होने या हानि होने पर लाभांश वितरण की बाध्यता नहीं रहती है । किन्तु लाभों की राशि में कमी / वृद्धि होने से लाभांश में भी परिवर्तन होने से अंशों के बाजार मूल्य में उच्चावचन होता रहता है, अत: इस नीति का अनुसरण सामान्यत: कम किया जाता है ।

(ii) **स्थिर लाभांश दर (Stable Dividend Rate Method) -** इस नीति के अन्तर्गत प्रबंधक प्रति अंश लाभांश की दर निश्चित कर लेते हैं, जिसका भुगतान वर्ष प्रतिवर्ष किया जाता है । अधिक लाभ वाले वर्षा में अतिरिक्त लाभ को लाभांश समानीकरण संचय में हस्तान्तरित किया जा सकता है, जिसका उपयोग कम लाभ वाले वर्षों में समान लाभांश दर बनाये रखने में किया जा सकता है । ऐसी संस्थायें जिनकी आय में दीर्घकाल तक स्थिरता की संभावना होती है, इस नीति का अनुसरण करती है । अंशधारी भी नियमित एवं स्थायी रूप से मिलने

वाले लाभांश को अधिक समझते हैं । इस नीति को अपनाने पर भुगतान अनुपात बदलता रहता है । यह कम्पनी की आंतरिक वित्त व्यवस्था को प्रभावित करता है, अंशों के बाजार मूल्य को नहीं, अत: यह नीति अधिक अच्छी मानी जाती है ।

लाभांश अनुपात प्रति अंश अर्जनों पर निर्भर करता है, प्रति अंश अर्जन एवं प्रति अंश घोषित लाभांश में सामान्यत: सीधा संबंध होता है । यह संबंध निम्नानुसार दर्शाया जा सकता है -

उदाहरण - रौनक एण्ड कम्पनी एक सूचीबद्ध कम्पनी है, जो प्रति वर्ष लाभांश का भुगतान करती है । इससे संबंधित विवरण निम्नानुसार है -

Year	Paid up Capital Rs. (Lakhs)	Profit Rs. (Lakhs)	Dividend Paid Rs. (Lakhs)
2004	1000	250	150
2005	1000	264	165
2006	1300	390	234
2007	1600	530	320
2008	1600	560	336

कम्पनी के अंश का मूल्य 10 रु. है । लाभांश नीति का विश्लेषण कीजिए ।

हल:

प्रति अंश अर्जन एवं प्रति अंश लाभांश की गणना

Years	No. of Shares (In Lakhs)	Profit (Rs. In Lakh)	EPS Rs.	DPs Rs.	Dividend Pay Out ratio	Dividend Ratio
2004	100	250	2.5	1.50	60.0	15.0
2005	100	264	2.64	1.65	62.5	16.5
2006	130	390	3.00	1.80	60.0	18.0
2007	160	530	3.30	2.00	60.6	20.0
2008	160	560	3.50	2.10	60.0	21.0

Note:

$$EPS = \frac{Profit}{\text{No. of Sahres}}$$

$$\text{Dividend Payout Ratio} = \frac{DPS}{EPS} \times 100$$

$$\text{Dividend Ratio} = \frac{\text{Amount of Dividend}}{\text{Share Capital}} \times 100$$

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कम्पनी ने स्थिर लाभांश नीति अपना रखी है ।

स्थिर लाभांश नीति के लाभ : (Advantages of Stable Dividend Policy) स्थिर लाभांश नीति कम्पनी एवं अंशधारी दोनों के दृष्टिकोण से लाभदायक है, जिसका विवेचन अग्रांकित है :-

1. **अंशधारियों में संतोष (Satisfaction among shareholders)** बहुत से विनियोजक नियमित दर से प्रतिवर्ष मिलने वाले लाभांश को अधिक महत्व देते हैं जैसे संस्थागत निवेशक, सेवानिवृत्त व्यक्ति, स्त्रियाँ आदि । ये निवेशक वर्तमान आय के प्रति बहुत ही सतर्क एवं जागरूक होते हैं । अत: स्थिर लाभांश नीति अपनाकर संस्था इन्हें संतुष्ट रख सकती है ।
2. **अंशधारियों में विश्वास (Trust in share)** नियमित दर से लाभांश का भुगतान होने से कम्पनी एवं अंशों के प्रति अंशधारियों के मन में विश्वास जम जाता है । कम लाभ वाले वर्षों में भी कोषों में से स्थिर लाभांश दर से भुगतान करने से कम्पनी प्रबंधन में विनियोजकों का विश्वास बना रहता है ।
3. **साख में वृद्धि (Strengthen Goodwill)** नियमित लाभांश मिलने से अंशों के बाजार मूल्य में उतार-चढ़ाव कम आते हैं, अत: बाजार मूल्य स्थिर रहने एवं अंशधारियों से संतुष्ट एवं आश्वस्त रहने से कम्पनी की साख में बुद्धि होती है ।
4. **अतिरिक्त वित्त प्राप्ति में सुविधा (Facility in seeking additional Finance)** नियमित लाभांश वितरित करने वाली संस्थाओं की साख अच्छी होने से पूंजी बाजार से अतिरिक्त पूँजी प्राप्त करना, ऋण प्राप्त करना या ऋण पत्रों एवं अधिमान अंशों का निर्वासन आसान हो जाता है । ऋण प्रदाता लाभांश के नियमित होने से ब्याज एवं मूल्यों का भुगतान के प्रति आश्वस्त हो जाते हैं ।
5. **दीर्घकालीन नियोजन में सहायक (Helpful in long term planning)** स्थिर लाभांश नीति के आधार पर कम्पनी के विकास एव विस्तार के लिए दीर्घकालीन योजनायें बनाई जा सकती है, क्योंकि कम्पनी को कब व कितने धन की आवश्यकता होगी साथ ही पूर्ति के साधनों का मूल्यांकन करने के उपरान्त ही इस नीति का निर्धारण किया जाता है ।

14.9 लाभांश नीति एवं फर्म का मूल्य (Dividend Policy and value of the firm)

वित्तीय प्रबंधक का मुख्य उद्देश्य अंशधारियों की सम्पदा अधिकतम करना होता है । इस संबंध में यह देखना भी आवश्यक है कि क्या किसी कम्पनी द्वारा वितरित लाभांश भी इस उद्देश्य को प्रभावित करता है या नहीं ? यदि लाभांश भुगतान से सम्पदा का मूल्य बढ़ता है तो लाभांश वितरित किया जाना चाहिये अन्यथा लाभों का पुर्नविनियोजन कर आंतरिक स्त्रोतों में वृद्धि की जानी चाहिए । लाभांश निर्गम अंशों का मूल्य बढ़ाने में कहा तक प्रभावशाली है, इस संबंध

में वित्तीय विशेषज्ञ दो तरह के विचार रखते हैं । प्रथम मत के अनुसार लाभांश नीति अंशधारियों एवं कम्पनी के लिए प्रासंगिक है, जबकि द्वितीय विचारधारा के अनुसार लाभांश निर्णय अंशों के मूल्यों को प्रभावित नहीं करता है । अत: विनियोजक नकद लाभांश या पूंजीगत लाभांश के रूप में प्रभाव से उदासीन रहते हैं । इस मत के अनुसार फर्म का मूल्य लाभांश नीति से अप्रभावित रहता है ।

14.10 लाभांश के सिद्धान्त (Dividend Theories)

i. **लाभांश की प्रासंगिक विचारधारा** - इस विचारधारा के समर्थकों में **वाल्टर. गार्डर. लिंटर. रिचर्डसन** जैसे विशेषज्ञों को सम्मिलित किया जाता है । इनके अनुसार अंशधारी वर्तमान लाभांश को पूंजी लाभ की तुलना में अधिक महत्त्व देते हैं । लाभांश निर्णय कम्पनी की लाभदायक एवं कार्यकुशलता के भी सूचक होते हैं । अत: लाभांश अंश के मूल्य के संबंध में प्रासंगिक होते हैं । ऐसी संस्थायें जो उच्च दरों से लाभांश का भुगतान करती है उनका मूल्य नीची या कम दर से लाभांश का भुगतान करने वाली संस्थाओं की तुलना में अधिक होती है । इसके समर्थन में **वाल्टर एवं गॉर्डन** द्वारा दो प्रमेय प्रतिपादित किये गये हैं -

अ. **वाल्टर फार्मूला या प्रमेय (Walter Formula's or Method)** लाभांश नीति के निर्धारण हेतु सन् 1983 में प्रो. जेम्स ई. वाल्टर द्वारा एक प्रमेय प्रस्तुत किया गया, जिसके अनुसार लाभांश नीति सदैव अंशों के मूल्य को प्रभावित करती है । वाल्टर के अनुसार किसी संस्था की लाभांश नीति उसके द्वारा अर्जित आंतरिक प्रत्याय दर (Internal rate of Return) तथा पूंजी की लागत (Cost of capital) के संबंध पर आधारित होती है । इस प्रमेय के अनुसार लाभांश निर्णय एवं विनियोग निर्णय अन्त: संबंधित होते हैं अत: लाभांश भुगतान से पूर्व विनियोग अवसरों का मूल्यांकन आवश्यक है । प्रतिधारित अर्जनों के पुनर्विनियोजन की प्रत्याय दर को आंतरिक प्रत्याय दर (r) कहा जाता है एवं अंशधारियों की प्रत्याशा (यदि लाभांश वितरित किया जाये तो इसे अंशधारी विनियोजन कर जिस दर से आय अर्जित कर सकते हैं अर्थात् अवसर लागत) को पूंजी की लागत (Ke) माना जाता है । यदि विनियोग पर प्रत्याय दर (r) पूंजी लागत (Ke) से अधिक है तो संस्था को अपनी अर्जनों को प्रतिधारित करना चाहिये, इसके विपरीत होने पर अधिकतम लाभांश वितरित किया जा सकता है अर्थात संस्था अंशों के मूल्य को अधिकतम करने हेतु लाभांश नीति का अनुसरण निम्नवत कर सकती है । यदि r>Ke तो लाभों का 100% प्रतिधारण अर्थात् लाभांश भुगतान शून्य होगा । यदि r = Ke, लाभांश नीति अंशों के मूल्य को प्रभावित नहीं करती है ।

यदि r<Ke, प्रतिधारण नहीं कर 100% लाभांश का भुगतान कर देना चाहिये । वाल्टर फार्मूला - प्रो. वाल्टर ने एक अंश का बाजार मूल्य निर्धारित करने हेतु निम्न सूत्र दिया है:

$$P = \frac{D}{Ke} + \frac{r(E-D)/Ke}{Ke}$$

यहाँ

P = प्रतिअंश बाजार मूल्य (Market Price Per Share)

D = प्रतिअंश लाभांश (Dividend Price per Share)

E = प्रति अंश अर्जन (Earning Price per Share)

Ke = समता पूँजी की लागत या पूँजीकरण दर (Cost of equity capital or Capitalisation Rate)

R = आंतरिक प्रत्याय दर (Internal rate of return)

Illustration - 1:

The details regarding three companies are given below:-

तीन कम्पनियों से संबंधित विवरण निम्न प्रकार है:-

A Ltd.	**B Ltd.**	**C Ltd.**
r = 15%	r = 7.5%	r = 10%
Ke = 10%	Ke = 10%	Ke = 10%
E = 40 Rs.	E = 40 Rs.	E = Rs. 40

Complete the value of an equity share of each of three companies applying Walter's formula, if divided payout ratio (a) 0% (b) 25% (c) 50% and (d) 100%. Comments on the conclusions.

वाल्टर सूत्र का प्रयोग करते हुए प्रत्येक कम्पनी के समता अंश का मूल्य ज्ञात कीजिये यदि लाभांश भुगतान अनुपात :- 0%, 25%, 50%, 100% हो, निष्कर्षों का विवेचन कीजिये

Solution:

1) 0%, 2) 25%, 3) 50%, 4) 100% हो, निष्कर्षों का विवेचन कीजिये -

i. When Dividend Payment Ratio is 0%

$$P = \frac{0}{.10} + \frac{.15(40-0)/.10}{.10} \qquad P = \frac{0}{.10} + \frac{7.5(40-0)/.10}{.10}$$

$$P = 0 + 600 = 600 \qquad P = 0 + 300 = 300$$

$$P = \frac{10}{.10} + \frac{.10(40-10)/.10}{.10}$$

$$P = 400$$

ii. When Dividend Payment ratio is 25%

$$P = \frac{10}{.10} + \frac{.15(40-10)/.10}{.10} \qquad P = \frac{10}{.10} + \frac{7.5(40-10)/.10}{.10}$$

$$P = 100 + 450 = 550 \qquad P = 100 + 300 = 400$$

$$P = \frac{10}{.10} + \frac{.10(40-10)/.10}{.10}$$

$$P = 100 + 300 = 400$$

iii. When Dividend Payment ratio is 50%

$$P = \frac{20}{.10} + \frac{.15(40-20)/.10}{.10}$$
$$P = 200 + 300 = 500$$

$$P = \frac{20}{.10} + \frac{7.5(40-20)/.10}{.10}$$
$$P = 200 + 150 = 350$$

$$P = \frac{20}{.10} + \frac{.10(40-20)/.10}{.10}$$
$$P = 200 + 200 = 400$$

iv. When Dividend Payment ratio is 100%

$$P = \frac{40}{.10} + \frac{.15(40-40)/.10}{.10}$$
$$P = 400 + 0 = 400$$

$$P = \frac{40}{.10} + \frac{7.5(40-40)/.10}{.10}$$
$$P = 400 + 0 = 400$$

$$P = \frac{40}{.10} + \frac{.10(40-40)/.10}{.10}$$
$$P = 400 + 0 = 400$$

उक्त विश्लेषण से स्पष्ट है -

i. **A. Ltd.** की स्थिति में आंतरिक प्रत्याय दर पूँजी की लागत से अधिक है, r>Ke अत: यह विकासशील कम्पनी है । ऐसी कम्पनी में वाल्टर प्रमेय के अनुसार 0% लाभांश भुगतान होने पर अंश का मूल्य सर्वाधिक होता है । लाभांश भुगतान बढ़ते जाने से अंश का मूल्य गिरता चला जाता है । अत: A Ltd. को 100% प्रतिधारण की नीति अपनानी चाहिये ।

ii. **B. Ltd.** की स्थिति में r = ke है अत: लाभांश की घोषणा करने या न करने का समता अंश के मूल्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है । लाभांश भुगतान 0% होने पर प्रति अंश मूल्य 400 रु. है जो 100% वितरण पर भी वही है । अत: यह सामान्य संस्था है । लाभांश निर्णय ऐसी संस्थाओं के मूल्य के संदर्भ में अप्रासंगिक होते हैं ।

iii. **C. Ltd**. की अर्जन दर पूंजी की लागत से कम है । यह अविकासशील संस्था है । ऐसी संस्थाओं को वाल्टर के अनुसार अंश का मूल्य अधिकतम करने हेतु 100% लाभांश वितरित कर देना चाहिये । अत: इससे स्पष्ट है कि 0% भुगतान पर अंश का मूल्य 300 रू. है जबकि 100% वितरण पर सर्वाधिक 400% रू. है अत: इस कम्पनी को 100% वितरण की नीति अपनानी चाहिये ।

इस आधार पर संस्थाओं को निम्नानुसार वर्गीकृत किया जा सकता है:-

i. **विकासशील संस्थायें (Growth Firms)** इन संस्थाओं के पास लाभोपार्जन के पर्याप्त अवतार होते हैं । अत: इनमें प्रगतिशील अर्जनों पर प्रत्याय दर, अंशधारियों द्वारा अपेक्षित कर से अधिक होती है । अर्थात् r>Ke ऐसी संस्थाओं को सम्पूर्ण आय का पुर्नविनियोजन कर भुगतान अनुपात 0% रखना चाहिये ताकि अंश का मूल्य अधिकतम हो सके । भुगतान अनुपात बढ़ाने पर इन संस्थाओं के मूल्य में कमी आ जाती है ।

ii. **सामान्य संस्थायें (Normal firms)** इन संस्थाओं में आंतरिक प्रत्याय दर एवं अपेक्षित दर समान होती है । अर्थात् $r \geq Ke$ ऐसी संस्थाओं की लाभांश नीति अंशों के मूल्य को प्रभावित नहीं करती है, क्योंकि पूँजी की अवसर लागत व अर्जित दर समान होती है । अत: लाभांश नीति का मूल्यों पर प्रभाव नहीं पडता है ।

iii. **अविकासशील संस्थायें (Developing Firms)** ऐसी संस्थायें प्रतिधारित अर्जनों पर अपेक्षित दर से ज्यादा आय अर्जित नहीं कर सकती है । अर्थात् इनमें $r<Ke$ होता है । ऐसी संस्थाओं को 100% लाभांश वितरण की नीति अपनानी चाहिये ताकि अंश के मूल्य को अधिकतम किया जा सके ।

मान्यतायें (Assumptions) यह प्रमेय निम्न मान्यताओं पर आधारित है -

i. प्रतिधारित अर्जनों द्वारा ही नये विनियोग अवसरों की वित्त पूर्ति की जाती है ।

ii. पूँजी की लागत एवं आंतरिक प्रत्याय दर स्थिर रहती है ।

iii. संस्था का अस्तित्व दीर्घकालीन व सतत् है ।

Illustration -2

Asha Ltd. Earns Rs. 15 per share, its capitalization rate is 10% and has a 12% rate of return on investments. According to Walter's formula-

i. What should be the price per share if dividend payment rate is 20%

ii. (Is this a optimum ratio)

आशा लिमिटेड 15 रू. प्रति अंश अर्जित करती है । इसकी पूंजीकरण दर 100% एवं आंतरिक प्रत्याय दर 12% है । वाल्टर फार्मूले के अनुसार -

i. 20% लाभांश भुगतान पर प्रति अंश मूल्य की गणना कीजिये ।

ii. क्या यह अनुकूलतम भुगतान अनुपात है?

Solution:

$$P = \text{formula } \frac{D}{Ke} + \frac{r(E-D)/Ke}{Ke}$$

$$P = \frac{3}{.10} + \frac{12(15-3)/.10}{.10}$$

$$30 + 144 = 174$$

उक्त गणनानुसार 20% लाभांश भुगतान पर एक अंश का मूल्य 174 रू. है किन्तु वाल्टर प्रमेय के अनुसार इस संस्था को अंश मूल्य अधिकतम करने हेतु शून्य लाभांश भुगतान की नीति अपनानी चाहिये क्योंकि यहाँ r = 12% है जो Ke 10% से अधिक है, अत: 20% लाभांश भुगतान अनुकूलतम नहीं है ।

वाल्टर प्रतिमान की आलोचनायें (Critiscim of Walter's Formula's) वाल्टर प्रमेय अंश के मूल्य निर्धारण का केवल सैद्धान्तिक दृष्टिकोण ही प्रस्तुत करता है, जबकि बाजार में अंश का मूल्य लाभांश की दर एवं प्रतिधारित आय के अलावा अनेक अन्य तत्वों यथा कर नीति,

सरकारी प्रतिबंध, तरलता स्थिति आदि से भी प्रभावित होता है, साथ ही मान्यताओं के कारण भी इस प्रमेय की आलोचना की गई है । प्रमुख आलोचनायें निम्नवत् हैं:-

1. **बाह्य वित्तीय स्त्रोतों की अवहेलना (Ignores External Financing):** अधिकांश संस्थाओं द्वारा अपनी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति ऋणों या नये निर्गमन द्वारा की जाती है, वास्तविकता से परे है ।
2. **स्थिर पूंजी की लागत (Unstable cost of capital) :** संस्था के जोखिम के स्वरूप में परिवर्तन के साथ पूँजी की लागत भी परिवर्तित होती रहती है । अत: पूँजी लागत के स्थिर होने की मान्यता भी अवास्तविक है ।
3. **आंतरिक प्रत्याय दर की स्थिरता काल्पनिक (Stable Internal rate of return is imaginary):** संस्था द्वारा अर्जित प्रत्याय दर अस्थिर होती है, क्योंकि विनियोग में परिवर्तन से लाभों में परिवर्तन होता है, अत: स्थिर अर्जन दर एक काल्पनिक धारणा है ।

ब. **गॉर्डन फार्मूला अथवा प्रमेय (Garden's Formula or Model)** गार्डन का प्रमेय भी वाल्टर से मिलता जुलता है, अर्थात् गार्डन की विचारधारा भी थी कि अंशों के मूल्य को लाभांश नीति प्रभावित करती है । गार्डन के अनुसार भविष्य की अनिश्चितता के कारण लाभांश आय के एक रूपये का मूल्य पूंजी लागत के एक रूपये के मूल्य ये अधिक होता है । अनिश्चितता एवं बट्टा दर में समय व्यतीत होने के साथ वृद्धि होती है । विनियोजक इस अनिश्चितता से बचना चाहते हैं । अत: वे वर्तमान लाभांश को अधिक महत्व देते हैं । इस प्रमेय के अनुसार अंश का बाजार मूल्य अंश पर अंत समय तक प्राप्त होने वाले लाभांश के वर्तमान मूल्य के बराबर होता है ।

मान्यतायें - गार्डन का मॉडल निम्न मान्यताओं पर आधारित है :-

i. पूंजी की लागत स्थिर होती है एवं यह वृद्धि दर से अधिक होती है ।
ii. विनियोग पर प्रत्याय दर स्थिर होती है ।
iii. संस्था की वृद्धि दर (g) प्रतिधारण अनुपात (b) तथा प्रत्याय दर (r) का गुणनफल होती है, अर्थात g = bXr
iv. कर का ध्यान नहीं रखा जाता है ।

गार्डन का सूत्र निम्न प्रकार है :-

$$P = \frac{D}{Ke - g} \quad \text{Or} \quad \frac{E(1-b)}{Ke-(b \times r)}$$

यहाँ,

P = Market Price per share

D = Dividend per share

Ke = Cost of equity capital or Capitalisation rate

g = growth rate or b x r

E = Earning per share

b = Retention Ratio or (1- payout ratio)

r = Rate of return on investment of the firm.

गार्डन के प्रमेय का विश्लेषण निम्न प्रकार है :-

1. यदि r>k है तो ऐसी संस्थायें विकासशील होती हैं । ऐसी संस्थाओं में लाभांश भुगतान अनुपात घटने के साथ अंश का मूल्य बढ़ता है । अत: इन्हें अधिकतम लाभों का प्रतिधारण करना चाहिये ।
2. r = k होने पर अंश का मूल्य लाभांश नीति से प्रभावित नहीं होता है । अत: सामान्य संस्थाओं में लाभांश निर्णयों के अप्रासंगिक होने से कोई अनुकूलतम भुगतान अनुपात नहीं दिया जा सकता है ।
3. r < k होने पर भुगतान अनुपात एवं अंश के मूल्य में धनात्मक संबंध होता है । ऐसी संस्थायें अविकासशील होती हैं । इन्हें 100% लाभांश भुगतान की नीति अपनानी चाहिये ताकि अंश का मूल्य अधिकतम हो सके ।

Illustration 3 :

A company has 10% rate of returns on its investment, Retention ratio of 60% and Earnings per share Rs.5. the normal Capitalisation rate is the industry to which this company belongs is 14%. Find out the value of equity share, using the Garden Model.

एक कम्पनी की विनियोगों पर अर्जन दर 10% प्रतिधारण अनुपात 60% एवं प्रतिअंश अर्जन 5 रु. है । यह कम्पनी जिस उद्योग से संबंधित है कि पूंजीकरण दर 14% है । गार्डन फार्मूले का प्रयोग करते हुए एक अंश का मूल्य ज्ञात कीजिये ।

Solution :

$$P = \frac{E(1-b)}{Ke-(b\times r)}$$

$$P = \frac{E(1-60\%)}{Ke-(60\%\times 10\%)} = \frac{5\times 40\%}{14-.06}$$

$$P = \frac{2}{.08} = 25 \quad \text{P = Rs. 25}$$

Illustration 4:

The details regarding Priya Ltd. Are given below :

प्रिया लिमिटेड के संबंध में निम्न सूचनायें दी गयी हैं:-

Rate of return on investment (r) - 15% 10% 8%

Cost of capital (k) - 10%

Earning per share (E) - 20

Find out the market price applying Garden's Formulas, when dividend payout ratio is (i) 40% (ii) 60% (iii) 100%.Comment on the conclusions drawn.

गॉर्डन प्रमेय का प्रयोग करते हुए बाजार मूल्य की गणना कीजिये यदि लाभांश भुगतान अनुपात (i) 40% (ii) 60% (iii) 100% हो ।

Solution :

$$P = \frac{E(1-b)}{Ke-(b\times r)}$$

i. When Dividend Payout Ratio is 40% or b = 60%

$P = \frac{20(1-60)}{.10-(60\times.15)}$	$P = \frac{20(1-60)}{.10-(60\times.10)}$	$P = \frac{20(1-60)}{.10-(60\times.08)}$
$= \frac{8}{.10-.09}$	$= \frac{8}{.10-.06}$	$= \frac{8}{.10-.048}$
$= \frac{8}{0.1}$	$= \frac{8}{0.4}$	$= \frac{8}{.052}$
$= Rs.\ 800$	$= Rs.\ 200$	$= Rs.\ 153.85$

ii. When Dividend Payout Ratio is 60% or b= 40%

$P = \frac{20(1-40)}{.10-(.40\times.15)}$	$P = \frac{20(1-40)}{.10-(.40\times.10)}$	$P = \frac{20(1-40)}{.10-(.40\times.08)}$
$= \frac{12}{.10-.06}$	$= \frac{12}{.10-.04}$	$= \frac{12}{.10-.032}$
$= \frac{12}{.04} = Rs.\ 300$	$= \frac{12}{.06} = Rs.\ 200$	$= \frac{12}{.068} = Rs.\ 176.42$

iii. When Dividend Payout Ratio is 100 or b = 0

$P = \frac{20(1-0)}{.10-(0\times.15)}$	$P = \frac{20(1-0)}{.10-(0\times.10)}$	$\frac{20(1-0)}{.10-(0\times.08)}$
$= \frac{20}{.10}$	$= \frac{20}{.10}$	$= \frac{20}{.10}$
$= Rs.\ 200$	$= Rs.\ 200$	$= Rs.\ 200$

टिप्पणियाँ : r>k होने अर्थात् विकासशील फर्म होने पर प्रतिधारण अनुपात एवं बाजार मूल्य में धनात्मक संबंध होता है, अतः इस स्थिति में भुगतान अनुपात 0 करते हुए समस्त लाभ रोके जाने चाहिये ।

2) r = k होने पर भुगतान अनुपात का प्रभाव अंशों के मूल्यों पर नहीं पड़ता है । अतः ऐसी स्थिति में कम्पनी आवश्यकतानुसार भुगतान नीति अपना सकती है ।

3) r के k से कम होने पर अर्थात् अविकासशील संस्था होने पर भुगतान अनुपात ऊँचा होने से अंशों का मूल्य बढ़ता है, अत: ऐसे में 100% लाभांश भुगतान की नीति अपनाई जानी चाहिये ।

ii. **लाभांश की अप्रासंगिक विचारधारा (The Irrelative Concept of Dividend) :** अप्रासंगिक विचारधारा के समर्थकों में सोलेमनइजरा मोदी ग्लियानी एवं मिलर आदि विचारकों को सम्मिलित किया जाता है । इनके अनुसार लाभांश निर्णय फर्म के मूल्य को प्रभावित नहीं करते हैं । अंशधारी विनियोजित पूंजी पर अधिक प्रत्याय प्राप्त करना चाहते हैं । यह प्रत्याय लाभांश के रूप में है या पूंजी लाभ के रूप में, इसका कोई प्रभाव संस्था के मूल्य पर नहीं पड़ता है । अत: अंशधारियों की सम्पदा के लिए लाभांश निर्णय अप्रासंगिक होते हैं । अप्रासंगिक विचारधारा के समर्थकों में से मोदी ग्लियानी एवं मिलर द्वारा दिया गया प्रतिमान महत्त्वपूर्ण है ।

मोदी ग्लियानी एवं मिलर प्रतिमान (Modi Gilani and Miller Model or M M Model) : मोदी ग्लियानी, मिलर के अनुसार आय को प्रतिधारित किया जाये या शत-प्रतिशत लाभांश के रूप में वितरित किया जाये, यह निर्णय संस्था के मूल्य को प्रभावित नहीं करता है, क्योंकि संस्था का मूल्य उसकी विनियोग नीति एवं अर्जन क्षमता पर निर्भर करता है। यदि संस्था के पास अनेक विनियोग प्रस्ताव हैं जिन पर प्राप्त होने वाली प्रत्याय पूंजी की लागत से अधिक है तो अंशधारी आय प्रतिधारण को प्राथमिकता देंगे, लाभांश को नहीं । इसके विपरीत स्थिति होने पर वे अधिकांश हिस्सा लाभांश के रूप में प्राप्त करना चाहेंगे । अत: फर्म का मूल्य एवं लाभांश नीति दोनों विनियोग निर्णयों द्वारा प्रभावित होते हैं ।

मोदी ग्लियानी एवं मिलर के शब्दों में, "पूर्ण पूँजी बाजारों, विवेकशील विनियोजकों लाभांश आय एवं पूँजी संवर्धन में कर विभेद की अनुपस्थिति तथा दी गई विनियोग नीति की दशा में संस्था की लाभांश नीति अंशों के बाजार मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकती ।" उनकी यह विचारधारा निम्नलिखित मान्यताओं (assumption) पर आधारित है :

1. व्यक्तिगत एवं निगम कर अनुपस्थित होते हैं अथवा लाभांश एवं पूंजी लाभों पर लागू कर की दरों में कोई अंतर नहीं है ।
2. संस्था पूर्ण पूंजी बाजार में कार्य करती है ।
3. भावी अवसरों के बारे में प्रबंधकों एवं विनियोक्ताओं के पास समान सूचनाएं उपलब्ध होती हैं ।
4. स्कन्ध निर्गमन अथवा सौदा लागतें नहीं होती हैं ।
5. सभी प्रकार की प्रतिभूतियों के लिए एक ही बट्टा दर का प्रयोग हर समय किया जाता है ।
6. संस्था के भविष्य के संबंध में कोई अनिश्चितता तथा जोखिम नहीं है ।

एम.एम. सिद्धान्त के अनुसार फर्म का मूल्य इसकी अर्जन शक्ति एवं विनियोग नीति पर निर्भर करता है न कि अर्जनों को लाभांश एवं प्रतिधारित अर्जनों में विभाजित करने पर।

इनका यह मत इस तर्क पर आधारित है कि यदि संस्था द्वारा अधिक लाभांश का वितरण किया जाता है तो उसे अपने विनियोग प्रस्तावों की वित्त व्यवस्था बाह्य साधनों से करनी होगी । ऐसी स्थिति में लाभांश भुगतान से अंशधारियों की समता में होने वाली वृद्धि, ऋण या अधिक अंश निर्गमन के कारण अंश के बाजार मूल्य में कमी से पुन: घट जाती है । दूसरे शब्दों में एक अंशधारी लाभांश भुगतान के रूप में जितनी राशि प्राप्त करता है, वह भविष्य में प्रति अंश अर्जन कम होने एवं बाजार मूल्य में कमी आ जाने से पूर्णरूपेण बराबर हो जाती है । इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि फर्म की सम्पदा या मूल्य का लाभांश निर्णय से कोई संबंध नहीं होता है । एम. एम. मॉडल के अनुसार अवधि विशेष के प्रारम्भ में अंश का बाजार मूल्य अवधि के अंत में चुकाये गये लाभांश एवं अंतिम बाजार मूल्य के योग के बट्टा कृत मूल्य के बराबर होता है, अर्थात् -

$$P_0 = \frac{(n+m)P_1(I-E)}{1+Ke}$$

जबकि ;

P_0 = समता अंश का प्रारम्भिक या प्रचलित बाजार मूल्य (Market Price per Share at the beginning of the Period or Prevailing Market Price of a Share)

P_1 = अवधि के अन्त में अंश का बाजार (Market Price per share at the end of the period)

D_1 = अवधि के अन्त में प्राप्त लाभांश (Dividend to be received at the end of the period)

Ke = समता पूंजी की लागत या पूंजीकरण दर (Cost of equity capital or Capitalisation Rate)

(i) लाभांश वितरण के कारण नयी परियोजना को लाग करने के लिए निर्गमित किये जाने वाले अंशों की संख्या निम्न सूत्र से ज्ञात की जा सकती है :-

$$M = \frac{I-(E-nD_1)}{P_1}$$

जबकि :-

n = number of share outstanding oat the beginning of the period.
अवधि के प्रारंभ में अंशों की संख्या

D = No. of New share to be issued.
नये निर्गमित किये जाने वाले अंशों की संख्या

I = Total investment amount need for the project.
परियोजना हेतु विनियोजित की जाने वाली कुल राशि

E = Earnings or net income of the firm during the period.
अवधि में अर्जित राशि

नये निर्गमन पर एम. एम. परिकल्पना द्वारा फर्म के मूल्य की गणना को वैकल्पिक रूप में निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है :-

$$nP_0 = \frac{(n+m)P_1 - (I-E)}{1+Ke}$$

Illustration 5:

Jaipur Syntex Limited belongs to a risk class for which the appropriate Capitalisation rate is 10%. It currently has outstanding 1,00,000 shares or Rs. 10 each. The firm is contemplating the declaration of dividend at Rs. 0.80 per share at the end of the current financial year. The company expects to have a net income or Rs. 50, 00,00 and has a proposal for making new investments of Rs. 10,00,000. Show that under the M-M hypothesis, the payment of dividend doses not affect the value of the firm.

जयपुर सिन्टेक्स लिमिटैड जोखिम वर्ग से सम्बन्धित है जिसकी उचित पूंजीकरण दर 10% है । वर्तमान में इसके 100000 अंश है जो 10 रू. प्रति अंश पर बिक रहे हैं । चालू वित्त वर्ष के अंत में कम्पनी का 0.80 रू. प्रति अंश लाभांश घोषित करने का विचार है । कम्पनी को 500000 रू. शुद्ध आय की संभावना है तथा 1000000 रू. के नये विनियोजन प्रस्ताव हैं । M-M परिकल्पना के अनुसार बताइये कि लाभांश भुगतान का संस्था के मूल्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता ।

Solution

Value of the firm when dividend is paid

i. Price of the share at the end of the current financial year.

$$P_1 = P_0(1+Ke) - D_1$$

$$= 10(1+.10) - 0.80$$

$$10 \times 1.10 - 0.80 = Rs.\ 10.20$$

ii. Number of shares to be issued

$$\text{m} = \frac{I - (E - nd_1)}{P_1}$$

$$\text{m} = \frac{1000000 - (500000 - 100000 \times .8)}{10.2} = \frac{1000000 - (420000)}{10.20}$$

$$= 56863 \text{ (approx)}$$

Value of the firm

$$nP_0 = \frac{(n+m)P_1 - (I-E)}{1+Ke}$$

$$\frac{\left(100000 + \frac{580000}{10.2}\right) \times 10.20 - (1000000 - 500000)}{1+.10}$$

$$= \frac{1020000 + 580000 - 500000}{1.10} = 1000000$$

(ब) Value of the firm when dividend is not paid

i. Price of the share at the end of the current financial year.

$$P_1 = P_0(1+Ke) - D_1$$

$$= 10(1+.10) - 0$$

$$= 10 \times 1.10 = Rs.\ 11$$

ii. Number of shares to be issued

$$m = \frac{I - (x - nD_1)}{P_1}$$

$$m = \frac{1000000 - (500000 - 0)}{11}$$

$$= \frac{500000}{11} = Rs.\ 45455 \text{ (approx)}$$

a. Value of the firm

$$P_0 = \frac{(n+m)P_1 - (I-E)}{1+Ke}$$

$$\frac{\left[00000 + \frac{500000}{11}\right] \times 11 - (1000000 - 500000)}{1+.10}$$

$$= \frac{(1100000 + 500000) - 500000}{1+.10} = \frac{1100000}{}1.10 = Rs.\ 1000000$$

स्पष्ट है कि लाभांश का भुगतान करने पर नये निर्गमित अंशों की संख्या अधिक होने के कारण वर्ष के अंत में प्रति अंश बाजार मूल्य कम हो जाता है, जबकि लाभांश नहीं देने पर निर्गमित अंश कम होने के कारण अंत में बाजार मूल्य अधिक होता है, किन्तु दोनों की परिस्थितियों में फर्म का मूल्य 1000000 रू. स्थिर रहता है ।

Illustration: 6

From the details given below show that under the M.M. assumption, the payment of dividend does not affect at the value of the firm:-

नीचे दिये हुए विवरण से एम. एम. परिकल्पना के आधार पर यह प्रमाणित कीजिए कि लाभांश वितरण फर्म के मूल्य को प्रभावित नहीं करता है -

1. Current Market Value of the firm Rs. 2000000
2. Market Price of share Rs. 20
3. Proposed New Investment Rs. 200000
4. New Earnings Rs. 100000.
5. Dividend Declared Rs .70 (70 Paisa) per share.
6. Cost of equity capital 10%

Soluation

(अ) Value of the firm when dividend is paid.

i. Price of the shares at the end of the current financial year.

$$P_1 = P_0(1+Ke) - D_1$$
$$= 20(1+.10) - .70$$
$$20 \times 1.10 - .70$$
$$= 22 - .70$$
$$= Rs.\ 21.30$$

ii. Number of shares to be issued

$$m = \frac{I - (E - nD_1)}{P_1}$$
$$\frac{200000 - (100000 - 100000 \times .70)}{21.30}$$
$$= \frac{200000 - 30000}{21.30}$$
$$= \frac{170000}{21.30} = \text{ Rs. 7981 (Approx)}$$

iii. Value of the firm

$$nP_0 = \frac{(n+m)P_1 - (I - E)}{1+Ke}$$
$$= \frac{\left[100000 + \frac{1700000}{21.30}\right] \times 21.30 - (200000 - 100000)}{1+.10}$$
$$= \frac{2300000}{1.10} = Rs.\ 2000000$$

(ब) Value of the firm when dividend is not paid

i. Price of the shares at the end of the current financial year.

$$P_1 = P_0(1+Ke) - D_1$$
$$= 20(1+.10) - 0$$

$$20 \times 1.10$$

$$Rs.\ 22$$

ii. Number of the shares to be issued

$$m = \frac{I - (E - nD_1)}{P_1}$$

$$\frac{200000 - (100000 - 0)}{22}$$

$$= \frac{100000}{22} = Rs.\ 4545 \text{ (Approx.)}$$

i. Value of the firm

$$nP_0 = \frac{(n+m)P_1(I-E)}{1+Ke}$$

$$= \frac{\left(100000 + \frac{100000}{22}\right) \times 22(200000 - 100000)}{1 + .10}$$

$$\frac{2300000 - 100000}{1.10} = Rs.\ 2000000$$

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि एम.एम. परिकल्पना के अनुसार फर्म का मूल्य 2000000 रूपये रहता है, चाहे लाभांश चुकाया जाए अथवा नहीं ।

आलोचनायें (Criticism)

1. **कर विभेदक (Tax Differentiation):** एम.एम. मान्यता में करों का न होना अवास्तविक है । अंशधारियों को लाभांश एवं पूँजीगत लाभों पर विभिन्न दरों से करों का भुगतान करना पडता है । सामान्यतया पूँजीलाभ पर कर की दर निर्धारित होती है, अत: लाभांश के भुगतान की अपेक्षा अर्जनों के प्रतिधारण की नीति को प्राथमिकता दी जाती है ।
2. **निर्गमन लागतों की विद्यमानता (Existence of Issue Costs)** : संस्था द्वारा नए अंशों अथवा ऋण-पत्रों के निर्गमन से वित्त व्यवस्था किये जाने -पर निर्गमन व्यय, यथा-अभिगोपन कमीशन, दलाली आदि के रूप में करने पड़ते हैं । अत: आंतरिक वित्त पोषण की तुलना में बाह्य वित्त पोषण महंगा पड़ता है । अत: लाभांशों के स्थान पर प्रतिधारित अर्जने लाभदायक होती हैं ।
3. **चालू आय की इच्छा (Desires of Current Income):** इस विचारधारा के अनुसार अंशधारी की सम्पदा वही रहती है, चाहे लाभांश भुगतान किया जाये अथवा नहीं, किन्तु जब लाभांश भुगतान नहीं किया जाता है तब चालू आय की इच्छा पूर्ति के लिए अंशधारी अपने अंशों का विक्रय करता है जिस पर दलाली आदि के रूप में व्यय करना पडता है । इसलिए भावी लाभों (पूंजीगत लाभ) की तुलना में चालू आय को अधिक पसंद किया जाता है ।

4. **विविधीकरण (Diversification)** : विनियोजक अपने धन का विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों में विनियोजन करना चाहते हैं । इसलिए वे संस्था द्वारा उसकी अर्जनों के वितरण को पसंद करेंगे ताकि प्राप्त लाभांश का विनियोजन दूसरी संस्थाओं में करके अधिक आय का अर्जन कर सकें ।
5. **अनिश्चितता (Uncertainty):** भावी परिस्थितियों के सही पूर्वानुमान के अभाव में अनिश्चितता बनी रहती है । इससे अंशों के मूल्य पर अच्छा प्रभाव नहीं होता है ।
6. **लाभांश संबंधी सूचना (Dividend related information):** लाभांश की घोषणा तथा भुगतान संबंधी सूचना संस्था की वित्तीय सुदृढ़ता तथा लाभदायकता के बारे में अवगत कराती है । लाभांश अनुपात में वृद्धि की संस्था की संभावित अर्जनों में स्थायी वृद्धि का संकेत देती है । इस प्रकार लाभांश नीति में परिवर्तन अंश के मूल्य को प्रभावित करता है ।

इस प्रकार अंशधारी लाभांश एवं प्रतिधारण से उत्पन्न पूँजीलाभ में उदासीन नहीं रहते हैं । संस्था की लाभांश नीति निश्चित रूप से संस्था के मूल्य को प्रभावित करती है । मूलभूत मान्यताएँ केवल काल्पनिक है, इसलिए उपर्युक्त सिद्धान्त वर्तमान परिस्थितियों में अनुपयुक्त है ।

14.11 बोनस अंश के रूप में लाभांश

कम्पनी के पास प्रारंभ में पर्याप्त मात्रा में तरलता का अभाव एवं अर्जित आय में से भावी विनियोग की आवश्यकता के मध्य कई बार कम्पनी लाभांश का वितरण नकद में नहीं करती है । भविष्य में लाभांश कोष में पर्याप्त उपलब्धता होने पर लाभांश नकद में नहीं दिया गया, लाभ के बदले अंश निर्गमन कर दिये जाते हैं उन्हें बोनस अंश कहा जाता है ।

सामान्यत: निम्नलिखित परिस्थितियों में बोनस अंश निर्गमित किये जाते हैं :-

1. जब कम्पनी के पास लाभांश वितरण हेतु तरल साधनों का अभाव हो ।
2. जब पूँजी की तुलना में संचय में अत्यधिक राशि जमा हो गयी हो, अर्थात् व्यवसाय में लगी हुई प्रभावशाली पूँजी व समस्त अंश पूँजी में काफी अंतर होने से पूंजी संरचना के विषय में सही व शुद्ध ज्ञान प्राप्त न हों सके ।
3. जब अंशों का बाजार मूल्य अत्यधिक ऊँचा हो गया हो, जिसके कारण उनका क्रय-विक्रय सामान्य रूप से न हो रहा हो।
4. जब कम्पनी की उच्च लाभांश दर को सामान्य प्रत्याय दर के समकक्ष लाना हो ताकि मालिकों व श्रमिकों के मध्य संबंध अच्छे बने रहें ।

बोनस अंश निर्गमन से लाभ (Advantages of Bonus Shares)

1. लाभ का वितरण होने के बावजूद कम्पनी की तरलता स्थिति पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है ।
2. यदि अंशधारी चाहे तो बोनस अंश को बाजार में बेचकर नकद राशि प्राप्त कर सकता है।
3. लाभांश दर में प्रत्यक्ष: वृद्धि नहीं होने से श्रमिक स्वामी संबंध अच्छे बने रहते हैं ।

4. अंशधारियों को लाभांश की दर चाहे वही मिलें तो पूर्व में मिल रही थी किन्तु लाभांश की कुल रकम मूल विनियोग लागत के प्रतिशत के रूप में अधिक होती है अत: अंशधारी संतुष्ट रहते है ।
5. कम्पनी की अभिदत्त अंश पूंजी व स्थायी सम्पत्तियों के अनुपात के अंतर को कम किया जा सकता है ।
6. पूंजी संरचना सही होने से चिट्ठा अधिक संतुलित रूप प्रस्तुत करता है ।
7. स्कंध लाभांश के रूप में अंश वितरित कर देने से पूंजी निर्गमन के विभिन्न व्यय नहीं करने पड़ते हैं ।

बोनस निर्गमन से हानियाँ (Disadvantages of Bonus Shares)

1. पूँजीगत बोनस घोषित होने से कम्पनी के अंशों में सट्टे को बढ़ावा मिलता है ।
2. यदि भविष्य में लाभ आशा के अनुरूप नहीं बढ़ते हैं तो कम्पनी के लिए लाभांश की विद्यमान दर को कायम रखना कठिन होने से अंशों के बाजार मूल्य में कमी आ सकती है ।
3. बोनस निर्गमन के तुरन्त पश्चात् प्रति अंश मूल्य में अंशों की संख्या बढ़ने के कारण गिरता है ।
4. यदि कम्पनी भविष्य में अपनी लाभांश की दर को कायम न रख सकी तो कम्पनी की प्रतिष्ठा गिर जायेगी ।

बोनस अंश निर्गमन के प्रभाव (Effects of Issue of Bonus Dividend) :

1. निर्गमित अंशों की संख्या में वृद्धि हो जाती है ।
2. स्वामी पूँजी की राशि पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है ।
3. प्रति अंश आय (Earning Per Share) बोनस अंश निर्गमन के अनुपात में गिर जाती है ।

14.12 तकनीकी शब्दावली

लाभांश (Dividend) : लाभ का वह भाग जो अंशधारियों में बंटने के लिए नियत किया जाता है ।

अधिमान अंश लाभांश (Preference Share Dividend) वह लाभांश जो अधिमान अंशधारियों को चुकाया जाता है ।

समता अंश लाभांश (Equity Share Dividend) वह लाभांश जो समता अंशधारियों को चुकाया जाता है ।

अन्तरिम लाभांश (Interim Dividend) दो वार्षिक सभाओं के मध्य संचालक मण्डल द्वारा घोषित लाभांश ।

अंतिम लाभांश (Final Dividend) जो अंशधारियों को चुकाने के लिए साधारण सभा में घोषित किया जाता है ।

नकद लाभांश (Cash Dividend) जिसका नकद में भुगतान किया जाता हो ।

बोनस अंश (Bonus Share) लाभांश नकद भुगतान न कर अंश के रूप में दिया गया हो तो ऐसे अंश बोनस अंश कहलाते हैं ।

कठोर लाभांश नीति (Conservative Dividend Policy) जिसमें अंशधारियों को लाभांश कम वितरण कर अधिकांश भाग पुर्नविनियोजित किया जाता है ।

उदार लाभांश नीति (Liberal Dividend Policy) अर्जित लाभों का अधिकांश भाग अंशधारियों को वितरित कर दिया जाता है ।

स्थिर लाभांश नीति (Stable Dividend Policy) जिसमें प्रति वर्ष वितरित किये जाने वाले लाभांश में एक रूपता हो ।

14.14 स्वपरख प्रश्न

1. लाभांश क्या है?
2. लाभांश नीति क्या होती है?
3. लाभांश कितने प्रकार से वितरित किया जा सकता है?
4. कठोर एवं उदार लाभांश नीति का तुलनात्मक विवेचन कीजिए ।
5. स्थिर लाभांश नीति के लाभ बताइये ।
6. लाभांश नीति के प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए ।
7. बोनस अंश क्या है? बोनस अंश निर्गमन के प्रभावों की विवेचना कीजिए ।
8. लाभांश नीति का अर्थ बताइये । लाभांश नीति को प्रभावित करने वाले प्रमुख तत्त्वों का वर्णन कीजिए ।
9. लाभांश नीति में वाल्टर एवं गॉर्डन प्रमेय का वर्णन कीजिए ।
10. मोदी ग्लियानी एवं मिलर प्रमेय का सूत्र दीजिए ।
11. एक कम्पनी 10 रू. प्रति अंश अर्जित करती है, इसका 20% पर पूंजीकरण किया गया है और विनियोजन पर प्रत्याय दर 15% है । वाल्टर प्रतिमान का उपयोग करते हुए (i) अनुकूलतम भुगतान अनुपात तथा (ii) इस भुगतान पर प्रति अंश मूल्य ज्ञात कीजिए ।
12. एक कम्पनी 5000000 रू. की समता पूंजी के साथ प्रारंभ की गयी थी अन्य सूचनाएं निम्न प्रकार हैं :-

    कम्पनी की आय 500000 रू०

    लाभांश भुगतान 400000 रू०

    मूल्य आय अनुपात 12.5

    वाल्टर सूत्र का प्रयोग करते हुए बताइये कि लाभांश भुगतान अनुपात अनुकूल है ।
13. एक कम्पनी के संबंध में निम्न सूचनायें हैं :-

    विनियोग पर प्रत्याय की दर r = (i) 20% (ii) 15% (iii) 20%

    पूँजी लागत - (K) = 15%

    प्रति अंश अर्जन (E) = 10 रू

यदि लाभांश भुगतान (i)10% (ii) 80% एवं (iii) 50% हो तो गॉर्डन प्रतिमान का उपयोग करते हुए कम्पनी के अंशों का मूल्य ज्ञात कीजिए ।

14. एक कम्पनी की अंश पूंजी 5000000 रू. है अंश का निर्गमन मूल्य 10 रू. प्रति अंश है । बाजार में कम्पनी का अंश 100 रू. में बिक रहा है । कम्पनी 5 रू. प्रति अंश लाभांश प्रदान करने पर विचार कर रही है । पूँजीकरण की दर 10% है । वर्ष के अंत में कम्पनी के अंश का मूल्य ज्ञात कीजिए (i) यदि लाभांश घोषित किया जाता है (ii) यदि लाभांश घोषित नहीं किया जाता है ।

14.15 संदर्भ ग्रंथ :

1. Financial Management : S.C. Kuchhal
2. Financial Management : Prasanna Chandra
3. Financial Management : I.M. Pandey

इकाई - 15 : लाभांश निर्णयन एवं नियोजन (Dividend Decision & Planning)

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 लाभांश निर्णय-अर्थ
15.3 लाभांश निर्णयन के उद्देश्य
15.4 लाभांश निर्णयन की विचारधारा
15.5 लाभांश निर्णयन को प्रभावित करने वाले प्रमुख बिन्दु
15.6 भारतीय कम्पनी अधिनियम में लाभांश वितरण संबंधी प्रावधान
15.7 बोनस अंश के रूप में लाभांश वितरण
15.8 तकनीकी शब्दावली
15.9 स्वपरख प्रश्न
15.10 संदर्भ ग्रंथ

15.0 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के पश्चात् आप समझ पायेंगे

- लाभांश निर्णयन क्या होता है?
- लाभांश निर्णयन के प्रमुख उद्देश्य क्या होते है?
- लाभांश निर्णयन के संदर्भ में कौन-कौनसी विचारधारायें है?
- लाभांश निर्णयन को कौन-कौन से तत्व प्रभावित करते हैं?
- भारतीय कम्पनी अधिनियम में इस संदर्भ में क्या प्रावधान है?
- बोनस अंश के रूप में लाभांश वितरण के संदर्भ में क्या प्रावधान है?

15.1 प्रस्तावना

किसी भी संस्था का प्रमुख उद्देश्य अधिकतम लाभ अर्जन करने के साथ-साथ संस्था की सम्पदा का मूल्य अधिकतम करना होता है । जब संस्था पर्याप्त मात्रा में लाभांश अर्जित करती है तो वित्तीय प्रबंधन का यह दायित्व हो जाता है कि अंशधारियों को संतुष्ट करने के लिए वह इस प्रकार से लाभांश वितरण संबंधी निर्णयन करें जिससे एक ओर उन्हें पर्याप्त मात्रा में लाभांश प्रदान किया जा सके तथा दूसरी ओर संस्था की सम्पदा का मूल्य भी अधिकतम हो, इन दोनों उद्देश्यों में संतुलन आवश्यक है । यदि अर्जित लाभों में से अधिकतम भाग लाभांश के रूप में वितरित कर दिया जाता है तो अंशधारियों को संतुष्ट तो होगी एवं अल्पकाल के लिए अंश का बाजार मूल्य भी बढ़ जायेगा, परन्तु कम्पनी के पास यदि पर्याप्त मात्रा में कोष उपलब्ध न हो तो हो सकता है संस्था के अंशों के मूल्य पर दीर्घकाल में विपरीत प्रभाव पड़ेगा ।

लाभांश वितरण निर्णयन के लिए संस्था की पर्याप्त मात्रा में लाभांश प्राप्त होना ही आवश्यक नही है साथ ही यह भी आवश्यक है कि लाभांश वितरण हेतु कम्पनी के पास पर्याप्त तरलता भी उपलब्ध है अथवा नहीं । क्योंकि जब लाभांश का वितरण किया जाता है इससे रोकड़ का बहिर्वाह होता है । जिससे आन्तरिक स्तर पर रोकड़ की कमी होने की संभावना हो सकती है अर्थात् लाभांश वितरण रोकड़ की स्थिति को प्रभावित करता है । इस प्रकार लाभांश निर्णयन वित्तीय निर्णयन से प्रभावित होता है कि रोकड़ के बहिर्वाह से कही वित्तीय संकट तो उत्पन्न नहीं होगा ।

15.2 लाभांश निर्णयन - अर्थ

अंश पूंजी दो भागों में विभक्त होती है (1) अधिमान अंश एवं (2) समता अंश । अधिमान अंशों को एक निश्चित प्रतिशत में निर्गमन में उल्लेखित शर्तों के अनुरूप लाभांश का वितरण किया जाता है परन्तु समता अंशधारियों को कितने लाभांश का वितरण किया जाय यह संचालक मण्डल द्वारा निर्धारित किया जाता है । संचालक संस्था की आन्तरिक एवं बाह्य परिस्थितियों के मध्यनजर यह निर्धारित करता है कि लाभांश कितना एवं किस रूप में वितरित किया जाय अथवा लाभांश वितरित किया जाये या नहीं । जब संस्था तेजी से विकास कर रही हो तथा विस्तार योजनाओं के लिए पर्याप्त धन की आवश्यकता हों तो कितने लाभांश का वितरण किया जाय यह निर्णय बड़ा जटिल हो जाता है, क्योंकि यदि लाभांश वितरित कर दिया जाता है तो एक ओर तरलता की कमी हो जाती है तथा दूसरी ओर आवश्यक वित्तीय संसाधनों के लिए बाह्य स्त्रोतों जैसे अतिरिक्त पूंजी का निर्गमन, ऋण पत्रों का निर्गमन, अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन ऋण बॉण्डस आदि पर निर्भर रहना पड़ता है । जिनमें उपयोग के बदले लाभांश अथवा पूंजी पर ब्याज आदि चुकाना पड़ता है इसीलिए सामान्यत: लाभांश का एक बड़ा भाग प्रतिधारित आय के रूप में रखा जाता है ।

यदि अंशधारियों को लाभांश अधिक वितरित किया जाता है तो अंशों का बाजार मूल्य इससे प्रभावित होता है । लाभांश दर एवं अंशों के बाजार मूल्य में सीधा संबंध होता है अर्थात् यदि लाभांश वितरण दर ऊंची हो तो बाजार मूल्य में वृद्धि की प्रवृत्ति होगी इसके विपरीत यदि लाभांश वितरण दर में कमी हो तो बाजार मूल्य नीचा होगा । इस संबंध के कारण सामान्यत:

अंशधारी यह पसन्द करते है कि उन्हें वर्तमान में अच्छा लाभांश प्राप्त हों । लाभांश वितरण दर एवं अंश के मूल्य के संबंध को निम्न रेखाचित्र से समझा सकता है-

उपरोक्त अवधारणा अनिश्चित पूंजी बाजार पर लागू होती है । अत: फर्म को अनिश्चितता की स्थिति में यदि अंशों के मूल्य के माध्यम से सम्पदा का मूल्य अधिकतम करने की नीति अपनानी हो तो वह लाभांश दर ऊंची रखती है । जिससे अंशों के बाजार मूल्य बढ़ जाते है । ऊंची दर से लाभांश वितरण करने से अंशों का बाजार मूल्य तो बढ़ सकता है परन्तु यदि कम्पनी के पास पर्याप्त मात्रा में कोष न हो तो उसकी शुद्ध सम्पदा कम रहती है । जिससे दीर्घकाल में विशेष रूप से उन परिस्थितियों में जब कम्पनी को विस्तार या अनिश्चितकालीन परिस्थितियों का सामना करने हेतु अतिरिक्त पूंजी नियोजन या ऋण लेना पड़े तो पूंजी की लागत में वृद्धि होने से वित्तीय लाभांश कम हो जाता है । इससे भविष्य में बाजार में अंशों के मूल्यों में कमी हो सकती है । इसलिए प्रबंधकों को लाभांश वितरण संबंधी निर्णयन में संतुलित निर्णय करना होता है, जिससे दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताओं एवं सम्पदा के मूल्य को अधिकतम करने के उद्देश्य में संतुलन बना रहें ।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि लाभांश वितरण संबंधी निर्णयन वह निर्णय है जिसमें वितरण योग्य लाभांश के संबंधी में यह निर्णय लिया जाता है कि लाभांश का कितना भाग किस रूप में अंशधारियों को वितरित किया जाये एवं कितना विभिन्न कोषों में हस्तान्तरित कर प्रतिधारित आय के रूप में रोका जाये ।

15.3 लाभांश निर्णय के उद्देश्य (Objects of Dividend Decision)

लाभांश निर्णयन निम्न उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक होते हैं :-

1. **अंशधारियों की महत्वाकांक्षा (expectation of Share Holders)** - सामान्यत: जब कोई अंशधारी किसी संस्था में पूंजी विनियोजित करता है तो उसकी यह महत्वाकांक्षा रहती है कि उसे विनियोजित पूंजी पर पर्याप्त प्रत्याय मिले, इस महत्वाकांक्षा की पूर्ति में लाभांश वितरण संबंधी निर्णयन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है ।
2. **सम्पदा अधिकतम करना (Maximization of wealth)** - लाभांश वितरण निर्णयन संस्था की सम्पदा के मूल्य को अधिकतम करने के उद्देश्य की पूर्ति करता है । यह इस निर्णयन में सहायक होता है कि किस प्रकार संस्था की शुद्ध सम्पदा में भी पर्याप्त वृद्धि होती रहे साथ ही अंशों का बाजार मूल्य भी बढ़ता रहे ।
3. **अंशों के बाजार मूल्य में स्थायित्व (Stability of Share Prices in Market) -** संतुलित लाभांश निर्णयन अंशों के बाजार मूल्य को स्थायित्व प्रदान करता है । लाभांश वितरण एवं अंशों के बाजार मूल्य में सीधा संबंधी होता है । लेकिन यह देखना होता है कि अल्पकाल में मूल्य वृद्धि के साथ-साथ दीर्घकाल के मूल्यों में भी स्थायित्व रहें ।
4. **सरकार की कर नीति (Taxation Policy of Government)** - लाभांश वितरण संबंधी निर्णयन सरकारी कर नीति के अनुरूप हो यह आवश्यक है । जिससे संस्था पर न्यूनतम करा रोपण में प्रभाव पडे ।
5. **भावी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति (Future Need)** - यदि निकट भविष्य में वित्तीय आवश्यकता हो तो लाभांश वितरण की दर कम रखकर उपलब्ध कोषों का पुनर्विनियोजन कर भावी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है । यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि भावी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कोष किस दर पर उपलब्ध

हो सकते हैं? यदि कोषों की पूंजी की लागत कम हो तो लाभांश वितरण कर अंशधारियों को संतुष्ट करना चाहिये ।

6. **पर्याप्त मात्रा (Debt Capacity)** - पर्याप्त मात्रा में लाभांश प्राप्त होने हो एवं उससे संबंधी संतुलित दर अपनाने पर कम्पनी की साख में पर्याप्त वृद्धि होती है, जिससे संस्था की ऋण क्षमता में वृद्धि होती है एवं संस्था आवश्यकतानुसार ऋण प्राप्त कर सकती है।

15.4 लाभांश निर्णयन की विचारधारा (Concept of Dividend Decision)

कर चुकाने के पश्चात् जो लाभ बचता है उसके संबंध में एक वित्तीय प्रबंधक को तीन प्रमुख निर्णय करने होते हैं:-

i. कितना भाग लाभांश के रूप में वितरित किया जाये ?

ii. कितना भाग भावी विनियोग या हानियों से बचने के लिए प्रतिधारित किया जाय? एवं

iii. प्रतिधारित अर्जनों को किस प्रकार विनियोजित किया जाय

प्रतिधारित अर्जनों को स्वयं के व्यवसाय में सम्पत्ति आदि में यदि विनियोजित किया जाता है तो यह विश्लेषण करना होगा कि उस विनियोजित राशि से भावी प्रत्याय की क्या संभावना है एवं यदि वर्तमान में विनियोजित न करके भविष्य हेतु कोष संतुलित रखे जाने है तो उन्हें कहा विनियोजित किया जाय, यह निर्णयन महत्वपूर्ण होता है । क्योंकि यह निर्णय भी संस्था को शुद्ध सम्पदा मूल्य को प्रभावित करता है । लाभांश निर्णयन विश्लेषण में निम्न महत्वपूर्ण निर्णय लेने होते है:-

1. क्या लाभांश का भुगतान किया जाये?
2. क्या लाभों का पुनर्विनियोग कम्पनी में ही किया जाना है?
3. यदि लाभांश का भुगतान किया जाता है तो कितनी मात्रा में?
4. लाभांश का भुगतान कब किया जाये?
5. लाभांश का भुगतान किस रूप में किया जाये?

1. **क्या लाभांश का भुगतान किया जाये-** सर्वप्रथम संचालक मण्डल को यह निर्णय लेना होता है कि लाभांश का भुगतान किया जाय अथवा नहीं । यह निर्णय लाभ की मात्रा की पर्याप्तता तथा निरन्तरता पर निर्भर करता है । यदि लाभ पर्याप्त न हों या उसमें निरन्तरता न हो तो लाभांश वितरण नहीं करना चाहिए । क्योंकि यदि एक बार लाभांश वितरण घोषित कर दिया जाता है एवं आने वाले वर्षों में लाभ घोषित नहीं किया जाता है तो इसमें विनियोजन कर्त्ताओं एवं अंशधारियों में अविश्वास की भावना उत्पन्न हो जाती है साथ ही कम्पनी में अंशों के बाजार मूल्यों में अस्थिरता का दौर चल सकता है ।
2. **क्या लाभों का पुनर्विनियोग कम्पनी में ही किया जाना है -** संस्था में ही लाभों के पुनर्विनियोग का अर्थ है भावी आवश्यकताओं एवं जोखिमों से सुरक्षा हेतु लाभों का वितरण न कर लाभ रोक लिये जाते है, जिन्हें संस्था में विस्तार, विकास एवं नवीन परियोजनाओं का प्रतिस्थापन परियोजनाओं में उपयोग में लिया जाता है । यह कम्पनी के आन्तरिक

स्त्रोतों में एक महत्वपूर्ण स्त्रोत माना जाता है । किसी भी कम्पनी की प्रारंभिक अवस्था में यह निर्णय ठीक रहता है परन्तु प्रबंधक यदि निरन्तर लाभ वितरण के संबंध में यही निर्णय लेते रहते हैं तो अंशधारियों में असंतोष उत्पन्न होता है इससे अंशों के बाजार मूल्य में कमी आती है तथा शुद्ध सम्पदा पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है ।

3. **यदि लाभांश का भुगतान किया जाता है तो कितनी मात्रा में** - व्यवहार में यह आवश्यक है लाभांश दर स्थिर एवं वृद्धिशील हों । चाहे प्रारंभ में कम दर से लाभांश वितरित किया जाय फिर लाभ में वृद्धि के साथ-साथ इसमें भी वृद्धि होती रहे । उदाहरणार्थ प्रारंभ में यदि लाभांश दर 10% घोषित की गयी है लाभांश में वृद्धि के साथ-साथ हर वर्ष इसमें 2%, 5%, 10% वृद्धि की जाती है तो इसमें अंशधारियों में संतुष्टि रहती है । परन्तु इसके विपरीत यदि प्रारंभ में लाभांश दर 20% घोषित कर दी जाती है तथा आने वाले वर्षों में इसे कम किया जाता है तो यह प्रवृत्ति कम्पनी की छवि पर विपरीत प्रभाव डालती है, अत: कितनी मात्रा में लाभांश घोषित किया जाय यह निर्णय अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।
4. **लाभांश का भुगतान कब किया जाये- सामान्यत**: लाभांश का भुगतान वित्तीय वर्ष के अन्त में संचालक मण्डल का लाभांश वितरण संबंधी प्रस्ताव वार्षिक सभा में पारित होने के पश्चात् ही किया जाता है । परन्तु उन परिस्थितियों में जब लाभ पर्याप्त हो तो अन्तरिम लाभांश के रूप में भी वर्ष के बीच में लाभांश की घोषणा एवं भुगतान किया जा सकता है । यह उन कम्पनियों द्वारा किया जाता है जिनकी आर्थिक एवं वित्तीय स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ हों ।
5. **लाभांश का भुगतान किस रूप में किया जाये-** लाभांश का भुगतान नकद में, बोनस अंश के रूप में, बॉण्ड एवं प्रोमेसैरी नोट के रूप में एवं सम्पत्ति के भाग के रूप में किया जा सकता है । भारत में नकद एवं बोनस अंश के रूप में लाभांश वितरित किया जाता है । यह निर्णय कम्पनी की तरल दशा में निर्भर करता है । कई बार ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि कम्पनी के पास लाभांश तो पर्याप्त है परन्तु तरलता पर्याप्त मात्रा में नहीं हो तो इस स्थिति में कम्पनी नकद के रूप में लाभांश वितरित नहीं करती हे । इस स्थिति में बोनस अंश निर्गमित किया जाना वित्तीय दृष्टिकोण से ज्यादा उचित होता है ।

15.5 लाभांश निर्णयन को प्रभावित करने वाले प्रमुख बिन्दु (Basic issues involved in Dividend Decision)

प्रत्येक कम्पनी के संचालकों का यही प्रयत्न होता है कि यदि पर्याप्त लाभ हो, तो वह अपने अंशधारियों को उचित लाभांश घोषित करते रहे । संचालकों द्वारा इस प्रकार से लाभांश निर्णयन किया जाना चाहिये, जिससे कंपनी के अर्जनों या लाभों का सर्वश्रेष्ठ प्रयोग संभव हो सके । ए.एस. डेविंग ने बताया है कि "शुद्ध अर्जने, जो अंशधारियों में वितरित की जानी चाहिये, वे मुख्यत: कंपनी की साख सुदृढ़ करने के लिए संचित कोषों की आवश्यकता, कार्यशील पूंजी में वृद्धि, विस्तार संबंधी परियोजनाओं की पूर्ति अथवा भावी खतरों की सदिग्धताओं की व्यवस्था पर निर्भर करती है ।"

लाभांश निर्णयन को प्रभावित करने वाले तत्वों को दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है:-

I. **आन्तरिक तत्व (Internal Factors)**

1. **कम्पनी की आयु (Age of Company)** - सामान्यत: नयी स्थापित कंपनियों को अपने विकास के कार्यो एवं विस्तार योजना के लिए वित्त की आवश्यकता होती है । अत: वे अंशधारियों को नियमित रूप से उचित लाभांश वितरित नहीं कर सकतीं । इसके विपरीत पुरानी कम्पनियां स्थायी लाभांश नीति को अपनाकर नियमित रूप से अंशधारियों को लाभांश का भुगतान करती है ।
2. **व्यवसाय की प्रकृति (Nature of Business)** - कम्पनी के व्यवसाय की प्रकृति लाभांश निर्णय को प्रभावित करती है । निश्चित एवं नियमित आय वाली कम्पनियां नियमित लाभांश नीति को अपना सकती है । इसके विपरित ऐसी कम्पनियां जिनकी आय अनियमित है, स्थिर लाभांश की नीति को नहीं अपना सकती ।
3. **स्वामित्व का ढांचा (Composition of Ownership) -** यदि कम्पनी का स्वामित्व कम लोगों के हाथों में है तो वे कुछ वर्षा के लिए लाभांश वितरित नहीं करने की नीति अपना सकते है । क्योंकि वर्तमान आय के अधिकांश भाग का पुनर्विनियोजन करने से भविष्य में उन्हीं को लाभ मिलेगा । किन्तु यदि कम्पनी के अंशधारियों की संख्या अधिक है तो ऐसी दशा में वे नियमित लाभांश वितरण संबंधी निर्णय लेंगे ।
4. **पुरानी लाभांश दर (Old Dividend Rates)** - लाभांश की दर में स्थिरता बनाये रखने से कम्पनी के अंशों के बाजार मूल्य भी स्थिर बने रहते हैं । अत: यथा संभव कम्पनी द्वारा पिछले वर्षों की लाभांश दर से कम दर पर लाभांश घोषित नहीं किया जाना चाहिये।
5. **ऋण शोधन हेतु कोषों की आवश्यकता (Need of funds for Redemption of Debts)** - ऋणों की अदायगी या तो नये ऋण को लेकर की जा सकती है या फिर कम्पनी की प्रतिधारित (Retained) आय द्वारा संभव होती है । यदि संचालक दूसरे विकल्प को अपनाते हैं तो कम्पनी के लाभों के अधिकांश भाग को इस उद्देश्य के लिये रोकना होगा एवं कम्पनी को कठोर लाभांश नीति अपनानी होगी ।
6. **तरलता स्थिति (Liquidity Position) -** कम्पनी की तरलता स्थिति भी लाभांश निर्णयन को प्रभावित करती है । यदि कम्पनी की तरलता स्थिति अच्छी है तो वह पर्याप्त लाभ अर्जित किये जाने पर अंशधारियों को नकद लाभांश का भुगतान करती है । इसके विपरीत यदि कम्पनी की तरलता स्थिति खराब है तो ऐसी दशा में नकद लाभांश न देकर स्टॉक लाभांश बांटा जाता है ।
7. **अंशधारियों की प्रत्याशा (Desire of Shareholders)** - वैधानिक दृष्टि से संचालक कम्पनी की आय को अपने विकल्प से विभिन्न उद्देश्यों के लिये उपयोग में लेने के लिए निर्णय कर सकते है, परन्तु अंशधारियों की प्रत्याशा के अनुसार उन्हें इतना लाभांश अवश्य दिया जाना चाहिये, जो उनकी प्रत्याशा को देखते हुए पर्याप्त हो । यदि संचालक ऐसा नहीं करते हैं तो भविष्य में अतिरिक्त वित्त को एकत्रित करने में कठिनाई होती है ।
8. **अतिरिक्त पूँजी की आवश्यकता (Needs for additional Capital)** - वित्तीय स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिये कम्पनियां आय के एक भाग को पुनर्विनियोजन करने के उद्देश्य

से प्रतिधारित करती है । यदि कम्पनियों को विकास एवं विस्तार योजनाओं के लिये अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता पड़ती है तो वे लाभांश वितरण कम करेंगी, ताकि अतिरिक्त पूँजी की व्यवस्था आन्तरिक साधनों से की जा सके ।

9. **पूँजी बाजार में पहुंच (Access to the Capital Market)** - यदि किसी कम्पनी की तरल स्थिति (Liquid Position) अच्छी नहीं है परन्तु पूँजी बाजार से ऋण या समता को एकत्रित करने में समर्थ है तो लाभांश भुगतान कर सकती है । बड़ी व सुस्थापित कम्पनियां स्थिर आय होने के कारण सरलतापूर्वक पूँजी बाजार से वित्त एकत्रित करने की स्थिति में होती है, अत: लाभांश वितरण निर्णयन में कठिनाई नहीं होती है । इसके विपरीत छोटी, नई या जोखिम वाले व्यवसाय में संलग्न कम्पनियों को बाहरी स्त्रोतों से पूँजी एकत्रित करने में कठिनाई होती है । अत: प्रबन्धकों द्वारा वित्तीय परियोजनाओं की वित्त पूर्ति के लिए लाभ के अधिकांश भाग को प्रतिधारित कर लिया जाता है ।
10. **ऋण अनुबंधों में प्रतिबन्ध (Restriction in loan Agreement)** - ऋण सम्बन्धी अनुबन्ध भी लाभांश निर्णयन को प्रभावित करते है । प्राय: ऋणदाता अपने हितों की सुरक्षा के लिए लाभांश के भुगतान पर प्रतिबन्ध लगा देते हैं । कम्पनी के संचालक ऋणदाताओं के साथ संविदा करते समय इस बात पर सहमत हो सकते हैं कि जब तक कुछ शर्तों को पूरा न कर दिया जाए तब तक लाभांश का भुगतान किया ही नही जायेगा अथवा एक सीमित धन राशि तक ही लाभांश का भुगतान किया जायेगा यदि कम्पनी इस प्रकार के प्रतिबन्धों के अधीन है तो निश्चित रूप से लाभांश सम्बन्धी निर्णय लेने के लिए संचालकों के अधिकार सीमित होते हैं ।
11. **विनियोजन अवसर (Investment Opportunities) -** यदि निकट भविष्य में विनियोग अवसर पर्याप्त हो तो कम्पनी अपनी आय का अधिकांश भाग लाभांश के रूप में वितरित न करके संचय के रूप में प्रतिधारित कर सकती है । किन्तु यदि विनियोग अवसर निरन्तर उपलब्ध नहीं होते तो ऊंची दर से लाभांश वितरित कर सकती है । ऐसा करने से कम्पनी की साख एवं ख्याति में वृद्धि होगी और विनियोग अवसर प्राप्त होने पर तत्काल ही ऋण या समता द्वारा पूँजी एकत्रित करना भी संभव होता है ।
12. **कम्पनी के लाभों की प्रवृति (Trend of Company's Profit)** - कम्पनी को प्राप्त लाभों की प्रवृति का अध्ययन किया जाना आवश्यक है, क्योंकि लाभांश का भुगतान चालू या गत वर्षों के लाभों में से किया जाता है । अत: कम्पनी द्वारा लाभांश का निर्धारण करते समय पिछले वर्षों के लाभों की प्रवृति को आधार मानकर लाभांश निर्धारित किया जाना चाहिये । लाभ पर्याप्त मात्रा में होने पर अधिक लाभांश वितरण की नीति बनाई जा सकती है ।
13. **आय में स्थायित्व (Stability in Income)** - कम्पनी की आय में स्थायित्व होने पर लाभांश वितरण में नियमितता व अधिकता होती है, साथ ही आय में अस्थिरता होने पर कम्पनियां लाभों को संचित कोषों में अधिक रखती है । ताकि भविष्य में लाभ कम होने पर भी उक्त कोषों से अंशधारियों में लाभांश वितरित किया जा सके ।

14. **सुरक्षित कोषों की आवश्यकता (Needs of Security Funds) -** विकास एवं भावी विस्तार की योजना के आधार पर सुरक्षित कोषों की आवश्यकता का अनुमान लगाया जाता है । यदि सुरक्षित कोष अधिक रखे जायेंगे तो लाभांश वितरण कम होगा । इसके विपरीत सुरक्षित कोष कम होने पर लाभांश वितरण अधिक किया जायेगा ।

II. बाह्य तत्व (External Factors)

1. **पूँजी बाजार की दशा (State of Capital Market)** - यदि पूँजी बाजार की दशा अनुकूल है अर्थात् वित्त प्राप्त में कोई कठिनाई नहीं हो रही है तो ऐसी दशा में कम्पनी को अपनी आय के अधिकांश भाग को लाभांश के रूप में वितरित कर देना चाहिये । इसके विपरीत यदि ।ऽत्ताय संस्थाओं से कठोर शर्तों पर वित्त प्राप्त होता है एवं पूँजी बाजार की दशा प्रतिकूल हो तो कम्पनी को लाभांश की कठोर नीति को अपनाना चाहिये एवं लाभ के अधिकांश भाग को पुनर्विनियोग के लिए प्रतिधारित करना चाहिए।
2. **सरकारी नीतियां (Government Policies)** - सरकार की आर्थिक, औद्योगिक, श्रम, नियन्त्रण तथा अन्य नीतियों का कम्पनी की लाभार्जन क्षमता पर प्रभाव पड़ सकता है एवं इससे लाभांश निर्णयन प्रभावित होते है । कम्पनी की लाभांश नीति भी इन्हीं परिवर्तनों के अनुरूप निर्धारित की जायेगी । इसी प्रकार कभी-कभी सरकार द्वारा किसी विशेष उद्योग में संलग्न उपक्रमों के द्वारा घोषित लाभांश को सीमित भी कद दिया जाता है । प्रशुल्क नीति भी लाभांश नीति को प्रभावित करती है ।
3. **वैधानिक प्रतिबन्ध (Legal Restrictions) -** लाभांश नीति का निर्धारण वैधानिक प्रतिबन्धों के अधीन किया जाता है वैधानिक रूप से संचालक लाभांश घोषित करने के लिए बाध्य नहीं होते हैं । भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 205 (1) के अन्तर्गत ह्रास की व्यवस्था करने के पश्चात् वर्तमान या पूर्व वर्ष के लाभों में से ही लाभांश की घोषणा या भुगतान किया जा सकता है । विशेष परिस्थितियों में जनहित में केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार है कि वह किसी कम्पनी को ह्रास की व्यवस्था किये बिना ही किसी वित्तीय वर्ष में लाभांश बांटने की अनुमति दे सकती है ।
4. **कर नीति (Tax Policy) -** लाभांश निर्णय पर कर नीति का भी प्रभाव पड़ता है । पूँजी निर्माण की गति को बढ़ावा देने के उद्देश्य से सरकार लाभों के अधिकांश भाग को पुनर्विनियोजन करने वाली कम्पनियों को कर सम्बन्धी प्रेरणायें देती है एवं लाभ वितरणों पर अतिरिक्त करा रोपण करके भी कम्पनियों को अपनी आय के एक महत्वपूर्ण भाग को प्रतिधारित करने के लिए प्रेरित किया जाता है । यदि सरकार की कर नीति उदार है तो कंपनी अधिक मात्रा में लाभांश वितरित कर सकती है ।
5. **सामान्य आर्थिक परिस्थितियां (General Economic Conditions)** - किसी कम्पनी के व्यावसायिक कार्यों का विस्तार तथा लाभोपार्जन क्षमता एक बड़ी सीमा तक देश की सामान्य आर्थिक परिस्थितियों पर निर्भर करती है । लाभांश निर्णय इससे प्रभावित होते है । यदि मन्दी काल में कम्पनी अपनी तरल स्थिति बनाए रखने के उद्देश्य से लाभांश का भुगतान बन्द कर सकती है, वहीं समृद्धि काल (Room

Period) में कम्पनी सदैव सरल लाभांश नीति अपना सकती है । समृद्धिकाल में कम्पनियां अवसरों का लाभ उठाने के लिए इस प्रकार की लाभांश नीति अपनाती है जिससे अंशधारियों को पर्याप्त मात्रा में लाभांश उपलब्ध हों एवं सम्पदा का मूल्य भी अधिकतम हो जाय ।

6. **अन्य संस्थाओं की लाभांश नीति (Dividend Policy of Other Institutions)** - कम्पनी के समान व्यवसाय करने वाली अन्य कम्पनियाँ कितना लाभांश दे रही है । इस बात का प्रभाव भी कंपनी की लाभांश नीति पर पड़ता है । यदि अन्य कंपनियां अधिक लाभांश वितरित करती है तो अंशधारियों में असंतोष उत्पन्न होता है एवं कम्पनी की लोकप्रियता कम हो जाती है । अत: लाभांश नीति निर्धारित करते समय अन्य कम्पनियों के लाभांश वितरण का भी अध्ययन किया जाना चाहिये ।
7. **वर्तमान आर्थिक स्थिति (Present Economic Position) -** कम्पनी की लाभांश नीति कम्पनी की वर्तमान आर्थिक परिस्थितियों से भी प्रभावित होती है । यदि कंपनी की आर्थिक स्थिति अच्छी है तो लाभांश वितरण करना चाहिए इसके विपरीत परिस्थितियों में कठोर लाभांश नीति अपनानी चाहिए ।
8. **लोक मत (Public's Opinion)** - कम्पनी की लाभांश नीति पर लोक मत का भी प्रभाव पड़ता है । अत: लाभांश घोषित करते समय लोकमत को भी ध्यान में रखा जाना आवश्यक है । यह आवश्यक नहीं है कि अधिक लाभांश वितरण करने वाली कम्पनी के पक्ष में सदैव लोकमत अनुकूल हों । कई बार ऐसी कम्पनियों को आलोचनाओं का सामना करना पड़ता है । कर्मचारी अपने पारिश्रमिक में वृद्धि की मांग करने लगते है एवं उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्य में कमी की मांग एवं नियंत्रण भी बढ़ सकता है । अत: कम्पनी को संतुलित लाभांश नीति अपनानी चाहिए जिससे सभी पक्षों को संतुष्ट रखा जा सके ।
9. **व्यापार चक्रों का प्रभाव (Effect of Trade Cycles)** - व्यापार चक्रों के प्रभावों के कारण तेजी व मंदी आती रहती है । अस्थिरता होने पर कंपनी द्वारा लाभों का निश्चित प्रतिशत सुरक्षित कोषों में रखा है । जिसके परिणामस्वरूप मंदी का सामना करने में सहायक होती है और स्थिर लाभांश नीति तैयार की जा सकती है ।

15.6 भारतीय कंपनी अधिनियम में लाभांश वितरण संबंधी प्रावधान (Provision's regarding Dividend Distribution)

भारत में लाभांश की घोषणा एवं वितरण के लिए कम्पनियों को अपने अन्तर्नियमों, कम्पनी अधिनियम- 1956 की धारा 205 व 206 एवं सारणी 'अ' के नियमों का पालन करना जरूरी है । लाभांश की घोषणा करना संचालक मण्डल के निर्णय पर निर्भर करता है, अंशधारी संचालकों को लाभांश घोषित करने के लिए बाध्य नहीं कर सकते किन्तु संचालक मण्डल द्वारा रिपोर्ट में दिये गये सुझाव के आधार पर कंपनी की साधारण सभा में एक बार लाभांश की घोषणा होने के बाद लाभांश का भुगतान करना अनिवार्य हो जाता है । लाभांश घोषणा के बाद यह कम्पनी के लिए ऋण के समान हो जाता है, जिसका भुगतान प्राप्त करने का अधिकार

अंशधारियों को होता है । लाभांश के विषय में कम्पनी को अपने पार्षद सीमा नियमों एवं अन्तर्नियमों में की गई व्यवस्थाओं का पालन करना होता है ।

धारा-405: इस धारा के अनुसार लाभांश का भुगतान केवल लाभों में से ही किया जा सकता है, पूँजी में से नहीं । इस धारा में यह प्रावधान है कि कंपनी द्वारा किसी वर्ष लाभांश की घोषणा एवं भुगतान :

i. ह्रास की व्यवस्था करने एवं पिछले वर्षा के नुकसान को अपलिखित करने के बाद उस चालू लेखा वर्ष के लाभों से करना चाहिये ।
ii. गत वर्षों के लाभों, अथवा
iii. जहां केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकार ने लाभांश की प्रत्याभूति दी हो और जनहित में हो तो इसके अधीन प्राप्त होने वाली राशि से लाभांश भुगतान हो सकता है ।

धारा-205 (2) में वास्तविक लाभ की परिभाषा दी गई है । इसमें वह लाभ सम्मिलित है जो ह्रास (Depreciation) के लिए व्यवस्था करने के बाद शेष रहते हैं । हालांकि पिछले वर्षों के अवितरित लाभ को इसमें सम्मिलित किया जा सकता है, यदि उसमें से ह्रास कोष के लिए व्यवस्था कर दी गई हो । इसी प्रकार न्यूनतम लाभांश की गारण्टी के लिये केन्द्रीय अथवा राज्य सरकार द्वारा प्रदान की गई धन राशि भी वास्तविक लाभों में सम्मिलित की जाती है । विशेष परिस्थिति को छोडकर कम्पनी लाभांश केवल वास्तविक लाभों में से ही दे सकती है ।

धारा-205 (3) : इस धारा में वर्णित प्रावधानों के अनुसार लाभांश का भुगतान निम्न स्थितियों को छोड़कर नकद में किया जाना चाहिये:-

i. लाभों का पूँजीकरण करना ।
ii. कम्पनी के संचय को पूर्णदत बोनस अंशों के निर्गमन हेतु प्रयुक्त करना ।
iii. सदस्यों को पूर्व निर्गमित अंशों के अदत्त भाग का समायोजन करना ।

धारा- 206 : लाभांश का भुगतान निर्दिष्ट व्यक्तियों, यथा

i. रजिस्टर्ड अंशधारियों को या उनके बैंकर को ।
ii. यदि अंश अधिपत्र जारी किया गया हो तो उस अधिपत्र के वाहक अथवा बैंकर को किया जा सकता है ।

आयकर अधिनियम में उल्लेखित प्रावधानों के अनुसार कंपनी लाभांश पर आयकर उद्गम स्थान पर काटकर सरकार के पास जमा कराती है । यह कर कंपनी द्वारा लाभों पर दिये जाने वाले कर के अतिरिक्त है । कंपनी काटे गये आयकर का प्रमाण-पत्र अंशधारी को भेजती है । ताकि वह इस आय कर का समायोजन अपनी आय में करवा सके ।

लाभांश घोषणा के पश्चात् यदि कुछ अंशधारी लाभांश की मांग नही करते है तो इसे न मांगा गया या न चुकाया गया लाभांश (Unclaimed Dividend) कहते हैं । ऐसे लाभांश को कम्पनी संशोधन अधिनियम- 1974, जो 1 फरवरी, 1975 से लागू है, के प्रावधानों के अनुसार लाभांश घोषणा की तिथि से 42 दिन बाद, 7 दिन के अंदर एक अनुसूचित बैंक में (UnPaid Dividedn a/c….Co. Ltd./Pvt. Ltd.) के नाम से खाता खोलकर जमा कराना चाहिये ।

तीन वर्ष तक भी अंशधारियों द्वारा लाभांश न मांगने पर यह राशि केन्द्रीय सरकार को जमा करानी चाहिए ।

धारा-207 : इस धारा के अनुसार सामान्यत: घोषणा की तिथि के बाद 42 दिन के अन्दर लाभांश का भुगतान कर दिया जाना चाहिये अन्यथा दोषी व्यक्तियों के लिए 7 दिन की सजा व आर्थिक दण्ड की व्यवस्था है । इस नियम के केवल निम्नलिखित अपवाद हो सकते है :

i. किसी कानून अथवा अध्यादेश के कारण कंपनी इन्हें चुकाने की स्थिति में नहीं हों ।
ii. अंशधारी द्वारा लाभांश के भुगतान के विषय में कोई विशेष निर्देश दिये गये हो, जिनका पालन करना संभव न हो ।
iii. लाभांश चुकाये जाने के संबंध में स्वत्व संबंधी विवाद हो ।
iv. यदि ऐसे किसी कारणों से कम्पनी भुगतान न कर सकती हो, जो कम्पनी के नियन्त्रण से परे हो, और
v. सदस्य द्वारा कम्पनी को देय किसी भुगतान के लिए लाभांश की रकम जमा कर ली गई हो ।

कम्पनी पूँजी में से लाभांश का वितरण नही कर सकती, क्योंकि इससे पूँजी की राशि में कमी होती है । कम्पनी अधिनियम की धारा- 100 के अनुसार न्यायालय की आज्ञा के बिना पूँजी में कमी नही की जा सकती है । विशेष स्थिति में पूँजी लाभों (Capital gains) में से लाभांश दिया जा सकता है, किन्तु ऐसा तभी किया जा सकता है जब धारा - 105 में वर्णित अग्रलिखित शर्तें पूरी होती हो :-

i. कम्पनी के अन्तर्नियम में इस संदर्भ में प्रावधान हो ।
ii. इन लाभों की राशि कम्पनी ने वसूल कर ली हो,
iii. पिछली पूँजीगत हानियां हो तो वे समायोजित कर ली गई हों,
iv. इनके भुगतान के बाद भी कम्पनी की ऋण चुकाने की क्षमता में कमी न हो, एवं
v. समस्त सम्पत्तियों के पुनर्मूल्यांकन के बाद भी ये लाभ शेष रहते हों ।

कम्पनी के संचालक यदि जान-बूझकर हिसाब-किताब में गलत सूचनायें देकर अथवा सम्पत्तियों के मूल्यों को ऊँचा दिखाकर निकाले गये कल्पित या फर्जी लाभों (Fictitious Profits) में से लाभांश बांटते है, तो यह प्रथम दृष्टया अभियोग (Prima-Facie offence) माना जाता है और वे इसके लिए स्वयं व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी माने जाते हैं । यदि कम्पनी के सदस्य यह जानते हुए भी कि पूँजी में से लाभांश दिया जा रहा है, इसमें भाग लेते हैं तो इनसे यह रकम लौटाई जा सकती है । **निम्नलिखित दशाओं में पूंजी में से लाभांश का वितरण माना जायेगा :-**

क. स्थायी सम्पत्ति की बिक्री द्वारा प्राप्त राशि को यदि कम्पनी द्वारा लाभांश के रूप में बांट दिया गया हो ।
ख. कुछ आयगत व्ययों को पूँजीगत मानकर दिखाये गये लाभ को बांट दिया गया हो, और
ग. हानि होने पर तथा पिछले वर्षों के अवितरित लाभ नहीं होने पर भी लाभांश बांट दिया गया हो ।

लाभांश घोषित करने व उनके भुगतान का तरीका अन्तर्नियमों में स्पष्ट किया जाता है । कम्पनी अधिनियम के अनुरूप ही अन्तर्नियम तैयार किया जाता है, अत: इनका ध्यान रखना अनिवार्य है । कम्पनी के पार्षद सीमा नियमों या अर्न्तनियमों में विभाजन योग्य लाभों की व्यवस्था की गई हो तो उनका ध्यान रखा जाना चाहिए ।

धारा 85 से 94 में प्रावधान (Provision under Section 85 तो 94)

1. कम्पनी अंशधारियों को देय नकद लाभांश का भुगतान उनके रजिस्टर्ड पते पर Account Payee चैक या अधिपत्र भेजकर कर सकती है ।
2. कम्पनी द्वारा लाभांश की घोषणा वार्षिक साधारण सभा में की जाती है । लाभांश की दर संचालकों द्वारा संचालक मण्डल की बैठक में ही प्रस्तावित की जाती है । कम्पनी द्वारा घोषित किये गये लाभांश की अधिकृत व्यक्तियों को जानकारी दी जानी आवश्यक है ।
3. संयुक्त अंशधारियों की दशा में कोई भी अंशधारी लाभांश प्राप्त कर सकता है । कम्पनी के संचालक मण्डल द्वारा समय-समय पर ऐसे लाभांशों का भुगतान किया जा सकता हे, जो कम्पनी की लाभार्जन स्थिति के अनुरूप हो ।
4. संचालक मण्डल लाभांश स्वीकृति से पहले लाभों को सुरक्षित कोषों अथवा अन्य कोषों में विनियोजित कर सकता है अथवा लाभों को अगले वर्षों हेतु हस्तान्तरित कर सकता है ।
5. कम्पनी के संचालक मण्डल को यह अधिकार है कि वह किसी सदस्य को देय लाभांश राशि को रोक सकता है जो कि उस सदस्य द्वारा कंपनी को लाभों के लिए अथवा कंपनी को अंशों के संबंध में अन्य किसी रूप में देय हो ।
6. कम्पनी के अंशधारियों को उनके खरीदे गये अंशों की प्रदत्त राशि के अनुसार लाभांश दिया जायेगा । अग्रिम मांगों की राशि की गणना प्रदत्त राशि के रूप में नहों की जाती है ।
7. कम्पनी द्वारा घोषित लाभांशों पर ब्याज नहीं दिया जाता है ।

लाभांश के वितरण पर प्रतिबन्ध (Restrictions of Dividend's Distribution)

कम्पनी (संशोधन) अधिनियम-1974 :

सन् 1974 में कम्पनी अधिनियम में किये गये संशोधन के अन्तर्गत लाभांश के सम्बन्ध में कम्पनी अधिनियम-1956 की व्यवस्थाओं में पर्याप्त संशोधन किये गये । लाभांश के विषय में ये व्यवस्थाएं 1 फरवरी, 1975 से लागू की गई । **लाभांश के विषय में संशोधन मुख्यत: निम्न चार उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किये गये :**

क. तरल स्थिति (Liquid position) असंतोषजनक होने पर कम्पनियों द्वारा लाभांश घोषित करने की प्रवृत्ति को हतोत्साहित करना ।

ख. व्यवसाय की उन्नति के लिए आंतरिक साधनों के संचय को प्रोत्साहन देना,

ग. अंशधारियों को घोषित लाभांश के भुगतान को सुनिश्चित बनाना, तथा

घ. अयाचित लाभांशों **(Unclaimed dividends)** की जमा राशियों के दुरुपयोग को रोकना।

कम्पनी (संशोधन) अधिनियम-1974 में उपर्युक्त उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुए इस संबंध में हस्तलिखित प्रावधान किये गये :-

1. कम्पनी द्वारा किसी वित्तीय वर्ष के लिए अधिनियम की व्यवस्थाओं के अनुरूप ह्रास (Depreciation) के लिए प्रावधान करने के बाद बचे लाभों में से कोई लाभांश तब तक घोषित नहीं किया जायेगा, जब तक कि कम्पनी द्वारा उस वर्ष के लाभों का एक निर्धारित भाग (जो कि 10% से अधिक नहीं होगा) संचित कोष में हस्तान्तरित नहीं कर दिया जाता है । साथ ही यह भी व्यवस्था की गई कि यदि कोई कम्पनी इस निर्धारित सीमा से अधिक भाग का हस्तान्तरण संचित कोष में करना चाहती है तो वह ऐसा केन्द्रीय सरकार द्वारा इसके लिए निर्धारित नियमों के अनुसार ही कर सकेगी ।
2. विगत वर्ष अथवा विगत वर्षा के संचित लाभों में से लाभांश की घोषणा करने पर प्रतिबन्ध लगाया गया हो फिर भी यदि कोई कम्पनी ऐसे संचित कोषों में से लाभांश वितरण करना चाहती है, तो यह केवल उसी दशा में किया जा सकता है जबकि वह इस विषय में कम्पनी सरकार द्वारा निर्धारित नियमों का अनुपालन करें और इसके लिए सरकार की पूर्व अनुमति प्राप्त कर लें ।
3. लाभांशों की घोषणा के बाद 42 दिन की अवधि समाप्त हो जाने के 7 दिन के अंदर अशोधित लाभांश (Unpaid Dividend) धनराशि को किसी अनुसूचित बैंक में विशेष खाता खोलकर अशोधित लाभांश खाता (Unpaid dividends Account) के नाम से हस्तान्तरित कर देना कम्पनी के प्रबन्धकों के लिए आवश्यक होगा । इस संशोधित अधिनियम के लागू जो जाने के पहले घोषित लाभांश की अशोधित राशि यदि किसी कम्पनी में जमा थी, वह भी छः माह के अन्दर इस खाते में जमा करा देना, प्रबंधकों के लिए आवश्यक होगा । यदि कोई कम्पनी ऐसा नहीं करती है, तो वह 12% वार्षिक ब्याज इस राशि पर देने के लिए बाध्य होगी ।
4. अशोधित लाभांश खाते (Unpaid Dividend account) में जमा होने के बाद यदि तीन वर्ष तक की राशि अशोधित (Unpaid) अथवा अयाचित (unclaimed) रहती है तो इस राशि को केन्द्रीय सरकार के सामान्य राजस्व खाते (General Revenue Account) में हस्तान्तरित करना अनिवार्य होगा । इस हस्तान्तरण के साथ कम्पनी को एक विवरण भी सरकार को प्रस्तुत करना होगा, जिसमें इस प्रकार हस्तान्तरित की गई धन राशियों, उनके दावेदारों के नाम व पते तथा ऐसे दावेदारों को देय राशि आदि का पूर्ण विवरण होगा । इसके बाद ऐसे दावेदार लाभांश की देय राशि की वापसी (Refund) केन्द्रीय सरकार को आवेदन देकर ही प्राप्त कर सकेंगे । सरकार द्वारा उनके दावों पर विचार करके संतुष्ट होने पर उन्हें ऐसी राशि को राजस्व की वापसी (refund of revenue) की भांति अदा कर सकती है ।

इस प्रकार 1974 में किये गये संशोधन में प्रमुख रूप से निम्न चार व्यवस्थाओं का समावेश किया गया है -

क. लाभों का एक न्यूनतम भाग संचित लाभों में से हस्तान्तरण की व्यवस्था ।

ख. संचित कोषों में लाभांश की घोषणा के नियमों का निर्धारण ।

ग. अशोधित (unpaid) लाभांशों के निर्धारित अवधि के बाद किसी अनुसूचित बैंक में एक विशेष खाते में जमा किये जाने की व्यवस्था, तथा

घ. अयाचित (unclaimed) लाभांश की धनराशि को तीन वर्ष व्यतीत होने के बाद केन्द्रीय सरकार के सामान्य राजस्व खाते में जमा किये जाने की व्यवस्था ।

क. लाभों के एक निर्धारित न्यूनतम भाग का संचित कोषों में हस्तान्तरण (Transfer of Specified minimum percentage of Profits to Reserves).

नियमानुसार ह्रास (depreciation) के लिए आवश्यक प्रावधान करने के बाद बचे लाभ के एक निर्धारित न्यूनतम भाग को संचित कोष में हस्तान्तरित करने के बाद ही लाभांशों की घोषणा की जा सकती है । अत: संशोधित अधिनियम की धारा 206 की उपधारा 2 (अ) के अनुसार प्राप्त अधिकारों का उपयोग करते हुए केन्द्रीय सरकार द्वारा सितम्बर, 1975 में Companies [Transfer of Profits to Reserves] का निर्माण किया गया । इन नियमों के अन्तर्गत यह व्यवस्था की गयी है कि लाभांशों की घोषणा के लिए किसी वर्ष के लाभों में से संचित कोषों के हस्तान्तरण के लिए निर्धारित प्रतिशत (specified percentages) निम्न प्रकार होंगे :

घोषित लाभों का प्रतिशत	कोषों में हस्तान्तरित किये जाने वाले लाभों के निर्धारित न्यूनतम प्रतिशत
10 प्रतिशत से 12 ½% तक	2.5%
12 ½% प्रतिशत से 15% तक	5.0%
15 से 20 प्रतिशत तक	7.5%
20 प्रतिशत से अधिक	10.0%

उपर्युक्त प्रावधान संचित भाग के विषय में है । यदि इससे अधिक लाभ के भाग का हस्तान्तरण प्रबन्धकों द्वारा संचित कोष में किया जाता है तो ऐसा करने के लिए उन्हें (Companies Rules) 1975 के नियम 3 में वर्णित व्यवस्थाओं का पालन करना होगा । इस संबंध में निम्न प्रावधान हैं -

1. न्यूनतम निर्धारित प्रतिशत से अधिक भाग का हस्तान्तरण संचित कोष में केवल उस दशा में किया जायेगा, जबकि लाभांश की घोषणा की दशा में प्रबन्धक इस बात के प्रति आश्वस्त हो जाये कि ऐसा करने के बाद इतना लाभ अवश्य शेष रहेगा, जो अंशधारियों को वित्तीय वर्ष के ठीक पहले के तीन वर्षों में घोषित लाभांशों की औसत दर के बराबर लाभांश चुकाने के लिए पर्याप्त होगा, किन्तु इसका एक अपवाद यह होगा कि यदि उस वित्तीय वर्ष का शुद्ध लाभ (net profits) उस वित्तीय वर्ष के ठीक पहले दो वर्षों के औसत लाभ की तुलना में 20% अथवा इससे भी कम है तो ऐसी

दशा में यह आवश्यक नहीं होगा कि प्रबन्धक ऐसे न्यूनतम लाभांश के प्रति आश्वस्त हों ।

2. यदि कोई लाभांश घोषित नहीं किया जाना है तो ऐसी दशा में कथित वर्ष के लाभ में से संचित कोषों में हस्तान्तरित किया जाने वाला प्रस्तावित भाग उस वर्ष के ठीक पहले के तीन वर्षों में घोषित औसत लाभांश की राशि से कम होगा ।

ख. **संचित लाभों में से न्यूनतम लाभांश की घोषणा का प्रावधान :** ये नवीन प्रावधान Companies [Declaration of Dividends out of reserves] के रूप में 3 सितम्बर 1975 से लागू किये गये । इनमें यह प्रावधान किया गया कि किसी वर्ष कम लाभ होने अथवा लाभ न होने की दशा में कम्पनी द्वारा उस वर्ष के लिए लाभांशों की घोषणा ऐसे पिछले संचित लाभों में से की जा सकती है जो विगत वर्षों में उपार्जित किये गये एवं कोषों में हस्तान्तरित कर दिये गये थे, किन्तु **ऐसा करने से पूर्व कम्पनी को निम्न शर्तों का अनुपालन करना होगा :-**

1. इस प्रकार घोषित लाभांश की दर चुकता पूंजी की 10% अथवा पिछले पांच वर्षों में घोषित लाभांश की दरों के औसत (जो भी कम हो) से अधिक न हो
2. इसके लिए संचित कोषों में से ली गयी धन राशि कम्पनी की चुकता पूँजी एवं मुक्त कोषों के एक तिहाई से अधिक नहीं होनी चाहिये । साथ ही संचित कोषों में से इस प्रकार गयी राशि का उपयोग पहले उस वर्ष हुए घाटे को पूरा करने के लिए किया जाना चाहिए और उसके बाद यदि कुछ बचे तो उसे लाभांश घोषित करने में उपयोग किया जायेगा
3. संचित कोषों में इस प्रकार निकाली गयी राशि को घटा देने के बाद शेष संचित कोष में कम से कम इतनी मात्रा अवश्य शेष रहनी चाहिए जो चुकता पूंजी के 15% से कम न हो ।

अशोधित एवं अयाचित लाभों के संदर्भ में प्रावधान ऊपर विस्तार से वर्णन किया जा चुका है।

15.7 बोनस अंश के रूप में लाभांश वितरण (Dividend distribution as Bonus Share)

बोनस अंश का अभिप्राय लाभांश के रूप में कम्पनी के अंश के वितरण करने से होता है अर्थात कम्पनी नकद में लाभांश वितरित न करके अंशों के रूप में लाभांश वितरित करती है । ऐसे निर्गमित अंशों को अधिलाभांश अंश भी कहा जाता है । बोनस अंश साधारणतया कम्पनी अपनी तरल स्थिति अच्छी न होने पर या नकद कोषों की कम्पनी में आवश्यकता होने पर निर्गमित करती है । इससे एक ओर कम्पनी की तरल स्थिति पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता तथा दूसरी ओर अंशधारी भी अंशों के रूप में लाभांश पाकर संतुष्ट हो जाते है । इस हेतु कम्पनी द्वारा संचित कोषों में से बोनस अंशों के बराबर राशि अंश पूँजी खाते में हस्तान्तरित कर दी जाती है तथा बोनस अंश के हकदार अंशधारियों को घोषित अनुपात में अंश प्रमाण पत्र निर्गमित कर दिये जाते हैं । इस प्रक्रिया को लाभों का पूँजीकरण (Capitalisation of

Profits) भी कहते हैं, क्योंकि बोनस अंश निर्गमन में लाभों को पूंजी में परिवर्तित कर दिया जाता है । बोनस अंश निर्गमन के निम्न तीन प्रभाव होते हैं :

1. **निर्गमित अंशों की संख्या में वृद्धि (Increase in no. of issued shares')** इसमें निर्गमित अंशों की संख्या में वृद्धि हो जाती है । उदाहरण के लिए माना कि पहले कम्पनी में 100000 अंश थे और अब कम्पनी 5:1 के अनुपात में बोनस अंश निर्गमित करती है । अत: बोनस अंश निर्गमन के पश्चात् अंशों की कुल संख्या 100000+20000 = 120000 हो जायेगी ।
2. **स्वामी पूँजी अप्रभावित (No impact of networth)** स्वामी पूँजी की राशि पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है । इसकी राशि वही रहती जो निर्गमन से पहले थी । माना कि कम्पनी के पास 50000 अंश 100 रूपये वाले हैं तथा 200000 रूपये का संचित कोष है तो स्वामी पूँजी की राशि 500000+200000=700000 रू. हुई । यदि बोनस अंश के रूप में 10000 अंशों पर नये अंश निर्गमित किये जाते हैं तो नये अंश 10000 x 10 = 100000 के निर्गमित होंगे । ये 100000 रू. संचित कोषों से अंश पूँजी खाते में हस्तान्तरित हो जायेंगे । इस प्रकार अंश पूँजी 600000 रू. की तथा संचित कोष 100000 के रह जायेंगे । अत: स्वामी पूँजी की राशि 600000 +100000 = 700000 रू. की ही रहेगी, इसमें कोई भी परिवर्तन नहीं होगा ।
3. **प्रति अंश आय एवं अंशों के बाजार मूल्य में कमी (Decrease in EPS and Market Price)** बोनस अंश निर्गमन के अनुपात में प्रति अंश आय गिर जाती है । उदाहरणार्थ बोनस अंश निर्गमन पूर्व यदि प्रति अंश आय 20 रू. होती थी तो अब $\frac{20\times5}{6}=16.67$ रूपये की ही प्रति अंश रह जायेगी । ऐसा अंशों की संख्या में वृद्धि होने, किन्तु आय पूर्ववत रहने के कारण होता है । प्रति अंश आय में कमी के कारण अंशों के बाजार मूल्य में भी गिरावट की संभावना रहती है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि प्रति अंश आय (EPS) प्रति अंश लाभांश (DPS) तथा अंशों के बाजार मूल्य में समान अनुपात में कमी हो ।

बोनस अंश निर्गमन के लाभ (Advantages of bonus Shares)

बोनस अंश निर्गमन का कम्पनी तथा अंशधारियों दोनों पर प्रभाव पड़ता है । अत: इसके महत्व का अध्ययन अंशधारियों व कम्पनी के दृष्टिकोण से अलग-अलग किया जा सकता है ।

अ. कम्पनी को लाभ (Advantages for Company) - बोनस अंश निर्गमन से कम्पनी को निम्न लाभ प्राप्त होते हैं-

1. **तरल स्थिति बनाये रखने में सहायक (Helpful in Maintaining Liquid Position)** यदि लाभ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो, परन्तु कम्पनी की तरल अथवा नकद स्थिति अच्छी न हो तो उसे नकद लाभांश नहीं देना चाहिए । इस स्थिति में कम्पनी बोनस अंश का निर्गमन कर एक ओर उच्च तरलता बनाये रख सकती है एवं दूसरी ओर अपने अंशधारियों को संतुष्ट कर सकती है ।

2. **कार्यशील पूँजी में वृद्धि (Increase इन working Capital)** नकद में लाभांश का भुगतान नहीं करने से कम्पनी के नकद कोष अप्रभावित रहते हैं, फलत: कम्पनी की कार्यशील पूँजी में वृद्धि होती है ।

3. **लाभांश की दर को कम करने के लिए (To Reduce Dividend Rate)** कम्पनी द्वारा ऊँची दर से दिया गया लाभांश सबकी नजरों में आता है । श्रमिक, उपभोक्ता एवं सरकार, तीनों ही ऐसी उच्च लाभ प्रदान करने वाली कम्पनी से बहुत अधिक आशाएं करने लगते हैं । समय-समय पर बोनस अंश देकर संस्था अपने नकद लाभांश की दर को उचित सीमा के अंदर रख सकती है तथा अल्प-पूँजीकरण के दोष से छुटकारा पा सकती है ।

4. **अंश पूँजी का मितव्ययी निर्गमन (Economical Issue of Securities)** बोनस अंश के रूप में अंश वितरित कर देने से पूँजी निर्गमन के विभिन्न व्यय नहीं करने पड़ते । इस निर्गमन में विद्यमान अंशधारियों को उनकी अंश पूँजी के अनुपात में अंश निर्गमित कर दिये जाते हैं । ऐसा करने पर कम्पनी अभिगोपन व्यय तथा अन्य व्ययों की बचत कर लेती है एवं कम्पनी की अंश पूँजी भी बढ़ जाती है ।

5. **स्वामित्व का विकेन्द्रीकरण (Diffusion in Ownership)** कम्पनी में कई सदस्य जिन्हें तरलता की आवश्यकता होती है. वह अपने बोनस अंशों को बाजार में बेच देते हैं । इससे कम्पनी के स्वामित्व के ढाँचे में धीरे-धीरे परिवर्तन होता रहता है तथा अधिक से अधिक लोगों को सदस्य बनने का अवसर मिलता रहता है ।

6. **लाभों का पूँजीकरण (Capitalisation of Profits)** अधिलाभांश के माध्यम से संस्था लाभों का पूँजीकरण कर लेती है जो वित्त पोषण के लिए सर्वश्रेष्ठ साधन है । अधिलाभांश निर्गमन से संस्था की अंशपूँजी भी बढ़ जाती है और साथ ही साथ समता अंश पूँजी के माध्यम से किया जाने वाला नियंत्रण भी पूर्ववत बना रहता है।

(ब) **अंशधारियों को लाभ (Advantages for Shareholders) - बोनस अंश निर्गमन से अंशधारियों को अग्रांकित लाभ प्राप्त होते हैं -**

1. **कर में बचत (Tax Saving)** नकद लाभांश पर आयकर देना पड़ता है जबकि लाभांश की स्थिति में अंशधारियों को आयकर नहीं देना पड़ता है । इस प्रकार अंशधारी स्कन्ध लाभांश के माध्यम से करों में बचत का लाभ प्राप्त कर लेते हैं ।

2. **अंशों की संख्या में वृद्धि (Increase in Number of Shares)** बोनस अंश निर्गमन से अंशधारियों के पास उपलब्ध अंशों की संख्या में बोनस अंश निर्गमन के अनुपात में वृद्धि होती रहती है । अत: उन्हें संतुष्टि होती रही है ।

3. **अन्य लाभ (Other Benefits)** स्कन्ध लाभांश से कम्पनी की अंश पूँजी में उनका हिस्सा बढ़ जाता है, यद्यपि उसका अनुपात पहले जैसा ही बना रहता है । परन्तु भावी वर्षों में अधिक अंशों पर अधिक आय मिलने की संभावना बनी रहती है । यदि कम्पनी द्वारा पुरानी दर पर भी लाभांश बांटा जाता है तो भी अंशधारी की आय में वृद्धि होती है । उदाहरणार्थ यदि अंशधारी के पास 50 अंश हो एवं कम्पनी ने उसे

10 अंश के रूप में निर्गमित किये हो तथा कम्पनी 10 रूपये प्रति अंश नकद लाभांश बांटती है तो जहां उसे पहले (50x10) = 500 रूपये लाभ प्राप्त होता था, अब उसके स्थान पर उसे (60x10) = 600 रूपये का लाभांश प्राप्त होगा । इस प्रकार जो संस्थायें बोनस अंश (Bonus Share) निर्गमित करती हैं उनके अंशों का बाजार मूल्य भी बढ़ जाता है । इस प्रकार अंशधारियों को पूँजीगत लाभ भी प्राप्त होता है।

बोनस अंशों की हानियाँ (Disadvantages of Bonus Shares)

स्कन्ध लाभांश से संस्था को निम्नलिखित हानियाँ होती हैं -

1. **अंशधारियों में असंतुष्टि (Dissatisfaction is Shareholders)** कुछ अंशधारी जो अपनी आय के लिए केवल प्रौद्योगिक प्रगति में किये गये विनियोग पर मिलने वाले प्रतिफल पर ही निर्भर करते हैं, वे स्कन्ध लाभांश लेना पसंद न करके नकद लाभांश लेना पसंद करते हैं । इनमें असंतोष बना रहता है ।
2. **लाभांश दायित्व में वृद्धि (Increase in Dividend Liabilities)** कम्पनी के लिए भी भविष्य में लाभांश संबंधी दायित्व बढ़ जाता है । यदि संस्था की आय इतनी बढ़ती है कि वह बढ़ी हुई अंश-पूँजी पर लाभांश समुचित दर से बांटने में समर्थ हों सके तब तो ठीक है अन्यथा उसकी ख्याति व अंशों का बाजार मूल्य दोनों ही गिर सकते हैं । परिणामस्वरूप नये अंशों को जारी कर पूँजी उपलब्ध करने में प्रबन्ध को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है । अत: स्कन्ध लाभांश उन्हीं संस्थाओं द्वारा वितरित किया जाना चाहिये जो भविष्य में अधिक आय की आशा रखती है अन्यथा बढ़ी हुई अंश पूँजी पर लाभांश की दर गिर जाने से अंशधारियों को मनोवैज्ञानिक असंतोष हो सकता है ।
3. **विक्रय दबाव (Selling Pressure)** प्राय: संतुष्टि अंशधारी इन अतिरिक्त अंशों को बाजार में बेचकर नकद धन प्राप्त कर सकते हैं लेकिन इसमें दो कमियाँ है: पहली अधिलाभांश अंशों के निर्गमन की घोषणा तथा बोनस कूपनों को जारी करने में काफी समय का अंतर हो जाता है । दूसरी, यदि कोई अंशधारी अपने ऐसे अंशों का विक्रय कर देता है तो इससे कम्पनी में उसके हित अनुपात तथा कम्पनी के स्वामित्व ढांचे, दोनों में परिवर्तन हो जाता है ।
4. **अतिपूँजीकरण (Over Capitalisation)** यदि पूँजी संरचना पर ध्यान करके स्कन्ध लाभांश वितरित नहीं किया गया है तो कम्पनी अति-पूँजीकृत भी हो सकती है ।
5. **सट्टे की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन (Motivation to trend of Speculation)** बोनस अंशों का निर्गमन करने से कम्पनी के अंशों के बाजार मूल्य में अत्यधिक उच्चावचन होता है, जिससे अंशों में सट्टे की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है ।

बोनस अंश निर्गमन के सम्बन्ध में सेबी (SEBI) के दिशा-निर्देश (Guidelines of SEBI regarding Issue of Bonus Share)

सन् 2000 में सेबी द्वारा बोनस अंशों के निर्गमन के सम्बन्ध में निम्न संशोधित दिशा-निर्देश जारी किये गये हैं

1. ये दिशा-निर्देश विद्यमान सूचीबद्ध कम्पनियों पर ही लाग होंगे ।
2. बोनस अंश निर्गमन के सम्बन्ध में कम्पनी के अन्तर्नियमों में प्रावधान होने चाहिए अन्यथा इस हेतु एक विशेष प्रस्ताव पारित किया जाएगा ।
3. बोनस अंश निर्गमन का प्रस्ताव सामान्य सभा द्वारा पास होना चाहिए ।
4. संचालक मण्डल की अनुमति के 6 माह के अन्दर बोनस अंशों का निर्गमन कर दिया जाना चाहिए ।
5. बोनस अंशों का निर्गमन कम्पनी द्वारा सार्वजनिक अधिकार निर्गमन से 12 माह की अवधि में नहीं किया जा सकता है ।
6. बोनस अंशों का निर्गमन कम्पनी द्वारा निर्मित स्वतंत्र संचयों (Free Reserves) में से किया जा सकता है । संचय का निर्माण मुक्त संचयों या अंश प्रीमियम की राशि में से किया जा सकता है । स्थायी सम्पत्तियों के पुनर्मूल्यांकन द्वारा इनका निर्माण नहीं किया जा सकता ।
7. लाभांश के स्थान पर बोनस अंशों का निर्गमन नहीं किया जा सकता ।
8. कम्पनी को अंशतः प्रदत्त अंशों को पूर्णदत्त बनाने के बाद ही बोनस अंशों के निर्गमन का अधिकार है ।
9. बोनस अंश निर्गमन से ऋणपत्रधारियों के अधिकार प्रभावित नहीं होने चाहिए ।
10. एक सूचीबद्ध कम्पनी को सेबी के द्वारा जारी-निर्देशों के अन्तर्गत शर्तों के पालन के सम्बन्ध में एक प्रमाण-पत्र जो कि वैधानिक सलाहकार / वैधानिक अंकेक्षक / पूर्णकालिक पेशेवर सचिव द्वारा प्रमाणित हो, सेबी को प्रस्तुत करना ।
11. बोनस अंशों से कम्पनी के अंशधारियों का कोई दायित्व उत्पन्न नहीं होगा ।
12. कर्मचारियों के वैधानिक भुगतान यथा भविष्य निधि, ग्रेच्युटी, पेंशन आदि के भुगतान की पूर्ण व्यवस्था न हो तो बोनस अंश जारी नहीं किये जा सकते हैं ।

15.8 तकनीकी शब्दावली (Technical Terms)

लाभांश निर्णयन (Dividend Decision) - वितरण हेतु उपलब्ध लाभों में से अंशधारियों को कितना लाभांश वितरित किया जाये एवं कितना भाग प्रतिधारित किया जाये ।

लाभों का पुनर्विनियोग (Reinvestment of Profits) - उपलब्ध लाभों का एक भाग कम्पनी में ही विनियोजित करना ।

व्यापार चक्र (Trade Cycle) - आर्थिक उच्चावचन व्यापार चक्र कहलाता है ।

तरलता (Liquidity) - पर्याप्त मात्रा में नकदी अथवा ऐसी सम्पत्तियाँ जो तत्काल नकद में परिवर्तित हो जाए ।

संचित कोष (Reserves) - यह कोष लाभों में से भावी आवश्यकताओं के लिए बनाया जाता है ।

बोनस अंश (Bonus Shares) - लाभांश नकद रूप में वितरित न किया जाकर अंश के रूप में वितरित किया जाता है, ऐसे अंश बोनस अंश कहलाते हैं ।

15.9 स्वपरख प्रश्न

1. लाभांश निर्णय से आप क्या समझते हैं?
2. लाभांश निर्णय के उद्देश्य स्पष्ट कीजिए ।
3. लाभांश निर्णय के संदर्भ में प्रचलित विचारधाराओं का वर्णन कीजिए ।
4. लाभांश निर्णयन का अर्थ बताइये । लाभांश निर्णयन को प्रभावित करने वाले तत्वों को समझाइये ।
5. भारतीय कम्पनी अधिनियम में लाभांश वितरण संबंधी प्रमुख प्रावधानों का वर्णन कीजिए।
6. लाभांश वितरण के संबंध में उल्लेखित प्रतिबन्धों का वर्णन कीजिए ।
7. बोनस अंश क्या होते है? इनके निर्गमन के संदर्भ में कम्पनी अधिनियम में क्या प्रावधान है? इस संबंध में सेबी द्वारा दिये गये निर्देशों का उल्लेख कीजिए ।

15.10 संदर्भ ग्रंथ

Srivastava R.M.: Financial Decision Making Text, Problems and Cases

Arif Pasha : Management Accounting

Arora M.N. : Cost and Management Accounting

Ravi M. Kishore : Advance Management Accounting

Prasanna Chandra: Financial Management

Sahaf M.A.: Management Accounting: Principle's and Practices.

इकाई-16 :कार्यशील पूँजी का प्रबन्ध (Working Capital Management)

इकाई की रूपरेखा:

16.0 उद्देश्य
16.1 परिचय
16.2 अर्थ व परिभाषा
16.3 कार्यशील पूँजी के प्रकार
16.4 कार्यशील पूँजी का महत्व
16.5 कार्यशील पूँजी के निर्धारक तत्त्व
16.6 कार्यशील पूँजी के स्त्रोत
16.7 कार्यशील पूँजी व दीर्घकालीन पूँजी में अंतर
16.8 कार्यशील पूँजी की आवश्यकता के पूर्वानुमान की तकनीकें
16.9 सारांश
16.10 शब्दावली
16.11 स्वपरख प्रश्न
16.12 सन्दर्भ ग्रंथ

16.0 उद्देश्य

वित्तीय प्रबन्ध के अन्तर्गत वित्तीय प्रबन्ध की विभिन्न तकनीकों, अनुपात विश्लेषण, कोष प्रवाह विवरण का अध्ययन किया जाता है । इस इकाई में हमें कार्यशील पूँजी-रोकड़, प्राप्यों व स्कन्ध के प्रबंध संबंधी जानकारी करनी है । इस अध्याय में हमें यह जानना आवश्यक है कि कार्यशील पूंजी का प्रबंध किस प्रकार करें ताकि व्यवसाय में आवश्यकतानुसार कार्यशील पूँजी हमेशा उपलब्ध रहे । अधिक कार्यशील पूंजी यदि व्यापार में होगी तो लागत बढ़ जायेगी तथा कम कार्यशील पूंजी व्यवसाय में कई प्रकार की दिक्कतें पैदा कर देगी विशेषकर अपर्याप्त स्टॉक, समय पर लेनदारों तथा दैनिक लेनदेन के संबंध में भुगतान न होने से व्यवसाय के लाख पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा । अत: पर्याप्त कार्यशील पूंजी हमेशा व्यवसाय में किस प्रकार बनी रहे उससे संबंधित तकनीकों का अध्ययन करना है । इस उक्त इकाई का प्रमुख उद्देश्य है ।

16.1 परिचय (Introduction)

व्यवसाय में प्रारम्भ में दीर्घकालीन पूंजी की आवश्यकता अधिक होती है, क्योंकि व्यवसाय को प्रारंभ करने के लिए भूमि, भवन, प्लांट एवं मशीनरी आदि खरीदने के लिए बड़ी राशि एवं लंबी अवधि के लिए वित्त की आवश्यकता होती है । जिसके लिए हमें दीर्घकालीन पूंजी प्राप्त करने के लिए अंशपूंजी एवं दीर्घकालीन ऋण लेकर पूर्ति करनी होती है।

व्यवसाय में दैनिक कार्यकलापों - कच्चा माल क्रय करने, लेनदारों के भुगतान करने कर्मचारियों व मजदूरों को भुगतान करने आदि के लिए कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है । कार्यशील

पूंजी जुटाने हेतु सामान्यतया अल्पकालीन वित्त स्त्रोतों का उपयोग किया जाता है । विशेषतः बैंकों का कार्यशील पूंजी जुटाने में महत्वपूर्ण योगदान रहता है ।

16.2 अर्थ एवं परिभाषा :

कार्यशील पूंजी की एक परिभाषा नहीं है । इसके अर्थ के बारे में अर्थ- शास्त्रियों, व्यवसायियों, लेखपालों तथा प्रबंधकों की अलग-अलग राय है । कार्यशील पूंजी को कुछ विद्वान चालू दायित्वों के ऊपर चालू सम्पत्तियों के आधिक्य को कार्यशील पूंजी मानते हैं । जबकि कुछ विद्वान इन दोनों मतों से अलग इसे चक्रीय पूंजी मानते हैं ।

कार्यशील पूंजी की परिभाषा व अवधारणा को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है ।

1. सकल कार्यशील पूंजी -

इस अवधारणा वाले विद्वान कार्यशील पूंजी को चालू सम्पत्तियों का योग मानते हैं । इस आधार पर परिभाषा देने वाले विद्वानों में प्रमुख रूप से **मीड, मैलट, बेकर, फील्ड, ब्रेनविले व जे एस मिल है ।**

मीड, मैलट तथा फील्ड के अनुसार, "कार्यशील पूंजी से तात्पर्य चालू सम्पत्तियों के योग से है ।"

बोनविले एवं देवी के अनुसार, "किसी भी निधि की प्राप्ति, जिससे चालू सम्पत्तियों में वृद्धि होती है, कार्यशील पूंजी होगी, क्योंकि ये दोनों एक ही हैं ।"

जे एस मिल के शब्दों में - "चल सम्पत्तियों का योग ही व्यवसाय की कार्यशील पूंजी है ।"

अवधारणा के पक्ष में तर्क

i. चालू सम्पत्तियों के प्रयोग से व्यवसाय के लाभ अर्जन क्षमता में वृद्धि होती है अतः इन्हें कार्यशील पूंजी माना जाना चाहिए ।

ii. चूंकि स्थायी सम्पत्तियों को स्थायी पूंजी माना जाता है । अतः चालू सम्पत्तियों को कार्यशील पूंजी का प्रतीक माना जाना चाहिए ।

iii. चालू सम्पत्तियों की व्यवस्था और दीर्घकालीन स्त्रोतों से करे या अल्पकालीन स्त्रोतों से इससे कार्यशील पूंजी की उपयोगिता पर काई प्रभाव नहीं होगा ।

2. **शुद्ध कार्यशील पूंजी-**

इस अवधारणा का मानने वाले विचारकों में **गर्स्टन बर्ग, हॉग लैण्ड एवं एल जे गिटमैन** प्रमुख हैं । इनके अनुसार कार्यशील पूंजी चल सम्पत्तियों एवं चल दायित्वों का अंतर है । चालू दायित्वों के उपर चालू सम्पत्तियों की अधिकता को ही कार्यशील पूंजी माना जाता है ।

गर्स्टनबर्ग के अनुसार "कार्यशील पूंजी को सामान्यतया चालू दायित्वों के ऊपर चालू सम्पत्तियों के आधिक्य के रूप में परिभाषित किया जाता है ।"

एल जे गिटमैन के अनुसार "कार्यशील पूंजी का सर्वमान्य परिभाषा चालू सम्पत्तियों एवं चालू दायित्वों का अंतर ही है।"

इस अवधारणा के पक्ष में निम्न तर्क दिये हैं -

i. चालू सम्पत्तियों की चालू दायित्वों पर अधिकता व्यवसाय की सुदृढ़ता बताती है ।

ii. चालू सम्पत्तियों एवं चालू दायित्वों से चल अनुपात निकालकर तुलनात्मक तरलता की स्थिति एवं शोधन क्षमता जानी जा सकती है ।

iii. विनियोगकर्ताओं को अपने विनियोग की सुरक्षा संबंधी जानकारी हो जायेगी ।

यह परंपरागत विचारधारा है । इसे शुद्ध कार्यशील पूंजी कहा जाता है ।

3. चक्रीय पूंजी -

एडम स्मिथ व गैस्टर्न बर्ग ने कार्यशील पूंजी को चक्रीय पूंजी के रूप में परिभाषित किया। **एडम स्मिथ** के अनुसार - "व्यवसायी का माल तब, तक लाभ या धन राशि नहीं देता जब तक कि वह उसे मुद्रा के बदले बेच न दे तथा जब तक इस मुद्रा के बदले वापस माल प्राप्त नहीं किया जाता, तब तक यह मुद्रा उसे बहुत कम प्रत्याय या लाभ देगी । उसकी पूंजी लगातार एक रूप में उसके पास से जाती है तथा दूसरे रूप में उसके पास आ जाती है तथा वह चक्र या निरन्तर विनिमय ही उसे लाभ प्रदान करता है । अत: ऐसी पूंजी को यथार्थ में "चक्रीय पूंजी" कहा जा सकता है ।

चक्रीय पूंजी का प्रवाह -

उपरोक्त चित्र में स्पष्ट है कि नगद राशि द्वारा कच्चा माल खरीदा जायेगा फिर निर्माणाधीन प्रक्रियाओं में व्यय होगा । उसके बाद पूर्ण निर्मित माल बनेगा । निर्मित माल को बेचने से देनदारों एवं प्राप्यों के रूप में परिवर्तन होगा । इनसे पुन: नगद राशि प्राप्त होगी यह प्रक्रिया लगातार प्रवाहित होती है । नगद से विक्रय करने के बीच कई प्रकार के व्यय (कच्चा माल, वेतन, मजदूरी, दैनिक व्यय) करने पड़ते हैं जिसके लिए नगद या साख की आवश्यकता होती है । यह ही चक्रीय पूंजी या कार्यशील पूंजी कहलाती है ।

18.3 कार्यशील पूंजी के प्रकार (Kinds of Working Capital)

कार्यशील पूंजी का वर्गीकरण निम्न दो आधारों पर किया जा सकता है ।

1. स्थिति विवरण के आधार पर
2. व्यावसायिक आवश्यकता के आधार पर

1. स्थिति विवरण के आधार पर (On the basis of Balance Sheet)

कार्यशील पूंजी स्थिति विवरण के आधार पर दो प्रकार की हो सकती है ।

अ. सकल कार्यशील पूंजी - (Gross Working Capital)

सकल कार्यशील पूंजी स्थिति विवरण में दर्शायी गयी सभी चालू सम्पत्तियों के योग के बराबर होती है । चालू सम्पत्तियों के योग के बराबर होती है । चालू सम्पत्तियों में नकद, बैंक शेष, देनदार, स्टॉक तथा पूर्वदत्त भुगतान आदि सम्मिलित हैं ।

ब. **शुद्ध कार्यशील पूंजी (Net working capital)**

शुद्ध कार्यशील पूंजी का आशय चालू सम्पत्तियों में से चालू दायित्वों को घटाने पर बची शेष राशि से है ।

2. **व्यावसायिक आवश्यकता के आधार** (On the basis of Business need) पर यह दो प्रकार की होती है ।

अ. **नियमित या स्थायी कार्यशील पूंजी - (Regular or fixed working capital)** । वह राशि जो व्यवसाय को सुचारू रूप से चालू सम्पत्तियों में सदैव विनियोजित रहती है । यह राशि ही स्थायी या नियमित कार्यशील पूंजी कहलाती है । उदाहरण के लिए कच्चे माल का न्यूनतम स्तर, निर्मित माल का न्यूनतम स्टॉक, न्यूनतम बैंक एवं नकद राशि आदि ।

ब. **मौसमी या परिवर्तनशील पूंजी** (Seasonal or variable working capital) यह व्यवसाय की प्रकृति के अनुसार कच्चे माल की उपलब्धता एवं निर्मित माल की मांग के आधार पर रखी जाती है । जैसे गर्मी के समय में पंखे कूलर, फ्रीज एवं एयरकंडीशनर संबंधी व्यवसाय में इनका स्टॉक अधिक रखना होगा ।

उपरोक्त दोनों कार्यशील पूंजी को निम्न चित्र द्वारा समझा जा सकता है ।

16.4 कार्यशील पूजी का महत्व (Significance of Working Capital)

व्यवसाय में कार्यशील पूंजी का महत्व शरीर में रक्त के महत्व के समान है । जिस प्रकार बिना रक्त के शरीर के क्रियाकलापों का संचालन असंभव है । कार्यशील पूंजी व्यवसाय को जीवित ही नहीं रखती अपितु दैनिक कार्यों का निष्पादन व्यवस्थित बनाती है । स्थायी सम्पत्तियों की व्यवस्था कर लेने मात्र से व्यवसाय संचालित नहीं होता बल्कि स्थायी सम्पत्तियों का पूर्ण उपयोग कार्यशील पूंजी की पर्याप्तता पर ही निर्भर है । कार्यशील पूंजी की पर्याप्तता पर ही व्यवसाय का लाभ निर्भर करता है । अपर्याप्त कार्यशील पूंजी व्यवसाय में कई कठिनाइयों को जन्म दे सकती है । इसी प्रकार अति कार्यशील पूंजी भी व्यवसाय के लिए हानि का कारण बन सकती है । अत: पर्याप्त कार्यशील पूंजी (Adequate working capital) का प्रबंध व्यवसाय के लिए अधिक महत्व रखता है ।

पर्याप्त कार्यशील पूंजी के निम्नलिखित प्रमुख लाभ हैं -

1. **लेनदारों का समय पर भुगतान (Timely payment to creditors)** : व्यवसाय में माल उधार लेना ही होता है लेकिन यदि उधार का भुगतान समय पर किया जाता है तभी व्यवसाय में लेनदारों का विश्वास प्राप्त किया जा सकता है । कच्चा माल व अन्य सामग्री समय पर मिलने से व्यावसायिक गतिविधियां सुचारू से चलती है । उत्पादन में विलंब या रूकावट नहीं होने से व्यवसाय में लाभ की संभावना बनी रहती है ।
2. **अल्पकालीन शोधन क्षमता एवं साख में वृद्धि Increase in short term debt capacity and goodwill) :** व्यवसाय लाख एवं विश्वास पर ही चलता है यह तभी संभव है जब व्यवसाय में पर्याप्त कार्यशील पूंजी उपलब्ध है । व्यवसाय में आवश्यकतानुसार माल, ऋण, सुविधायें सभी मिलने से उत्पादन लगातार बिना किसी बाधा के निरंतर चलता रहता है ।
3. **नगद छूट की प्राप्ति (Received cash discount)** : पर्याप्त कार्यशील पूंजी होने से नगद माल खरीदने में मिलने वाली नकद छूट का लाभ उठाया जा सकता है जिससे व्यवसाय लाभ की ओर अग्रसर होता है । पर्याप्त नगद एवं बैंक शेष नहीं रहने पर नगद छूट का लाभ नहीं उठाया जा सकता है ।
4. **अनुकूल अवसरों का लाभ (Benefits of favorable opportunities)** : अवसरों का लाभ तभी उठाया जा सकता है जब व्यवसाय में पर्याप्त कार्यशील पूंजी होती है । जैसे भविष्य में कच्चे माल की लागत बढ़ने वाली हो तो पर्याप्त स्टॉक अभी क्रय करके किया जा सकता है ।

   माल पूर्ति के बड़े आदेशों की पालना तुरंत नगद राशि/बैंक शेष होने पर ही संभव हो सकती है ।
5. **वित्तीय संस्थाओं से साख प्राप्त करने में सुविधा (Facility in obtaining credit from financial institutions)** : पर्याप्त कार्यशील पूंजी होने के कारण बाजार में कंपनी की साख अच्छी बनी रहती है । जिससे आवश्यकतानुसार वित्तीय संस्थाओं से ऋण आसानी से उपलब्ध हो सकता है । अच्छा चालू अनुपात होने से कोई भी संस्था उधार देने में मना नहीं करती है ।
6. **पर्याप्त लाभांश वितरण एवं अंशों के मूल्यों में स्थिरता (Distributions of adequate dividend and stability in the price of shares) :** जिस कंपनी का चालू अनुपात सुदृढ़ होता है तब कंपनी अपने अंशधारियों को लाभांश का भुगतान समय पर कर देती है । अन्यथा तरलता की कमी के कारण उचित लाभ होने पर भी कंपनी तरलता बनाये रखने के लिए लाभांशों का पुर्नविनियोजन कर देती है । लाभांशों का समय पर भुगतान होने से कंपनी के अंशों के बाजार मूल्य में स्थिरता रहती है ।
7. **कार्यकुशलता में वृद्धि - (Increase in efficiency)** : पर्याप्त कार्यशील पूंजी होने से उत्पादकता में निरंतरता बनी रहती है । प्रबंधकों में उत्साह व आत्म विश्वास बना रहता है । कर्मचारियों को समय पर पर्याप्त वेतन मिलने से उनका मनोबल एवं रूचि बनी रहती

है प्रबंधकों एवं कर्मचारियों के मध्य सौहार्दपूर्ण संबंध बना रहता है । जिससे सभी की कार्य कुशलता बढ़ती है ।

8. **अनिश्चितताओं एवं आकस्मिकताओं का सामना (Meeting uncertainties and contingencies)** : व्यवसाय में अनिश्चिततायें एवं आकस्मिक बाधाऐं कभी भी उपस्थित हो सकती है परंतु यदि कंपनी के पास पर्याप्त कार्यशील पूंजी उपलब्ध है तो इन बाधाओं का विवेकपूर्ण ढंग से मुकाबला संभव है । उदाहरण के लिए कच्चे माल के मूल्यों में तेजी या मांग में गिरावट या हड़ताल या प्राकृतिक आपदायें किसी भी परिस्थिति का मुकाबला तभी संभव है जब संस्था के पास पर्याप्त तरलता उपलब्ध है । इसके अभाव में संकट और अधिक संकट उपस्थित कर सकता है ।
9. **स्थायी सम्पत्तियों का पूर्ण उपयोग (Full utilization of fixed Assets)** : कार्यशील पूंजी की पर्याप्त उपलब्धता होने पर ही कंपनी की दीर्घकालीन या स्थायी सम्पत्तियों का अधिकतम उपयोग किया जा सकता है । मशीनों की पूर्ण क्षमता का लगातार विदोहन से ही उत्पादन में वृद्धि संभव है । अपर्याप्त कच्चा माल, अपर्याप्त कर्मचारियों/मजदूरों की दशा में उत्पादन की निरंतरता संभव नहीं है ।

आवश्यकता से अधिक कार्यशील पूंजी के दोष -

व्यवसाय में आवश्यकता से अधिक पूंजी का आशय अधिक मात्रा में पूंजी से नहीं है अपितु उपयुक्त या पर्याप्त पूंजी से अधिक पूंजी से है । पर्याप्त पूंजी से अधिक पूंजी कई प्रकार की समस्याओं को जन्म दे सकती है । पूंजी का दुरुपयोग, अधिक स्टॉक में विनियोग, लागत में वृद्धि, उदार लाभांश नीति, संभव है । अत: आवश्यकता से अधिक पूंजी हानिप्रद होती है । इससे निम्न हानियाँ संभव है -

1. **लागत में वृद्धि से लाभ में कमी - (Increase in cost and decrease in profit)** : आवश्यकता से अधिक पूंजी व्यवसाय में यदि लगी हुई तो लागत को बढ़ा देगी जिससे लाभों में कमी संभव है ।
2. **उदार साख नीति (Liberal credit policies)** : अधिक कार्यशील पूंजी से देनदारों को उधार में ढील संभव है ऋण वसूली पर विपरित प्रभाव पड़ता है । जिससे डूबत ऋण की संभावना बढ़ सकती है ।
3. **आवश्यकता से अधिक स्टॉक में वृद्धि (Increase in unnecessary stock)** : अधिक कार्यशील पूंजी होने पर कच्चा माल एवं निर्मित माल का समय बढ़ सकता है जिससे सट्टा प्रवृति एवं माल में छीजत एवं चोरी की संभावना बढ़ सकती है ।
4. **अकुशलता (Inefficiency)** : प्रबंधकों एवं कर्मचारियों में अकुशलता बढ़ सकती है । लापरवाही के कारण निर्णयों में विपरीत प्रभाव पड़ सकता है ।
5. **अंशधारियों पर विपरित प्रभाव (Adverse effect on share holder)** : लाभों में कमी, अकुशलता व असंतोष के कारण अंशधारियों पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है । कम दर से लाभांश मिलने से अंशधारियों में असंतोष स्वाभाविक है ।

16.5 कार्यशील पूंजी के निर्धारक तत्व (Determinants of Working Capital)

कार्यशील पूंजी की मात्रा कितनी हो, किस चालू संपत्ति में कितना विनियोजन किया जाए इत्यादि प्रश्नों के उत्तर वित्तीय प्रबंधक को हल करने होते हैं । आवश्यकता से अधिक न तो कार्यशील पूंजी व्यवसाय में होनी चाहिए न कम । उपयुक्त मात्रा में ही कार्यशील पूंजी सदैव व्यवसाय में उपलब्ध रहे । ऐसी व्यवस्था करना वित्तीय प्रबंधक का महत्वपूर्ण दायित्व है । कार्यशील पूंजी की मात्रा सभी व्यवसायों में एक समान नहीं होती अत: इसका निर्धारण करते समय व्यवसाय की प्रकृति, व्यापारिक परिस्थितियों तथा व्यवसाय के आंतरिक एवं बाह्य तत्वों के बारे में पूर्ण जानकारी होनी चाहिए । कार्यशील पूंजी को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण तत्व निम्नलिखित हैं -

1. **व्यवसाय का आकार (Size of business)** : यदि व्यवसाय का आकार वृहत है तो कार्यशील पूंजी की मात्रा भी अधिक होगी यदि व्यापार का आकार लघु है तो कार्यशील पूंजी भी तुलनात्मक रूप से कम चाहिए ।
2. **व्यवसाय की प्रकृति (Nature of business)** : व्यवसाय में निर्मित माल की मांग नियमित एवं निश्चित होती है तो कार्यशील पूंजी कम चाहिए, इसके विपरीत जिन व्यवसायों में निर्मित माल की मांग अनिश्चित एवं अनियमित है तो कार्यशील पूंजी अधिक चाहिए क्योंकि माल सदैव अधिक स्टॉक में रखना होगा । जिन व्यवसायों में मशीनों द्वारा अधिक कार्य होता है वहां कर्मचारियों व मजदूरों की संख्या कम होगी अत: कार्यशील पूंजी वेतन मजदूरी देने के लिए कम चाहिए ।
3. **उत्पादन लागत में कच्चे माल का हिस्सा (Share of Raw material in production cost)** : व्यवसायों में निर्मित माल में यदि कच्चा माल की खपत अधिक होती है तो कच्चे माल का स्टॉक नियमित रूप से अधिक रखना होगा जिसके कारण कार्यशील पूंजी अधिक चाहिए ।
4. **कच्चे माल से निर्मित माल रूपांतरण समयावधि (Time period in conversion from raw material cost)** : कच्चे माल से निर्मित माल बनने में समय अधिक लगता है । उत्पादन प्रक्रिया जटिल होने पर कार्यशील पूंजी की अधिक मात्रा चाहिए । जहाँ यह समय कम लगता है वहां कार्यशील पूंजी की कम मात्रा चाहिए ।
5. **रोकड भुगतान की मात्रा (Volume of each payment) :** व्यवसाय में मजदूरी, वेतन, कर, किराया, विविध व्यय, लेनदेन को नगद भुगतान की मात्रा अधिक होगी तो व्यवसाय से अधिक रोकड रखनी होगी जिससे कार्यशील पूंजी की मात्रा बढ़ जायेगी ।
6. **नियमित या मौसमी उत्पादन (Regular or seasonal production)** : ऐसे व्यवसाय जिन में ऐसी वस्तुएँ उत्पादित होती हैं जिनकी माँग मौसमी होती है जैसे पंखे, कूलर, फ्रीज, छाते, ऊनी वस्त्र इत्यादि । मौसमी व्यवसाय में कार्यशील पूंजी कुछ समय के लिए अधिक मात्रा में चाहिए । ऐसे व्यवसाय जिनमें उत्पादन लगातार नियमित होता है वहां कार्यशील पूंजी वर्ष पर्यन्त नियमित रूप से चाहिए ।

7. **उधार खरीद की सुविधा (Facility to credit purchase) :** व्यवसाय में कच्चा माल एवं आवश्यक सामग्री उधार पर मिलती है तथा पूर्तिकर्ताओं को भुगतान करने का समय भी लंबा है तो कार्यशील पूंजी कम मात्रा में चाहिए । जहाँ कच्चा माल नगद में या कम समय के लिए उधार मिलता है तो नगद राशि अधिक रखनी होगी ।
8. **कच्चे माल की बार-बार खरीद (Purchasing of raw material again and again) :** व्यवसाय में यदि कच्चे माल को वर्ष में कई बार खरीदने की परंपरा है तो कार्यशील पूंजी की मात्रा कम चाहिए जहाँ कच्चा माल एक साथ बड़ी मात्रा में खरीदा जाता है वहां कार्यशील पूंजी की मात्रा अधिक चाहिए ।
9. **बैंकिंग सुविधा एवं संबंध (Relationship and facility of banking)** : व्यवसायियों के बैंक एवं वित्तीय संस्थाओं के साथ अच्छे संबंध हैं तथा इनमें अच्छी साख है तो ऐसी दशा में आवश्यकता पड़ने पर तुरंत नगद प्राप्त होने के कारण कार्यशील पूंजी की मात्रा कम चाहिए ।
10. **क्रय एवं विक्रय की शर्तें (Terms of purchases and sales)** : यदि माल नगद बेचा जाता है तथा उधार खरीदा जाता है तो कार्यशील पूंजी की मात्रा की कम जरूरत पड़ेगी । इसके विपरित कच्चा माल नगद खरीदा जाता है तथा निर्मित माल उधार बेचा जाता है तब कार्यशील पूंजी की आवश्यकता अधिक पड़ेगी ।
11. **मंदी एवं तेजी (Slump and boom)** : व्यावसायिक उच्चावचन अवश्यम्भावी है । मंदी के समय माल गोदामों में पड़ा रहता है खरीददार कम होने से मांग घट जाती है । अत: कार्यशील पूंजी निष्क्रिय हो जाती है । तेजी से कीमतों में वृद्धि होने से कच्चा माल की लागत बढ़ जाने से अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता पड़ती है ।
12. **लाभांश वितरण (Distribution of Divident)** : लाभांश का वितरण यदि नगद में किया जाता है तो कार्यशील पूंजी की आवश्यकता अधिक पड़ती है । यदि लाभांश का भुगतान अधि लाभांश अंशों में वितरित किया जाता है तो कार्यशील पूंजी की आवश्यकता कम हो जाती है ।
13. **अन्य (Others)** : सरकारी नीतियों, परिवहन एवं संचार सुविधाओं, मौद्रिक व राजकोषीय नीतियों, देश में राजनैतिक वातावरण आदि का भी कार्यशील पूंजी की मात्रा पर प्रभाव पड़ता है ।

16.6 कार्यशील पूंजी के स्त्रोत (Sources of working capital)

कार्यशील पूंजी सामान्यत: दो स्त्रोतों से प्राप्त की जा सकती है -

1. अल्पकालीन स्त्रोत
2. दीर्घकालीन स्त्रोत

1. अल्पकालीन स्त्रोत

अल्पकालीन स्त्रोतों का प्रमुखत: दो भागों में बांट सकते हैं ।

(अ) आंतरिक स्त्रोत तथा (ब) बाह्य स्त्रोत

अ. **आंतरिक स्त्रोत** : ये वे स्त्रोत हैं जो फर्म या कंपनी द्वारा स्वयं अपने यहां से साधन जुटाती हैं ।

i. **ह्रास कोष (Depreciation funds)** : जब तक ह्रास कोष से स्थायी सम्पति नहीं खरीदी जाती या लाभांश के रूप में वितरण नहीं होता ये कोष कंपनी के पास ही उपलब्ध रहता है । जिसके द्वारा कार्यशील पूंजी जुटाई जाती है ।

ii. **कर एवं अन्य के लिए प्रावधान (Provision for tax and other)** : कर का भुगतान एक निश्चित समयावधि पश्चात ही किया जाता है तब तक यह राशि संस्था के पास ही रहती है । जिसका प्रयोग कार्यशील पूंजी के लिए किया जा सकता है ।

iii. **अदत्त व्यय (Outstanding expenses)** : स्थिति विवरण की तिथि को कुछ व्यय अदत्त रह जाते हैं जिसका प्रावधान तो कर लिया परंतु अभी भुगतान नहीं हुआ है । ऐसे कोष का प्रयोग जब तक भुगतान नहीं हो जाता, तब तक कार्यशील पूंजी के रूप में प्रयोग किया जा सकता है ।

ब. बाह्य कोष (External sources) :

i. **व्यापारिक साख एवं साख पत्र (Trade Credit and letter of credit) :** सामान्यतया प्रत्येक व्यावसायिक संस्थायें उधार पर कच्चा माल, सहायक सामग्री, स्थगित भुगतानों के आधार पर की गई खरीद द्वारा कार्यशील पूंजी जुटाती है । साख पत्र में देय बिल, प्रतिज्ञा पत्र एवं विनियम बिल के माध्यम से साख प्राप्त की जाती है ।

ii. **बैंक साख (Bank credit)** : बैंकों से अधिविकर्ष, बिलों की पुर्न कटौती व अल्पकालीन ऋण प्राप्त कर कंपनी साख के रूप में कार्यशील पूंजी बैंकों से प्राप्त करती है ।

iii. **वित्तीय संस्थायें (Financial Institutions) :** बीमा कंपनियां, विनियोग कंपनियां, औद्योगिक विकास निगम व्यावसायिक संस्थाओं को कई प्रकार से अल्पकालीन वित्त प्रदान करती है ।

iv. **ग्राहकों से अग्रिम (Advance from customers)** कई बार ग्राहकों से भुगतान पूर्व में ही प्राप्त हो जाता है यह कार्यशील पूंजी को बढ़ा देता है ।

v. **जननिक्षेप (Public Deposits)** : जनता से प्रत्यक्ष जमाओं के रूप में कोष प्राप्त कर कार्यशील पूंजी जुटाई जा सकती है परंतु यह स्त्रोत अधिक लोकप्रिय नहीं है ।

vi. **देशी साहूकार (Money Lenders)** : पुराने समय से उधार देने का कार्य देशी साहुकार करते आ रहे हैं इनसे उधार लेकर भी कार्यशील पूंजी प्राप्त की जा सकती है ।

vii. **प्रबंधकों एवं संचालकों से ऋण (Loan from Managers and Directors)** आवश्यकता पड़ने पर प्रबंधक एवं संचालक भी संस्था को ऋण प्रदान कर देते हैं ।

viii. **कर्मचारियों की प्रतिभूतियाँ (Securities of employees)** : कुछ कंपनियां जमानत के रूप में प्राप्त कोषों का प्रयोग कार्यशील पूंजी के रूप में करती है।

ix. **सरकारी सहायता (Government Assistance) :** सरकार द्वारा समय समय पर औद्योगिक विकास के लिए कंपनियों को अनुदान या वित्तीय सहायता प्रदान करती है ।

2. **दीर्घकालीन साधन** (Long terms sources) : इसके लिए निम्न साधनों से कार्यशील पूंजी प्राप्त की जा सकती है ।

   i. **प्रतिधारित लाभ (Retained profits) :** यह कार्यशील पूंजी का स्थायी एवं लागत रहित स्त्रोत है । कार्यशील पूंजी की पूर्ति प्रति वर्ष लाभ के एक भाग को व्यवसाय में प्रतिधारित करके की जा सकती है ।

   ii. **अंशों का निर्गमन (Issues of shares) :** अंश निर्गमन से व्यवसाय की आय पर स्थायी भार नहीं पड़ता अत: साधारणतया स्थायी कार्यशील पूंजी अंशों के निर्गमन से प्राप्त राशि से जुटाई जानी चाहिए ।

   iii. **ऋणपत्रों का निर्गमन (Issues of debentures)** : स्थायी लागत का सहारा लेकर ऋण पत्र जारी करके भी दीर्घकाल के लिए कोष उपलब्ध किये जा सकते हैं ।

   iv. **संचित कोष (Reservors)** : प्रतिधारित अर्जनों की भांति संस्था के पास उपलब्ध संचित कोषों से भी बिना लागत के कार्यशील पूंजी प्राप्त की जा सकती है ।

   v. **अनुपयुक्त स्थायी सम्पत्तियों का विक्रय (Sale of unused fixed assets)** : कंपनी के पास बेकार व अनावश्यक सम्पत्तियों को बेचकर भी कार्यशील पूंजी प्राप्त की जा सकती है । परंतु यह स्त्रोत अनियमित एवं अविश्वसनीय है ।

   vi. **दीर्घकालीन ऋण** : वित्तीय संस्थाओं से दीर्घकालीन ऋण प्राप्त करके कार्यशील पूंजी जुटाई जा सकती है । इससे संस्था पर स्थायी ब्याज का भार बढ़ता है । अत: आवश्यकतानुसार ही इस स्त्रोत का प्रयोग करना चाहिए ।

16.7 कार्यशील पूंजी एवं दीर्घकालीन पूंजी में अंतर

कार्यशील पूंजी एवं दीर्घकालिक पूंजी में अंतर निम्न आधारों पर किया जा सकता है-

1. **समयावधि (time period)** : दीर्घकालीन पूंजी की अवधि कार्यशील पूंजी से अधिक होती है । प्राय: 3 वर्ष से अधिक की पूंजी दीर्घकालीन पूंजी कहलाती है । जबकि एक वर्ष तक की अवधि वाली पूंजी कार्यशील पूंजी कहलाती है । एक वर्ष का यहां आशय ऐसा विनियोग जो एक वर्ष के अंतर्गत नकद में परिवर्तित हो जाती है । दीर्घकालीन पूंजी लंबी अवधि के लिए विनियोजित होने के कारण नगद में परिवर्तित कम अवधि में सामान्यत: नहीं होती ।

2. **सम्पत्तियां (Assets)** : दीर्घकालीन पूंजी स्थायी सम्पत्तियों जैसे - भवन, संयंत्र, मशीन, फर्नीचर इत्यादि स्थायी सम्पत्तियों में विनियोजित होती है । जबकि कार्यशील पूंजी का विनियोग चालू सम्पत्तियों जैसे - स्टॉक, प्राप्त विपत्र, देनदार, नगद, बैंक नगद जमा, इत्यादि में होता है जिसे आवश्यकतानुसार एक वर्ष में नगद में परिवर्तित किया जा सकता है ।
3. **स्त्रोत** - दीर्घकालीन पूंजी सामान्यत: स्थायी व दीर्घकालीन स्त्रोतों जैसे अंशपूंजी, ऋण पूंजी, स्वामित्व पूंजी, दीर्घकालीन ऋण आदि से प्राप्त की जाती है । जिसका पुर्नभुगतान लंबी अवधि में ही संभव है । जबकि कार्यशील पूंजी को स्त्रोत भी अल्पकालीन होते हैं जैसे - अधिविकर्ष, बैंक साख, अल्पकालीन ऋण, लेनदार, प्रदत्त खर्चे आदि जिसका भुगतान एक वर्ष के अंतर्गत करना है ।

16.8 कार्यशील पूंजी की आवश्यकता के पूर्वानुमान की तकनीकें (Techniques of forcasting working capital requirements)

वित्तीय प्रबन्धकों के लिए व्यवसायिक संस्था के लिए उपयुक्त कार्यशील पूंजी का पूर्वानुमान लगाना एक बहुत महत्वपूर्ण एवं जटिल प्रक्रिया है । इसके लिए कोई सर्वमान्य सिद्धांत या सूत्र नहीं है । अत: व्यावसायिक क्रियाओं का गहन एवं सावधानीपूर्वक अध्ययन कर जटिल गणनाओं एवं विश्लेषण पश्चात ही अंतिम निर्णय पर पहुंचा जा सकता है ।

पर्याप्त कार्यशील पूंजी की मात्रा का पूर्वानुमान की निम्नलिखित तकनीकें या विधियाँ प्रयोग में लायी जा सकती है ।

1. **परिचालन चक्र तकनीक** (Operating cycle technique) : इस विधि के अंतर्गत सबसे पहले कुल परिचालन व्ययों का अनुमान लगाया जाता है । यह लागत लेखांकन से उपलब्ध समंकों से ज्ञात की जाती है । उसके बाद परिचालन चक्र की अवधि की गणना की जाती है । कुल परिचालन व्ययों में कुल परिचालन चक्रों का भाग देकर एक व्यवसाय की रोकड़ कार्यशील पूंजी की गणना की जाती है । इनका संक्षिप्त विवरण निम्न है-
   i. **परिचालन व्यय (Operating expenses)** : परिचालन व्ययों की गणना संबंधित अवधि के अंतर्गत प्रत्यक्ष सामग्री, प्रत्यक्ष श्रम, प्रत्यक्ष व्यय तथा समस्त उपरिव्यय का योग करके ज्ञात किया जाता है । इन व्ययों में गैर नगदी व्ययों जैसे ह्रास, अमूर्त सम्पत्तियों के अपलेखन को सम्मिलित नहीं किया जाता है । इसी प्रकार लाभांश एवं कर प्रावधानों को भी छोड़ दिया जाता है । उत्पादों संबंधी परिवर्तनों, जैसे नये उत्पादों को शुरू करने, पुराने उत्पादों को छोड़ने, उत्पाद मिश्रणों संबंधित आवश्यक समायोजन किया जाता है । मूल्यों में होने वाले परिवर्तनों का भी आवश्यक समायोजन करना आवश्यक है ।
   ii. **परिचालन चक्र की अवधि (Duration of operating cycle)** : नगद राशि से कच्चा माल क्रय करने, उसे निर्मित माल में रूपांतरित करने माल बेचने, देनदारों से राशि प्राप्त होने में लगने वाली इन सभी प्रक्रियाओं में लगने वाली औसत अवधि, परिचालन अवधि कहलाती है । शुद्ध परिलाभ अवधि निकालने के लिए इसमें से

लेनदारों द्वारा स्वीकृत उधार अवधि को घटा दिया जाता है । अत: परिचालन चक्र अवधि निकालने के लिए सामग्री संग्रहण अवधि, रूपांतरण अवधि, निर्मित माल संग्रहण अवधि तथा देनदार संग्रहण अवधि की गणना करनी होगी जो निम्नानुसार होती है :

अ. सामग्री संग्रहण अवधि (Material storage period) : उत्पादन के लिए निर्गमित होने से पूर्व जितनी अवधि तक कच्चा माल गोदाम में रखा रहता है । वह अवधि ही सामग्री संग्रहण अवधि कहलाती है । इसकी गणना के लिए औसत सामग्री स्टॉक में दैनिक सामग्री उपयोग का भाग देकर की जाती है । सूत्र रूप में

सामग्री संग्रहण अवधि

$$Material\ Storage\ Period = \frac{\text{Average stock of raw material}}{\text{Daily average consumption}}$$

$$\text{Average stock of raw material} = \frac{\text{Opening stock + Closing stock}}{2}$$

$$\text{Daily Average consumption} = \frac{Material\ Consumption\ for\ the\ year}{365}$$

ब. **रूपांतरण अवधि** (Conversion period) : कच्चे माल को निर्मित माल में रूपांतरित करने में लगने वाली अवधि रूपांतरण अवधि कहलाती है । इसकी गणना के लिए अर्द्ध निर्मित माल के औसत स्कंध में दैनिक औसत कारखाना लागत का भाग दिया जाता है।

सूत्र के रूप में -

$$\text{रूपांतरण अवधि} = \frac{\text{Average stock of work in progress}}{\text{Daily Average factory cost}}$$

$$\text{Average stock of work in progress} = \frac{\text{Opening W.I.P + Closing W.I.P}}{2}$$

$$\text{Daily Average factory cost}\ \frac{\text{Total factory cost of Production}}{365}$$

Total factory cost = Opening stock of W.I.P + Material consumed + wages + Factory expenses including depreciation - Closing stock of W.I.P

स. निर्मित माल की संग्रहण अवधि - (Finished goods storage period) :

माल बिकने से पूर्व जितनी अवधि तक गोदाम में पड़ा रहता है वह ही निर्मित माल की संग्रहण अवधि कहलाती है । गणना के लिए निर्मित माल की औसत लागत में विक्रय की दैनिक औसत लागत (Daily average cost of sales) का भाग दिया जाता है।

सूत्र रूप में :

निर्मित माल की संग्रहण अवधि

$$\text{Finished goods storage period} = \frac{\text{Average stock of finished goods}}{Dialy\ average\ cost\ of\ sales}$$

$$\text{Average Stock of finished goods} = \frac{Opening\ Stock\ of\ F.S. + Closing\ stock\ of\ finished\ goods}{2}$$

$$\text{Daily average cost of sales} \frac{Total\ cost\ of\ sales}{365}$$

Cost of Sales = Opening stock of finished goods + Factory cost of production + Administration expenses + Selling and distribution expenses + Exciseduty + Financial expenses - Closing stock of finished goods.

द. देनदार संग्रहण अवधि (Debtors collection period) : जितनी अवधि में उधार विक्रय की राशि वसूल होती है वे अवधि देनदार संग्रहण अवधि होती हे । गणना के लिए औसत देनदारों की राशि में दैनिक औसत उधार बिक्री का भाग देना होता है ।

सूत्र के रूप में -

देनदार संग्रहण अवधि

$$\text{Debtors collection period} = \frac{\text{Average debtors or receivable}}{\text{Debtor's collection period} - \text{Daily average credits sales}}$$

$$= \frac{\text{Average receivables}}{Total\ credit\ sales} \times 365$$

य. लेनदार भुगतान अवधि (Creditors payment period) : यह माल के पूर्ति कर्ताओं द्वारा उधार माल जितनी अवधि के लिए दिया जाता है वह अवधि होती है । इस अवधि से संचालन अवधि कम हो जाती है । अवधि की गणना के लिए औसत लेनदारों की राशि में दैनिक उधार क्रय राशि का भाग देना होता है । सूत्र रूप में -

$$\text{लेनदार भुगतान अवधि} = \frac{Aversge\ creditors}{Creditors\ Payment\ Perood - Average\ daily\ credit\ purchases}$$

परिचालन चक्र अवधि की गणना करने के लिए उपरोक्त (अ) से (द) तक की अवधियों का योग कर लेंगे फिर इस योग में से (य) अवधि को घटा देंगे तो वही परिचालन चक्र अवधि होगी ।

3. वर्ष में परिचालन चक्रों की संख्या

(No. of completed operating cycles in the year)

परिचालन चक्र की अवधि का वर्ष के दिनों 365 में भाग देने पर परिचालन चक्रों की संख्या निकल जायेगी ।

$$\text{सूत्र के रूप में} = \frac{No.of\ operating\ cycles\ in\ the\ year\ 365}{Period\ of\ operating\ cycle}$$

4. कार्यशील पूंजी की आवश्यकता का अनुमान (Estimation of working capital required)

कुल परिचालन व्ययों में से ब्याज की राशि घटा देनी होगी । बची राशि में परिचालन चक्रों की संख्या का भाग देंगे तो कार्यशील पूंजी की आवश्यकता का निर्धारण हो जायेगा। सूत्र के रूप में -

$$\text{कार्यशील पूंजी की आवश्यकता} = \frac{\text{Total operating expenses excluding depreciation}}{No\ of\ operating\ cycles}$$

$$= \frac{\text{Operating expenses}}{365} \times 6\ per\ cycle\ period$$

5. **आकस्मिकताओं के लिए आयोजन - (Provision for contingencies) :** कार्यशील पूंजी की आवश्यकता की जो उपरोक्त गणना की गई उसमें निश्चित प्रतिशत आकस्मिक खर्चो के मानते हुए जोड़ देने चाहिए ताकि अनुमान ओर अधिक विश्वसनीय होंगे ।

उदाहरण 1 -

श्री राम एंड कंपनी की निम्न सूचना के आधार पर परिचालन चक्र अवधि तथा कार्यशील पूंजी की मात्रा की गणना कीजिए -

		वर्ष 2006-07	(राशि लाख रुपये में) 2007-08
1.	**Opening balance of**		
	a. Raw materials, store etc.	270	330
	b. Work in Process	150	120
	c. Finished goods	660	750
	d. Books debts	600	1000
	e. Trade creditors	255	300
1.	Purchase of raw materials, stores, etc.	2220	
2.	Consumption of raw materials, stores, etc.	2160	
3.	Manufacturing expenses	1050	
4.	Depreciation	180	
5.	Excise duty	480	
6.	Administration, selling and distribution cost	810	
7.	Sales (Assume 360 days in a year)	5400	

हल (Solution) :

Computation of Operating Cycle

1. Material storage period

$$= \frac{Average\ Stock\ of\ Materials}{consumption\ of\ raw\ materials} \times 360$$

$$= \frac{Rs.300\ lakhs}{Rs.2160\ lakhs} \times 360 = 50\ days$$

$$Average\ raw\ material\ stock = \frac{Rs.270\ lakhs + 330\ lakhs}{2} = Rs.300 lakhs$$

2. Work in process period

$$= \frac{Average\ work\ in\ process}{Factory\ cost\ of\ production} \times 360$$

$$= \frac{\text{Rs. 135 lakhs}}{\text{Rs. 3420 lakhs}} \times 360 = 14.2 \text{ days}$$

Average WIP = $\frac{\text{Rs. 150 lakhs +120 lakhs}}{2}$ = Rs. 135 lakhs

Total Factory cost :	**Rs. Lakhs**
Opening WIP	150
Consumption of materials	2160
Manufacturing expenses	1050
Depreciation	180
	354
Less : Closing Balance of WIP	120
	3420

3. Finished goods storage period:

$$\frac{\text{Average stock of Finished goods}}{\text{Cost of Sales}} \times 360$$

$$= \frac{\text{Rs. 630 lakhs}}{\text{Rs. 4.770 lakhs}} \times 360 = 47.55 \text{ days}$$

Average stock of finished goods = $\frac{\text{Rs. 660+600 lakhs}}{2}$ = Rs. 630 lakhs

Cost of Sales :

Opening balance of finished goods	660
Factory cost	3420
Excise duty	480
Administration, Selling and Distribution cost	810
	5370
Less : Closing balance of F.G.	600
	4770

4. Debtors Collection Period

$$\frac{\text{Average Debtors}}{\text{Credit Sales}} \times 360$$

$$= \frac{\text{Rs. 675 lakhs}}{\text{Rs. 4400 lakhs}} \times 360 = 45 \text{ days}$$

Average debtors = $\frac{\text{Rs. 600+750 lakhs}}{2}$ = Rs. 675 lakhs

* It is assumed that all sales are credit sales.

5. Creditors Payment Period:

$$\frac{\text{Average Creditors}}{\text{Credit Purchase}} \times 360 = \frac{\text{Rs. 277.5 lakhs}}{\text{Rs. 2220 lakhs}} \times 360 = 45 \text{ days}$$

Average creditors $= \frac{\text{Rs. 255 lakhs + 300 lakhs}}{2} = \text{Rs. 92.5 lakhs}$

** It is assumed that all purchases are credit purchases.

Opening Cycle in days = 50 + 14 + 48 + 45 - 45 = 112

Computation of No. of Operating Cycle in the year

$$\frac{\text{Days in a year}}{\text{Lenght of Operating Cycle in days}} = \frac{360}{112} = 3.21$$

Computation of Working Capital Requirement:

$$= \frac{\text{Total Opening Expenses Excluding Depreciation}}{\text{No. of Operating Cycles}} + \text{Desired Cash Bal.}$$

$$= \frac{\text{Rs. 4590 lakhs}}{3.21} + 0 = Rs.\ 1329.89$$

Total Cash operating expenses - Cost of Sales - Depreciation

= Rs. 4770 lakhs - 180 lakhs = 4590 lakhs

2. शुद्ध चालू संपत्ति पूर्वानुमान तकनीक

इस विधि को पूर्वानुमान या परंपरागत विधि भी कहा जाता है । भारत में इस विधि का प्रयोग अधिक होता है । इस विधि में चालू सम्पत्तियों एवं चालू दायित्वों का अनुमान पिछले अनुभव स्कंध नीति, भुगतान नीति एवं साख नीति आदि के आधार पर किया जाता है । कुल चालू सम्पत्तियों के योग में से चालू दायित्वों के योग को घटा दिया जाता है । इस राशि में कुछ प्रतिशत आकस्मिकताओं के लिए जोड दिया जाता है । यह राशि ही अनुमानित कार्यशील पूंजी है ।

कार्यशील पूंजी के निर्धारण करते समय निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिए ।

1. चालू सम्पत्तियों एवं चालू दायित्वों का अनुमान पहले मासिक आधार पर लगाया जाता है फिर कुल मासिक आवश्यकता को कुल अवधि से गुणा कर कुल कार्यशील पूंजी की गणना की जाती है ।
2. वस्तु की वर्ष में कितनी इकाईयाँ उत्पादित होती है उसमें 12 का भाग देकर मासिक उत्पादन की मात्रा निकाली जाती है ।
3. प्रत्येक उत्पादित इकाई के लिए कच्चा माल मजदूरी एवं उपरिव्ययों की लागत ।
4. कच्चा माल कितने दिन भंडार में निर्गमन से पूर्व रखा रहता है ।
5. कितने समय में माल कच्चे माल से निर्मित माल में रूपांतरित होता है ।
6. तैयार माल विक्रय से पूर्व कितने दिन गोदाम में औसतन रखा रहता है ।
7. देनदारों को कितने दिन भुगतान करने के लिए छूट दी जाती है इसी प्रकार पूर्तिकर्ताओं द्वारा कितने दिन भुगतान देने से छूट प्राप्त होती है ।
8. मजदूरी एवं उपरिव्ययों के भुगतान में समय विलंब कितना है ।
9. अर्द्ध निर्मित माल (Work in Progress) का अनुमान लगाते समय यह भी ध्यान रखना होगा कि माल किस सीमा तक निर्मित हो गया है । उसी के अनुसार कच्चा

माल मजदूरी एवं उपरिव्ययों की गणना होनी चाहिए । प्रश्न में कोई इस संबंध में सूचना नहीं है तब यह 100 प्रतिशत के आधार पर कर सकते हैं ।

10. देनदारों की राशि गणना रोकड लागत पर गणना करने के लिए लाभ की राशि घटा देनी चाहिए ।

11. अर्द्ध निर्मित माल में स्टॉक का मूल्यांकन करते समय विक्रय, वितरण एवं प्रशासन व्ययों को सम्मिलित नहीं करना चाहिए । निर्मित माल एवं देनदारों की गणना इन व्ययों को सम्मिलित करते हुए करनी चाहिए ।

उदाहरण 2 :

एक निर्माणी संस्था द्वारा दिये गये निम्न सूचनाओं से आपको उसकी कार्यशील पूंजी की आवश्यकता का अनुमान तैयार करना है :

	लागत प्रति इकाई (रू) (Cost per units (Rs.)
कच्चा माल	100
प्रत्यक्ष मजदूरी	050
उपरिव्यय	125
कुल लागत	275

आगामी अवधि के लिए अनुमानित आंकड़े निम्नानुसार दिये गये हैं -

गोदाम में कच्चा माल	औसतन 3 सप्ताह
अर्द्ध निर्मित माल (पूर्व माल उपयोग से 50% उपभोग स्तर का अनुमान है)	
गोदाम में निर्मित माल	अनुमान 2 सप्ताह
पूर्तिकर्ताओं द्वारा उधार की छूट	अनुमान 2 सप्ताह
देनदारों को उधार की छूट	अनुमान 3 सप्ताह
बैंक में नकद का अनुमान	रू 50,000
विक्रय मूल्य	400 प्रति
उत्पादन	26000 इकाईयां

यह अनुमान है कि उत्पादन 52 सप्ताहों में एक समान होता है । संपूर्ण बिक्री उधार होती है ।

Assume that production is sustained at an even face during 52 weeks of the year. All sales are on credit basis.

Computation of Net working Capital

हल (Solution) :

		Rs.	Rs.
A.	**Current Assets**		
	i. Sock of raw materials (3 weeks) 26000 x 100 x 3/52		150000
	ii. Work in progress (1 weeks) Raw material (26000 x 100 x 1/52)	50000	
	iii. Direct labour (26000 x 50 x .5/52)	12500	
	iv. Oveheads (26000 x 125 x .5/52)	31250	93750

	v. Stock of finished goods (2 weeks)	
	(26000 x 275 x 2/52)	75000
	vi. Debtors (3 weeks) (26000 x 275 x 3/52)	412500
	vii. Cash at bank	50000
B.	Current liabilities creditors (2 weeks)	981250
	(26000 x 100 x 2/52)	100000
C.	Net working capital (A-B)	881250

Working Note :

It is assumed that there is no time lap in payment of overheads.

3. प्रक्षेपी स्थिति विवरण तकनीक (Projected Balance sheet Technique)

इस विधि में आगामी अवधि के लिए विभिन्न लेनदेन के आधार पर विभिन्न सम्पत्तियों एवं विभिन्न दायित्वों का अनुमान लगाया जाता है । इस अनुमान के आधार पर भावी स्थिति विवरण या चिट्ठा (Balance sheet) बनाया जाता है । यदि कुल सम्पत्तियों का योग कुल दायित्वों से अधिक हो तो यह नगद राशि की कमी को दर्शाता है जिसका प्रबंध प्रबंधकों को बैंक अधिविकर्ष या अन्य स्त्रोतों से कार्यशील पूंजी जुटानी होगी । यदि कुल दायित्व कुल सम्पत्तियों से अधिक है तो यह रोकड के अधिशेष को दर्शाता है । जिसका भावी विनियोग की योजना प्रबंधकों को बनानी होगी । इसे उदाहरण संख्या 3 द्वारा स्पष्ट किया गया है ।

उदाहरण 3 :

श्री कृष्ण लि की निम्न सूचनाओं के आधार पर प्रक्षेपी स्थिति विवरण विधि द्वारा 31 मार्च 2009 को आवश्यक कार्यशील पूंजी का पूर्वानुमान लगाना है ।

1. 1 अप्रैल 2008 सम्पत्तियों एवं दायित्वों का शेष था । समता अंश पूंजी 10,00,000 रुपए पूर्वाधिकारी अंश पूंजी 2,50,000 रू 9 प्रतिशत ऋण पत्र 2,50,000 रू स्थायी सम्पत्तियों 6,25,000 रू ।
2. प्रति इकाई विक्रय मूल्य 25 रुपए है जिसका 50 प्रतिशत सामग्री, 20 प्रतिशत मजदूरी, 20 प्रतिशत आदि कम तथा 10 प्रतिशत लाभ है ।
3. प्रति वर्ष उत्पादन 2,40,000 इकाईयां हैं ।
4. कच्चा माल निर्गमन से पूर्व को तल में औसतन 1 माह रखा जाता है ।
5. अर्द्ध निर्मित माल को निर्मित माल रूपांतरण में औसतन 1 माह लगता है ।
6. निर्मित माल बिक्री से पूर्व 1 माह स्टॉक में रखा जाता है ।
7. देनदारों को 1 माह उधार की सुविधा है ।
8. लेनदारों द्वारा स्वीकृत उधार 2 माह है ।
9. मजदूरी भुगतान 15 दिन तथा उपरिव्यय में 1 माह है ।
10. उत्पादन एवं विक्रय वर्ष से नियमित है ।
11. ह्रास का ध्यान नहीं रखता है ।

हल (Solution) :

Projected Balance sheet as on 31st March, 09

Liabilities	Amount	Assets	Amount
Equity	10,00,000.00	Fixed assets	6,25,000.00
Preference share capital	2,50,000.00	**Current assets**	
9% debentures	2,50,000.00	Stock of Raw mat	2,50,000.00
Profit and Loss a/c Creditors	5,77,500.00	Stock of working P.	4,50,000.00
Outstanding wages	5,00,000.00	**Stock of finished**	
Outstanding overheads	50,000.00	Goods	4,50,000.00
	1,00,000.00	Debtors	4,52,500.00
	27,27,500.00		27,27,500.00

Working Notes:

1. Working capital = Current assets - Current liabilities

   16,50,000 - 6,50,000 = 10,00,000

   Current Assets = 16,50,000

   =2,50,000+4,50,000+4,50,000+5,00,000

   Current liabilities = 6,50,000

   =5,00,000+50,000+1,00,000

2. प्रतिमाह उत्पादन $\frac{2,40,000}{12}$ 20,000 इकाईयां

3. प्रति इकाई सामग्री लागत $\frac{25\times50}{100}$ = 12.50 रूपए

4. प्रति इकाई श्रम लागत $\frac{25\times20}{100}$ = 5 रूपए

5. प्रति इकाई अपरिव्यय लागत $\frac{25\times20}{100}$ = 5 रूपए

6. देनदार (विक्रय मूल्य पर) 20,000 x 25 x 1 =5,00,000 रुपए

7. देनदार (लागत पर) 20,000 x 22.50 x 1= 4,50,000

8. कच्चा माल का स्टॉक 20,000 x 12.50 रू 2,50,000

9. अर्द्धनिर्मित माल का स्टॉक

अ. कच्चा माल 20,000 x 12.50 x 1	2,50,000
ब. मजदूरी 20,000 x 5 x 1	1,00,000
स. उपरिव्यय 20,000 x 5 x 1	1,00,000
	4,50,000

10. निर्मित माल का स्टॉक 20,000 x 22.50 रू x 1	45,000
11. लेनदार 20,000 x 12.50 x 2	50,000
12. बकाया मजदूरी 20,000 x 5 x आधा	50,000
13. बकाया अपरिव्यय 20,000 x 5 x 1	1,00,000

14. वर्ष का लाभ 2,40,000 x 2.50	6,00,000
Less interest on debentures	2,500
शुद्ध लाभ	5,77,500

4. लाभ हानि समायोजन तकनीक (Adjusted profit and loss technique) : इस तकनीक में भावी अवधि के लिए कंपनी का फर्म के कुल संभावित आय एवं कुल संभावित व्यय के आधार पर संभावित लाभ हानि खाते द्वारा लाभ दर्शाया जाता है ।
इस संभावित लाभ में रोकड़ अंर्तप्रवाह एवं रोकड़ बाह्य प्रवाह का समायोजन करके कार्यशील पूंजी में वृद्धि या कमी ज्ञात की जाती है । इस विधि के अनुसार कार्यशील पूर्ति का अनुमान निम्न उदाहरण संख्या 4 द्वारा स्पष्ट किया गया है -

उदाहरण संख्या 4

भरत लि के आगामी 31 मार्च 2009 के संभावित लाभ हानि खाते व अतिरिक्त सूचनाओं के आधार पर आपको लाभ हानि समायोजन विधि का प्रयोग करते हुए कार्यशील पूंजी का अनुमान लगाना है ।

Budgeted profit and loss account

To selling experience	90,000	By Gross profit	6,98,000
To office expenses	90,000	By interest	50,000
To loss on sale of machine	72,000		
To interest	54,000		
To Income Tax	90,000		
To depreciation	1,98,000		
To net profit	1,54,000		
	7,48,000		7,48,000
	54,000	By Net profit	1,54,000
To Dividend	1,00,000		
To balance carried to B/s	1,54,000		1,54,000

अतिरिक्त सूचनाएँ-

1. वर्ष के दौरान 2,20,000 रू की नई मशीन खरीदनी है ।
2. 5,40,000 रू की लागत की पुरानी मशीन को (संचित द्वारा 3,78,000 रूपये) 90,000 रू में बेचने की संभावना है ।
3. वर्ष के दौरान 50,000 रुपए के ऋण पत्र शोधन हेतु परिपक्व होंगे ।
4. 1,50,000 रू सम मूल्य पर समता अंश नगद रूप में निर्गमन किये जाएंगे ।

हल (Solution) :

Calculation of Increase/ Decrease in working capital

Net profit as per P&L A/c	1,54,000

Add: Non cash flow

i. Depreciation	1,98,000	
ii. Loss on sale of machine	72,000	2,70,000
Working capital form operations		4,24,000
Add cash in flow		
i. Issue of share capital	1,50,000	
ii. Sale of machine	90,000	2,40,000
		6,64,000
Less : Cash out flows		
i. Redemption of debentures	50,000	
ii. Purchases of machine	2,20,000	
iii. Payment of dividend	54,000	3,24,000
Net increase in working capital		3,4,000

5. प्रतिगमन विश्लेषण व तकनीक

यह सांख्यिकीय तकनीक है जिससे पिछले अनुभवों के आधार पर दो चर एक्स विक्रय तथा वाई चर कार्यशील पूंजी के मध्य संबंध स्थापित कर कार्यशील पूंजी का अनुमान लगाया जाता है । इसके लिए न्यूनतम वर्ग विधि के द्वारा विक्रय एक्स तथा कार्यशील पूंजी कई का संबंध निम्न समीकरण व्यक्त किया जाता है:

समीकरण y = a + b x

a and b का मूल्य निम्न सहायक दो समीकरणों से निकाला जाता है ।

Ey = na + b Ex

Exy = a Ex + bE x 2

यहां ए = स्थिर मूल्य, बी - परिवर्तन मूल्य

एक्स - विक्रय वाई - कार्यशील पूंजी

द = इकाईयों की संख्या

उदाहरण सं 5

लक्ष्मण लि. की बिक्री एवं कार्यशील पूंजी के पिछले चार वर्षों के आकड़ों की सहायता से वर्ष 2009 के लिए कार्यशील पूंजी का अनुमान लगाइए । यदि प्रकाशित विक्रय 200 लाख रू है।

वर्ष	2005	2006	2007	2008
विक्रय	55	98	132	176
कार्यशील पूंजी	42	61	82	119

हल (Solution) :

Computation of regression equation as sales and working capital

Year	(X)	(Y)	Xy	X^2
2005	65	42	2730	4225

2006	98	61	5978	9604
2007	132	82	10824	17424
2008	176	119	20994	30976

N = 4 Ex = 471 Ey = 304 Exy = 40,526 Ex^2 = 62,229

समीकरणों द्वारा ए तथा बी का मूल्य निम्न प्रकार ज्ञात किया जायेगा :

Ey = na + b Ex

304 = 4a + 471b

Exy = a Ex + bEx^2

40526 = 471 a + 62229 b-

समीकरण 1 को 471 से व समीकरण (ii) को 4 से गुणा करके घटाने पर

143184 = 1884 a + 221841b (i)

<u>162104 = 1884 a + 248916 b (ii)</u>

18920 - 27075 b

$$b = \frac{18920}{27075} = 0.6988$$

b का मान (1) में रखने पर

304 = 4a + 329.13

4a = 304 - 329.13

4a = 25.13

A = 6.28

y = a + bx

y = working capital , n = sales

विक्रय 200 लाख होने पर कार्य शील पूंजी

y 6.28 + .6988 x 200

1395.76 लाख रूपये

6. विक्रय का प्रतिशत तकनीक

पिछले अनुभवों के आधार पर यह ज्ञात किया जाता है कि पिछले वर्षों में विक्रय का कितना प्रतिशत कार्यशील पूंजी रही है । यह प्रतिशत मानकर की आगामी विक्रय बढने पर उतनी प्रतिशत ही कार्यशील पूंजी की आवश्यकता बढ़ जायेगी । यह विधि बहुत सरल एवं परंपरागत विधि है ।

7. रोकड बजट विधि

इस विधि में आगामी कुल प्राप्तियों का अनुमान लगाया जाता है । इसी प्रकार आगामी कुल भुगतानों का भी अनुमान लगाया जाता है । प्राप्तियों व भुगतानों की तुलना कर यह ज्ञात कर लिया जाता है कि कब कितनी नगद राशि कम रहेगी या अधिक रहेगी ।

रोकड़ बजट बनाकर केवल नगद का अनुमान लगता है न कि कार्यशील पूंजी का, अत: इसका प्रयोग कार्यशील पूंजी ज्ञात करने में कम ही किया जाता है ।

16.9 सारांश

पूर्व विवेचन से यह ज्ञात हुआ कि कार्यशील पूंजी व्यवसाय के लिए बहुत अधिक महत्व रखती है । इसके कुशल प्रबंध द्वारा ही व्यावसायिक संस्था को लाभ प्राप्त होता है । बल्कि अल्प कालीन शोधन क्षमता एवं दैनिक क्रियाकलापों का समय पर निष्पादन संभव है ।

कार्यशील पूंजी की कई अवधारणा हैं । परंतु चालू सम्पत्तियों का चालू दायित्वों पर आधिक्य ही शुद्ध कार्यशील पूंजी होती है । कार्यशील पूंजी की मात्रा को कई तत्वों विशेषकर व्यवसाय का आकार, प्रकृति, बैंकिंग सुविधायें, क्रय विक्रय की शर्तें, मंदी तेजी की स्थिति आदि से प्रभावित होती है । पर्याप्त कार्यशील पूंजी का अनुमान लगाने के लिए कई तकनीकों का प्रयोग किया जाता है । जिसके द्वारा वित्त प्रबंधक उपयुक्त कार्यशील पूंजी की गणना कर भावी स्थितियों से निपट सकता है ।

प्रमुख तकनीकों में से परिचालन चक्र, शुद्ध चालू संपत्ति, प्रक्षेपी चिट्ठा तकनीक, लाभ हानि समायोजन तकनीक, प्रतिर्गमन विश्लेषण तकनीकों द्वारा पर्याप्त कार्यशील पूंजी का अनुमान लगा सकते हैं । इन विभिन्न तकनीकों का प्रयोग विभिन्न उदाहरणों द्वारा समझाया गया है । प्रबंधक अपनी सुविधा एवं उपलब्ध समंकों एवं पूर्व अनुभवों के आधार पर अलग अलग तकनीकों का प्रयोग करते हैं ।

16.10 शब्दावली

1. W.I.P	Work in progress	अर्द्ध निर्मित माल
2. F.G.	Finished goods	निर्मित माल
3. Conversion period	रूपांतरण अवधि	
4. C.A. =	Current assets	चालू सम्पत्तियाँ
5. C.L. =	Current liabilities	चालू दायित्व
6. Budgeted =	संभावित	
7. Projected	प्रक्षेपी	
8. Regression	प्रतिगमन	
9. Forcasting	पूर्वानुमान	
10. Regulation	नियमन	
11. Reporting	प्रतिवेदन	
12. Assessment	निर्धारण	
13. Inventory	स्कन्ध	
14. Overheads	उपरिव्यय	
15. Operating cycle	परिचालन चक्र	
16. P.B.T	Profit before tax	कर पूर्व लाभ

16.11 स्वपरख प्रश्न

I. अतिलघुरात्मक

1. कार्यशील पूंजी को परिभाषित कीजिए।
2. अत्यधिक कार्यशील पूंजी के दो दोष बताइए ।
3. पर्याप्त पूंजी के दो लाभ बताइए ।
4. सकल व शुद्ध कार्यशील पूंजी में अंतर क्या है ?
5. परिचालत चक्र का सूत्र बताइए ।

II. लघुउत्तरात्मक प्रश्न

1. पर्याप्त कार्यशील पूंजी के लाभ बतलाइए ।
2. कार्यशील पूंजी अनुमान की परिचालन चक्र विधि समझाइए ।
3. कार्यशील पूंजी की मात्रा को प्रभावित करने वाले घटकों को समझाइये ।
4. कार्यशील पूंजी का महत्व बताइए ।
5. प्रक्षेपित स्थिति विवरण विधि समझाइए ।

III. निबंधात्मक प्रश्न

1. कार्यशील पूंजी की विभिन्न अवधारणाओं को समझाइये ।
2. कार्यशील पूंजी प्राप्त करने के विभिन्न स्त्रोतों को समझाइये ।
3. कार्यशील पूंजी अनुमान की विभिन्न विधियों / तकनीकों को समझाइये ।
4. कार्यशील पूंजी को प्रभावित करने वाले विभिन्न तत्वों का विवेचन कीजिए ।

IV. व्यावहारिक प्रश्न

1. मोहन लिमिटेड द्वारा प्रस्तुत निम्नलिखित समंकों से दोनों वर्षों के लिए परिचालन चक्र अवधि तथा कार्यशील पूंजी की आवश्यकता का परिकलन कीजिए (वर्ष में 360 दिन मान ले)

	2007	2008
Average stock :	रु	रु
Raw material	50000	67500
Work-in progress	35000	45000
Finished goods	52500	60000
Purchase	240000	337500
Cost of goods sold	350000	45000
Sales	400000	500000
Debtors (Average)	80000	125000
Creditors (Average)	40000	45000

2. आदित्य इंजीनियरिंग कंपनी प्राइवेट लिमिटेड का संचालक मंडल आपसे उत्पादन की 78,000 इकाइयों के क्रियाशीलता स्तर पर कार्यशील पूंजी की आवश्यकताओं का पूर्वानुमान तैयार करने का आग्रह करता है । आपकी गणना के लिए निम्न सूचना उपलब्ध है :

	Per unit in Rs.
Raw material	180
Direct labour	80
Overheads	150
	410
Profit	120
Selling Price	530

i. Raw material are in stock on an average one month; (ii) Materials are in process, on an average two weeks, (iii) Finished goods are in stock on an average one month, (iv) Credit allows by suppliers one month, (v) Time lag in payment from debtors two months, (vi) Lag in payment in 1 ½ week, and (vii) Lag in payment of overheads in one month.

20% of the output is sold against cash. Cash in hand and at bank is expected to be Rs. 60,000/- it is to be assumed that production is carried one evenly throughout the year, wages are overheads accrue similarly and time period of 4 weeks in equivalent to a month and 52 weeks a year.

3. एक जनवरी को एक कंपनी का प्रबंध संचालक यह जानना चाहता है कि वर्ष के दौरान कार्यशील पूंजी की कितनी राशि की आवश्यकता होगी । निम्नलिखित सूचना से कार्यशील पूंजी की आवश्यकता का अनुमान तैयार कीजिए :

पिछले वर्ष उत्पादन 30,000 इकाईयों का था । इस वर्ष भी इतना ही उत्पादन होगा। विभिन्न लागतों का विक्रय मूल्य से अनुमानित अनुपात है -

कच्ची सामग्री	60 प्रतिशत
प्रत्यक्ष श्रम	0 प्रतिशत
उपरिव्यय	20 प्रतिशत

अतिरिक्त सूचनाएँ

1. कच्ची सामग्री उत्पादन हेतु निर्गमन से पूर्व औसतन 2 माह स्टॉक में रहता है ।
2. प्रत्येक इकाई एक माह उत्पादन प्रक्रिया में रहेगी । कच्ची सामग्री प्रारंभ में ही लगा दी जाती है । श्रम व उपरिव्यय समान रूप से उपार्जित होते है ।

3. निर्मित माल, ग्राहकों को भेजने की प्रतीक्षा में लगभग 3 माह गोदाम में रहेगा ।
4. कच्ची सामग्री की सुपुर्दगी से 2 माह की उधार लेनदारों द्वारा स्वीकृत की जाती है ।
5. ग्राहकों को माल भेजने की तिथि से 3 माह की उधार दी जाती है ।
6. उत्पादन एवं विक्रय का नियमित चक्र है ।
7. दूरी प्रत्येक माह के प्रथम दिन चुकाई जाती है । कंपनी सामान्यतया रोकड हस्ते 20,000 रू रखती है ।
8. विक्रय मूल्य 10 रू प्रति इकाई है ।

प्र.4 निम्नलिखित सूचनाओं से आवश्यक कार्यशील पूंजी का अनुमान प्रक्षेपित चिट्ठा विधि से लगाइए लागत का विक्रय मूल्य से संभावित अनुपात है -

Issued share capital 2, 40,000, 6% deenture 1,60,000 fixed assets at cost 1,60,000

कच्ची सामग्री 50 प्रतिशत, श्रम 20 प्रतिशत, उपरिव्यय 20 प्रतिशत लाभ 10 प्रतिशत

1. भंडार में कच्चा माल औसतन दो माह रखा जाता है ।
2. तैयार माल स्टॉक में औसतन तीन माह की अवधि के लिए रहता है ।
3. गत वर्ष में उत्पादन 36000 इकाइयाँ थी तथा चालू वर्ष में भी इसी स्तर को बनाये रखने की योजना है ।
4. उत्पादन की प्रत्येक इकाई का (सामग्री 100 प्रतिशत तथा श्रम व उपरिव्यय 50 प्रतिशत पूर्ण मानते हुए) आधा माह प्रक्रिया में रहने का अनुमान है ।
5. विक्रय मूल्य प्रति इकाई 10/- है ।
6. उत्पादन तथा विक्रय का नियमित चक्र है ।
7. देनदारों की गणना विक्रय मूल्य पर की जा सकती है ।
8. ग्राहकों को तीन माह की उधार दी जाती है तथा पूर्तिकर्ताओं द्वारा दो माह की उधार दी जाती है ।

प्र.5 मैसर्स रामानंद लिमिटेड के निम्न अनुमानित लाभ हानि खाते व अन्य सूचनाओं से लाभ हानि समायोजन विधि से कार्यशील पूंजी में कमी या वृद्धि की गणना कीजिये ।

Forecast Profit and Loss account

	Rs.		Rs.
To Depreciation	50,000	By Gross Profit	6,00,000
To Adm. Expenses	50,000	By Interest	30,000
To Selling exp.	40,000		
To Interest charges	20,000		
To Loss on sale of Plant	40,000		
To Income tax	70,000		
To Net Profit	3,60,000		
	6,30,000		6,30,000

To Dividend	60,000		—
To Balance c/d	3,00,000	By Net profit	3,60,000
	3,60,000		3,60,000

अतिरिक्त सूचनाएँ -

1. एक पुराने संयंत्र जिसकी लागत 1,00,000 रू और उस पर एकत्रित ह्रास 70,000 रू है के 10,000 रू. में बिकने का अनुमान है ।
2. वर्ष के दौरान 1,00,000 की लागत का संयंत्र खरीदना है ।
3. वर्ष के दौरान 1,00,000 की कीमत के 10 प्रतिशत ऋण-पत्र परिपक्व हो जायेंगे ।
4. 2,00,000 रू की कीमत के समता अंश नकद हेतु जारी किये जायेंगे ।
5. 50,000 रू की लागत के विनियोग 60,000 में बिक जायेंगे ।

Q-6 With the help of sales & working capital figures (Rs. In lakhs) for Savita limited for the last five year, estimate the working capital requirements for the year 2009, if the anticipated sales is Rs. 435 lakhs.

Year	2004	2005	2006	2007	2008
Sales (Rs. In lakhs)	160	220	260	285	345
Working capital (Rs. In lakhs)	110	135	157.5	217.5	225

Q.7 Calculate the operating cycle & the working capital requirement form the following figure -

	Balance (as at 1st Jan. 2008) Rs.	**Balance** (as at 31st Dec. 2008) Rs.
Raw Material	40,000	60,000
Work-in progress	10,000	30,000
Finished good	30,000	1,000
Sundry Debtors	20,000	20,000
Manufacturing Exp.		1,00,000
Distribution & other Exp.		20,000
Purchase of Materials		2,00,000
Total Sales		5,00,000

1. The company obtains at credit of 60 days from its suppliers.
2. All goods were sold for credit.
3. Shri Surendra. Ltd. Sells goods in a gross profit of 25% Depreciation is taken into account as a part of cost of production. The following are the annual figures given to you:-

Rs.

Sales (two month credit)	9,00,000
Material consumed (one month credit)	2,25,000
Wages paid (one month lag in payment)	1,80,000
Cash manufactured expenses (one month lag in payment)	2,40,000
Administration expenses (one month lag in payment)	60,000
Sale promotion expenses (paid quarterly in advance)	30,000
Income tax payable in 4 instalment of which one lies in the next year.	75,000

The company keeps one month stock of raw materials and finished goods. It also keeps Rs. 50,000 in cash. You are required to estimate the working capital requirements of the assuming 15% safety margin.

16.12 संदर्भ ग्रंथ

1. Corine T. Morgard 'Management Accounting'
2. P.V. kulkarni, 'Financial Management'
3. L.G. Gitman, 'Analysis of Financial statement'
4. M.Y. Khan and P.C. Jain 'Management accounting'
5. I.M. Pandey, Financial Management
6. Van Horhe James. 'Financial Management Policy'
7. Hampton John J., Financial decision Making.
8. M.R. Agarwal ' Financial Management'

इकाई - 17 रोकड प्रबंध (Cash Management)

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य
17.1 परिचय / उद्गम
17.2 अर्थ एवम् परिभाषा
17.3 रोकड़ प्रबंध का उद्देश्य
17.4 रोकड़ स्तर का निर्धारण करने वाले घटक तत्व
17.5 रोकड़ रखने की आवश्यकता
17.6 रोकड़ प्रबंध का महत्व
17.7 रोकड़ प्रबंध का क्षेत्र / कार्य
17.8 रोकड़ प्रबंध का नवीन विकास
17.9 सारांश
17.10 शब्दावली
17.11 स्वपरख प्रश्न
17.12 व्यावहारिक प्रश्न
17.13 उपयोगी पुस्तकें

17.0 उद्देश्य

रोकड़ प्रबंध के अध्ययन करकने के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार है :-

1. आपको यह जानकारी हो सकें कि व्यावसायिक संस्थाओं में रोकड प्रबंध की आवश्यकता क्यों होती है?
2. रोकड़ प्रबंध क्या है?
3. रोकड़ प्रबंध के मुख्य उद्देश्य एवम् लाभ / महत्व क्या है?
4. रोकड़ प्रबंध का क्षेत्र / कार्य कितना विस्तृत हैं ।

17.1 परिचय / उद्गम

आइये अब हम विवेचना करें कि वित्तीय प्रबंध में रोकड़ प्रबंध का क्या स्थान होता है? रोकड़ प्रबंध दो शब्दों से बना है । रोकड़ + प्रबंध । इन दोनों शब्दों की विवेचना करने से पूर्व रोकड़ के उद्गम एवम् विकास की संक्षिप्त व्याख्या आवश्यक है । वस्तुत: अनादि काल से रोकड़ का उपयोग सामान्य जीवन से लेकर उद्योग व्यापार के सुचारू संचालन हेतु होता ही आ रहा है । अलग-अलग खण्ड काल में रोकड़ का स्वरूप अलग-अलग रहा है । आधुनिक युग में रोकड़ एक अदभुत चालू सम्पत्ति है जो किसी संस्था की उत्पादन प्रक्रिया के सफल संचालन एवम् उत्पादन प्रक्रिया में उत्तरोत्तर वृद्धि के लिए अति आवश्यक हैं । इसका व्यवसाय में उतना ही महत्व है जितना मानव शरीर में रक्त का । जिस प्रकार रक्त का उपयुक्त संचार एवं प्रवाह मनुष्य को स्वस्थ्य बनाये रखने में अपनी भूमिका रखती है, उसी भांति रोकड़ प्रबंध एक संस्था

को जीवन, शक्ति, लाभ, कार्य क्षमता में वृद्धि तथा शोधन क्षमता प्रदान करती हैं । इसी कारण रोकड़ कोष ही व्यावसायिक जगत की वह धुरी है जिसके चारों ओर अर्थ-जगत चक्राकार घूमता हैं । अत: व्यवसाय को कुशलता पूर्वक संचालित करने के लिए यह आवश्यक है कि रोकड़ का प्रबंध कुशलतापूर्वक किया जाए ।

17.2 अर्थ एवम् परिभाषा

जैसा कि स्पष्ट हे कि रोकड़ प्रबंध में रोकड़ सुप्रबंध शब्दों का मिश्रण है । सर्वप्रथम रोकड़ शब्द की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती हैं । रोकड़ शब्द का प्रयोग संकुचित एवं विस्तृत दोनों अर्थों में किया जाता है । **संकुचित अर्थ** में रोकड़ से अर्थ संस्था के उपलब्ध नोट, सिक्के, चैक, बैंक ड्राफ्ट तथा बैंक में रखे माँग जमा (Demand deposit) से है । इसके विपरीत **विस्तृत अर्थ** में, इसमें, नोट, चैक, नकद-तुल्य सम्पत्तियों जैसे विपणन योग्य प्रतिभूतियों तथा बैंक में सावधि-जमाओं को भी सम्मिलित किया जाता है । उपर्युक्त अर्थ में 'रोकड़ या नकद कोषों में रोकड़ बैंक शेष तथा नकद प्राय: (Near Cash) प्रतिभूतियों को सम्मिलित किया जाता है । नकद प्राय: प्रतिभूतियों में विपणन योग्य प्रतिभूतियों (Marketable Securities) तथा बैंक में समय-अवधि जमा (Time Deposit) इत्यादि को सम्मिलित किया जाता हैं" । रोकड़ की इस अवधारणा के आधार पर रोकड़ की प्रकृति को निम्नांकित बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है :-

1. रोकड़ स्वयं वस्तुओं एवम् सेवाओं का उत्पादन नहीं करती है बल्कि अप्रत्यक्ष रूप में उत्पादन क्रिया में मदद करती है ।
2. रोकड़ को व्यवसाय के निरन्तर चलने वाले पहियों को चिकनाई देने वाले तेल के रूप में जाना जाता हैं ।
3. प्रत्येक व्यावसायिक संस्था उसकी प्रकृति के अनुरूप न्यूनतम रोकड़ शेष को बनाये रखने की आवश्यकता होती हैं । इससे व्यावसायिक क्रियाओं की सफलता से संचालन होता हैं।
4. रोकड़ एक निष्क्रिय सम्पत्ति है जो स्वयं कुछ भी उत्पन्न नहीं करती है ।
5. रोकड़ में पूर्ण तरलता होती है जिससे इनका उपयोग आसानी से हो जाता है ।
6. रोकड़ के उपयोग पर प्रभावी नियंत्रण भी आवश्यक होता है अन्यथा लाभ के स्थान पर हानि उठानी पड़ जाती हैं ।

अब हम प्रबंध को परिभाषित करेंगे । "प्रबंध व्यावसायिक क्रिया का वह भाग होता है जिससे किसी कार्य को निर्धारित उद्देश्य के अनुरूप प्रभावशीलता से पूरा किया जा सके ।" इस प्रकार प्रबंध में विज्ञान एवम् कला दोनों के गुण सम्मिलित होते हैं । दोनों की पृथक पृथक परिभाषा के आधार पर अब हम रोकड़ प्रबंध के अर्थ को इस प्रकार समझ सकते हैं । **"रोकड प्रबंध** रोकड़ के इस प्रकार के प्रबंध से सम्बद्ध है जिसमें संस्था के दायित्वों (Obligations) को चुकाने के लिए पर्याप्त रोकड़ सदैव उपलब्ध रहे । अर्थात् एक उपक्रम के सफल संचालन के लिए जब भी आवश्यकता हो, रोकड़ उपलब्ध रहनी चाहिए एक ओर रोकड़ की अपर्याप्तता भुगतानों एवं अन्य कार्यात्मक अनुसूचियों को अस्त व्यस्त कर सकती है, तो दूसरी ओर अनावश्यक

रोकड़ कोष बनाये रखने से संसाधनों का दुरुपयोग होता है जिससे संस्था को भारी आर्थिक हानि हो सकती है ।" अत: रोकड का प्रभावी प्रबंध न केवल संस्था को लाभदायक स्थिति है । अत: रोकड़ का प्रभावी प्रबंध न केवल संस्था को लाभदायक स्थिति में बनाये रखती है बल्कि संस्था के उत्तरोत्तर विकास एवम् कार्य क्षमता में वृद्धि उपयोगी सिद्ध होता हैं । इसलिए रोकड़ प्रबंध वर्तमान में वित्तीय प्रबंध का एक महत्त्वपूर्ण अंग साबित हो रहा हैं ।

17.3 रोकड प्रबंध का उद्देश्य Objectives of Cash Management

रोकड़ प्रबंध का प्रमुख उद्देश्य संस्था के लाभों को अधिकतम करने के लिए तरलता एवं लाभदायकता में सन्तुलन बनाये रखना हैं । इस दृष्टि से रोकड़ प्रबंध के मुख्य उद्देश्यों को इस प्रकार गिनाया जा सकता है -

1. दीर्घकाल तक लाभों को अधिकतम करने के लिए तरलता एवं लाभदायकता में सन्तुलन बनाये रखना ।
2. उचित रोकड़ स्तर का निर्धारण एवं उसको बनाये-रखना ताकि संस्था के समग्र उद्देश्य की प्राप्ति हो सकें ।
3. व्यवसाय के सामान्य संचालन में भुगतान तालिकाओं (Payment Schedules) के अनुरूप रोकड़ की व्यवस्था बनाये रखना, जिससे संस्था की ख्याति को नुकसान नही पहुँचें।
4. रोकड शेष के रूप में बँधी राशि के स्तर को न्यूनतम रखना । इससे रोकड का एक महत्वपूर्ण भाग मृत विनियोग के रूप में पड़ा नही रहे । लेकिन रोकड़ का न्यूनतम स्तर इस प्रकार भी तय नही किया जाना चाहिए, कि इससे संस्था की सामान्य कार्य संचालन किया प्रभावित हो जाये । अर्थात वित्तीय प्रबन्धक को सभी लाभ-हानियों को ध्यान में रखते हुए रोकड़ शेष को अनुकूलतम स्तर पर रखना चाहिए ।

17.4 रोकड स्तर का निर्धारण करने वाले घटक तत्व / Factors/ Elements Determing Level of Cash

किसी भी व्यावसायिक संस्था के पास इतनी रोकड़ अवश्य होनी चाहिए कि उसकी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके तथा आवश्यकता अनुरूप अप्रत्याशित घटनाओं का सामना किया जा सके । मोटे रूप से किसी भी संस्था में रोकड़ शेष को निर्धारित करने वाले घटक / तत्व निम्नांकित हो सकते हैं:-

i. **संस्था की साख** :- जिन संस्थाओं की साख ऊँची होती है, उनके यहाँ रोकड़ स्तर कम रखने पर भी कार्य का संचालन सुचारू हो जाता हैं । क्योंकि ऐसी संस्थाओं को हर स्तर पर उधार सुविधा उपलब्ध होती है । इसके विपरीत जिन संस्थाओं की साख अच्छी नहीं होती, उन्हें अधिक रोकड़ रखने की आवश्यकता होती हैं । भारत में Hindustan Liver, Tata Group, Reliance Group आदि कम्पनियों की ख्याति काफी ऊँची होने के कारण कम रोकड़ स्तर पर भी इनकी व्यावसायिक गतिविधियाँ निर्बाध रूप से संचालित हो सकती हैं । वस्तुत संस्था को प्रारम्भ में अधिक रोकड़ रखने की आवश्यकता होती

हैं तथा जैसे-जैसे व्यापार का विकास होता है तथा संस्था की ख्याति बढ़ती है, वैसे-वैसे तुलनात्मक रूप से कम रोकड़ रखने से भी सुचारू कार्य संचालन हो जाता हैं ।

ii. **बैंकों से सम्बन्ध:** - यदि संस्था के बैंको से मधुर सम्बन्ध हैं तथा अधिविकर्ष (Overdraft) इत्यादि की सुविधा उपलब्ध है तो न्यूनतम रोकड़ स्तर से ही कार्य चल जाता हैं ।

iii. **क्रय विक्रय की शर्तें** : - यदि संस्था को अनुकूल शर्तों पर कच्चा माल उधार उपलब्ध हो जाता हो तथा निर्मित माल का बड़ा भाग नकद में बिक जाता हो, तब रोकड़ की आवश्यकता कम होगी ।

iv. **उत्पादन प्रक्रिया एवं नीति** :- यदि उत्पादन प्रक्रिया लम्बी हो एवं उत्पादन नीति ऐसी तय की जाती हो कि कच्ची सामग्री का स्टॉक ऊँचा बनाये रखना एवम् निर्मित माल को बाजार में विलम्ब से बेचा जाये, तब ऐसी दशा में रोकड़ के ऊँचे स्तर की आवश्यकता होती है।

v. **माल की माँग की प्रकृति** :- यदि माल की माँग की प्रकृति ऐसी हो कि उसकी माँग बाजार में सदैव बनी रहती है तथा विक्रय का बा भाग नकद में बिक जाता हो तब कम रोकड़ की आवश्यकता होगी ।

vi. **आकस्मिक परिस्थितियाँ :-** यदि संस्था आकस्मिक परिस्थितियों में उधार लेने की क्षमता अधिक हो तब संस्था को कम रोकड़ रखने की आवश्यकता होगी ।

vii. **यदि प्रबंधकीय नीति सुदृढ़ योजना** पर आधारित हो तब भी कम रोकड़ की आवश्यकता होगी । इसके विपरीत यदि प्रबन्धकीय नीति किसी ठोस योजना पर आधारित नहीं हों, तब अधिक रोकड की आवश्यकता होगी ।

viii. **उधार वसूली नीति** :- उधार वसूली नीति भी रोकड़ को सीधे रूप से प्रभावित करता हैं । यदि संस्था की उधार वसूली नीति कुशल एवं दक्षता पूर्ण है तो संस्था को पर्याप्त रोकड़ की उपलब्धता बनी रहेगी एवम् डुबत ऋण भी कम होंगे फलस्वरूप कम रोकड़ रखने की आवश्यकता होगी ।

उपर्युक्त विवेचन से आप समझ गये होंगे कि प्रत्येक संस्था अपने पास रोकड़ का न्यूनतम स्तर कितना रखे, अनेक तत्वों पर निर्भर करता हैं इसके लिए कोई एक सर्वमान्य आधार तय नही किया जा सकता है । रोकड़ का स्तर एक दुधारू हथियार है जिसका सही उपयोग करने पर संस्था का विकास होता है एवम् गलत उपयोग होने पर विनाश होता हैं ।

17.5 रोकड रखने की आवश्यकता Motives of Holding Cash

यहाँ हमें यह जानना आवश्यक है, कि आखिर रोकड़ रखने की आवश्यकता क्यों होती है? इस सम्बन्ध में आधुनिक अर्थशास्त्री लार्ड कीन्स ने किसी संस्था द्वारा रोकड़ रखने के लिये तीन कारण गिनाये हैं :-

A. लेनदेन आवश्यकतायें transaction need :- रोकड़ के द्वारा दिन-प्रतिदिन के खर्चों व उधारों पर दूसरे भुगतानों को पूरा करने में सहायता मिलती हैं । प्रत्येक संस्था प्रतिदिन अनेक सौदे करती है, जिनके परिणामस्वरूप रोकड़ अन्तप्रर्वाह एवं बहिर्वाह होते है । अनेक बार रोकड के आगमन से भुगतान अधिक हो जाते हैं । ऐसी परिस्थिति में व्यावसायिक

दायित्वों को पूरा करने के लिए जो रोकड़ रखी जाती है, उसे लेनदेन आवश्यकता की रोकड के नाम से जाना जाता है ।

इस आवश्यकता के लिए रोकड़ की कितनी मात्रा की आवश्यकता होगी, यह संस्था के आकार, व्यवहार उत्पादन नीति एवम् क्रय विक्रय नीति पर निर्भर करता है । प्रो. कीन्स ने रोकड़ की इस आवश्यकता को L_1 से पहचान दी थी ।

B. सतर्कता आवश्यकतायें Precautionary Needs : - रोकड़ आवश्यकता का दूसरा मुख्य कारण सतर्कता हैं । प्राय: किसी संस्था को ऐसी आकस्मिकताओं का सामना करना पड़ सकता है जिनके बारे में पहले कोई विचार नहीं किया गया हो तथा न ही किसी प्रकार का आयोजन किया गया हो । इसमें हड़ताल, आग लग जाना, कच्चे माल के मूल्यों में अचानक वृद्धि, प्राकृतिक दुर्घटना इत्यादि को सम्मिलित किया जा सकता है । जब कभी ऐसी आकस्मिक घटनायें घटित होती है तब उनसे उत्पन्न दायित्वों को पूरा करने के लिए रोकड़ रखने की आवश्यकता होती हैं । प्रो- कीन्स ने इस आवश्यकता के लिए भी जितनी रोकड़ रखी जाती है उसे भी L_1 से ही पहचान दी हैं ।

C. सट्टा आवश्यकतायें Speculative Needs:- मूल्यों में परिवर्तन या अवसर का लाभ उठाने के उद्देश्य से रखा गया रोकड़ कोष सट्टा सम्बन्धी आवश्यकताओं में सम्मिलित किया जाता हैं । यदि पर्याप्त मात्रा में रोकड़ शेष होते है, तब ही प्रतिभूतियों के मूल्यों में परिवर्तन का लाभ संस्था उठा पाती हैं । कींस ने इसे L_2 से पहचान दी है । इस प्रकार लार्ड कींस के अनुसार रोकड़ की आवश्यकता माँग को L_1 एवम् रोकड़ आवश्यकता के कारणों को L_1 एवम् L_2 से पहचान दी हैं इसे सूक्ष्म के रूप में इस प्रकार लिखा जा सकता है

$$L = L_1 + L_2$$

कींस द्वारा वर्णित उपयुक्त तीन आवश्यकतायें के अतिरिक्त रोकड़ रखने की एक और आवश्यकता हो सकती हैं, जिसे क्षतिपूर्ति प्रयोजन के नाम से जाना जाता है ।

D. क्षतिपूर्ति-सम्बन्धी आवश्यकता Compensation Motive - बैंक अपने ग्राहकों को विभिन्न प्रकार की सेवायें प्रदान करता हैं, इसलिए अपने ग्राहक को खाते में एक न्यूनतम शेष रखने को बाध्य करता है ताकि उस पर ब्याज अर्जित कर सके तथा इस प्रकार अपनी निःशुल्क सेवाओं की कुछ सीमा तक क्षतिपूर्ति प्राप्त कर सके । अत: अब आप समझ गये होंगे कि प्रत्येक व्यावसायिक संस्था को रोकड़ शेष की आवश्यकता क्यों होती हैं । स्पष्ट है, कि विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु रोकड़ शेष की आवश्यकता होती हे एवम् इसी कारण अपनी आवश्यकता अनुसार प्रत्येक संस्था रोकड शेष को बनाये रखती है ।

17.6 रोकड प्रबंध का महत्व (Importance of Cash Management)

सफल व्यवसाय के संचालन में अनेक घटकों के साथ प्रभावी रोकड़ प्रबंध का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है । संस्था की दीर्घकालीन लाभदायकता काफी कुछ प्रभावी रोकड़ प्रबंध पर निर्भर करती हैं । रोकड़ प्रबंध के द्वारा जिस समय तथा जिस मात्रा में संस्था को रोकड़ कोषों की आवश्यकता हो तब वे उसे उपलब्ध हो साथ ही यदि संस्था के पास अनावश्यक रूप से अधिक

रोकड़ किसी समय बिन्दु पर एकत्रित हो जाते हैं, तब उनका लाभदायक उपयोग करने की व्यवस्था की जाती हैं । अब आप निश्चित रूप से समझ गये होंगे कि "रोकड़ प्रबंध का व्यावसायिक संस्था में वही महत्व होता है जो मानव शरीर के लिए रक्त संचार का" रोकड़ प्रबंध के महत्व की व्याख्या निम्नांकित बिन्दुओं द्वारा की जा सकती है:-

1. **जीवन रक्त** :- रोकड़ की आवश्यकता के अनुरूप पूर्ति संस्था के लिए जीवन रक्त के समान हैं, क्योंकि रोकड़ कोषों की पर्याप्त पूर्ति एक असफल फर्म को हानियों के बावजूद जिन्दा रख सकती हैं ।
2. **संस्था की ख्याति को बनाये रखने में** :- संस्था के पास पर्याप्त रोकड़ बाजार में उसकी भुगतान क्षमता की ख्याति में वृद्धि करती हैं । फलस्वरूप अनुकूल शर्तों पर माल क्रय करने एवम् बैंक एवम् अन्य स्त्रोतों से उधार लेने का लाभ संस्था को मिल जाता है । भारत में Hindustan Liver इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है ।
3. **समन्वय :-** संस्था के पास पर्याप्त रोकड़ प्रबंध से सभी विभागों की आवश्यक आवश्यकता अनुरूप रोकड़ उपलब्ध करवायी जाती है, जिससे विभागों में प्रभावी समन्वय रहता है एवम् संस्था के निर्धारित लक्ष्य कम लागत में पूरे हो सकते हैं ।
4. **रोकड प्रवाहों की संस्था में निरन्तरता :-** जिस प्रकार शरीर के स्वास्थ्य रहने के लिए रक्त का प्रवाह शरीर के सभी भागों में निरन्तर बना रहना चाहिए तथा यदि यह शरीर के किसी भी भाग में रक्त प्रवाह रूक जाता है तब शरीर के उस भाग को "लकवा (पक्षाघात)" मार जाता है या कभी कभी मृत्यु भी हो जाती है । ठीक इसी प्रकार रोकड़ का प्रवाह व्यवसाय के सभी क्षेत्रों में निरन्तर होना चाहिए । इस कार्यों में रोकड प्रबंध की प्रभावी भूमिका होती है ।
5. **सुअवसरों का लाभ:-** रोकड़ प्रबंध की प्रभावी व्यवस्था से, अनुकूल व्यावसायिक सुअवसरों का लाभ उठा सकती है । जैसे बाजार में अचानक कच्चे माल के मूल्यों में कमी होने पर अधिक स्टॉक का क्रय करना तथा तेजी के समय में व्यवसाय का विस्तार कर अवसरों का लाभ उठाना । ऐसे अवसरों के लाभ उठाने से संस्था के दीर्घकालीन लाभों में वृद्धि होती हैं ।
6. **व्यापारिक छूट का लाभ:-** उपयुक्त रोकड़ प्रबंध करने वाली संस्था को सामग्री पूर्तिकर्ताओं को तुरन्त भुगतान करने से नकद छूट का लाभ भी मिलता हैं । साधारणतया व्यवसायी "2/10 net 30" शब्दावली का प्रयोग करते हैं, जिसका तात्पर्य यह है, कि भुगतान सुपुर्दगी की तिथि के 30 दिन के भीतर होना है । इस प्रकार 20 दिन पूर्व भुगतान करने पर 2 प्रतिशत की भुगतान में कटौती प्राप्त होती हैं । इससे संस्था की लाभ अर्जन क्षमता में तो वृद्धि होती ही हैं, साथ में ख्याति में भी वृद्धि होती हैं ।
7. **अप्रत्याशित घटनाओं का सामना:-** ये वे घटनायें होती हैं, जिनका संस्था पूर्वानुमान नही लगा सकती है । पर्याप्त रोकड़ प्रबंध वाली संस्थाएँ ऐसी अप्रत्याशित घटनाओं से बिना किसी मानसिक तनाव के निपट सकती है जिससे संस्था की कार्यक्षमता एवम् लाभदायकता प्रभावित नहीं होती है एवम् संस्था का जीवन काल भी काफी लम्बा होता हैं ।

8. **ऊँची शोधन क्षमता:-** उपयुक्त रोकड़ प्रबंध द्वारा संस्था अपने लेनदारों को भुगतान समय पर कर पाती है । फलस्वरूप एक ओर ऋण भार एवम् लागत से मुक्त होती है एवम् दूसरी संस्था की ख्याति में भी वृद्धि होती है । ऊँची शोधन क्षमता के फलस्वरूप Tata Group में ऋण पूँजी के रूप विनियोजन करने में भी विनियोगिता (Investors) अपने आप को लाभ की स्थिति में पाता है ।
9. **मन्दी के समय सहायक :-** तेजी मंदी व्यापार के आवश्यक अंग होते हैं । तेजी की तुलना में मंदी की अवस्था में व्यवसाय में निराशा अधिक फैलती हैं अत: रोकड प्रबंध से मंदी से निपटने के लिए रोकड़ उपलब्धता की जानकारी होती है एवम् संस्था मंदी के वातावरण से निपटने में सफल हो सकती है ।
10. इसके अतिरिक्त रोकड़ प्रबंध से **बैंकों से मधुर सम्बन्धों की स्थापना,** सुदृढ़ ऋण नीति के निर्धारण एवम् कम रोकड़ साधनों से अधिक कुशलता से उपयोग करने का भी लाभ प्राप्त होता हैं ।

मेरे अनुसार उपयुक्त विवेचना से आप निश्चित रूप से समझ गये होंगे की रोकड़ प्रबंध का व्यवसायिक संस्था में कितना महत्व है मैं तो यहाँ तक लिखना चाहूँगा कि रोकड़ प्रबंध का महत्व न केवल व्यावसायिक संस्था में ही, बल्कि जीवन के हर क्षेत्र में इसका महत्व बरकरार है इसलिए प्रभावी एवम् कुशल रोकड़ प्रबंध व्यवस्था सदैव होनी चाहिए ।

17.7 रोकड प्रबंध का क्षेत्र / कार्य (Scope / functions of cash management)

इसके क्षेत्र / कार्य को निम्नांकित भागों में विभाजित किया जा सकता है :-

अ. रोकड़ का नियोजन एवं नियन्त्रण Cash Planning and Control

ब. कोषों का संग्रहण व संवितरण Collecting and Disbursing Funds

स. समुचित रोकड़ का स्तर निर्धारण Determining Optimum Cash Level

द. अतिरिक्त रोकड़ का विनियोजन Investing Surplus Cash

उपयुक्त कार्यों की व्याख्या इस प्रकार कर सकते हैं :-

अ. रोकड़ का नियोजन एवं नियन्त्रण (Cash Planning and Control) :- संस्था का प्रमुख उद्देश्य होता है, कि सामाजिक हितों की रक्षा करते हुए अपने लाभों को अधिकतम करना । इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु रोकड़ नियोजन एवं नियन्त्रण आवश्यक हैं । "रोकड़ नियोजन एक संस्था की आगामी अवधि के लिए रोकड़ आधिक्य या कमी का निर्धारण करने की एक तकनीक होती है, जबकि रोकड़ नियन्त्रण से अभिप्राय इस पर नजर रखने से होता है, कि रोकड़ की प्राप्ति एवम् भुगतान रोकड़ नियोजन के अनुसार हो रहे हैं या नहीं ।" रोकड. प्रबंध के उद्देश्यों की पूर्ति काफी कुछ रोकड़ के नियोजन एवम् नियन्त्रण पर निर्भर करता हैं । इसके लिए निम्नांकित विधियों का प्रयोग किया जाता हैं :

A. **रोकड़ बजट** :- यह रोकड़ नियोजन एवम् नियन्त्रण की महत्वपूर्ण उपकरण है । यह बजट अवधि के दौरान रोकड़ प्राप्तियों व भुगतानों की योजना हैं । रोकड़ बजट फर्म

को रोकड़ स्थिति का प्रबंध करने में सहायता प्रदान करता हैं । यह कोषों को अधिक अच्छे का से विनियोजित करने में सहायता देता हैं । इस बजट के आधार पर फर्म आधिक्य रोकड़ को विक्रय योग्य प्रतिभूतियों में विनियोजित करने तथा लाभ प्राप्त करने का निर्णय कर सकती है । केस बैन होर्न के अनुसार "एक रोकड़ बजट समय के विभिन्न अन्तरालों के लिये भावी रोकड़ प्राप्तियों एवं रोकड़ भुगतानों का एक पूर्वानुमान होता है ।"

यह बजट सामान्यत: एक वर्ष के लिए बनाया जाता हैं जिसे पुन: छ: माही, तिमाही अथवा माहवारी के आधार पर विभाजित किया जा सकता है ।

रोकड बजट तैयार करने की विधियाँ :- इसे सुविधा अनुसार दो प्रकार से तैयार किया जा सकता हैं ।

- प्राप्ति एवं भुगतान विधि Receipt and Payment Method
- समायोजित शुद्ध आय विधि Adjusted Net profit Method
- **प्राप्ति एवं भुगतान विधि :-** रोकड बजट की इस विधि का उपयोग सामान्यत: सीमित अवधि के पूर्वानुमानों हेतु किया जाता हैं । इसमें रोकड़ प्राप्तियों एवं भुगतानों का अनुमान निम्नांकित प्रकार से होता हैं:-

रोकड़ प्राप्तियाँ (Cash Receipts):- सामान्यत: व्यवसाय में रोकड़ प्राप्तियों के स्त्रोत निम्नलिखित हो सकते है :-

i. नकद विक्रय क्रिया से ।
ii. उधार विक्रय वसूली से ।
iii. अंश पूंजी एवम् ऋण पत्रों के निर्गमन या उस पर बकाया राशि को मांगने से।
iv. विनियोग एवम् सम्पत्तियों के विक्रय से प्राप्त शुद्ध राशि ।
v. लाभांश प्राप्ति से ।
vi. अन्य नकद प्राप्यों से-जैसे ब्याज, अधिकार शुल्क, कमीशन, कर वापसी आदि-आदि ।

रोकड़ भुगतान (Cash Payments) : - सामान्य: इसमें निम्नलिखित मदों को सम्मिलित किया जाता हैं ।

i. रोकड क्रय ।
ii. उधार क्रय का शर्तों के अनुरूप भुगतान ।
iii. वेतन एवम् मजदूरी का भुगतान ।
iv. व्यापार से जुड़े उपरिव्यय (overheads) का भुगतान ।
v. वाणिज्य एवम् उत्पादन करों का भुगतान ।
vi. पूंजीगत वस्तुओं के क्रय का भुगतान ।
vii. पूंजी व्यवहारों के लिए भुगतान-जैसे ऋणपत्रों एवं पूर्वाधिकारी अंशों के शोधन, बैंक अधिविकर्षों की अदायगी ।
viii. लाभांश एवम् ब्याज का भुगतान ।

ix. अन्य आकस्मिक भुगतान ।

प्राप्तियों एवम् भुगतानों की गणना संस्था की नीति रीति के अनुरूप की जाती हैं । उपयुक्त व्याख्या से आप समझ गये होंगे कि रोकड़ बजट की इस विधि में अल्प अवधि जो 3 माह से 6 माह तक सामान्यत: होती हैं, के लिए रोकड़ प्राप्तियों एवम् भुगतानों का पूर्वानुमान किया जाता है, जिससे नियोजन अवधि में रोकड़ के आधिक्य या कमी का ठीक से अनुमान लगाकर उसी अनुरूप नीति तय की जा सके । आपकी सुविधा एवम् समझने के लिए इस विधि से रोकड़ बजट तैयार करने का नमूना इस प्रकार हैं:-

Cash Budget

[For three Month end June 2008]

Particulars	Months		
	April Rs.	May Rs.	June Rs.
Opening Balance	–	–	–
Receipts :-			
Cash Sales	–	–	–
Collection from Debtors	–	–	–
Calls on shares and Debentures	–	–	–
Sale of Investment and Fixed Assets	–	–	–
Dividend Received	–	–	–
Tax Refund	–	–	–
Any other Cash receipts	–	–	–
Total Cash Available (a)			
Payments	–	–	–
Cash Purchases	–	–	–
Payment to creditors	–	–	–
Salaries and Wages	–	–	–
Over heads paid	–	–	–
Tax paid	–	–	–
Dividend Paid	–	–	–
Purchase of fixed Assets and Investment	–	–	–
Redemption of Shares and Loans	–	–	–
Any other Cash payments	–	–	–
Total payments (b)	–	–	–
Cash balanced c/d (a-b)	–	–	–

Illustration 1

Prepare monthly cash budget of Radha Krishna Ltd. For six months beginning from April 2008 on the basis of the following information: अप्रैल 2008 से प्रारम्भ होने वाली छमाही के लिये निम्नांकित सूचनाओं के आधार पर राधा कृष्णा लि. का मासिक रोकड़ बजट तैयार कीजिये :

i. Estimated monthly sales are as follows:
नुमानित मासिक विक्रय निम्नांकित है:

	Rs.		Rs.
January	1,50,000	June	80,000
February	1,20,000	July	1,00,000
March	1,40,000	August	80,000
April	80,000	September	60,000
May	60,000	October	1,00,000

ii. Wages and salaries are estimated to be payable as follows:
अनुमानित देय मजदूरी तथा वेतन निम्नांकित है :-

	Rs.		Rs.
April	9,000	July	10,000
May	8,000	August	9,000
June	10,000	September	9,000

iii. Of the sales, 80% is on credit and 20% for cash. 15% of the credit sales are collected within one-month and balance in two months. There are not bad debt losses.
विक्रय में से 80% साख तथा 20% नकद विक्रय है । 75% साख विक्रय एक माह में वसूल हो सकेगी तथा शेष दो माह में । अशोध्य ऋण हानियाँ नही है ।

iv. Purchase amount to 80% of sales and are made and paid for in the month preceding the sales.
क्रय राशि विक्रय की 80 प्रतिशत है तथा इसका भुगतान विक्रय वाले माह में हो जाता है ।

v. The firm has 5% debentures of Rs. 2, 40,000. Interest on these has to be paid quarterly in January, April and so on.
फर्म के पास रू. 2,40,000 के 5 प्रतिशत ऋणपत्र है । जिनपर ब्याज का भुगतान तिमाही में जनवरी, अप्रैल, तथा इसी प्रकार से आगे किया जाता हैं ।

vi. The firm had a cash balance of Rs. 20,000 on April 1, 2008 which is the minimum desired level of cash balance. Any cash surplus/ deficit above/ below this level is made up by temporary investment/

liquidation of temporary investments or temporary borrowings at the end of cash month (interest on these to be ignored).

फर्म के पास 1 अप्रैल 2008 को रू. 20,000 रोकड़ शेष हैं, जो कि रोकड़ शेष का न्यूनतम वांछित स्तर हैं । इस स्तर से किसी भी प्रकार के रोकड आधिक्य / कमी की पूर्ति अस्थायी विनियोग / अस्थायी विनियोग के समापन या अस्थायी ऋण को प्रत्येक माह के अन्त में लेकर की जाती हैं । (इन पर ब्याज को छोड़कर)

Solution (हल)

Workings:

Collection from debtors: देनदारों से संग्रह

(Amount in Rs.)

Total Sales	Feb.	March	April	May	June	July	Aug.	Sept.
	120000	140000	80000	60000	80000	100000	80000	60000
Credit Sales (80% of total Sales Collection	96000	112000	64000	48000	64000	80000	64000	48000
	Feb.	March	April	May	June	July	Aug.	Sept.
One Month		72000	84000	48000	36000	48000	60000	48000
Two Months			24000	28000	16000	12000	16000	20000
Total Collection			108000	76000	52000	60000	76000	68000

Monthly Cash Budget for six months, April to September, 2008

Receipts	April	May	June	July	Aug.	Sept.
Opening balance	20000	20000	2000	20000	20000	20000
Cash Sales	16000	12000	16000	20000	16000	12000
Collection from debtors	108000	76000	52000	60000	76000	68000
Total Cash available (A)	144000	108000	88000	100000	112000	100000
Payments						
Purchases	48000	64000	80000	64000	48000	80000
Wages & Salaries	9000	8000	10000	10000	9000	9000
Interest on debentures	3000	-	-	3000	-	-
Tax payments	-	-	-	5000	-	-
Total payments (B)	60000	72000	90000	82000	57000	89000
Minimum cash balance desired	20000	20000	20000	20000	20000	20000
Total Cash needed (C)	80000	92000	110000	102000	77000	109000
Surplus/deficit (A-C)	64000	16000	(22000)	(2000)	35000	(9000)
Investment/financing						
Temporary Investment	(64000)	16000	-	-	(35000)	-
Liquidation of temporary						

Investments or temporary						
Borrowings	-	-	22000	2000	-	9000
Total effect of investment						
Financing (D)	(64000)	(16000)	22000	2000	(35000)	9000
Closing cash balance (A+D-B)	(20000)	20000	20000	20000	20000	20000

समायोजित शुद्ध आय विधि (Adjusted Net Profit Method)

रोकड़ बजट की इस विधि का उपयोग दीर्घकालीन पूर्वानुमानों के लिए होता हैं । इस विधि में रोकड़ अनुमानों को जानने के लिए लाभ हानि को समायोजित किया जाता है । इसमें रोकड़ में वृद्धि के निम्नांकित मदों को जोड़ा जाता है:-

i. गैर-रोकड़ी मदें जैसे मास अदत्त व्यय, अपलेखन आदि का समायोजन करने बाद परिचालन से आय ।

ii. चालू सम्पत्तियों (रोकड़ को छोडकर) में कभी नकद में ।

iii. स्थायी सम्पत्तियों की बिक्री, नकद में ।

iv. दायित्वों में वृद्धि से अप्रत्यक्ष रूप से रोकड़ में वृद्धि होती हैं ।

v. अंशों की बिक्री से ।

इसी प्रकार रोकड़ में कमी का अनुमान निम्नलिखित मदों को घटाने से होता हैं:

i. चालू सम्पत्तियों में वृद्धि (रोकड़ को छोडकर) ।

ii. दायित्वों में कमी ।

iii. लाभांश का भुगतान ।

iv. स्थायी सम्पत्तियों का क्रय ।

v. भावी खर्चो का अग्रिम (Pre. Paid) भुगतान

इस विवेचना से आप समझ गये होंगे कि इन विधि में रोकड़ का पूर्वानुमान अनेक समायोजन करने से ज्ञात होता हैं । क्यों कि इन समायोजन मदों में परिवर्तन सामान्यत: अल्पकाल में नही आता हैं । अत: रोकड़ बजट की यह विधि दीर्घकाल के लिए ही अधिक उपयोगी सिद्ध होती है । इस प्रकार के रोकड़ बजट का नमूना नीचे दिया गया हैं:-

Cash Budget

[For Period ended]

Particulars	Rs.	Rs.
Opening cash balance		–
Add:- operating Adjusted profit		
i. Net Profit for the period as per P&L A/c	–	
Add:- Current year Dep. Written off	–	
Current year Provision & Reserve	–	
Accrued Expenses	–	
Loss on Revaluation of Assets and Liability	–	
Normal Loss Written off	–	–

ii. Decrease in Assets		–
iii. Increase in Current Liabilities		–
iv. Receipts from other sources such as Issue of Share capital, debenture etc. sale of plant and Machinery, investment etc.		–
Total Cash Available	–	–
Less:-i. Increase in current Assets if any	–	
ii. Decrease in current liabilities if any	–	
iii. Prepayments	–	
iv. Purchase of Fixed Assets Investment	–	
v. Tax and dividend paid	–	
Total Cash Payment		–
Cash Balance (Available cash-payment cash)		

Illustration 2: for the following information prepare a Cash Budget of Ram Ltd. As per Adjusted Profit and Loss method.

निम्नलिखित सूचनाओं से राम लि0 का समायोजित लाभ-हानि विधि से एक रोकड़ बजट तैयार कीजिये -

Balance Sheet of Ram Ltd.

As on 31st December, 2008

	Rs.		Rs.
Creditors	13460	Cash	36800
Debentures	147000	Debtors	98000
Accumulated Depreciation	100000	Stock	123800
Equity Share Capital	250000	Investments	200000
Profit and Loss A/c	267000	Plant at cost	440000
	898600		898600

Forecast Profit & Loss Account

For the year ended 31st December, 2008

	Rs.		Rs.
To Accumulated Dep.	44,000	By Gross Profit	4,00,000
To Adm. And Selling Expenses	20,000	By Profit on sale Invest.	4,000
To Income Tax	10,000	By Interest	20,000
To Interest charges	6,000		
To Loss on sale of Plant	16,000		
To Net Profit c/d	3,28,000		

	4,24,000		4,24000
To Dividend	20,000	By Net Profit b/d	3,28,000
To Balance c/d	3,08,000		
	3,28,000		3,28,000

Additional Information

i. New plant costing Rs. 1, 60,000 was purchased during the year

ii. An old plant costing Rs. 1, 20,000 and accumulated depreciation of Rs. 84,000 was sold for Rs. 20,000

iii. Investments costing Rs. 20,000 were sold for Rs. 24,000.

On: 31 st December, 2008 Debtors were Rs. 1,66,400, stock Rs. 1,85,000, Creditors Rs. 2,00,000 Debentures Rs. 1,00,000, Equity shares issued during the year Rs. 1,00,000

अतिरिक्त सूचनाएँ:

i. वर्ष में 1,60,000 रू. लागत का नया संयंत्र क्रय किया गया ।

ii. एक पुराना संयंत्र जिसकी लागत 1,20,000 रू. व एकत्रित खास 84,000 रू. था, 20,000 रू. में बेच दिया गया

iii. 20,000 रू. मूल्य के विनियोग 24,000 रू. में बेचे गये ।

iv. 31 दिसम्बर, 2008 को देनदार, 1,66,400 रू., स्कन्ध 1,65,000 रू, लेनदार 2,00,000 ऋणपत्र 1 ,00,000 रू. तथा वर्ष में निर्गमित समता अंश 1,00,000 रू. थे ।

हल (Solution) :

Cash Budget

For the budgeted ended 31st December, 2008

	Rs.	Rs.
Opening Balance of Cash		36800
Budgeted Profit for the year		328000
Add: Depreciation written off	44000	
Increase in Creditors	65400	
Loss on sale of Plant	16000	
Sale of Investments	24000	
Sale of Plant	20000	
Issue of Share Capital	100000	597400
		634200
Less:- Redemption of Debentures	47000	

Purchase of Plant	160000	
Payment of Dividend	20000	
Profit on sale of Investments	4000	
Increase in Stock	61200	
Increase in Debtors	68400	360600
Closing Balance of Cash		273600

रोकड़ प्रवाह विश्लेषण:- रोकड़ प्रवाह विश्लेषण एक निश्चित अवधि में रोकड के विभिन्न स्त्रोतों एवम् उपयोगों का विवेचन किया जाता है । स्पष्ट है कि इस तकनीक में रोकड़ प्रवाह की भूतकालीन प्रवृत्तियों की विवेचना की जाती है जिसके आधार पर भविष्य के लिए रोकड़ बजट तैयार होता है । सामान्यत: रोकड़ प्रवाह विवरण गत दो वर्षों में रोकड़ में हुई गतिविधियों की विवेचना होती है । इस विवेचन के द्वारा रोकड़ प्रवाह विवरण को लेखांकन प्रमाप-3 (संशोधित) के अनुरूप तैयार किया जाता हैं । यद्यपि लेखांकन प्रमाप-3 (संशोधित) में रोकड़ प्रवाह विवरण का कार्य विशिष्ट प्रारूप निर्धारित नही किया है । फिर भी भारतीय प्रतिभूति एवं विनियम मंडल (SEBI) द्वारा अनुमोदित एवं सर्वाधिक प्रचलित प्रारूप निम्नांकित हैं ।

ABC Limited

Cash Flow Statement (Direct Method)

For the year ended.....

Particulars	**Rs.**	**Rs.**
A. Cash Flows from Operating Activities:	xxx	
Cash Receipts from Customers	xxx	
Cash Paid to Suppliers and Employees	xxx	
Cash Generated from Operations	xxx	
Less: Income Tax paid	xxx	
Extraordinary Items	xxx	
Net Cash from (used in) Operating Activities		xxx
B. Cash Flows from Investing Activities:		
Purchase of Fixed Assets	xxx	
Proceeds from sale of Fixed Assets	xxx	
Purchase of Investment	xxx	
Proceeds from Sale of Investment	xxx	
Interest Received	xxx	
Dividend Received	xxx	
Net cash from (used in) Investing Activities	xxx	
C. Cash Flows from Financing Activities :		
Proceeds from Issue of Share Capital/ Debentures	xxx	
Proceeds from Long-term Debts	xxx	
Repayment of Log-term Debts	xxx	
Redemption of Debentures	xxx	

Redemption of Preference Shares	xxx	
Dividend paid	xxx	
Interest paid	xxx	
Net Cash from (used in) Financing Activities		xxx
Net Increase (Decrease) in Cash and Cash Equivalents (A+B+C)		xxx
Cash and Cash Equivalents as at the beginning of the year		xxx
Cash and Cash Equivalents at the End of the year		xxx

Particulars	Rs.	Rs.
A. Cash Flows from Operating Activities:		xxx
Net Profit before tax and Extraordinary Items		
Adjustment for :		
Depreciation and Amortization	Xxx	
Provision for Doubtful Debt	xxx	
Foreign Exchange Gain/Loss	xxx	
Gain/Loss on Sale of Fixed Assets/ Investments	Xxx	xxx
Dividend/ Interest		xxx
Operating Profit before Working Capital Changes		
Adjustment for Changes in we:		
Bills Receivable		
Debtors	xxx	
Inventories	xxx	
Prepaid Expenses	xxx	
Bills Payable	xxx	
Creditors	xxx	
	xxx	Xxx
Cash Generated from Operations		xxx
Less: Income Tax paid		xxx
Cash before Extraordinary Items		xxx
Extraordinary Items		xxx
Net Cash from (used in) Operating Activities		xxx
B. Cash flows from Investing Activities:		
Purchase of Fixed Assets	xxx	
Proceeds from Sale of Fixed Assets	xxx	
Purchase of Investments	xxx	
Proceeds from Sale of Investment	xxx	
Interest Received	xxx	
Dividend Received	xxx	

Loans to Subsidiaries	xxx	
Net Cash from (used in) Investing Activities		Xxx
C. Cash Flows from Financing Activities :		
Proceeds from Issue of Share Capital/ Debentures	Xxx	
Proceeds from Long-term borrowings	xxx	
Repayment of Long-term Debts	xxx	
Redemption of Dentures	xxx	
Redemption of Preference Shares	xxx	
Dividend paid	xxx	
Interest paid	xxx	
Net Cash from (used in) Financing Activities	xxx	
Net Increase/ (Decrease) in Cash and Cash Equivalents (A+B+C)		Xxx
Cash and Cash Equivalents as at the beginning of the year		Xxx
Cash and Cash equivalents at the end of the year		xxx

उदाहरण 3: निम्न सूचना से आपको मोहन एण्ड कम्पनी लिमिटेड का 31 मार्च, 2007 को समाप्त होने वाले वर्ष का (i) प्रत्यक्ष, एवं (ii) अप्रत्यक्ष विधि से रोकड़ प्रवाह विवरण बनाना है-

From the following information you are required to prepare a cash Flow Statement of M/s. Mohan & Co. Ltd. For the year ended 31 st March, 2008 using (i) Direct, and (ii) Indirect Method.

Balance Sheet

as 31 st March, 2008

	31.3.07 Rs.	31.03.08 Rs.		31.03.07 Rs.	31.03.08
Share Capital	7000	70000	Fixed Assets	50000	91000
Secured Loans	-	40000	Inventory	15000	40000
Creditors	14000	39000	Debtors	5000	20000
Tax Payable	10000	3000	Cash	20000	7000
P. & L. A/c	7000	10000	Prepaid Expenses	2000	4000
	92000	162000		92000	162000

Profit and Loss Account

For the year ended 31st March, 2008

	31.03.07		**31.03.07**
To Opening Inventory	15000	By Closing Inventory	40000
To Purchases	98000	By Sales	100000
To Gross Profit c/d	27000		

	140000		140000
To General Expenses	9000	By Gross Profit c/d	27000
To Depreciation	8000		
To Interest	2000		
To Provision for Tax	4000		
To Net Profit c/d	4000		
To Dividend	1000	By Balance c/d	7000
To Balance c/d	10000	By Net Profit b/d	4000
	11000		11000

हल (Solution) :

Cash Flow Statement (Direct Method)

For the year ending 31st March, 2008

A. Cash Flow from Operating Activities :	Rs.	Rs.
Cash Receipts from Customers		8500
Cash Paid to Suppliers and Employees		(84000)
Cash Generated from Operations		1000
Taxes paid		(2000)
Net Cash used in Operating Activities		(1000)
B. Cash Flow from Investing Activities:		
Purchase of Fixed Assets	(49000)	
Sale of Fixed Assets	Nil	
Interest/Dividend Received	Nil	
Net Cash used in Investing Activities		(49000)
C. Cash Flow from Financing Activities :		
Issue of Share Capital	40000	
Raising Secured Loans	(1000)	
Dividend Paid	(2000)	
Interest Paid		
Net Cash from financing Activities		37000
Net Decrease in Cash & Cash Equivalents (A+B+C)		(13000)
Cash and Cash Equivalents as at 01.04.07		20000
Cash and Cash Equivalents as at 31.03.08		7000

Note: The figures in brackets show cash outflows:

1. Cash Receipts from Customers

	Rs.
Sales	100000
Add: Debtors at the beginning	5000
	105000
Less: Debtors at the end	20000
Cash Receipts from Customers	85000

2. **Cash Paid to Suppliers and Employees**

	Rs.
Total Purchase	98000
Add: Creditors at the beginning	14000
	112000
Less: Creditors at the end	39000
Cash paid for Purchase	73000
Add: General Expenses	9000
	82000
Add: Prepaid Expenses at the end	4000
	86000
Less: Prepaid Expenses at the beginning	2000
Cash paid to Suppliers and Employees	84000

3. Taxes Account

	Rs.		Rs.
To Cash A/c	2000	By Balance b/d	1000
To Balance c/d	3000	By P. & L. A/c	4000
	5000		5000

4. **Fixed Assets Account**

	Rs.		Rs.
To balance b/d	50000	By Depreciation A/c	8000
To Cash A/c Bal. Fig. being Purchase	49000	By Balance c/d	91000
	99000		99000

5. It is assumed that dividend shown in profit and loss appropriation account has been paid during the year.

Cash Flow Statement (Indirect Method)

For the year ending 31st March, 2008

A. Cash Flow from Operating Activities:	Rs.	Rs.
Net Profit as per & L. A/c		4000
Adjustment for:		
Depreciation	8000	
Provision for Tax	4000	
Interest	2000	14000
Operating Profit before Working Capital Changes		18000
Adjustment for:		
Increase in Debtors	(15000)	
Increase in Inventory	(25000)	
Increase in Prepaid Expenses	(2000)	
Increase in Creditors	25000	(17000)
Cash Generated from Operations		1000
Taxes Paid		(2000)
B. Cash Flow from Investing Activities:		(1000)
Purchase of fixed Assets		
Sale of Fixed Assets	(49000)	
Interest Dividend Received	Nil	
C. cash Flow from Financing activities:	Nil	
Issue of Share Capital		(49000)
Raising Secured Loan	Nil	
Dividend Paid	40000	
Interest Paid	(1000)	
Net Cash from Financing Activities	(2000)	
Net Decrease in Cash and Cash Equivalents (A+B+C)		37000
Cash and Cash Equivalents as at 0.04.07		(13000)
Cash and cash Equivalents as at 01.04.08		20000
		7000

टिप्पणी:- कोष्ठक में दिये गये अंक रोकड़ (Cash Outflows):- बहिर्वाह दर्शाते हैं:-

रोकड़ प्रबंध प्रतिमान (Cash management models):- रोकड़ प्रबंध प्रतिमानों की सहायता से अनुकूलतम रोकड़ शेष का निर्धारण किया जाता है । इससे रोकड़ के प्रभाव पूर्ण प्रबंध के साथ-साथ रोकड़ के लाभदायक प्रबंध की स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है ।

अनुपात विश्लेषण (Ratio Analysis):- अनुपात वित्तीय विश्लेषण कि एक ऐसी तकनीक है जिसमें दो वित्तीय आंकड़ों के बीच सम्बन्ध व्यक्त किया जाता है एवम् निर्वचन किया जाता हैं । रोकड नियोजन एवं नियन्त्रण हेतु विभिन्न अनुपातों की गणना की जाती है, इसमें प्रमुख इस प्रकार है :-

$$\text{Cash Turnover Ratio} \quad \frac{\text{Sales per period}}{\text{Initial Cash Balance}}$$

$$\text{Daily Cash payment Ratio } \frac{\text{Cash}}{\text{Average Daily Purchases}}$$

$$\text{Cash flow coverage Ratio } \frac{\text{Average cash flow befoer interest and Tax}}{\dfrac{\text{Interest+Principal payment}}{(1-tax)}}$$

$$\text{Cash Position Ratio } \frac{\text{Average Cash Balance}}{\text{Average Daily flows}}$$

ब. कोषों का संग्रहण संवितरण (Collection and Disbursements):- प्रबंध का संगठन में विभिन्न बिन्दुओं पर रोकड़ शेष के स्तरों को नियन्त्रित करना चाहिए । प्रबंधक को ऐसी व्यवस्था बनानी चाहिए जहां संगठन के प्रत्येक मण्डल के पास अपने हाथ में अधिशेष रोकड़ के बिना दिन-प्रतिदिन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त रोकड़ हो । इसके लिए इस विधि को अपनाया जा सकता है :-

त्वरित रोकड़ वसूली (Accderating cash collection):- रोकड़ प्रबंध में त्वरित रोकड़ वसूली की नीति इस प्रकार तय करनी चाहिए कि बिना ग्राहकों को नाराज किये उनसे वसूली शीघ्रता से हो सके । इसके लिए निम्नांकित तरीके अपना सकते हैं-

संग्रहण केन्द्रों की स्थापना (Establishment of collection centers):- संस्था में शीघ्र रोकड़ वसूली की गति को बढ़ाने के लिए उन सभी स्थानों पर रोकड़ वसूली केन्द्र स्थापित किये जा सकते हैं, जहाँ संस्था बड़ी मात्रा में व्यापार करती हैं। इससे ग्राहकों द्वारा प्रेषित भुगतान ओर फर्म द्वारा उसके प्राप्ति के बीच लगने वाले समय को कम किया जा सकता हैं । इसमें क्षेत्र से सम्बन्धित वसूली केन्द्र ग्राहकों से भुगतान प्राप्त करके उसे यथाशीघ्र स्थानीय बैंक में जमा करा देते हैं जो कि सभी अधिशेष कोषों को प्रधान कार्यालय के संघनन बैंक को हस्तांतरित कर देते हैं । इन केन्द्रों की उपादेयता का मूल्यांकन हेतु वसूली केन्द्रों की स्थापना के सम्बन्ध में वहन किया गया अतिरिक्त खर्च तथा ब्याज व अशोध्य ऋण में कमी से लाभ की तुलना करनी होगी । यदि खर्च की तुलना में लाभ की मात्रा अधिक हो तब ही ऐसे केन्द्रों की स्थापना की उपयोगिता होती हैं ।

ताला बॉक्स व्यवस्था (Lock Box System) :- त्वरित रोकड़ वसूली में यह भी एक महत्वपूर्ण उपकरण हैं । लॉक बॉक्स व्यवस्था का उद्देश्य कम्पनी द्वारा भुगतानों की प्राप्ति व बैंक में जमा के मध्य लिया गया समय की समाप्ति करना हैं । इस व्यवस्था के अन्तर्गत कम्पनी स्थानीय डाक कार्यालय बॉक्स को किराये पर ले लेती है और प्रत्येक स्थान पर स्थित अपने बैंक को इन बॉक्सों में जमा भुगतान उठा लेने का अधिकार देती हैं । बैंक ऐसी प्रक्रिया दिन में अनेक बार करती हैं । लॉक बॉक्स व्यवस्था का मुख्य लाभ है यह है कि चैक शीघ्र ही बैंकों के पास जमा कर दिये जाते हैं व शीघ्र ही संग्रहित कोष बन जाते है यदि वह

जमा से पहले कम्पनी द्वारा प्रक्रियागत होते तो अधिक समय लगता, अर्थात समय अन्तराल समाप्त हो जाता हैं । लेकिन साथ ही लॉक बॉक्स व्यवस्था की मुख्य कमी है इसके परिचालन की लागत अधिक आती है, इसलिए यह व्यवस्था उसी दशा में लाभदायक होती है जब जमा किये गये चैकों की संख्या काफी अधिक हो, जिससे लाभ की तुलना में लागत कम आयेंगी ।

रोकड़ बहिर्वाहों का प्रबंध (Managing Cash on outflow) :- रोकड़ बहिर्वाहों के प्रबंध से आशय रोकड़ के भुगतान पर प्रभावपूर्ण नियंत्रण रखना हैं जिससे मान्य तरीकों से भुगतानों की गति को धीमी किया जा सके । ऐसी मान्य विधियाँ निम्नांकित हो सकती हैं -

केन्द्रीय वितरण केन्द्र की स्थापना (Centralised distributement Centre):- इस केन्द्र की स्थापना से सभी भुगतान इसी केन्द्र से किये जाते है । ऐसा करने से उन पक्षकारों के लिए जो नियंत्रण खाते के स्थान से दूर रहते हैं, चैकों को भुगतान हेतु प्रस्तुत करने में समय लगता हैं फलस्वरूप संस्था को उतना ही कम बैंक शेष रखना होगा ।

केवल चैक के माध्यम से भुगतान (Payment through cheque only) :- इससे चैक के बैंक में प्रस्तुतीकरण व संग्रहण में लगने वाले समय के कारण वास्तविक भुगतान में विलम्ब हो जाता हैं ।

देय तिथियों पर भुगतानः- संस्था को भुगतान निश्चित देय तिथियों पर ही करने चाहिये, न पहले तथा न बाद में । परन्तु इस व्यवस्था को अपनाने से पूर्व व्यापारिक छूट की मात्रा एवम् संस्था की ख्याति पर प्रतिकूल प्रभाव का अध्ययन करना चाहिए ।

फ्लोट खेलना (Playing the Float) :- फ्लोट का आशय चैकों में फँसी हुई राशि से हैं, जो लिखे जा चुके हैं किन्तु भुगतान हेतु प्रस्तुत नहीं किये गये हैं । अर्थात् फ्लोट संस्था की रोकड़ बही तथा बैंक की पास बुक में दर्शाये गये शेषों का अन्तर हैं । फ्लोट की यह अवधि जितनी अधिक होगी, संस्था को उतना ही अधिक लाभ होगा । रोकड़ प्रबंध के संदर्भ में चार तरह के Float होते हैं :-

i. **बिलिंग फ्लोट-** विक्रय और बीजक द्वारा भेजने के मध्य लगा समय बिलिंग फ्लोट कहलाता हैं ।

ii. **डाक फ्लोट**:- यह वह समय है जब कोई चैक डाक घर द्वारा प्रक्रियागत होता हैं ।

iii. **चैक प्रक्रिया फ्लोटः-** इसमें चैक प्राप्त होने का समय एवम् चैक को बैंक में जमा करवाने के बीच अन्तर यह अन्तर जितना अधिक होगा, बैंक में रोकड़ शेष की आवश्यकता कम होगी ।

iv. **बैकिंग प्रोसेसिंग फ्लोट-** यह चैक जमा करने से लेकर विक्रेताओं के लेखों में कोषों को क्रेडिट करने का समय हैं ।

स. **समुचित रोकड शेष का निर्धारण (Determining the Optimum cash Balance)** :- रोकड़ कोषों का कुशलतापूर्वक संग्रहण व संवितरण करने के पश्चात् संस्था के सामने अनुकूलता रोकड़ शेष के निर्धारण की समस्या आती हैं । तो यह ज्ञात होना चाहिए कि दैनिक कार्यों को पूरा करने के लिए फर्म को अनुकूलतम रोकड़ शेष को बनाना होता है । फर्म को अनुकूलतम उचित रूप से पर्याप्त, न अधिक और न ही बहुत कम रोकड़ शेष धारण करना चाहिए । अनुकूलतम रोकड़ शेष की राशि ज्ञात करने के लिए व्यवहार लागतें व अवसर लागत के मध्य सामंजस्य स्थापित करना होता हैं ।

समुचित / अनुकूलतम रोकड शेष ज्ञात करना (Finding Optimum Cash Balance) :- वर्तमान वर्षों में कई तरह के गणितीय मॉडल विकसित किए गये हैं जो कि व्यावसायिक संगठनों द्वारा रखे जाने वाले अनुकूलतम रोकड़ शेष का निर्धारण करने में मदद करते हैं । इन सभी मॉडलों का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है, कि अनावश्यक रूप से रोकड़ व्यर्थ (Idle) न रह सकें और उसी समय पर फर्म रोकड़ कमी (Shortage) की स्थिति को न झेल सके । ये सभी मॉडल दो श्रेणियों में विभक्त किए जा सकते हैं :- रहतिया प्रकार के मॉडल व स्टाकैस्टिक (Stochastic) मॉडल । रहतिया प्रकार के माडलों को फर्म के पास अनुकूलतम रोकड़ शेष को ज्ञात करने में वित्त प्रबन्ध की सहायता करने हेतु निर्मित किया जाता हैं । विलियम जे बौमाल का "आर्थिक आदेश मात्रा" मॉडल रोकड़ प्रबंध समस्याओं पर समान रूप से लागू होता हैं । फिर भी, उस स्थिति में जहाँ आर्थिक आदेश मात्रा मॉडल लागू नहीं होता, रोकड़ का अनुकूलतम शेष को निर्धारित करने के लिए रोकड़ प्रबन्ध का "स्टॉकिस्ट" मॉडल प्रयुक्त होता है ।

विलियम जे. बौमाल का आर्थिक आदेश मात्रा मॉडल (William J. Baumal's Economic Order Quantity Model) :- इस मॉडल के अनुसार "अनुकूलतम रोकड़ स्तर वह स्तर है, जहाँ रोकड़ को रखने की लागतें व लेन-देन की लागतें न्यूनतम हो ।" आगे ले जाने की लागतों (Carrying Costs) से अभिप्राय रोकड़ को रखने की लागतें, जैसे-विपणन योग्य प्रतिभूतियों पर परित्याग करने योग्य ब्याज । लेन-देन लागतों से अभिप्राय है-विपणन योग्य प्रतिभूतियों को रोकड़ में बदलने की लागतें । यह तब होता है जब फर्म के पास रोकड़ की कमी हो जाती है और उसे प्रतिभूतियाँ बेचनी पड़ती हैं जिसके परिणामस्वरूप क्लर्कों को, पंजीकरण व अन्य लागतें आती हैं ।

इस मॉडल के अनुसार, अनुकूलतम रोकड़ शेष वह बिन्दु होगा जिस पर ये दोनों लागतें समान हैं । अनुकूलतम रोकड़ शेष को ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित सूत्र का उपयोग किया जा सकता हैं ।

$$C = \sqrt{\frac{2RXP}{S}}$$

जहाँ :

C = अनुकूलतम रोकड़ शेष ।

R = वार्षिक मासिक रोकड़ वितरण ।

P = प्रति लेन-देन स्थायी लागत ।

S = एक रूपये की अवसर लागत, प्रतिवर्ष वर्ष ।

Illustration 4

A firm maintains a separate account for cash disbursement. Total disbursement are Rs. 1,20,000 per month or Rs. 14,40,000 per year. Administrative and transaction cost of transferring cash to disbursement account is Rs. 20 per transfer. Marketable securities yield is 8% per annum.

Determine the optimum cash balance according to William J Baumol Model

$$C = \sqrt{\frac{2 \times Rs.\ 14,40,000 \times Rs.20}{0.08}}$$

= Rs. 26,833

मान्यता (Assumption):- यह मॉडल इस मान्यता पर आधारित है कि रोकड़ रखने की लागत तथा रोकड़ प्राप्त करने की लागतें दी हुई है तथा ये अपरिवर्तित रहती हैं ।

सीमाएँ (Limitation) :-

i. छोटे एवम् मध्यम आकार की संस्थाओं की लिए इस प्रतिमान का उपयोग अनार्थिक हैं क्योंकि इस तकनीक के उपयोग की लागत इससे प्राप्त होने वाले लाभों से कहीं अधिक हो जाती हैं ।

ii. यह प्रतिमान कुछ निश्चित मान्यताओं के अधीन अनुकूलतम रोकड़ शेष का सुझाव देता हैं । यदि मान्यताएँ सत्य नही हो तो वास्तविक शेष अनुकूलतम शेष से भिन्न होगा ।

मिलर ऑर रोकड प्रबन्ध मॉडल (Miller-Orr Cash Management Model) :- इस मॉडल के अनुसार शुद्ध रोकड़ प्रवाह पूर्णत: "स्टॉकैस्टिक" हैं । जब रोकड़ शेष में त्वरित परिवर्तन होते हैं तो नियन्त्रण सिद्धान्त के प्रयोग से उपयोगी उद्देश्य पूरे होते हैं । मिलर-ऑर मॉडल इसी प्रकार के नियन्त्रण-सीमा मॉडलों में से एक है । यह मॉडल किसी विनियोजित खाते व रोकड़ खाते के मध्य हस्तांतरणों के समय और आकार का निर्धारण करने के लिए तैयार किया जाता है । इस मॉडल में रोकड़ कोषों के लिए नियन्त्रण निश्चित सीमाएं की जाती हैं । इस मॉडल की आकृति ऐसी है जिससे समय और आसार का स्थानान्तरण और विनियोग लेखों तथा रोकड़ लेखों के मध्य हो इसके अन्तर्गत नियन्त्रण सीमा रोकड़ शेष के मध्य निर्धारित की जाती है । इस नियंत्रण सीमा में 'h' उच्चतर नियंत्रण सीमा, z प्रतिफल बिन्दु (Return Point) 'शून्य' (Zero) निम्न सीमा है । जब रोकड़ शेष उच्चतर नियंत्रण सीमा तक पहुंच जाता है, तब रोकड़ की (h,z) राशि को विपणन-योग्य प्रतिभूतियों में परिवर्तित कर दिया जाता है । जब यह निम्नतर सीमा पर पहुँचता है, तब विपणन योग्य प्रतिभूति खाते से रोकड़ खाते में हस्तांतरण होता है । उस समय के दौरान जब रोकड़ शेष (h,z) व (z,o) के मध्य स्थित होता है, अर्थात् उच्चतम व निम्नतम सीमाओं के भीतर तब रोकड़ व विपणन योग्य प्रतिभूति खातों के मध्य लेन-देन किया जाता हैं । रोकड़ शेष की उच्चतम व निम्नतम सीमाएं प्रतिभूति लेन-देनों के साथ सम्बन्धित स्थायी लागतों के आधार पर हैं । रोकड़ रखने की अवसर लागत के आधार पर तथा रोकड़ शेषों में संभावित उच्चावचन सीमा के आधार पर निर्धारित की जाती हैं । ये सीमाएं न्यूनतम संभव कुल लागतों पर रोकड़ की माँग को संतुष्ट करती हैं । निम्नलिखित चित्र मिलर और मॉडल को उद्धरित करता है:-

द. अतिरिक्त रोकड़ का विनियोजन (Investing Surplus Cash):- आधिक्य रोकड़ शेष के निर्धारण के बाद यह समस्या उत्पन्न होती है कि आधिक्य रोकड़ का

विनियोजन किन प्रतिभूतियों में विनियोजित किया जाए । इस हेतु सामान्यत: लाभदायकता व तरलता के उद्देश्य को ध्यान में रखकर रोकड तुल्य प्रतिभूतियों में विनियोजन किया जाना चाहिए । किसी भी प्रतिभूति में विनियोजन करते समय प्रतिभूति के तीन गुणों यथा :-

- बिना हानि के प्रतिभूति का पुन: विक्रय ।
- अदायगी जोखिम न्यूनतम ।
- परिपक्वता की अवधि पर ध्यान केन्द्रीत करना चाहिए ।

इस आधार पर अल्पकालिक रोकड़ आधिक्य लाभदायकता के साथ निम्नांकित में विनियोजन किये जा सकते हैं -

- बैंकों व वित्तीय संस्थाओं में अल्पकालीन जमा ।
- अल्पकालीन ऋण बाजार के यन्त्र ।
- दीर्घकालीन ब्ल्यू चिप सूचीकृत कम्पनियों के अंश ।

उपर्युक्त विवेचना से आप समझ गये होंगे कि रोकड़ प्रबंध का क्षेत्र / कार्य कितना विस्तृत हैं । आज की आधुनिक व्यापार प्रणाली जहाँ व्यापार का क्षेत्र अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप ले चुका है, में प्रभावी रोकड़ प्रबंध व्यवस्था का महत्व सतत् रूप से बढ़ता ही जा रहा है । आधुनिक बैकिंग प्रणाली के परिप्रेक्ष्य में रोकड़ प्रबंध की भी नवीन तकनीकें अपनायी जा रही हैं ।

17.8 रोकड प्रबंध का नवीन विकास (Recent Developments in काश Management)

आजकल इलेक्ट्रॉनिक डिलीवरी व भुगतान प्रणाली में महत्वपूर्ण वृद्धि हो रही है क्योंकि प्रतियोगिता एवं माँग में वृद्धि प्रभावी एवं सुविधायुक्त सामर्थ्य के लिए हो रही हैं । अनेक ध्यान देने योग्य व्यवहार व कोषों की राशि इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान लगभग उसी क्षण से गतिमान हो सकते हैं । परिणामस्वरूप जो अवसर उपस्थित हैं, वे केवल लाभदायक ही नहीं है बल्कि एक व्यापारिक फर्म के लिए जोखिम की भी रचना कर सकते हैं । इस चेतावनी में आन्तरिक व बाह्य कपट, चोरी तथा कपटपूर्ण वित्तीय आंकड़ों का प्रकटीकरण कार्य शामिल है । इसलिए हम लोग शीघ्र व्यवहारों को सरलता से आधारभूत व रूढ़िवादी सिद्धान्तों के द्वारा ध्यान दे सकते हैं, जो कि अब तक नीति एवं वैश्वीकरण के कारण मिश्रित रणनीति हैं, परन्तु आधारभूत उद्देश्य समान है, अर्थात् रोकड का प्रभावी उपयोग उस विधि द्वारा जो कि व्यापारिक इकाई के पूर्ण रणनीति उद्देश्यों के साथ स्थायी है ।

इलेक्ट्रॉनिक रोकड प्रबंध प्रणाली (Electronic Cash Management System)

आजकल अधिकांशत: रोकड प्रबंध प्रणालियाँ इलेक्ट्रॉनिक पर आधारित होती हैं चूँकि गति किसी भी रोकड़ प्रबंध प्रणाली का सार होती है । किसी भी रोकड़ प्रबंध प्रणाली में आंकड़ों का इलेक्ट्रॉनिक आधार पर स्थानान्तरण साथ ही साथ कोषों का भी स्थानान्तरण महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है । रोकड़ प्रबंध में विभिन्न तत्व सेटेलाइट के माध्यम से मिलते हैं । वह अनेक जगह इन्टरलिंक्ड हो सकती हैं जहाँ अनेक लेखपत्र एकत्रित किए जाते हैं, वह जगह

जहाँ रोकड़ कम्पनी के खाते में हस्तांतरित की जाती है, वह जगह जहाँ भुगतान हस्तान्तरित होता है आदि ।

कुछ नेटवर्क पर आधारित रोकड़ प्रबन्ध प्रणाली तृतीय पक्षकार को बहुत सीमित प्रवेश की अनुमति दे सकती हैं, जैसे कम्पनी के साथ जिन पक्षकारों के प्राप्ति व भुगतान के व्यवहार बहुत ही नियमित रूप से होते हैं, आदि । एक वित्तीय कम्पनी जो जनता से जमा उपदलालों के माध्यम से स्वीकार कर रही है, उप दलालों को वसूली की जाँच के लिए सीमित प्रवेश दे सकती है, जो कि उनके द्वारा अपने कमीशन के माध्यम से किया जाता है ।

लाभ:- अच्छा रोकड़ प्रबन्धन जानकारी की विधि है

- कब कहाँ और कैसे कम्पनी की रोकड़ आवश्यकताएं उदय होंगी?
- अल्प अवधि की सूचना पर अतिरिक्त रोकड़ की आवश्यकता को जिस श्रेष्ठतम साधन से पूरा किया जाता हैं, उसकी जानकारी ।
- बैंकर्स व अन्य लेनदारों के मध्य अच्छा व हार्दिक सम्बन्ध बनाये रखना ।

वैज्ञानिक रोकड प्रबंध सुखद परिणाम देता है जैसे :-

- समय की महत्वपूर्ण बचत करता है ।
- ब्याज की लागत में कमी लाता है ।
- कम कागजी कार्यवाही की आवश्यकता ।
- वृहद् लेखाकंन शुद्धता ।
- समय तथा कोषों पर अधिक नियंत्रण ।
- इलेक्ट्रॉनिक भुगतान को सहारा देना ।
- एक स्थान से दूसरे स्थान जहाँ आवश्यक हो कोषों का तीव्रता से हस्तान्तरण ।
- विभिन्न लेखपत्रों का रोकड़ में शीघ्र परिवर्तन ।
- जहाँ पर एवं जब भी कोषों की आवश्यकता हो उसे उपलब्ध कराना ।
- राशि के व्यर्थ फ्लॉट को अधिकतम सम्भावित सीमा तक पहुँचने में कमी करना ।
- इस बात से सन्तुष्ट होना कि संगठन में किसी भी व्यर्थ कोष को एक स्थान से दूसरे स्थान नहीं लाया गया हैं ।
- यह कोष की अन्तर बैंकिंग सन्तुलन को अधिक सरल बनाती हैं ।
- यह केन्द्रीकृत रोकड़ प्रबंध का सही प्रारूप है ।
- यह इलेक्ट्रॉनिक समाधान को तीव्रता से उत्पन्न करता हैं ।
- पुस्तपालन की त्रुटियों को ढूँढने की आज्ञा देना ।
- चैक निर्गमन की संख्या को कम करना ।
- ब्याज की आय अर्जित करना और ब्याज के व्यय कम करना ।

रचनात्मक तथा सक्रियता के वास्ते रोकड़ प्रबंध की व्याख्या कम्पनी की लाभदायकता तथा उसकी प्रतियोगी छोर के साथ नाटकीय रूप से सहायता दे सकता है । वैज्ञानिक रोकड़ प्रबंध का अन्ततः उद्देश्य संगठन में पूर्ण रूप से शोधन क्षमता, तरलता तथा लाभदायकता को प्रदान करना है ।

17.9 सारांश

रोकड़ प्रबंध की उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचना से आप इस निष्कर्ष पर पहुंच गये होगे कि रोकड़ प्रबंध व्यापार का हृदय स्थल होता है जिस प्रकार हृदय यदि स्वस्थ हो तब सम्पूर्ण शरीर को ऊर्जा प्राप्त हो सकती है, ठीक उसी प्रकार प्रभावी कुशल रोकड़ प्रबंध व्यवस्था सम्पूर्ण विभागों में समन्वय बनाये रखने के साथ उत्तरोत्तर विकास में तेजी लाता है । अत: वर्तमान प्रतिस्पर्द्धी युग में प्रभावी रोकड़ प्रबंध व्यवस्था की नितांत आवश्यकता होती है ।

17.10 शब्दावली

1. **माँग जमा (Demand Deposit)** बैंकों में जमा अल्पकालीन अवधि की राशि जिसे जमाकर्त्ता के माँगने पर भुगतान किया जाता है ।
2. **विपणन योग्य प्रतिभूतियों (Marketable Securities)** ऐसी तरल प्रतिभूतियों जिसे मुद्रा बाजार आसानी से बिना हानि के क्रय विक्रय किया जा सकता है ।
3. **समय अवधि जमा (Time Deposit)** बैंकों में एक निश्चित समय अवधि के लिए जमा राशि ।
4. **संग्रहण केन्द्र (Collection Centres)** ये वे स्थान होते हैं जहाँ भुगतान कर्त्ता सुविधा से अपने भुगतान के बदले चैक या ड्राफ्ट जमा करवा सकता है । इससे जमा कर्त्ता का समय एवं श्रम बच जाता है एवं प्राप्त कर्ता को शीघ्रता से रोकड़ उपलब्ध हो जाती है।
5. **ताला बॉक्स व्यवस्था** त्वरित रोकड वसूली में यह भी एक महत्वपूर्ण उपकरण है।
6. **फ्लोट खेलना (Playing the Float')** फ्लोट का आशय चेकों में फंसी हुई राशि से है जो लिखे जा चुके हैं किन्तु भुगतान हेतु प्रस्तुत नही किये गये हैं । अर्थात् भुगतानों को विलम्बित रखने का तरीका हैं । फ्लोट अनेक प्रकार के हो सकते है ।

17.11 स्वपरख प्रश्न

1. रोकड़ प्रबंध का आशय स्पष्ट कीजिये (Explain the Meaning of Cash)
2. रोकड़ रखने के प्रमुख उद्देश्य क्या होते हैं? (What are the motives for holding cash ?)
3. जमा फ्लोट क्या है? (What is deposit float?)
4. अतिरिक्त रोकड़ के विनियोजन की कसौटियाँ बताइये । (Discuss criterions of investing surplus cash).
5. ताला बॉक्स विधि क्या हैं? (What is Lock-box system?)
6. रोकड़ प्रबंध के विभिन्न चरणों की विस्तार से व्याख्या कीजिए ।
   Explain in detailed the various steps of cash management.
7. समुचित कार्यशील रोकड़ शेष से आपका क्या अभिप्राय हैं? यह कैसे निर्धारित किया जा सकता हैं?

What do you understand by appropriate working cash balance? How is it determined?

17.12 व्यावहारिक प्रश्न

प्र.1 निम्नलिखित सूचनाओं का प्रयोग करते हुए एक कम्पनी का रोकड़ बजट अप्रैल, मई एवं जून, 2008 के लिए खानेदार प्रारूप में बनाइये-

Prepare cash budget of a company for April, May and June, 2008 in a colummar from using the following information :

Months	Sales	Purchases	Wages	Expenses
2008	Rs.	Rs.	Rs.	Rs.
January (Actual)	80,000	45,000	20,000	5,000
February (Actual)	80,000	40,000	18,000	6,000
March (Actual)	75,000	42,000	22,000	6,000
April (Budgeted)	90,000	50,000	24,000	7,000
May (Budgeted)	85,000	45,000	20,000	6,000
June (Budgeted)	80,000	35,000	18,000	5,000

आपको सूचित किया जाता हैं कि-

i. क्रय का 10 प्रतिशत और विक्रय का 20 प्रतिशत नकद होता है ।

ii. कम्पनी की औसत उगाही अवधि 1/2 मास है और उधार क्रय का भुगतान नियमित रूप से एक महीने बाद किया जाता है ।

iii. मजदूरी का भुगतान अर्द्ध-मासिक होता है तथा 500 रू. किराया जो व्यय में सम्मिलित है माहवारी दिया जाता है ।

iv. 1 अप्रेल को रोकड़ एवं बैंक शेष 15,000 रू. था तथा कम्पनी की इच्छा महीने के अन्तिम दिन इसे 15,000 रू. से कम (किन्तु 14,000 रू. से कम नही) रखने की है, अतिरिक्त रोकड़ स्थायी जमा के रूप में 1,000 रू. के गुणांक में स्थायी के रूप में बैंक भेज दी जाती है ।

You are further informed that :

i. 10% of the purchases and the 20% of sales are for cash;

ii. The average collection period of the company is ½ month and the credit purchases are paid off regularly after one month;

iii. Wages are paid half monthly and the rent of Rs. 500 included in expenses is paid monthly;

iv. Cash and Bank balance as on April, 1 was Rs. 15,000 and the Company wants to keep it at the end of every month below Rs.

15,000 (but not less that Rs. 14,000), the excess cash put in Fixed Deposit in maincipies of Rs. 1,000.

Ans. {April:- Cash Balance 14,200, FD 12,000, May:- Cash Balance 14,700, FD 9,000 June:- Cash Balance 14,700 Rs. 14,000}

प्र.2 निम्न सूचना के आधार पर नारंगी जूस कम्पनी की दिसम्बर, 2008 की रोकड़ आवश्यकताओं का अनुमान लगाइये-

अ बिक्री:	अगस्त, 2008	75,000 रू.
	सितम्बर, 2008	60,000 रू.
	अक्टूबर से दिसम्बर, 2006	80,000 रू. (प्रतिमाह)

प्राय: आधी बिक्री नकद में होती है उधार बिक्री का 80 प्रतिशत बिक्री के अगले महीने में और शेष एक माह बाद वसूल होता है:

ब. 5 प्रतिशत का नकद बट्टा प्राप्त करने की दृष्टि से सेव सदैव नकद खरीदे जाते हैं । अन्तिम तिमाही (अक्टूबर-दिसम्बर) का क्रय बजट 4,000 टोकरियाँ प्रतिमाह 10 रू. प्रति टोकरी है ।

स. मजदूरी और वेतन पिछले तिमाही का 15,000 रू. माह अनुमानित है ।

द. इस तिमाही के उत्पादन व अन्य आय-व्यय का बजट इस प्रकार है-

नकद व्यय (निर्माणी)	13,500 रू
ह्रास	18,000 रू.
विक्रय-व्यय	9,000 रू.
कार्यालय व्यय (अक्टुबर एवं नवम्बर के लिए)	10,000 रू.

Estimate the cash requirements of Orange Juice Company for December, 2008 on the basis of the data given below:

a. Sales :	August, 2008	Rs. 75,000
	September, 2008	Rs. 60,000
	October to December	Rs. 80,000 (per month)

Roughly half (1/2) the sale for cash. 80% of credit sales are collected in the month following sales and the balance one month later ;

b. Apples are always purchased for cash an avail of the cash discount of 5%. The purchase budget for the last quarter (October to December) is 4,000 baskets per month at Rs. 10 per basket;

c. Wages and salaries for the last quarter are budgeted for the quarter are :

d. Manufacturing and other expenses budgeted for the quarter are:

Cash Expenses (manufacturing) Rs. 13,500

Depreciation Rs. 18,000

Selling expenses Rs. 9,000

Administrative expenses (in October and November only) Rs. 10,000

(Answer: Cash balance Oct. Rs. 6,000; Nov. Rs. 18,500. Dec. Rs. 38,000.

From the following information prepare a cash budget under the Adjusted Profit and Loss Method:

Balance Sheet

(As at 1.1.2008)

Liabilities	**Rs.**	**Assets**	**Rs.**
Share Capital	50000	Land and Building	30000
Capital Reserve	5000	Plant and Machinery	20000
Profit and Loss A/c	9000	Furniture & Fixtures	5000
Debentures	10000	Closing Stock	4000
Creditors	28800	Debtors	26000
Outstanding Expenses	200	Cash	18000
	103000		103000

Forecasted Trading and Profit and Loss Account

For the year ended 31.12.2008

Particulars	**Rs.**	**Particulars**	**Rs.**
Opening Stock	4000	Sales	80000
Purchases	60000	Closing Stock	10000
Gross Profit c/d	26000		
	90000		90000
Salaries and Wages 2500		Gross Profit b/d	26000
Outstanding 500	3000	Interest received	100
Depreciation :			
Plant & Machinery	2000		
Furniture and Fixtures	1000		
Administrative Exp.	35000		
Selling Expenses	2500		
Net Profit c/d	14100		
	26100		26100

Dividend Paid	10000	Balance b/d	9000
Balance c/d to Balance Sheet	13100	Net Profit b/d	14100
	23100		23100

The following are the additional information for the year 1999: Share Capital issued Rs. 10,000; Debentures issued Rs. 20,000 on 31,12,2008, the outstanding expenses were Rs. 500; Debtors Rs. 20,000; Creditors Rs. 30,000 and Land and Building Rs. 40,000.

{Ans. Cash from Operating Activities Rs. 93,000; Investing Activities Rs. (18,000); Financing Activities Rs. (70,000); Drawings Rs. 35,000}

Q.4:Following are comparative Balance Sheet of NEROL Paints Limited as on 31 st December, 2006 and 2007:

नेरोले पेन्ट्स लिमिटेड को 31 दिसम्बर, 2007 व 2008 के तुलनात्मक चिट्ठे निम्नलिखित हैं-

Liabilities	**2007**	**2008**	**Assets**	**2007**	**2008**
Equity Share Capital	3000000	3000000	Land	110000	110000
Profit Loss A/c (Cr.)	23500	52000	Building (at cost)	75000	90000
Debentures	40000	35000	Machinery (at cost)	25000	40000
Outstanding Expenses	3500	4500	Investment (Long term)	50000	30000
Creditors	33000	40000	Stock	32000	40000
Accumulated Dep.			Debtors	80000	9000
Machinery	3000	7500	Prepaid Expenses	2000	2000
Building	12000	18000	Cash	43000	58000
Prov. For Doubtful Debts	2000	3000			
	417000	460000		417000	460000

i. 2008 में चुकाया गया लाभांश 26,500 रू. ।

ii. 2008 में 20,000 रू. लागत के विनियोग 25,000 रू. में बेचे ।

iii. 2008 में 5,000 रू. लागत की मशीन जिस पर एकत्रित ह्रास 1,000 रू. था, 6,000 रू. में बेच दी ।

iv. संदिग्ध ऋणों के लिए आयोजन की राशि 1 ,500 रू. लाभों से चार्ज की गई । वर्ष 2008 के लिए रोकड़ प्रवाह विवरण बनाइये (प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष विधियों से)

Additional Information

i. Dividend paid during 2008 was Rs. 26500.

ii. Investments Costing Rs. 20,000 were sold in 2008 for Rs. 25,000

iii. Machinery costing Rs. 5,000 on which Rs. 1000 depreciations was accumulated, was sold for Rs. 6000 in the year 2008.

iv. The provision for dubbtful debts charged to profit was Rs. 25000

Prepare a Cash Flow Statement for the year 2008. (Direct and Indirect both)

{Answer: Cash from Operating Activities Rs. 50,500 Investing Activities Rs. 4000;

Financing Activities Rs.(31500)}

17.13 उपयोगी पुस्तकें

1. S.K. Bose : Management of working capital
2. M.G. Bright : Financial Management
3. I.M. Pandey : Financial Management
4. Roger W. Hill J.H. Cash management Techniques
5. अग्रवाल एण्ड अग्रवाल: वित्तीय प्रबंध
6. एम. आर अग्रवाल: वित्तीय प्रबंध
7. Khan Jain : Financial Management
8. S.N. Maheshwari : Financial Management

इकाई - 18 : स्कंध प्रबंध (Inventory Management)

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य ।
18.1 स्कंध प्रबंध / नियंत्रण का परिचय ।
18.2 स्कंध प्रबंध / नियंत्रण की अवधारणा ।
16.3 स्कंध प्रबंध / नियंत्रण के उद्देश्य व महत्व ।
18.4 स्कंध प्रबंध / नियंत्रण की अनिवार्यताएँ ।
18.5 स्कंध में विनियोग स्तर को प्रभावित करने वाले तत्व ।
18.6 स्कंध नियंत्रण की आधुनिक तकनीकें-उदाहरण सहित ।
18.7 स्कंध क्रय विधि ।
18.8 स्कंध क्रय भंडारन व निर्गमन की विधियों का प्रस्तुतीकरण एवम् उनकी उपयोगिता ।
18.9 स्कंध में होने वाली छीजत ।
18.10 क्षय स्कंध खराबी व दोष पूर्ण उत्पादन के अर्थ व लेखांकन ।
18.11 इकाई का सारांश ।
18.12 शब्दावली ।
18.13 स्वपरख प्रश्न ।
18.14 सैद्धांतिक व्यावहारिक प्रश्न ।
18.15 उपयोगी पुस्तकें ।

18.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं :-

1. आपका स्कंध प्रबंध की अवधारणा से अवगत करवाना
2. आपको स्कंध प्रबंध के मुख्य उद्देश्य, आवश्यकता एवम् लाभों से अवगत करवाना
3. स्कंध नियंत्रण की आधुनिक तकनीकों से अवगत करवाना
4. स्कंध / सामग्री प्रबंध से जुड़ी विभिन्न समस्याओं एवम् उनके निराकरण से सरोकार करवाना ।

18.1 स्कंध प्रबंध/नियंत्रण का परिचय (Introduction)

किसी वस्तु की कुल लागत में स्कंध लागत का स्थान सबसे महत्वपूर्ण एवम् अधिक ऊँचा होता है । यदि लागत को मोटे रूप से विभाजित करे एवं स्कंध/सामग्री+श्रम+उपरिव्यय होते हैं । श्रम की तुलना में स्कंध का प्रबंध एवम् नियंत्रण सुविधा जनक एवम् परिणामपरक होता है क्योंकि श्रम भावना प्रदान साधन होता है, इसलिए उसका उपयोग श्रम की इच्छा शक्ति के बिना नहीं हो सकता हैं । इस दृष्टि से स्कंध प्रबंध का स्थान व्यवसाय में महत्वपूर्ण होता है । इसके प्रभावी प्रबंध व्यवस्था से एक और कार्यकुशलता में वृद्धि होगी तो दूसरी और लाभदायकता में । वस्तुतः संस्था को दीर्घकालीन गति प्रदान करने में भी सामग्री प्रबंध की

उपयोगिता सिद्ध हो चुकी हैं । भारत में सभी बड़े सफल औद्योगिक घराने इसके स्पष्ट प्रमाण हैं ।

18.2 स्कंध प्रबंध की अवधारणा (Concept of Inventory Management)

स्कंध प्रबंध दो शब्दों-स्कंध / सामग्री तथा प्रबंध से मिलकर बना है । अत: इन दोनों शब्दों का अर्थ पृथक पृथक समझना चाहिये ।

स्कंध का अर्थ (Meaning of Inventory):- भिन्न-भिन्न प्रकृति की संस्थाओं के इसका अर्थ भिन्न होता हैं । जहाँ व्यापारिक संस्थाओं में स्कंध का अर्थ विक्रय के लिए उपलब्ध माल या वस्तुओं से लिया जाता हैं, वही निर्माणी संस्थाओं में स्कंध के अन्तर्गत कच्चा माल, अर्द्धनिर्मित माल व पक्का माल सम्मिलित किया जाता हैं ।

स्कंध प्रबंध का अर्थ (Meaning of Inventory management):- स्कंध प्रबंध के सम्बन्ध में दो तथ्यों को सम्मिलित करते हैं ।

1. इकाई अथवा भौतिक प्रबंध (Unit or Physical Management)
2. मूल्य प्रबंध (Value or price Management)

इस दृष्टि से स्कंध प्रबंध को स्कंध नियंत्रण के नाम से भी जाना जाता है । इस आधार पर सारांश रूप में स्कंध प्रबंध का अर्थ "माल की इकाई अथवा भौतिक नियंत्रण तथा माल के मूल्य नियंत्रण से लगाया जाता है । स्कंध के सम्बन्ध में भौतिक नियंत्रण के अन्तर्गत उचित क्रय व्यवस्था, उचित भण्डार व्यवस्था, अच्छी सुरक्षा व्यवस्था, चोरी, आग, गबन तथा छीजत से बचाव की उचित व्यवस्था को सम्मिलित माना जाता है । इसी प्रकार मूल्य नियंत्रण में सामग्री भण्डारण में विनियोजित धन की कम लागत पर कुशलता पूर्वक करना सम्मिलित है ।

गार्डन बी. कारसन (Garden B. Carson) के अनुसार "सामग्री नियंत्रण ऐसी प्रक्रिया है जिसमें स्कंध/सामग्री में रखी सामग्री एवं पुर्जों में विनियोग का प्रबंध द्वारा स्थापित स्कंध नीति के अनुसार पूर्ण निर्धारित सीमाओं में नियमन किया जाता है ।

18.3 स्कंध नियंत्रण तंत्र के उद्देश्य (Objectives of System of Inventory Control):

स्कंध प्रबंध नियंत्रण के अर्थ से ही स्पष्ट हो जाता है कि माल की भौतिक रूप में उचित भण्डारण व्यवस्था बनाये रखना तथा विनियोजित पूंजी का पूर्ण कुशलता पूर्वक उपयोग करना स्कंध प्रबंध/नियंत्रण का मूल उद्देश्य होता है । फिर भी सामग्री नियंत्रण के तन्त्र के उद्देश्य को निम्नांकित प्रकार से गिनाया जा सकता हैं :-

1. यह सुनिश्चित करना कि कोई गतिविधि, विशेषता उत्पादन की गतिविधि, सामग्री तथा स्टोर्स की कमी के कारण रूकने न पाये, यह उल्लेखनीय है, कि इसके लिए प्रत्येक ऐसी मद की सतत् उपलब्धता की अपेक्षा होती है जिसकी आवश्यकता पड़ सकती है चाहे वह कितनी ही भी कम लागत की क्यों न हो । लुब्रिकेन्टिग ऑयल मुख्य सामग्री की तुलना

में बहुत ही सस्ता हो सकता है लेकिन अबाध उत्पादन के विचार से दोनों का समान महत्व होता है ।

2. यह देखना कि उस गुणवत्ता को देखते हुए जो अपेक्षित है सभी सामग्री तथा स्टोर्स को न्यूनतम सम्भव मूल्यों पर प्राप्त किया जाता है तथा अन्य सभी सम्बंध घटकों जैसे सुपुर्दगी की विश्वसनीयता आदि को विचारणीय माना जाता है ।
3. सन्निहित कुल लागत, स्टॉक को पाने के लिए (उस कीमत के अतिरिक्त जो सप्लायर को चुकाई गयी है) तथा उसके रख-रखाव के लिए दोनों में लगी कुल लागत न्यूनतम रहे।
4. अनावश्यक हानियों तथा क्षयों का निराकरण जो दोषपूर्ण या लम्बे भण्डारण अथवा अप्रचलन के कारण गुणवत्ता में गिरावट से उत्पन्न हो सकता है । यह भी उल्लेखनीय है कि निर्माण की प्रक्रिया में हानियाँ तथा क्षय उत्पादन विभाग से सम्बन्ध रखते हैं ।
5. उचित अभिलेखों का रख रखाव ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि सामग्रियों तथा स्टोर्स की सभी मदों के लिए विश्वसनीय सूचनाएं उपलब्ध हो जाती हैं तथा न केवल बेईमानी एवं हानियों को ही पकड़ लिया जाता है लेकिन साथ ही उचित उत्पादन नियोजन भी सम्भव हो जाता है ।
6. उत्पादन क्षमता का अधिकतम उपयोग बनाये रखना ।
7. उत्तम गुणवत्ता वाली वस्तु न्यूनतम लागत पर उपलब्ध करवा कर ग्राहकों की सेवा करना।
8. पूंजी का प्रभावशाली व मितव्ययी प्रयोग करना ।

स्कंध प्रबंध का महत्व / योगदान (Importance or Role of Inventory Management):- अभी तक के अध्ययन से आप यह समझ गये होगे कि कुल लागत में स्कंध लागत का स्थान महत्वपूर्ण होता है एवम् निर्माणी उद्योगों की दशा में निर्मित उत्पादों की कुल लागत का अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग का सृजन करती हैं । इस दृष्टिकोण से स्कंध प्रबंध का महत्व काफी अधिक होता जिसे संक्षेप में निम्नांकित बिन्दुओं से समझाया जा सकता है :-

1. प्रभावी स्कंध प्रबंध व्यवस्था द्वारा वांछित सामग्री की आवश्यक मात्रा को उपयुक्त समय एवम् कीमत पर खरीदा जा सकता हैं ।
2. स्कंध प्रबंध व्यवस्था द्वारा क्रय विभाग, भंडारन विभाग की कमियों के मूल्यांकन में सुविधा रहती है ।
3. यह प्रबंध व्यवस्था दीर्घकालीन उत्पादन योजना सुचारू बनाने में भी मदद करती है ।
4. उपयुक्त स्कंध प्रबंध व्यवस्था द्वारा सामग्री के नष्ट होने को रोकने में मदद मिलती है ।
5. सकारात्मक स्कंध प्रबंध व्यवस्था के कारण सामग्री लागतों को न्यूनतम करने में उपयोगी होता है ।
6. स्कंध प्रबंध व्यवस्था सामग्री के भौतिक एवम् आर्थिक मूल्यों के उपयोग का तुलनात्मक अध्ययन करने में मदद करती है ।

18.4 स्कंध प्रबंध / नियंत्रण की अनिवार्यताएँ

स्कंध प्रबंध / नियंत्रण की अवधारणा एवम् उनके उद्देश्यों से आप समझ गये होंगे कि स्कंध प्रबंध संस्था की लाभदायकता एवं कार्य कुशलता को प्रभावित करता है । अत: प्रत्येक संस्था में सामग्री प्रबंध की अनिवार्यता को महसूस किया जाता है जिसे निम्नलिखित बिन्दुओं से प्रकट किया जा सकता है :

1. सभी सन्निहित विभागों का उचित समन्वय अर्थात वित्त, क्रय, प्राप्ति निरीक्षण भण्डारण, लेखांकन तथा भुगतान के बीच समन्वय बनाये रखने में, ।
2. क्रय विधि का निर्धारण ताकि यह देखा जा सके कि क्रय उपयुक्त जाँच पड़ताल के बाद ही किये जाते है । जिससे उपलब्ध पूंजी का पूर्ण सदुपयोग हो सके ।
3. पर्याप्त मात्रा में स्कंध की उपलब्धता से उत्पादन कार्य में रूकावट उत्पन्न नही होती है।
4. सामग्रियों, आपूर्ति तथा उपकरण के सम्बन्ध में बजटों की रचना ताकि सामग्रियों के क्रय तथा उपयोग में मितव्ययिता को सुनिश्चित किया जा सके ।
5. आन्तरिक जाँच की व्यवस्था का क्रियान्वयन ताकि सामग्रियों, आपूर्तियों तथा उपकरणों के क्रयों के समावेश वाले सभी लेन देन भली प्रकार अनुमोदित तथा स्वचालित रूप से चैक हो सके ।
6. उचित बचावों के साथ एक सुव्यवस्थित स्थिति में सभी सामग्रियों तथा आपूर्तियों का भण्डारण ।
7. सतत स्टॉक चैकिंग के साथ निरन्तर स्टॉक गणना की विधि का क्रियान्वयन ताकि किसी भी समय स्टॉक में प्रत्येक प्रकार की सामग्री की राशि तथा मूल्य का निर्धारण संभव हो सके ।
8. खरीदी गई सामाग्रियों की, स्टॉक से निर्गमन, स्टॉक शेषों अप्रचलित स्टॉक, विक्रेताओं को वापस हुआ माल तथा खराब हुई या दोषपूर्ण इकाइयों की नियमित रिपोर्ट ।

18.5 स्कंध में विनियोग स्तर को प्रभावित करने वाले तत्व (Factors Affecting Investment Level in Inventory)

उपर्युक्त विवेचना से आप समझ गये होंगे कि स्कंध प्रबंध वस्तु की लागत एवम् लाभदायकता दोनों को प्रभावित करने की क्षमता रखता हैं । इसलिए स्कंध में विनियोग स्तर को प्रभावित करने वाले तत्वों की विवेचना आवश्यक है ।

व्यवसाय में माल का स्कंध या भण्डारण बनाये रखना आवश्यक होता है । माल का स्कंध बनाये रखने के लिए व्यवसायी को पूँजी विनियोजन करना होता है । माल के स्कंध हेतु कितनी पूँजी का विनियोजन किया जाना चाहिए यह अनेक बातों पर निर्भर करता है । विनियोजित पूँजी के स्तर को निर्धारित करने वाले घटकों को दो भागों सामान्य घटक (General Elements) एवं विशिष्ट घटक (Specific Elements) में बाँटा जा सकता है । इसकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती हैं :

I. सामान्य घटक (General Elements) :

i. **व्यवसाय की प्रकृति (Nature of Business):-** उत्पादन संस्थानों में माल का स्कंध अधिक मात्रा में रखना होता है, जबकि व्यावसायिक संस्थाओं में उपेक्षाकृत कम । इसी प्रकार नित्य उपभोग योग्य सामग्री का भण्डार नाम मात्र का रखना होता है । जनोपयोगी सेवाओं के अन्तर्गत भी स्कंध बहुत ही कम रखा जाता है । भवन निर्माण सामग्री के लिए तुलनात्मक अधिक मात्रा में स्कंध बनाये रखना होता है । स्पष्ट है कि व्यवसाय की प्रकृति स्कंध नीति को प्रभावित करती है ।

ii. **स्कन्ध अवर्त अनुपात (Stock Turnover Ratio):-** स्कंध का बिक्री के साथ होने वाला अनुपात स्कंध आवर्त अनुपात कहलाता है । यह अनुपात जितना अधिक होता है, उतना ही तीव्र गति से बिक्री में परिवर्तन आता है ऐसी जगह पर माल का स्कंध अपेक्षाकृत कम रखा जाता है तथा पूँजी के कम विनियोजन से काम चल जाता हैं।

iii. **भावी नियोजन तथा पूर्वानुमान की प्रबन्धकीय क्षमता (Management capability of Future Planning and forcasting):-** संस्थान की प्रबन्धकीय क्षमता, भावी योजना एवं पूर्वानुमान के क्षेत्र में कुशल होने की स्थिति में संस्थान कुछ सीमा तक अपेक्षाकृत कम पूँजी विनियोग से ही अपना कार्य सफलता से सम्पादित कर सकते हैं । लेकिन भावी योजना एवं पूर्वानुमान में प्रबन्धकीय क्षमता में कमी होने की स्थिति में अधिक पूँजी विनियोजन करना होता है ।

iv. **व्यवसाय का आकार (Size of Business**):- व्यवसाय का आकार जितना बड़ा होगा उतने ही अधिक स्कंध की आवश्यकता होगी, छोटे आकार के व्यवसाय में कम स्कंध की आवश्यकता के कारण स्कंध में कम पूँजी की आवश्यकता होगी ।

v. **अन्य तत्त्व (Other Elements):-** स्कंध में पूँजी निवेश का स्तर उपरोक्त घटकों के अलावा कई अन्य घटकों से भी प्रभावित होता है, जिनमें (1) क्रय नीति, (2) वस्तु का मूल्य, (3) मूल्य स्तर में घटत-बढ़त, (4) माल की उपलब्धता की स्थिति, (5) वस्तु का आकार-प्रकार, (6) वित्तीय कोषों की उपलब्धता, (7) बाजार की सुविधा, तथा (8) विस्तार की सुविधा आदि उल्लेखनीय हैं । कभी-कभी स्कंध के सम्बन्ध में प्रबन्धकीय नीति भी स्कंध में पूँजी निवेश स्तर को प्रभावित करती है ।

II. विभिन्न प्रकार के स्कंध को प्रभावित करने वाले विशिष्ट घटक (Specific Factors affecting Different Types of Stocks):

i. कच्चे माल का स्कंध (Stock of Raw Material)

ii. निर्मित माल का स्कंध (Stock of Finished Goods)

iii. अर्द्ध निर्मित माल का स्कंध (Stock of Work-in-Progress)

1. **कच्चे माल के स्कंध को प्रभावित करने वाले विशिष्ट घटक (Specific Factors affecting Stock of Raw Material):-** उत्पादन संस्थाओं में कच्चे माल की सहायता से विक्रय योग्य माल का उत्पादन निरन्तर जारी रहता है । ऐसे स्कन्ध में पूँजी निवेश का स्तर निम्नलिखित विशिष्ट घटकों से प्रभावित होता है

i. **कच्चे माल की मौसमी प्रकृति (Seasonal Nature of the Raw Material):** यदि उत्पादक संस्थान के काम में आने वाला कच्चा माल मौसमी प्रकृति का है जो विशेष मौसम में ही उत्पादित होता है और उसकी माँग निरन्तर वर्ष पर्यन्त बनी रहती है, तो ऐसे कच्चे माल का स्टॉक उस विशेष मौसम में ही अधिक रखने की आवश्यकता होगी और उसमें अधिक पूँजी विनियोजन की बाध्यता रहेगी । इसके विपरीत अगर कच्चा माल वर्ष पर्यन्त उचित मूल्य पर उपलब्ध होता रहता है तो ऐसे कच्चे माल पर कम पूँजी विनियोजन से ही काम चल जायेगा ।

ii. **कच्चे माल की उपलब्धता में लगने वाला समय (Time taken in availability of Raw Material):** यदि स्थानीय बाजार में माल उपलब्ध होता है तो माल का स्कंध ज्यादा नहीं रखना पड़ता लेकिन माल को प्राप्त करने में जितना ज्यादा समय लगता है उतनी ही अधिक मात्रा में माल का स्कंध रखना होता है । यदि माल का आयात किया जाना है और अधिक समय लगता है तो अधिक विनियोजन करना होगा ।

iii. **क्रय नीति (Purchasing Policy):** उत्पादन संस्थान की कच्चे माल क्रय नीति पर भी पूँजी विनियोजन का स्तर निर्भर करता है । संस्थान की क्रय नीति प्रबन्ध वर्ग द्वारा सभी बिन्दुओं पर विचार करके तय की जाती है, जैसे माल का मूल्य, माल का जीवन, संस्थान के पास माल भण्डारण की क्षमता, साधनों की उपलब्धता, उत्पादन नीति आदि घटक क्रय नीति को प्रभावित करते हैं ।

iv. **कोषों की उपलब्धता (Availability of Funds)** : स्कंध में विनियोजन का स्तर अन्य बातों के साथ-साथ इस बात पर भी निर्भर करता है कि संस्थान के पास कितने वित्तीय कोष उपलब्ध हैं । कोषों के अभाव में अधिक विनियोजन स्तर का निर्धारण करना उपयुक्त नही होगा ।

v. **माल मात्रा की उपलब्धता (Availability of Goods in Quantity):** यदि देश में कच्चा माल अधिक मात्रा में उपलब्ध हैं तो उत्पादक संस्थान को कम पूँजी विनियोजन की आवश्यकता होगी ।

vi. **प्रबन्धकों की स्कंध नीति (Stock Policy of Management) :** यदि संस्था के प्रबन्धक केवल वर्तमान उत्पादन के लिए स्कंध रखने की नीति अपनाते हैं तो स्कंध पर कम पूँजी विनियोग करना होगा, किन्तु यदि प्रबन्धक अपनी वर्तमान आवश्यकता के साथ-साथ भावी उत्पादन के लिए भी पर्याप्त स्कंध रखने की नीति अपनाते हैं तो स्कंध में अधिक पूँजी निवेश की आवश्यकता होगी ।

2. **निर्मित माल के स्कंध में विनियोजित पूँजी स्तर को प्रभावित करने वाले घटक (Factors affecting the investment level in finished goods inventory):**- निर्मित माल वह माल होता हैं जिसे उत्पादक ग्राहकों को बेचता है । ऐसे माल का भी पर्याप्त मात्रा में स्टॉक बनाये रखना होता है ताकि ग्राहकों की

माँग की पूर्ति समय पर की जा सके । ग्राहकों की माँग की पूर्ति समय पर किये जाने की विशेष आवश्यकता होती है क्योंकि इसके अभाव में ग्राहकों के टूटने की सम्भावना बनी रहती हैं । इसलिए उत्पादक समय पर माल उपलब्ध कराने के लिए अपने पास पर्याप्त मात्रा में निर्मित माल का स्कंध बनाये रखता हैं, अत: ऐसे स्कंध में भी पूंजी विनियोजन करना होता है । इसके लिए निम्नलिखित तत्त्वों पर विचार करके विनियोजित पूँजी का स्तर निर्धारित किया जाता है

i. **मौसमी वस्तुएँ (Seasonal Goods)** : यदि निर्मित माल मौसमी प्रकृति का है तो उत्पादक को ऐसी वस्तु के निर्मित माल के लिए अपेक्षाकृत अधिक धन का विनियोजन करना होता है । ऐसी वस्तुएँ उत्पादित तो वर्ष भर की जाती है लेकिन किसी विशेष मौसम में ही बिकती है । इसके विपरित जो वस्तुएँ मौसमी प्रकृति की नही हैं उनमें अपेक्षाकृत कम पूँजी विनियोजन करना होता है ।

ii. **विक्रय नीति (Sales Policy) :** यदि कम्पनी पहले माल का उत्पादन करती है, उसके बाद ग्राहक अपनी पसन्द एवं आवश्यकता पर माल खरीदता है तो उत्पादक को निर्मित माल में अधिक पूँजी का विनियोजन करना होता है और यदि ग्राहकों के आदेश या प्रसंविदा पर माल का उत्पादन करने एवं विक्रय करने की विक्रय नीति है तो निर्मित माल के स्कंध में न्यूनतम पूँजी विनियोजन की आवश्यकता होती है ।

iii. **उत्पाद की प्रकृति (Nature of the Product):** निर्मित माल टिकाऊ या स्थायी प्रकृति का है तो ऐसी वस्तुओं का अधिक मात्रा में स्कंध रखा जा सकता है । इसी प्रकार अविनाशी और अपरिवर्तनीय फैशन से सम्बन्धित माल का भी स्कंध अधिक मात्रा में रखा जाता है । इनके लिए विनियोजित पूँजी का स्तर अधिक बनाये रखना होता है लेकिन नाशवान नित्य उपयोगी प्रकृति में माल का परिवर्तनीय फैशन प्रकृति वाले माल का स्कंध बहुत ही कम मात्रा में रखा जाता है क्योंकि ऐसी वस्तुएँ खराब हो जाती है या बाजार से बाहर हो जाती है ।

iv. **प्रबन्धकीय नीति (Managerial Policy)** : प्रबन्ध भावी परिवर्तनों का पूर्वानुमान लगाकर अपने स्टॉक स्तर में तदनुरूप परिवर्तन कर लेते हैं तो उन्हें कम पूँजी कोष की आवश्यकता होती है । इसी प्रकार यदि प्रबन्ध भावी परिवर्तनों का पूर्वानुमान करने में सक्षम नहीं होता है तो ऐसी स्थिति में निर्मित माल का अधिक स्कंध रखना होता है जिससे विनियोजित पूँजी का स्तर भी अधिक हो जाता है ।

3. **अर्द्ध-निर्मित माल के स्कंध में विनियोजित पूँजी स्तर को प्रभावित करने वाले घटक (Factors affecting the investment level in work in progress):-**

अर्द्ध-निर्मित माल से तात्पर्य ऐसे माल से होता है जो उत्पादन प्रक्रिया के किसी चरण में चल रहा होता है । अर्द्धनिर्मित माल की लागत में कच्चे माल तथा उत्पादन प्रक्रिया में उस पर हुए व्ययों को सम्मिलित किया जाता है । अर्द्धनिर्मित माल का कितना स्कंध बनाये रखना होता है, यह निम्नलिखित तत्त्वों पर निर्भर करता हैं:

i. **उत्पादन चक्रावधि (Production Cycle**) : उत्पादन चक्र की अवधि जितनी कम होती हैं, पूँजी विनियोजन भी उतना ही कम करना होता है, जबकि उत्पादन चक्र की अवधि जितनी अधिक होती है, अर्द्ध-निर्मित माल के स्कंध में उतना ही अधिक विनियोजन करना होगा ।

ii. **माल की प्रकृति (Nature of Goods)** : यदि माल ऐसी प्रकृति का है जिसे विक्रय के समय अन्तिम क्रिया से गुजारना होता है ऐसी स्थिति में उत्पादक माल को अन्तिम रूप में तैयार न करके एक स्टेज पहले तक तैयार करके रखना है । ऐसा माल भी अर्द्ध निर्मित माल की श्रेणी में गिना जाता है । ऐसी स्थिति में उत्पादक को अर्द्धनिर्मित माल के स्कंध में अधिक पूँजी विनियोजित करनी होती हैं ।

iii. **श्रम सम्बंध (Labour Relations) :** यदि प्रबन्धकों और श्रमिकों के बीच मधुर सम्बंध है तथा श्रमिक उत्पादन कार्य में प्रबंधकों के साथ पूर्ण सहयोग करते है तो कम स्कंध से ही काम चल सकता है किन्तु यदि दोनों के बीच मधुर सम्बंधों का अभाव है, श्रमिकों में प्रबंध के साथ असहयोग की प्रवृत्ति है, श्रमिक "धीरे काम करो" अथवा "टूल डाउन स्ट्राइक" की नीति अपनाते हैं तो प्रबंधकों को अर्द्ध-निर्मित माल का अधिक स्कंध रखना पड़ता है और उसमें अधिक पूँजी निवेश होता है ।

निष्कर्ष: उपर्युक्त विवेचना से आप समझ गये होगे की स्कंध में विनियोजन राशि तय करते समय विभिन्न बिन्दुओं को ध्यान में रखना पड़ता हैं ।

स्कंध सम्बंधी जोखिमें एवं लागते (Risks and Costs associated with Inventory)

व्यावसायिक संस्थान के प्रबंधकों को अपने संस्थान की स्कंध प्रबन्धानियन्त्रण तकनीक को अन्तिम रूप देने से पूर्व स्कंध सम्बंधी जोखिमों और लागतों पर भी ध्यान देना जरूरी हैं, जो सामान्यत: इस प्रकार की हो सकती है:-

A. **स्कंध सम्बन्धी जोखिम** (Risks associates with Inventory): इस प्रकार हो सकती है:-

   i. वस्तु के फैशन से बाहर होने की जोखिम ।
   ii. स्कंध वस्तुओं की किस्म में गिरावट का जोखिम ।
   iii. स्कंध वस्तुओं के मूल्य में गिरावट की जोखिम ।
   iv. उत्पादन की नई तकनीक की जोखिम ।

B. **स्कंध सम्बंधी आदेश की लागतें (Ordering costs):** आदेश देने की लागतों से अभिप्राय स्कंध सम्बन्धी माल के लिए बाहर आदेश देने तथा आदेशित माल को प्राप्त करने से सम्बन्धित लागतों से हैं । ये लागतें आदेश के साथ-साथ परिवर्तित होती हैं । संस्था के बाहर से क्रय की जाने वाली सामग्री के लिए निम्नलिखित लागतों का समावेश होता है:

   i. क्रय विभाग तथा आदेश विभाग में कार्यरत कर्मचारियों का वेतन ।
   ii. स्कंध सम्बन्धी माल की निविदाएँ आमंत्रित करने, तुलनात्मक विवरण बनाने, आदेश प्रेषित करने तथा उनका अनुवर्तन (follow up) आदि हेतु स्टेशनरी, डाक तथा टेलीफोन अन्य ।

iii. उपरोक्त लागतों के लेखांकन एवं भुगतान सम्बन्धी व्यय ।

iv. माल को गोदाम तक पहुंचाने के व्यय ।

1. **जब स्कंध सम्बन्धी** माल बाहर से न खरीद कर संस्थान द्वारा स्वयं ही उत्पादित किया जाता है तो आदेश लागतों के स्थान पर स्थापन की **लागतें (**set-up costs) पर ध्यान दिया जाता है जिसमें औजारों की लागत, उनको लगाने की लागत, अवशेष एवं विकृत पदार्थों की लागत का समावेश किया जाता हैं । आदेश देने की लागत की गणना 'प्रति आदेश' की जाती है । आदेशों की संख्या से प्रति आदेश लागत नहीं बदलती है पर एक साथ अधिक मात्रा में आदेश देने पर आदेशों की संख्या कम होने के कारण कुल आदेश लागत घटती हैं ।

2. **स्कंध रखने की लागतें (Inventory Carrying Costs)** : प्रेषित आदेश का माल प्राप्त हो जाने के बाद वह माल तुरन्त उत्पादन में काम में नही आता है, उस प्राप्त माल को कुछ समय तक भण्डार-गृह में रखना पड़ता हैं । माल को भण्डार-गृह में रखने पर कुछ व्यय करने पड़ते हैं जिन्हें स्कंध रखने की लागत कहते हैं । इसके अन्तर्गत निम्नलिखित लागतें मुख्य हैं:

   i. भण्डारण एवं संग्रहण लागतें - भवन का किराया, ह्रास एवं रखरखाव पर व्यय।

   ii. आग एवं चोरी के बीमे पर व्यय ।

   iii. स्कंध क्षय तथा अप्रचलन सम्बन्धी लागतें ।

   iv. स्कंध में लगी पूँजी का ब्याज ।

   v. स्कंध भण्डारण के लिपिकीय, लेखांकन एवं अंकेक्षण की लागतें ।

   स्कंध रखने की लागतों और स्कंध के स्तर में धनात्मक सम्बन्ध होता है । प्राय: स्कंध रखने की लागतों को एक निश्चित समय के लिए प्रति इकाई स्थिर मान लिया जाता है ।

3. **स्कंध समाप्त हो जाने की लागतें (Stock-out Costs) :** स्कन्ध समाप्त हो जाने की लागतों का अभिप्राय उन लागतों से है जो कच्चे माल के समाप्त हो जाने पर उत्पादन बन्द होने अथवा निर्मित माल की समाप्ति पर ग्राहकों के आदेशों की पूर्ति ने होने से होने वाले नुकसान के रूप में होती है । इसके अन्तर्गत मशीन तथा मानव घण्टों की हानि, विक्रय पर होने वाले लाभ की हानि, संस्था की ख्याति की हानि, स्कंध समाप्ति पर स्कंध लागतों में वृद्धि आदि का समावेश होता है ।

18.6 स्कंध नियंत्रण की आधुनिक तकनीकें-उदाहरण सहित (Modern Techniques of Inventory Control with Illustration):

अब तक के अध्ययन से आप स्पष्ट रूप से तय कर चुके होंगे की स्कंध प्रबंध के उद्देश्य एवम् महत्व के अनुरूप स्कंध पर प्रभावी नियंत्रण स्थापित होना चाहिए । इसलिए प्रत्येक संस्था - अनेक आधुनिक तकनीकी का उपयोग करती है जिसमें प्रमुख इस प्रकार है:-

1. स्कंध नियन्त्रण की 'अ ब स विधि' (The A.B.C. Classification Technique of Stock Control):

प्रत्येक निर्माणी संस्था में स्कंध को उनकी उपयोगिता एवं मूल्य के अनुसार प्राय: तीन प्रमुख वर्गों अ,ब,स में बाँटा जाता हैं । अ श्रेणी में वे वस्तुएँ रखी जाती है जो मूल्यवान हों तथा कुल स्कंध में जिनका मूल्य में पर्याप्त भाग रहता हो । ये वस्तुएँ मूल्य में एक महत्वपूर्ण भाग रखती हैं लेकिन मात्रा में कम होती है । इन वस्तुओं पर प्रभावशाली नियन्त्रण की आवश्यकता होती है । 'ब' श्रेणी में वे वस्तुएँ सम्मिलित की जाती हैं जो संख्या में अ श्रेणी की अपेक्षाकृत अधिक हों लेकिन जिनका मूल्य अ श्रेणी से कम होता हैं । न श्रेणी में अ व 'ब' श्रेणी में सम्मिलित वस्तुओं के अतिरिक्त सभी वस्तुओं को सम्मिलित किया जाता है ।

अ,ब,स वर्गीकरण में साधारणतया सामग्री के मदों की संख्या एवं मूल्य का सम्बंध निम्न प्रकार होता है-

1. 'अ' श्रेणी में वे मदें सम्मिलित की जाती हैं जिनकी संख्या कुल मदों की 5 प्रतिशत से 10 प्रतिशत तक होती है, किन्तु जिनका मूल्य स्टोर्स में रखी कुल सामग्री के मूल्य का 70 प्रतिशत से 75 प्रतिशत तक होता है ।
2. 'ब' श्रेणी में वे मदें सम्मिलित की जाती हैं जिनकी संख्या कुल मदों में 20 प्रतिशत से 25 प्रतिशत तक होती है लेकिन मूल्य स्टोर्स में रखी कुल सामग्री का 15 प्रतिशत से 20 प्रतिशत तक होता है । तथा
3. 'स' श्रेणी में वे मदें आती हैं जिनकी संख्या कुल मदों की 70 प्रतिशत से 75 प्रतिशत तक होती है लेकिन स्टोर्स में रखी कुल सामग्री के मूल्य का केवल 5 प्रतिशत से 10 प्रतिशत तक होता है ।

उपर्युक्त विवरण से आप अच्छी तरह समझ गये होंगे कि विभिन्न मदों का अ,ब,स तीन श्रेणियों में विभाजन उनके महत्व के अनुसार किया जाता है । नियन्त्रण की दृष्टि से 'अ' श्रेणी की वस्तुओं पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाता हैं । व श्रेणी की वस्तुएँ लिपिकों के सामान्य नैत्यिक नियन्त्रण (Routine Factors) के अधीन रखी जाती हैं तथा 'स' श्रेणी की वस्तुओं पर अनुभव के आधार पर बनायी गई पद्धतियों द्वारा साधारण नियन्त्रण रखा जाता है । अ,ब,स वर्गीकरण चुनिंदा नियन्त्रण (Selective control) एवं अपवाद स्वरूप प्रबंध (Management by Exception) के सिद्धान्त पर आधारित हैं । अत: इस पद्धति को चुनिंदा नियन्त्रण प्रणाली (Selective control System) भी कहते हैं ।

संक्षिप्त में अ,ब,स वर्गीकरण को चार्ट के रूप में निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है-

A-B-C ANALYSIS

Category	Percentage of stores items	Percentage of value of stores used	Control Required
A	5% to 10%	70% to 80%	More careful attention

B	20% to 25%	15% to 20%	Routine control by Inventory clerks
C	70% to 75%	5% to 10%	Rule of thumb methods developed from experience

रेखाचित्र के रूप में अ,ब,स, वर्गीकरण को निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है-

अ, ब, स वर्गीकरण

उपर्युक्त रेखाचित्र से स्पष्ट है कि 'अ' वर्ग में सम्मिलित स्कंध का भाग कुल स्कंध की मात्रा या सभी मदों का केवल 10 प्रतिशत ही है लेकिन मूल्य में यह 80 प्रतिशत है । इसकी प्रकार 'ब' वर्ग में सम्मिलित मद भी सभी मदों की मात्रा में 20 प्रतिशत है लेकिन मूल्य में केवल 12 प्रतिशत ही हैं । 'स' वर्ग में सम्मिलित मद सभी मदों के 70 प्रतिशत हैं लेकिन मूल्य में केवल 8 प्रतिशत ही है, अत: 'अ' श्रेणी की वस्तुओं पर अधिक नियन्त्रण की तथा 'स' श्रेणी की वस्तुओं पर सबसे कम नियन्त्रण की आवश्यकता है ।

Illustration 1

A company has 10 different items in its inventory. The average number of each of these items held, along with their units cost, is listed below. The firm wishes to introduce an ABC Inventory System. Suggest a break-down of the items into A, B and C classification.

Items Number	Average Number of Units in inventory	Average Cost per unit Rs.
1.	35000	10
2.	40000	4
3.	10000	40
4.	5000	100
5.	15000	10
6.	22000	3
7.	90000	1
8.	128000	0.5
9.	30000	2
10.	5000	3

Solution:

The ABC analysis is presented in the following table:

Item	Units	% of Total Units	Unit Cost Rs.	Total Cost Rs.	% of Total Cost (Rs.)	Category
4	5000	1.32	100	500000	26.95	
3	10000	2.63	40	400000	21.56	A
1	35000	9.21	10	350000	18.87	
		13.16			67.38	
2	40000	10.53	4	160000	8.63	
5	15000	3.95	10	150000	8.09	B
7	90000	23.68	1	90000	4.85	
		38.16			21.57	
6	22000	5.79	3	66000	3.56	
8	128000	33.68	0.5	64000	3.45	C
9	30000	7.89	2	60000	3.23	
10	5000	1.32	3	15000	0.81	
		48.68			11.05	

i. मितव्ययी आदेश मात्रा (Economic order Quantity)

संस्था में कच्चा माल समाप्त होने पर नये माल के लिए दिये जाने वाले सर्वोत्तम आदेश आकार को ही आर्थिक आदेश मात्रा के नाम से जाना जाता है । यदि संस्था चाहे तो सम्पूर्ण वर्ष के लिए कच्चा माल एक साथ क्रय कर सकती है पर ऐसा करने पर आदेश देने की लागतों में तो कमी हो जायेगी लेकिन माल को सुरक्षित रखने की लागतों में वृद्धि हो जायेगी । इसके विपरित यदि संस्था छोटी-छोटी मात्रा में आदेश देती है तो ऐसी स्थिति में आदेश देने की लागतों में अनावश्यक वृद्धि हो जायेगी लेकिन माल को सुरक्षित रखने के व्यय कम हो सकेंगे । साथ ही संस्था को बड़ी मात्रा में क्रय करने के लाभ (बट्टा आदि) भी प्राप्त नहीं हो सकेंगे । इस प्रकार स्पष्ट है कि आदेश लागत (ordering cost) एवं माल को सुरक्षित रखने के व्यय (Carrying cost) में विपरीत सम्बन्ध होता है । अत: आर्थिक आदेश मात्रा उस बिन्दु पर होती है जहाँ कुल लागत न्यूनतम हो । जैसा कि निम्नांकित उदाहरण से स्पष्ट हैं ।

उदाहरण:-2 राम कृष्ण लिमिटेड 400 इकाईयों का वार्षिक उपभोग करती है । इसकी प्रति आदेश लागत 60 रू. प्रति वर्ष हैं । एवं वस्तु का क्रय मूल्य प्रति इकाई 200 रू. हैं । रखरखाव लागत 15 प्रतिशत (क्रय मूल्य के आती है) इस आधार पर आर्थिक आदेश मात्रा का निर्धारण इस प्रकार होगा-

Total Cost at different Order Level

Annual usage of Requirement of Raw Material = 400 units

i. Order Size (in units)	10	20	40	50	80

ii. Average Stock (1/2) Rs.	5	10	20	25	40
iii. Number of Order to buy 400 units	40	20	10	8	5
iv. Ordering Cost @ Rs. 60 per order Rs.	2400	1200	600	480	300
v. Annual Carrying cost of Average Stock Rs.	150	300	600	750	1200
vi. Total Cost (Rs.)	2550	1500	1200	1230	1500

उपर्युक्त उदाहरण से आप स्पष्ट रूप से समझ रहे होगे कि जैसे-जैसे आदेश का आकार बढ़ता है, आदेश लेने की लागत बढ़ती जाती है तथा स्टॉक रखने की लागत बढ़ती जाती है । लेकिन 40-40 इकाइयों के 10 आदेश देने पर स्टॉक रखने की लागत 600 रू. तथा आदेश देने की लागत 600 रू. एक-दूसरे के बराबर हैं । यहाँ पर कुल लागत 1200 रू. न्यूनतम है । यदि 40 इकाईयों के स्थान पर 50 इकाईयों को आठ बार खरीदने का निर्णय लिया जाता है तो आदेश देने की लागत 120 रू. (600-480) से कम हो जायेगी लेकिन स्टॉक रखने की लागत 150 रूपये (750-600) से बढ़ जायेगी । अत: 50 इकाईयों के लिए आठ बार आदेश देना आर्थिक दृष्टि से उपयोगी नहीं होगा । यदि आदेश का आकार 40 इकाईयों से घटाकर 20 इकाइयाँ कर दिया जाये तो स्टॉक रखने की लागत 300 रूपये (600-300) से कम हो जायेगी लेकिन आदेश देने की लागत 600 रूपये (1200-600) बढ़ जायेगी । इसलिए 40 इकाईयों का आदेश ही आर्थिक दृष्टि से सर्वोत्तम आदेश (E.O.Q.) होगा ।

मितव्ययी या आर्थिक आदेश की मात्रा का निर्धारण निम्न सूत्र की सहायता से किया जा सकता है -

$$EOQ = \sqrt{\frac{2RO}{C}}$$

सूत्र में प्रयुक्त संकेतों का अर्थ

EOQ = आर्थिक या मितव्ययी आदेश मात्रा

(Economic Order Quantity)

R = सामग्री का वार्षिक उपभोग (इकाइयों में)

(Annual Consumption of Materials in Units)

O = प्रति आदेश देने की लागत

(Cost of Placing an Order)

C = एक इकाई के भण्डारण पर एक वर्ष की भण्डारण लागत

(Annual Cost of Storing One Unit) इसे Carrying Cost भी कहते है ।

Illustration 3

From the following information, find out Economic Order Quantity:

Annual Consumption of Raw Material 4,000 Units.

Cost of Placing An Order Rs. 30

Annual Cost of storing one unit Rs. 4.

Solution:

$$EOQ = \sqrt{\frac{2 \times 4000 \times 30}{4}}$$

= 245 Units.

अर्थात एक बार में इस सामग्री की 245 इकाइयों का आदेश सर्वाधिक मितव्ययी रहेगा ।

iii. पुन: आदेश स्तर (Re-order Level):

पुन: आदेश स्तर से तात्पर्य भण्डार गृह में स्कंध की मात्रा के उस स्तर से है जिस पर पहुँचतेही सामग्री क्रय सम्बन्धी आवश्यक कार्यवाही प्रारम्भ कर दी जाती है जिससे सामग्री मात्रा के न्यूनतम स्तर तक पहुँचने के पूर्व ही आदेशित सामग्री प्राप्त हो जाये । इस स्तर का निर्धारण करते समय प्रमुखतया आदेश की कार्यवाही में समय, संस्था में माल की खपत तथा आदेश देने के पश्चात् माल प्राप्त होने की अवधि इत्यादि तत्वों को ध्यान में रखा जाता हैं । स्कंध स्तर ज्ञात करने के विभिन्न सूत्र निम्न प्रकार हैं-

पुन: आदेश स्तर = अधिकतम उपभोग x पुन: आदेश की अधिकतम अवधि

[Re-order Level = (Maximum Consumption Rate X Maximum Re-order Period)]

iv. न्यूनतम स्तर (Minimum level or Safety Stock):

न्यूनतम स्तर स्कंध की वह न्यूनतम मात्रा जो साधारणतया हर समय भण्डार गृह में उपलब्ध रखी जाती है, स्कंध का न्यूनतम स्तर कहलाती है । भण्डार में यह स्तर बनाये रखना अत्यन्त आवश्यक होता है क्योंकि उससे कम स्कंध होने पर भविष्य में उत्पादन कार्य बन्द हो सकता है । वास्तव में यह स्कंध की ऐसी सुरक्षित मात्रा है जिसको बनाये रखने से भावी उत्पादन संकट को दूर रखा जा सकता है ।

न्यूनतम स्तर = पुन: आदेश स्तर -(सामान्य उपभोग दर x सामान्य पुन: आदेश अवधि)

[Maximum level = (Re-order Level + Re-order Quantity)-(Minimum Consumption Rate x Minimum Reorder Period)]

v. अधिकतम स्तर (Maximum Level):

अधिकतम स्तर स्कंध के सम्बन्ध में अधिकतम स्कंध स्तर वह स्तर होता है जिससे अधिक मात्रा साधारणतया भण्डार गृह (store) में नहीं रखी जाती है । भण्डार गृह में स्कंध की वास्तविक मात्रा न्यूनतम तथा अधिकतम सीमाओं के मध्य बनी रहती है । स्कंध की विभिन्न सीमाओं का निर्धारण करते समय उपभोग की दर, वस्तु का गुण व किस्म, आदेशित वस्तु प्राप्त करने में लगने वाला समय, सामग्री के मूल्यों में परिवर्तन की सम्भावना, उपलब्ध पूँजी, ब्याज की दर, अप्रचलन का भय, सामग्री का बीमा व्यय, सरकारी नीति तथा भण्डारण की व्यवस्था इत्यादि तत्त्वों को ध्यान में रखा जाता है ।

अधिकतम स्तर (पुन: आदेश स्तर + पुन: आदेश मात्रा) - (न्यूनतम उपभोग दर x न्यूनतम पुन: आदेश अवधि)

[Maximum Level = (Re-order Level + Re-order Quantity)-(Minimum Consumption Rate x Minimum Reorder Period)]

Or

EOQ + Safety Stock

vi. संकट स्तर (Danger Level):

संकट स्तर का तात्पर्य स्टॉक की ऐसी मात्रा से है जिससे स्टॉक किसी परिस्थिति में कम नहीं होना चाहिए । यदि स्टॉक की मात्रा इस स्तर से कम हो जावे तो सामग्री को तुरन्त क्रय करना चाहिए, चाहे उसके क्रय करने के लिए कितना ही व्यय क्यों न करना पड़े । संकट स्तर ज्ञात करने का सूत्र निम्न है-

खतरे का स्तर = उपभोग की न्यूनतम दर x पुन: आदेश की न्यूनतम अवधि

Danger Level = Minimum Rate of Consumption x Minimum Re-order Period

vii. औसत स्तर (Average Stock Level):

औसत स्तर एक संस्था को अपने भण्डार गृह में औसतन कितनी सामग्री स्टॉक में रखनी चाहिए उसे औसत स्टॉक स्तर कहते हैं । यह स्तर न्यूनतम सीमा से अधिक लेकिन अधिकतम सीमा से कम होता है । इसको ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है-

औसत स्टॉक स्तर = 1/2 (अधिकतम स्टॉक सीमा फ़ न्यूनतम स्टॉक सीमा)

Average Stock level = ½ (Maximum Stock level + Minimum Stock level)

वैकल्पिक सूत्र = न्यूनतम स्टॉक सीमा + 1/2 पुन: आदेश मात्रा

Alternative Formula = Minimum Stock Level + ½ Re-order Quantity

Illustration 3:

In a firm the materials used per work is as follows:

Normal Usage (सामान्य मात्रा)	100 units
Minimum Usage (न्यूनतम मात्रा)	50 units
Maximum Usage (अधिकतम मात्रा)	150 units
Re-order Quantity (पुन: आदेश मात्रा)	600 units
Re-order Period (पुन: आदेश अवधि)	4 to 6 weeks

Determine the followings:

Re-order Level (पुन: आदेश स्तर)

Minimum Level (न्यूनतम स्तर)

Maximum Level (अधिकतम स्तर), तथा

Average Level (औसत स्तर)

Solution:

1. Re-order Level = Maximum Re-order Period X Maximum Usage

= 6 x 150 = 900 units

2. Minimum Level = Re-order Level - (Normal Rate of Consumptionx Normal Re-order Period) 900 - [100 x 5] = 400 Units

3. Maximum Level = (Re-order Level + Re-order Quantity)- (Minimum Consumption x Minimum Re-order Period)

= (900 + 600) - (50 x 4)

= 1500 - 200 = 1300 units

$$\frac{Maximum\,Level + Minimum\,Level}{2}$$

$$\frac{1300+400}{2} = 850 \text{ units}$$

न्यूनतम व अधिकतम तकनीक (Minimum & Maximum Technique) :

स्कंध नियन्त्रण की यह सबसे पुरानी तकनीक है । इस तकनीक के अन्तर्गत अधिकतम स्कंध स्तर का निर्धारण माँग या आवश्यकता के आधार पर किया जाता है तथा न्यूनतम स्तर उस स्तर पर निर्धारित किया जाता है जिस पर सामग्री क्रय आदेश देने पर आदेश अवधि में उत्पादन रूकने की सम्भावना न हो । इनके सूत्रों का वर्णन पहले ही किया जा चुका है । इस तकनीक के अनुसार स्कंध के न्यूनतम स्तर पर सामग्री का क्रय आदेश दे दिया जाता है जिससे सामग्री के प्राप्त होने के पश्चात सामग्री का अधिकतम स्तर प्राप्त हो जाता है ।

viii. द्वि-बीन तकनीक (Two-Bin Technique):

इस पद्धति के अन्तर्गत दो बिने (Bins) रखी जाती हैं । प्रथम बिन में सामग्री प्राप्ति एवं पुन: आदेश देने के मध्य के समय से सम्बन्धित सामग्री रखी जाती है जबकि द्वितीय बिन में पुनः आदेश देने के मध्य के समय से सामग्री प्राप्ति तक के समय की सामग्री रखी जाती हैं । आदेश देने एवं सामग्री प्राप्ति के मध्य के समय को लीड टाइम (Lead Time) कहते हैं । अत: द्वितीय बिन में लीड टाइम की पूर्ति के लिए सामग्री रखी जाती है । इस पद्धति में जैसे ही प्रथम बिन की सामग्री समाप्त हो जाती है पुन: सामग्री मँगवाने हेतु आदेश दे दिया जाता है तथा सामग्री प्राप्ति में लगने वाले समय या लीड टाइम के दौरान द्वितीय बिन की सामग्री का प्रयोग किया जाता है । पुन: आदेशित माल प्राप्त होने पर उसे फिर प्रथम एवं द्वितीय दोनों बिनों में रखा जाता है । इस प्रकार सामग्री नियन्त्रण का यह क्रय चलता रहता है ।

ix. आदेश चक्र तकनीक (Order Cycling Technique):

यहाँ चक्र (Cycling) से अभिप्राय एक निश्चित समयावधि के पश्चात् स्कंध की गणना से है । स्कंध गणना के पश्चात् ऐच्छिक स्तर बनाये रखने के लिए सामग्री का आदेश दे दिया जाता है । इस प्रकार निश्चित समयावधि के पश्चात् गणना करने का एवं सामग्री के आदेश का चक्र चलता रहता है ।

x. आवर्त्त दर तकनीक (Turnover Rate Technique) या नियन्त्रण अनुपातों का प्रयोग (use of Control Ratios):

स्कंध नियन्त्रण के लिए प्रबन्ध विभिन्न अनुपातों का प्रयोग करता है जिनमें निम्न प्रमुख हैं-

1. स्कंध आवर्त अनुपात (Inventory Turnover Ratio);
2. स्कंध का कुल लागत से अनुपात (Inventory to Total Cost of Production Ratio);
3. मंद गतिमान स्कंध का कुल स्कंध से अनुपात (Slow Moving Stores to Total Inventory Ratio);
4. स्कंध निष्पादन सूचकांक (Inventory Performance Index)

xi. निरन्तर आगणन तकनीक (Perpetual Inventory Technique):

इस तकनीक या विधि के अन्तर्गत प्रत्येक प्राप्ति तथा प्रत्येक निर्गमन के पश्चात् स्कंध रिकार्ड के अनुसार सामग्री का शेष निकाला है ताकि स्कंध की निरन्तर जाँच होती रहे तथा स्कंध आगणन के लिए स्तर बन्द न करना पड़े । इस पद्धति को लागू करने में बिन कार्ड तथा स्टोर्स लेजर का प्रयोग किया जाता है ।

xii. **निरन्तर भौतिक सत्यापन तकनीक (Technique of Continuous Physical Verification):**

इस विधि के अन्तर्गत स्कंध सत्यापन का कार्य आवधिक (Periodical) आधार पर न किया जाकर वर्ष-पर्यन्त निरन्तर चलता रहता है । यह कार्य प्राय: संस्था के लेखा अथवा अंकेक्षण विभाग के स्टाफ द्वारा किया जाता है । इसका प्रमुख लाभ यह है कि इसमें आवधिक सत्यापन की भाँति स्टोर बन्द नहीं करना पड़ता है । अत: उत्पादन कार्य निर्बाध रूप से चलता रहता है । सुविधा की दृष्टि से भौतिक सत्यापन का कार्य उस समय कर लिया जाता है जब सामग्री की कम मात्रा शेष रहती है यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि निरन्तर आगणन विधि में केवल रिकॉर्ड में स्कंध के शेष निकाले जाते हैं जबकि भौतिक जाँच के अन्तर्गत सामग्री की भौतिक जाँच कर उनके वास्तविक शेषों की तुलना स्कंध रिकॉर्ड से की जाती है

xiii. **बजटरी नियन्त्रण तकनीक (Budgetary Control Technique):**

इस तकनीक के अन्तर्गत विभिन्न सामग्री की आवश्यकताओं का अनुमान लगा कर उनको आवश्यकता के समय उपलब्ध कराने हेतु क्रय की सूचियाँ तैयार करना एवं स्कंध नियन्त्रण हेतु वास्तविक उपयोग व बजटीय उपयोग का अन्तर ज्ञात किया जाता है । सामग्री बजट की सफलता विक्रय पूर्वानुमान पर निर्भर करती हैं । सामान्य उपयोगी वस्तुओं के स्कंध के लिए इस तकनीक को अपनाया जा सकता हैं ।

xiv.'वेड' विश्लेषण तकनीक (VED Analysis Technique):

वेड से अभिप्राय V = Vital = अत्यावश्यक, E = Essential = आवश्यक मूलभूत तथा D = Desirable वांछनीय से होता हैं । यह तकनीक अतिरिक्त औजारों या पुर्जों के भण्डारण

के लिए अपनायी जाती हैं । इसके अन्तर्गत पुर्जों को उनकी उपयोगिता के आधार पर तीन वर्गों में बीटा जाता हैं:-

i. **अत्यावश्यक (Vital)** ऐसे पुर्जे जिनकी तुरन्त उपलब्धता नहीं होने पर उत्पादन क्रिया बन्द हो जाती हैं जिससे संस्था को असामान्य हानि होती है, उन्हें इस श्रेणी में रखा जाता है । ऐसे पुर्जों को हर कीमत पर प्राप्त किया जाता हैं ।

ii. **आवश्यक या मूलभूत (Essential)** ऐसे पुर्जे जिनसे उत्पादन तुरन्त तो प्रभावित नही होता है लेकिन अल्पकाल (अधिकतम एक दो दिन में उपलब्ध न होने पर उत्पादन प्रभावित हो सकता है । अत: प्रबंध को ऐसे पुर्जों की उपलब्धता भी सतत् बनाये रखनी होती है)

iii. वांछनीय (Desirable) वे पुर्जे जिनके अभाव में कुछ समय तक उपलब्ध न होने पर भी उत्पादन प्रभावित नहीं होता है, लेकिन उनकी आवश्यकता अवश्य होती है । अत: प्रबंध इनके नियोजन बद्ध तरीके से उपक्रम कीमत पर खरीद सकते हैं ।

अन्य तकनीकें (Other Techniques):

i. सामग्री का वर्गीकरण तथा कोडीकरण (Classification and codification of Materials)

ii. कम्प्यूटराईजेशन (Computerisation)

iii. क्रिया शोध (Operations Research) एवं अन्य गणितीय विधियों का प्रयोग तथा

iv. सामग्री नियन्त्रण प्रतिवेदन इत्यादि ।

18.7 सामग्री क्रय विधि (Material Procurement Procedure):

उत्पादन संस्था में न्यूनतम लागत पर श्रेष्ठतम वस्तुओं की उपलब्धता बहुत कुछ सामग्री क्रय विधि पर निर्भर करता हैं । वस्तुत: जिस संस्था के पास सामग्री क्रय के लिए उपयुक्त ढाँचा एवं विधि निर्मित होती है, निश्चित तौर पर उपयुक्त सामग्री का क्रय उपयुक्त कीमतों पर आवश्यकता अनुसार होता हैं । फलस्वरूप इससे एक और उत्पादन क्रिया अबाध रहती है दूसरी और वस्तु की लागत न्यूनतम आती है । इससे संस्था की लाभदायकता पर दीर्घकालीन अनुकूल प्रभाव पड़ते हैं । इसलिए सामान्यत: बडी संस्थायें सम्पूर्ण संस्था के लिए विभिन्न सामग्रियों के क्रय करने हेतु एक अलग से क्रय विभाग का गठन करती है । क्रय विभाग संस्था की नीति के अनुरूप क्रय क्रिया का सम्पादन करता हैं । एक व्यावसायिक संस्था के क्रय विभाग को निम्न दशाओं का सामना करना पड़ता है :

i. क्या क्रय करना है?

ii. क्रय का उपयुक्त समय क्या हो?

iii. कितनी मात्रा में क्रय किया जाना हैं?

iv. कहाँ से क्रय करना हैं?

v. क्रय किस मूल्य (Price) पर किया जायें?

आप अध्ययन के इस भाग से समझ रहे होंगे कि क्रय विभाग की जिम्मेवारी कितनी बड़ी एवम् दायित्वपूर्ण होती है । यदि क्रय विभाग से कही भी चूक होती, है तो उसका प्रभाव सम्पूर्ण

संस्था पर परिलक्षित होता है । अत: उपरोक्त स्थितियों से निपटने के लिए क्रय विभाग निम्न चरणों का समावेश करने वाली प्राविधि का पालन करना है

i. क्रय याचना प्राप्त करना ।
ii. सामग्री आपूर्ति के स्त्रोत की खोज करना तथा उपयुक्त सामग्री पूर्तिकर्ता का चयन करना ।
iii. क्रय आदेश तैयार करना तथा उनका क्रियान्वयन ।
iv. सामग्री का निरीक्षण तथा परीक्षण
v. भुगतान के बिलों को जाँचना तथा पास करना ।

1. सामग्री याचनाऐं प्राप्त करना (Receiving Purchase Requisitions)

वस्तुत: क्रय याचना सामग्री के क्रय हेतु क्रय विभाग को औपचारिक आवेदन करने के लिए प्रयुक्त फार्म हैं । इस फार्म को सामान्यत: स्टोर कीपर द्वारा उत्पादन विभागों की मांग के अनुरूप भरा जाता है । यदि कोई विशिष्ट सामग्री की आवश्यकता प्रथम बार ही पड़ी हो तब उसे विभागीय अध्यक्षों द्वारा भी भरा जाता हैं । याचना फार्म पर या तो कारखाना प्रबंधक या संयंत्र अधीक्षक उसको बनाने वाले व्यक्ति के हस्ताक्षरों के साथ विधिवत् हस्ताक्षर करता हैं ।

याचना के प्रारम्भ में ही अपेक्षित सामग्रियों तथा स्टोर्स की एक पूर्ण सूची तैयार कर ली जानी चाहिए । इसी सूची में साप्ताहिक उपयोग की मात्रा दी जानी चाहिए । इसकी अवधिगत समीक्षा की जाये ताकि आवश्यक कमी या वृद्धि की जा सकें । यदि प्रति सप्ताह उपयोग की दर में कोई परिवर्तन आता है (जैसे अतिरिक्त पारियों में काम होने के कारण) तो क्रय विभाग को नई संख्याओं से परिचित किया जाना चाहिए । एक बार जब कोई मद मानक सूची में शामिल कर ली जाती है तो यह क्रय विभाग का कर्त्तव्य हो जाता है कि जब भी विद्यमान स्टॉक समाप्त हो जायें तो नई आपूर्तियों के लिए व्यवस्था करें । लेकिन यदि उत्पादन विभाग को किसी नई सामग्री की आवश्यकता होती है तो उसको समय रहते अपना आदेश भेजना चाहिए तथा आवश्यक कार्यवाही के लिए उसके क्रय विभाग को सौंपा जाना चाहिए । ऐसा होने से क्रय विभाग की कार्यकुशलता बनी रह सकती है ।

क्रय पर नियंत्रण (Control Over Buying)

सामग्री तथा स्टोर्स की नियमित मदों के क्रय पर नियंत्रण हेतु यह आवश्यक है कि उनकी अधिकतम, न्यूनतम, पुन: आदेश स्तर तथा आर्थिक आदेश मात्राओं का निर्धारण करें । इन सबका आपने पूर्ववर्ती शीर्षकों में अध्ययन किया है । आर्थिक आदेश मात्राओं तथा विभिन्न स्तरों का उपयोग नियमित सामग्रियों के अनुचित आदेशों के विरूद्ध पर्याप्त बचाव की भूमिका निभायेगा । विशेष सामग्रियों की दशा में यह वांछनीय है कि सम्बंध तकनीकी विभाग स्टोर्स से निकाली जाने वाली सामग्रियों के तथा विशेष रूप से उपलब्ध की जाने वाली सामग्रियों की मात्रा, आकार तथा आदेश सामग्री की विशिष्टीकरण सूची तैयार करें। सभी मामलों में क्रय की प्रक्रिया में एक उचित क्रय याचना का निर्गमन (आगे फॉर्म दिया जा रहा है) प्रारम्भिक बिन्दु होता है । (विद्यार्थी कृपया नोट कर सकते है कि पाठ्य पुस्तकों

तथा अध्ययन पत्र में सुझाया गया फार्म अपनी प्रकृति में उदाहरण स्वरूप ही है विभिन्न परिस्थितियों में वास्तविक फार्म अलग-अलग हो सकते हैं ।) इसका उद्देश्य है क्रय विभाग से आवेदन करना तथा उनको अधिकृत बनाना कि वे उल्लिखित मात्राओं में निर्दिष्ट सामग्रियों को प्राप्त करने का आदेश दें सकें । सामान्यत: इसको तीन प्रतियों में तैयार किया जाता है इसका नमूना इस प्रकार है :-

Purchase Requisition (Regular / Special)

(It is a Separate from each item)

No.....Department.....Date.....

Purchase.....Date by which material required.....

Description of Materials required	Quantity	Exact Specification Required

Indentor

For use in Purchase Department

Firms Quotations	1	2	3	Order
				No. and Date
Price (including Charges)				With.....
Date of Delivery				Price.....
				Date of Dly.....
Remarks				Purchase Manager

नियमित स्टॉक मदों के पुन: आदेश हेतु सामग्री याचना के एक नमूने का फार्म:

Purchase Requisition

No : Date:

S. No.	Name of Article	Present Stock	Minimum Stock	Maximum Stock	Remarks

emarks

Purchase Manager

Store Ledger Clerk

2. सामग्रियों के सप्लायर्स की खोज तथा चयन (Exploring and Selecting material Suppliers)

सामग्री याचना की औपचारिकता पूरी करने के बाद उपर्युक्त पूर्तिकर्ताओं की खोज आवश्यक होती हैं । क्योंकि उपयुक्त पूर्ति कर्त्ता के द्वारा ही उपयुक्त सामग्री उपयुक्त कीमत पर प्राप्त हो सकती है । सामान्यत: प्रत्येक व्यावसायिक ग्रह में क्रय विभाग अपनी संस्था में आपेक्षित सामग्रियों के प्रत्येक वर्ग के लिए सप्लायर्स की एक सूची बनाये रखता हैं । ऐसे सप्लायर्स से कम से कम तीन उदाहरण आमंत्रित किये जाते है । इन उदाहरणों की प्राप्त करने के एक तुलनात्मक विवरण तैयार किया जाता है । सामग्री के सप्लायर्स के चयन हेतु वे घटक जो क्रय विभाग अपने मस्तिष्क में रखता है वे इस प्रकार है:- मूल्य, मात्रा, प्रस्तावित गुणवत्ता, सुपुर्दगी समय, आवागमन का तरीका, भुगतान की शर्तें, सप्लायर्स की ख्याति आदि । उपरोक्त घटकों के अतिरिक्त क्रय प्रबंधक उदाहरणों के विवरणों, विगत रिकार्डों, क्रेता मार्गदर्शकों आदि से आवश्यक सूचनाएं प्राप्त करता है, तथा अंततः सामग्री के सप्लायर्स का चयन कर लेता है ।

3. क्रय आदेश (Purchase Order)

उस पूर्ति कर्त्ता के चयन के बाद क्रय प्रबंध या अधिकारी, औपचारिक क्रय आदेश जारी करने की और प्रवृत्त होता हैं । यह एक निर्दिष्ट समय अवधि में निर्दिष्ट दरों पर विभिन्न सामग्रियों की आपूर्ति हेतु लिखित प्रार्थना होती है । क्रय आदेश की प्रतियाँ भेजी जातीं हैं:

i. सप्लायर को:

ii. स्टोर या आदेश देने वाले विभाग को;

iii. प्राप्ति विभाग को;

iv. लेखा विभाग को ।

सम्बद्ध क्रय याचनाओं के साथ क्रय आदेश की एक काँपी की विभाग की फाइल में लगा ली जाती है, जिससे सुपुर्दगी का अनुशीलन सुचारू हो सके तथा साथ ही भुगतान हेतु बीजक के अनुमोदन का काम सरल हो सके ।

4. सामग्रियों की प्राप्ति तथा निरीक्षण (Receipts and Inspection of Materials)

स्टोर्स संगठन के प्रत्येक तंत्र के अंतर्गत प्राप्ति तथा भंडारण के कार्यो के बीच भेद किया जाता है ताकि ये एक दूसरे की जाँच का काम कर सके क्योंकि इसी से सामग्री प्रबंध में कुशलता वृद्धि सम्भव हैं ।

प्राप्ति विभाग या प्रखण्ड आने वाले सामान का प्रभार लेने के लिए उनकी मात्राओं का जाँचने तथा सप्लायर हेतु उनके ग्रेड गुणवत्ता या अन्य तकनीकी विशेषताओं के बारे में निरीक्षण के लिए उत्तरदायी है, और यदि वह इसको स्वीकार्य समझता है तो उसको स्टोर्स की ओर भेज देता है । (या अन्य विभागों को जिनके लिए इनको खरीदा गया हो सकता है) । बड़े संगठन में प्राप्ति विभाग के साथ बहुधा एक विशेष निरीक्षण शाखा जुड़ी होती है तथा जहाँ ऐसा नहीं होता वही आने वाली सप्लाईयों का तकनीकी आकलन सामान्य निरीक्षण स्टॉक द्वारा ही कर लिया जाता है जब आदेशित मात्रा के समान उसकी गुणवत्ता

नहीं होती, तो माल को स्वीकार नहीं किया जाता हैं । यदि हर बात सही है तो सप्लाई की स्वीकृति के लिए उपयुक्त माल लिया जाता है । प्राप्ति विभाग एक प्राप्ति रसीद तैयार कर सम्बन्धी पूर्ति कर्त्ता को सौंप देता है । फिर रिपोर्ट या सामग्री नोट या माल प्राप्ति नोट तैयार करता है । इसकी चार प्रतियाँ बनायी जाती है तथा प्रतियों का वर्गीकरण निम्न प्रकार किया जाता है :

i. पहली प्रति क्रय विभाग को भुगतान हेतु सप्लायर के बिल के सत्यापन हेतु भेजी जाती है ।

ii. दूसरी प्रति विभाग को या स्टोर को भेजी जाती है जिससे सामग्री का आवेदन किया था ।

iii. तीसरी प्रति को लागत विभाग में स्टोर्स लैजर क्लर्क को भेजी जाती है ।

iv. चौथी तथा अंतिम प्रति प्राप्ति विभाग द्वारा अपने उपयोग हेतु रख ली जाती है । एक अच्छी योजना यह होती कि प्राप्ति क्लर्क सभी तीनों प्रतियों को (जो दूसरों के लिए है) सामग्री के साथ स्टोर्स को या उस विभाग को भेज दे जिसने आदेश दिया था । सामग्री की भौतिक जाँच की जाती है तथा उसके विवरण, जैसा कि प्राप्ति रिपोर्ट में रिकार्ड दिया जाता है, सत्यापित किये जाते हैं । यदि मात्रा तथा गुणवत्ता विधिवत है तो उसकी सुपुर्दगी को स्वीकार कर लिया जाता है, तो रिपोर्ट की प्रतियों पर हस्ताक्षर कर दिये जाते रिपोर्ट की दो प्रतियाँ क्रय विभाग को प्रेषित कर दी जाती हैं तथा तीसरी प्रति को भंडारण अथवा उपयोग, जैसा भी मामला हो, के लिए प्राप्त स्टोर्स को मात्राओं के प्रबंधात्मक साक्ष्य के रूप में फाइल में लगा ली जाती हैं । क्रय विभाग फिर उसमें क्रय मूल्य का लेखा कर लेता है तथा एक प्रति को लेखा विभाग को भेज देता है और दूसरी प्रति को लागत विभाग को प्रेषित कर देता है । प्राप्ति रिपोर्ट का एक नमूने का प्रारूप नीचे दिया गया है :

Good Received Note

Received from: _____No._____

Order No._____Date._____

Amount

Qty.	Code	Description	Amount due to Supplire Rs	Charges Rs.	Total Rs.	Remarks

Inspector: .....Store Keeper .....

Receiver.....Store Ledger Clerk.....

सामग्री बाह्य वापसी नोट स्टोर्स या प्रेषण विभाग द्वारा तैयार किया जाता है । इसकी पाँच प्रतियाँ सामान्यत: तैयार की जाती है: दो सप्लायर के लिए (जिनमें से एक सप्लायर

द्वारा वापिस भेज दी जाती है, उस पर हस्ताक्षर करने के बाद) एक स्टोर्स के लिए, एक लागत (स्टोर्स) लेजर के लिए तथा एक प्रति को सामग्री बाह्य वापिसी पुस्तिका में बनाये रखने के लिए । वापसी नोट का लेखा उपयुक्त ढ़ंग से रखना आवश्यक होता है अन्यथा माल को लौटाने पर भी भुगतान हो जाता है ।

5. भुगतान हेतु बिलों की जाँच करना तथा पास करना (Checking and Passing of bills for Payment)

सप्लायर से प्राप्त बीजक की शुद्धता तथा गणितीय सत्यता को चैक करने के लिए स्टोर्स लेखांकन विभाग को भेजा जाता है । मात्रा तथा मूल्य को भी क्रमश: सामग्री प्राप्ति नोट तथा क्रय आदेश के संदर्भ में चैक किया जाता हैं । स्टोर्स लेखांकन विभाग उसकी शुद्धता को चैक करके अंततः प्रमाणित कर देता है तथा बीजक को भुगतान के लिए पास कर देता हैं । इस प्रकार सप्लायर को भुगतान कर दिया जाता है ।

सामग्री निर्गमन (Material Issue Procedure) :

सामग्री प्रबंध का कार्य इतना ही नहीं है कि माल को उपयुक्त ढंग से प्राप्त करे बल्कि प्राप्त माल का निर्गमन भी सही मूल्यों पर होना चाहिए, अन्यथा निर्मित का बाजार के बाहर होने का खतरा बना रहता है । सामग्री का निर्गमन तब तक न किया जाये जब तक विधिवत अधिकृत याचना स्लिप न मिल जायें सामान्यत: यह विभाग को फोरमैन ही होता है जिसको स्टोर्स से सामग्री लेने का अधिकार होता है । निर्गमन **"पहले आवक पहले जावक:" (FIFO)** के आधार पर किया जाना चाहिए अर्थात माल के सबसे पुराने वाले ढेर से । यदि इस सम्बंध में सावधानी न बरती गई तो पहले वाली ढेरियों का माल एक लम्बे समय तक पड़े रहने के कारण खराब हो सकता है ।

सामग्री याचना नोट (Material Requisition Note):-

यह कारखाने में प्रयोग हेतु अथवा उसके विभागों में किसी के प्रयोग हेतु सामग्रियों के निर्गमन के सम्बंध में एक अधिकार प्रपत्र हैं जहाँ एक सामग्री सूची तैयार की जाती है वही या तो इसके आधार पर सम्पूर्ण सामग्रियों को निकाल लिया जायेगा या पृथक सामग्री याचनाएँ व्यक्ति अथवा विभाग द्वारा तैयार की जायेंगी तथा सूची में निर्दिष्ट सीमा तक सामग्री निकाल ली जायेगी । याचना नोटों को तीन प्रतियों में बनाया जाता है । प्रतियों को निम्न तरीके से वितरित किया जाता है :

एक प्रति स्टोर कीपर के लिए ।

एक प्रति लागत विभाग के लिए ।

एक प्रति माँग करने वाले विभाग के लिए ।

यदि कोई सामग्री सूची तैयार नहीं की जाती तो यह वांछनीय होता है कि सामग्री याचना नोटों को तैयार करने का काम नियोजन विभाग पर छोड़ दिया जाये । यदि कोई नियोजन विभाग भी नहीं होता अथवा यद्यपि विद्यमान तो होता है, लेकिन इस काम को संभालने में असमर्थता व्यक्त करता है तो याचना नोटों को उस विभाग अथवा व्यक्ति द्वारा ही तैयार किया जाना चाहिए जिसको सामग्रियों की आवश्यकता हैं । सामान्यत: एक फौरमेन का अधिकरण पर्याप्त रहता है । लेकिन महँगी सामग्रियों के संबंध में यह वांछनीय होगा

कि ऐसी याचनाओं को स्टोर्स में पेश किये जाने से पूर्व किसी उच्च अधिकारी जैसे कारखाना अधीक्षक या कारखाना प्रबंधक से अनुमोदित करा लिया जाये । सामग्री याचना के एक नमूने का प्रारूप नीचे दिया जा रहा है:-

Material requisition Note

Work Order No.:_____No._____

Department:_____Date:_____

Item No.	Particulars	Qty.	Rate Rs.	Amount Rs.

Store Keeper Workman Receiving the Material Foreman S.L. Clerk

सामग्रियों का बिल (Bills of Materials):-

इसको सामग्री विशिष्टीकरण सूची या सामान्यतः: सामग्री सूची के रूप में भी जाना जाता है । यह किसी कार्य या उत्पादन की अन्य इकाई के लिए अपेक्षित सामग्रियों की मानक मात्राओं की एक तालिका है । एक व्यापक सामग्री सूची निश्चित रूप से किसी काम के लिए या उत्पादन की अन्य इकाई के लिए अपेक्षित सभी सामग्रियों के सही विवेचन तथा विशिष्टीकरण की व्यवस्था करें तथा साथ ही अपेक्षित मात्राओं को भी बताये ताकि यदि मानक सूची से कोई विचलन होता है तो उसको आसानी से पकड़ा जा सके । सामग्री सूची को मानक फार्म में इंजीनियरिंग अथवा योजन विभाग द्वारा तैयार किया जाता है । तैयार की जाने वाली प्रतियों की संख्या प्रत्येक व्यवसाय की आवश्यकताओं के अनुसार अलग-अलग होती हैं लेकिन चार प्रतियाँ कम से कम तैयार की जाती है । इसकी एक प्रति बहुधा निम्न में से प्रत्येक विभाग को भेजी जाती है :

i. स्टोर्स विभाग

ii. लागत खाता विभाग;

iii. उत्पादन नियंत्रण विभाग;

iv. इंजीनियरिंग या नियोजन विभाग ।

उपरोक्त विभागों द्वारा "सामग्रियों के बिल" को प्रयोग में लाने के लाभों को संक्षेप में निम्न प्रकार दिया जा सकता है -

i. **स्टोर्स विभाग:**

1. सामग्री का एक बिल स्टोर्स विभाग द्वारा सामग्री की क्रय याचनाओं को तैयार करने के लिए एक महत्वपूर्ण आधार सुनिश्चित करता है ।
2. एक सम्पूर्ण सामग्री आवश्यकता के निर्गमन हेतु एक अधिकार पत्र के रूप में काम करता है ।

3. लिपिकीय कार्यवाही कम हो जाती हैं क्योंकि स्टोर्स लिपिक उपयोग कर्ताओं को अपेक्षित सामग्री को पूरी तरह या अंशतः निर्गमित कर देता है यदि सामग्री के माँगें गये विवरण सामग्री के बिल में मौजूद होते हैं ।

ii. लागत लेखा विभाग:-

1. सामग्रियों के बिल उसके द्वारा अभिव्यक्त कार्य / प्रक्रिया / गतिविधि के लिए सामग्री लागत का अनुमान / बजट तैयार करने हेतु लागत खाता विभाग द्वारा काम लाया जाता है ।
2. इसको प्रयुक्त सामग्री की आधिक्य लागत को नियंत्रित करने हेतु एक तन्त्र के रूप में काम लाया जा सकता है ।

iii. उत्पादन नियंत्रण विभाग:-

1. "सामग्री के बिल" इस विभाग द्वारा सामग्रियों के उपयोग को नियंत्रित करने के लिए काम लाया जा सकता है ।
2. इसका प्रयोग समय की बचते करता है जो अन्यथा सामग्री की पृथक-पृथक याचनाओं को तैयार करने में बरबाद हो जाता है ।

iv. इंजीनियरिंग अथवा योजना विभाग:-

जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है यह विभाग मानक प्रारूप में सामग्री की सूची बनाता है । सूची की एक प्रति स्टोर्स, लागत लेखा और उत्पादन नियंत्रण विभाग का भेजी जाती है ।

सामग्री के बिल का नमूना (Performa of Bills of Materials)

Job No._____No._____

Department Authorised_____Date_____

S.No.	Code No. or size	Description	Qty. Issued	Date of Issue & Qty. issued Date	Rate (Rs) Qty	Amount

Authorised By_____ Received By:_____

Checked By_____

Store Keeper's Signature Cost Clerk_____

v. सामग्री का हस्तांतरण (Transfer of Material):

किसी कार्य या उत्पाद की अन्य इकाईयों पर उत्पन्न होने वाला सामग्री आधिक्य कभी-कभी स्टोर्स का हस्तांतरण हेतु अनुपयुक्त हो सकता है अपने विशाल आकार, भारी वजन, विशालकाय अथवा अन्य ऐसी ही कारणों की वजह से । लेकिन यह सम्भव हो सकता है कि इस माल को स्टोर रूम में वापस करने के स्थान पर किसी अन्य कार्य को आन्तरिक

करके उसके कुछ वैकल्पिक उपयोग ढूँढ लिये जाएँ । लेकिन ऐसी प्रक्रिया सामान्य रूप में नही अपनानी चाहिए बल्कि विशेष दशाओं में ही होनी चाहिए जिससे सामग्री का प्रबंधन तथा नियंत्रण उपयुक्त ढंग से हो सके ।

सामग्री हस्तांतरण नोट का प्रारूप नीचे दिया गया है :

Material Transfer Note

Form Job No. :_____No_____

To Job No. :_____Date: _____

Item No.	Particulars	Rate (Rs.)	Amount (Rs.)

Transferred by :_____Received By:_____

Job Ledger Clerk_____

vi. सामग्री की वापसी (Return of Materials):

कभी-कभी पहले से ही यह सम्भव नहीं होता कि उत्पादन की इकाईयों अथवा सामग्री की आवश्यकताओं का सटीक अनुमान लगा लिया जाए । इसके अतिरिक्त, किन्हीं तकनीकी अथवा अन्य कठिनाइयों के कारण यह व्यवहारिक भी नही होती कि किसी विभाग द्वारा अपेक्षित सामग्री की मात्रा का सही मापन कर लिया जाए । किसी भी मामले में सामग्री स्टोर्स से बड़ी मात्रा का सही मापन कर लिया जाए । किसी भी मामले में सामग्री स्टोर्स से बड़ी मात्रा में जारी करनी पड़ सकती हैं, बहु धा वास्तविक अपेक्षित मात्रा से अधिक कार्य को पूर्णता पर आधिक्य सामग्री को वापस लौटा दिया जाता है ।

आधिक्य सामग्री एक प्रपत्र के साथ स्टोर रूप को वापिस की जाती है जिसे या तो **Shop Credit Note** के रूप में जाना जाता है या वैकल्पिक तौर पर **Store Debit Note** के रूप में जाना जाता है । इस प्रपत्र को आधिक्य सामग्री लौटाने वाले विभाग द्वारा बनाया चाहिए तथा इसकी तीन प्रतियाँ तैयार की जाऐं जिनका निम्न प्रकार प्रयोग हो:

एक प्रति स्टोर रूप के लिए ।

एक प्रति लागत विभाग के लिए, तथा

एक प्रति आधिक्य सामग्री लौटा रहे विभाग के लिए ।

शॉप क्रेडिट नोट का फार्म नीचे दिया जा रहा है :

Shop Credit Note

From Job No. :_____No. _____

To Job No. _____Date :_____

Item No.	Particulars	Rate (Rs.)	Amount (Rs.)

Store Keeper : _____S.L. Clerk. Forman of the Returning Department_____

vii. सामग्री भंडारण पर नियंत्रण (Material Storage Control):

प्यारे विद्यार्थियों अब तक के अध्ययन से आप निश्चित रूप से सामग्री प्रबंध के विभिन्न पहलुओं को समझ गये होगे । अब हम सामग्री भंडारण व्यवस्था की चर्चा करें । सामग्री प्रबंध में केवल यही पर्याप्त नहीं है कि अपेक्षित गुणवत्ता की सामग्री का क्रय किया जाये । यदि खरीदा गया माल बाद में गलत भंडारण के कारण गुणवत्ता में गिरावट पाता है तो हानि उससे भी अधिक हो सकती है जो गलत गुणवत्ता की सामग्री के करने से होती । गुणवत्ता को बनाये रखने के अतिरिक्त स्टोर कीपर को सामग्री के सुरक्षित रख रखाव को भी सुनिश्चित करना चाहिए । यह स्टोर कीपर का कार्य होना चाहिए कि सही गुणवत्ता की सामग्रियों ही सदैव स्टॉक में उपलब्ध हों । ऐसा तभी सम्भव है जब स्टोर कीपर अपने कर्त्तव्य का निर्वहन पूर्ण दक्षता से करें ।

A. स्टोर कीपर के कर्त्तव्य (Duties of Store Keeper) :- इसको संक्षिप्त में निम्न प्रकार दिया जा सकता है

1. स्टोर्स विभाग की सभी गतिविधियों पर सामान्य नियंत्रण रखना ।
2. सामग्रियों की गुणवत्ता तथा मात्रा दोनों के प्रति सुरक्षित रख रखाव का आश्वासन देना ।
3. उचित रिकार्डों का अनुरक्षण ।
4. स्टोर्स विभाग का सभी गतिविधियों पर सामान्य नियंत्रण रखना ।

viii.स्टोर्स रिकार्ड (Stores Record)

स्टोर्स का रिकॉर्ड इन तीन फार्मों में रखा जा सकता है :

अ. बिन कार्ड;

ब. स्टॉक नियंत्रण कार्ड;

स. स्टॉक लेजर ।

खातों के पहले दो फार्म प्राप्त मात्रा, निर्गमित मात्रा तथा सामग्री के शेष के रिकार्ड है, लेकिन तीसरा उनकी लागत का खाता भी है । सामान्यत: खाते दोनों की स्वरूपों में रखें जाते हैं, स्टोर में मात्रा तथा मात्रा एवं वित्तीय तौर पर लागत विभाग में ।

ix. **बिन कार्ड तथा सामग्री नियंत्रण कार्ड (Bin Cards and material control)** :- ये अनिर्वायत: तौर पर समान ही होते हैं । ये स्टोर्स के मात्र मात्रागत रिकार्ड हैं । स्टॉक नियंत्रण कार्ड में आदेश पर स्टॉक के सम्बन्ध में आगे सूचनाओं का समावेश होता हैं । बिन कार्डों को बिनों अथवा बंधनों के साथ जोड़ दिया जाता है या उनके एकदम साथ रखा जाता है ताकि ये स्टॉक के परिचायक में भी सहायता करें । दूसरी ओर स्टॉक नियंत्रण कार्ड कैबिनेटों या लूज बाइन्डर्स में रखे जाते हैं ।

बिन कार्डों के लाभ (Advantage of Bin Cards)

i. गलती होने की सम्भावनाएँ कम हो जाती है क्योंकि प्रविष्टियाँ उसी समय कर ली जाती हैं जब सामग्री रखने वाले वास्तविक व्यक्ति द्वारा सामग्री प्राप्त की जाती है या, निर्गमित की जाती हैं ।

ii. स्टॉक पर नियंत्रण कहीं अधिक प्रभावी हो सकता है, जहाँ किसी भी समय हस्तगत वास्तविक मात्रा तथा पुस्तकीय शेष की तुलना सम्भव हो पाती है ।

iii. बिन कार्ड की सहायता से माल को पहचानने में सुगमता रहती हैं ।

बिन कार्डों के दोष (Disadvantage of Bin Cards)

i. स्टोर रिकार्ड एक व्यापक क्षेत्र में फैले रहते हैं ।

ii. कार्डों पर धूल जम जाती है तथा ग्रीस लग जाती है क्योंकि वे सामग्रियों के पास ही होते हैं ।

iii. सामग्रियों का हस्थन करने वाली व्यक्ति बिन कार्डों को लिखने में लगे लिपिकीय कार्य के लिए साधारणत: उपयुक्त नहीं होते ।

iv. बिन कार्ड की हानियों से बचने के लिए इसका विकल्प सामग्री नियंत्रण कार्ड काम में लिया जा सकता है ।

सामग्री नियंत्रण कार्ड के लाभ :-

i. रिकार्ड कहीं अधिक संश्लिष्ट तरीके से रखे जाते हैं, ताकि उनके प्रति संदर्भ सुचारू हो जाते है ।

ii. रिकार्डों को साफ सुथरे तरीके से लिपिकीय कार्य में पूरी तरह लगे लोगों द्वारा रखा जा सकता है ताकि रिकॉर्ड कीपिंग तथा वास्तविक सामग्री हस्थन के बीच श्रम विभाजन संभव हो पाता है ।

iii. चूंकि कुल सामग्री की स्थिति का भण्डार-गृह का फेरा किए बिना ही ज्ञान प्राप्त किया जा सकता हैं ।

स्टॉक नियंत्रण कार्ड के दोष :-

i. किसी मद की भौतिक स्टॉक के साथ उसके पुस्तकीय शेष की तुलना सम्भव नहीं हो पाती ।

ii. स्टॉक में सामग्रियों का भौतिक परिचायकन उतना सरल नहीं हो पाता जैसा कि बिन कार्डों के सम्बंध में, क्योंकि स्टॉक नियंत्रण कार्ड केबिनटों अथवा ट्रे में रखे जाते हैं ।

iii. कुछ लागत लेखापालों द्वारा सुझाव दिया जाता है कि बिन कार्ड ओर सामग्री नियंत्रण कार्ड दोनों को ही रख लिया जावे ताकि दोनों के लाभ प्राप्त हो सकें तथा हानियाँ एक-दूसरे का प्रतिकार कर दें ।

x. सामग्री खाता बही (Store Ledger)

सामग्री खाता बही में क्रय विभाग द्वारा भेजे गये सामग्री प्राप्ति नोट (Material or goods received NAC) भण्डारण विभाग द्वारा भेजे गये सामग्री माँग-पत्र (Material Requisition NAC) एवं सामग्री वापसी पत्र (Material Return

NAC) के आधार पर प्रविष्टियों की जाती हैं । इस बही में प्रत्येक प्रकार की सामग्री के लिए अलग अलग खाते खुले होते हैं जिनमें सामग्री की प्राप्ति निर्गमन एवं शेष (Balance) सम्बंधी विवरण दिये हुये होते हैं ।

सामग्री खाता बही के प्राप्ति वर्ग (Receipt Section) में सामग्री को लागत मूल्य पर दर्ज किया जाता है किन्तु इस खाता-बही के निर्गमन वर्ग (Issue Section) में सामग्री को किस मूल्य पर दर्ज किया जावे यह प्रबंधकों के निर्णय पर निर्भर करता हैं । निर्गमित सामग्री को इस खाता बही में दर्ज करने के लिए प्रबंधकों द्वारा जो मूल्य लगाने का निश्चय किया जाता है उसे सामग्री की निर्गमन मूल्य (Issue Price of material) कहते है । इसकी अनेक विधियाँ है जिसकी आगे विवेचना की गयी हैं ।

18.8 सामग्री क्रय भंडारन व निर्गमन की विधियों का प्रस्तुतीकरण एवं उनकी उपयोगिता

आइये अब हम विवेचना करें कि प्राप्त सामग्री का उत्पादन कार्यों हेतु उपयोग लेने के लिए किस मूल्य पर निर्गमित किया जाना चाहिए । इस समस्या के संतोषजनक स्तर के प्रयास के रूप में सामग्री निर्गमन के मूल्यन की अनेक विधियाँ विकसित की गई है । इन विधियों को निम्न प्रकार समूहबद्ध समझाया जा सकता है ।

1. विशिष्ट मूल्य विधि	2. प्रथम आवक प्रथम जावक विधि
3. अन्तिम आवक प्रथम जावक विधि	4. आधार स्टॉक विधि
5. साधारण औसत मूल्य विधि	6. भारित औसत मूल्य विधि
7. अवधिगत साधारण औसत मूल्य विधि	8. अवधिगत भारित औसत मूल्य विधि
9. चल सामान्य औसत मूल्य विधि	10. चल भारित औसत मूल्य विधि
11. प्रतिस्थापन मूल्य विधि	12. वसूली योग्य मूल्य विधि
13. मानक मूल्य विधि	14. संवर्द्धित मूल्य विधियाँ
15. अधिकतम मूल्य, सर्व प्रथम निर्गमन विधि	16. पुन उपयोग मूल्य विधि

हम अब उपरोक्त सभी विधियों का संक्षिप्त अध्ययन करेंगे ।

1. विशिष्ट मूल्य विधि (Specific price method)

यह विधि उपयोगी है, विशेषतः जब किसी विशिष्ट कार्य आदेश के लिए सामग्री खरीदी जाती हैं तथा फिर बाद में जब उस विशिष्ट कार्य या कार्य आदेश के लिए सामग्री खरीदी जाती हैं तथा फिर बाद में जब उस विशिष्ट कार्य अथवा कार्य आदेश पर माल निर्गमित किया जाता हैं तो उसको खरीदे गये मूल्य पर लगाया जाता है । इस विधि के उपयोग हेतु यह आवश्यक होता हैं कि सामग्री के प्रत्येक ढेर को पृथकत: स्टोर किया जाए तथा उसका पृथक. खाता रखा जाये ।

2. **प्रथम आवक-प्रथम जावक विधि (FIFO):-** यह सामग्रियों के निर्गमनों के मूल्यन की एक विधि हैं दूसरे शब्दों में सामग्रियों को उसी क्रम में निर्गमित किया जाता हैं जिसमें वे स्टोर में पहुँची हैं । इस विधि को गिरते मूल्यों के समयों पर उपयुक्त माना जाता हैं, क्योंकि

उत्पादन पर चार्ज की गयी सामग्री लागत ऊँची रहेगी जबकि सामग्रियों की प्रतिस्थापन लागत कम होगी । लेकिन बढ़ते मूल्यों की दशा में, यदि इस विधि को अपनाया जाता हैं तो उत्पादन पर प्रभार सामग्रियों की प्रतिस्थापन लागत की तुलना में कम रहेगा ।

3. **अंतिम आवक प्रथम जावक विधि (LIFO) :** - यह विधि (LIFO) विधि से विपरीत हैं । यह विधि इस मान्यता पर आधारित है कि खरीदी गयी अंतिम ढेरी (समूह) की मदों को पहले निर्गमित किया जाता हैं । अत: इस विधि में अंतिम ढेरी (बैच या लाट) की कीमतें निर्गमनों में मूल्यन हेतु काम लाई जाती है जब तक यह समाप्त नहीं हो जाती और यही क्रम चलता रहता हैं । यह विधि विशेषतः तब भी उपयोगी हैं जब यह भावना हो कि फीसों या औसत विधियों के उपयोग के कारण दिखाया गया लाभ चुकाये जाने वाला कर काफी अधिक होगा ।
4. **आधार स्टॉक विधि (Base stock method)** :- इस विधि के अन्तर्गत स्टॉक एक न्यूनतम-मात्रा स्टॉक में संचय के रूप में एक नियत मूल्य सदा बनायी रखी जाती है । ताकि किसी आपातकालीन स्थिति से निपटा जा सके यदि वह उत्पन्न हो जाए तो । इस न्यूनतम स्टॉक को आधार स्टॉक के रूप में जाना जाता हैं तथा उस मूल्य पर आँका जाता हैं जिस पर सामग्रियों का पहला ढेर प्राप्त होता हैं तथा तदुपरान्त मूल्य उतार चढ़ावों द्वारा अप्रभावित बना रहता हैं । अत: यह निर्गमनों के मूल्यांकन की विधि की अपेक्षा स्टॉक मूल्यांकन की विधि अधिक हैं क्योंकि मूल्य लागत पर आँके गये स्टॉक के आधार के साथ, निर्गमनों के मूल्यांकन की किसी अन्य विधि का पालन किया जाना चाहिये । आधार स्टॉक के ऊपर मात्रा या तो फीफो अथवा लीफो आधार पर आँकी जा सकती हैं यह विधि एक स्वतंत्र विधि नहीं हैं क्योंकि यह फीफो या लीफो का प्रयोग करती हैं ।
5. **साधारण औसत (Simple Average):** - इस विधि में निर्गमित सामग्रियों का मूल्यांकन औसत मूल्य पर किया जाता हैं, जिसको सभी इकाईयों की दरों के जोड़ को इकाई दरों की संख्या से भाग देकर ज्ञात किया जाता हैं । दूसरे शब्दों में यह विधि समझने में सरल तथा अपनाने में आसान होती हैं ।
6. **भारित औसत विधि (Weighted Average Price) :-** यह विधि खरीदी गयी मात्रा तथा क्रय मूल्य को पर्याप्त भार देती है । जब निर्गमन मूल्य का निर्धारण करते है । यही औसत निर्गमन मूल्य प्रत्येक निर्गमन से पूर्व सामग्रियों की कुल मात्रा द्वारा स्टॉक में सामग्रियों की कुल लागत को विभाजित करके निकाला जाता है । सामग्री निर्गमन की सबसे उपयुक्त विधि हैं इस विधि के लाभ तथा दोष निम्न प्रकार हैं:

लाभ:-

1. यह मूल्य उतार चढ़ावों का निराकरण कर देती है यदि सामग्री क्रयों के कारण इनकी विद्यमानता हो ।
2. प्रत्येक निर्गमन के लिए निर्गमन मूल्यों की गणना की जरूरत नहीं होती जब तब कि सामग्रियों की नई प्राप्ति प्राप्त नहीं कर ली जाती है ।

हानियाँ :-

1. सामग्री लागत वास्तविक लागत मूल्य को व्यक्त नहीं करती और इसीलिए ऐसी मूल्यांकन विधि के कारण कोई लाभ या हानि अवश्य उत्पन्न हो जायेगी ।

7. **अवधिगत साधारण औसत मूल्य विधि (Periodic Weighted Average Price Method)** :- यह विधि सामान्य औसत मूल्य विधि के समान ही है सिवाय इसमें कि औसत मूल्य सम्बद्ध अवधि के अंत में ज्ञात किया जाता हैं । इस प्रकार निकाली गई दर वह होती हैं जो अवधि के दौरान किये गये सभी निर्गमनों के मूल्यांकन में काम आती है तथा साथ ही इस अवधि के अंतिम स्टॉक के मूल्यांकन हेतु भी प्रयोग किया जाता है ।

8. **अवधिगत भारित औसत मूल्य विधि (Periodic Weighted Average Price Method)** :- यह विधि भारित औसत मूल्य विधि के समान है, सिवाय इसके कि निर्गमन मूल्यों की गणनाएं अवधिगत तौर पर (जैसे एक माह) किये जाते हैं । इस प्रकार निकाला गया मूल्य उस अवधि के दौरान किये जाने वाले निर्गमन हेतु काम लाया जाता है तथा साथ ही अवधि के अंत में स्टॉक के मूल्यांकन हेतु भी प्रयोग किया जाता है ।

9. **चल सामान्य औसत मूल्य विधि (Moving Weighted Simple Average Price Method)** :- इस विधि के अन्तर्गत सामग्री निर्गमनों की दर को अवधियों की संख्या द्वारा अवधियों को निर्दिष्ट संख्या के अवधिगत सामान्य औसत मूल्यों के योग को विभाजित करके निकाला जाता है । चल सामान्य मूल्य के निर्धारण हेतु यह आवश्यक होता है कि औसत ज्ञात करने के लिए, लिये जाने वाली पहली अवधि को तय करना । मान लें एक छः माह की अवधि का निर्णय लिया जाता है तथा जून माह के लिए चल औसत दर की गणना की जाती है । ऐसी परिस्थिति में हमको जनवरी से जून तक के सामान्य औसत मूल्यों की एक सूची बनानी होगी तथा फिर, उसको जोडा जायेगा और योग को 6 से विभाजित किया जायेगा जुलाई के लिए चल औसत दर को ज्ञात करने के लिए हमें जनवरी से सम्बन्धित सामान्य औसत दर को छोड़ना होता है तथा जुलाई से सम्बन्धित दर को जोड़ते हैं और फिर इस योग को 6 से विभाजित करते है ।

10. **चल भारित औसत मूल्य विधि Moving Weighted Average Price Method**):- इस विधि के अर्न्तगत निर्गमन मूल्य की गणना अवधियों की संख्या द्वारा निर्दिष्ट अवधियों के दौरान अवधिगत भारित औसत मूल्यों के योग को विभाजित करके की जाती है ।

11. **प्रतिस्थापन मूल्य विधि (Replacement Price Method) :-** प्रतिस्थापन को उस मूल्य के रूप में परिभाषित किया जाता है जिस पर उस मद को करना सम्भव हो जो उसके एकदम समान हो जिसका प्रतिस्थापन किया ज है, आँकी जा रही है । इस विधि के अन्तर्गत निर्गमित सामग्रियों को मदों प्रतिस्थापन लागत पर आँका जाता है । यह विधि प्रत्येक निर्गमन पर सामग्रियों प्रतिस्थापन लागत के निर्धारण की पूर्व मान्यता लेती है ।

12. **वसूली योग्य मूल्य विधि (Realisable Price Method)** :- वसूली योग्य मूल्य का अर्थ है ऐसा मूल्य जिस पर निर्गमित की जाने वाली सामग्री बाजार में बेची जा सकती

है । यह मूल्य लागत मूल्य से कम अथवा अधिक हो सकता है जिस पर उसको मौलिक रूप से खरीदा गया था । प्रतिस्थापन मूल्य विधि की तरह स्टोर्स लैजर इस विधि में भी लाभ अथवा हानि प्रदर्शित करेगा ।

13. **प्रमाप मूल्य (Standard Price):-** इस विधि के अनुसार उत्पादन विभाग को सामग्री का निर्गमन वास्तविक लागत पर नहीं किया जाता बल्कि एक पूर्व निर्धारित मूल्य पर किया जाता है । यह मूल्य उन सभी घटकों को ध्यान में रखकर निर्धारित किया जाता है जो सामग्री की कीमत को प्रभावित करते है । इस विधि के अन्तर्गत सामग्री का मूल्य रहने के कारण इसे स्थिर मूल्य विधि भी कहते है ।
14. **संवर्द्धित मूल्य विधि (Inflated Price Method) :-** उस दशा में जब प्राकृतिक अथवा जलवायु घटकों के कारण सामग्री के भार में कमी आती है जैसे वाष्पीकरण, तो सामग्री का निर्गमन मूल्य इन हानियों का पूरा करने के लिए बढ़ाया जाता है ।
15. **अधिकतम मूल्य, सर्वप्रथम निर्गमन विधि (Highest Price, First Out or HIFO Basis)** :- यह विधि इस नियम पर आधारित है कि निर्गमन की तिथि जिन लागत मूल्यों पर सामग्री प्राप्त हुई है उनमें से सबसे अधिक मूल्य की सामग्री सर्वप्रथम निर्गमित की हुई मानी जाएगी तथा उससे कम कीमत की सामग्री उसके पश्चात् निर्गमित की हुई मानी जाएगी । व्यवहार में इस विधि का उपयोग नही होता हैं ।
16. **पुनः उपयोग मूल्य विधि (Re-use Price Method) :-** जब सामग्रियाँ अस्वीकार दी जाती है तथा स्टोर्स को वापस भेज दी जाती हैं या कोई प्राक्रियागत सामग्री किसी अन्य उपयोग में लाई जाती हैं, उसमें अपेक्षित उपयोग के अन्यथा, ऐसी सामग्रियों को उस दर का आँका जाता है जो उनके लिए मौलिक तौर पर चुकाये गये मूल्य से अलग होता है । सामग्री के उपयोग के मूल्यांकन हेतु कोई अंतिम प्रविधि नहीं होती।

निष्कर्ष:- उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट हो गया है कि उत्पादन विभाग को निर्गमित सामग्री की कीमत वसूल करने की अनेक विधियों का उपयोग किया जा सकता हैं ।

अब प्रश्न उठता है कि कौनसी विधि सर्वोतम होगी ?

सामान्यत: भारित औसत विधि को सर्वोत्तम माना जाता हैं । लेकिन फिर भी व्यवसाय की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये यह निश्चित करना चाहिए कि किस विधि को अपनाया जाये ? वस्तुत: मूल्य निर्धारण विधि का चयन करते समय निम्नलिखित तथ्यों का विशेष तौर पर ध्यान रखा जाना चाहिए :-

1. कार्य का स्वभाव कैसा है ?
2. सामग्री का क्रय किस समयान्तर पर किया जाता है ?
3. सामग्री का क्रय कितनी मात्रा में किया जाता है?
4. हिसाब किताब कितने विस्तार पूर्वक रखा जाता है ?

18.9 सामग्री क्षय अथवा छीजत (Waste of Material)

भण्डार-गृह में सामग्री छीजत (Waste of Material) कई कारणों से होती रहती है, जैसे सामग्री का उड़ जाना, या सामग्री का घिस जाना, सामग्री के अनुपयोगी छोटे-छोटे टुकड़े हो जाना, आदि । यह छीजत दो प्रकार की हो सकती है ।

i. सामान्य छीजत (Normal Waste):- यदि सामग्री में छीजत स्वाभाविक और सामान्य कारणों से होती हैं तो वह सामान्य छीजत (Normal Waste) कहलाती है । सामान्य छीजत से होने वाली हानि उत्पादन का अंग मानी जाती है और इसे उत्पादन लागत में सम्मिलित किया जाता है ।

ii. असामान्य छीजत (Abnormal Waste) :- यदि सामग्री में छीजत असामान्य कारणों (यथा, आग, बाढ़ आदि) से होती है तो यह असामान्य छीजत (Abnormal Waste) कहलाती है । इसे उत्पादन लागत का अंग नहीं माना जाता है और निर्मित वस्तु की लागत में सम्मिलित नहीं किया जाता । इसे हानि मानकर परिव्यय लाभ-हानि खाते (Costing Price & Loss Account) से अपलिखित कर दिया जाता है ।

18.10 खराबियाँ (Spoilage)

यह मद सामग्रियों के लिए प्रयोग की जाती है जो निर्माणी गतिविधियों में पूरी तरह क्षति ग्रस्त हुई हैं तथा उनको मितव्ययी तौर पर ठीक नहीं किया जा सकता है और इसलिए बिना अतिरिक्त प्रक्रियाकरण के किसी तरीके से निपटाने हेतु प्रक्रिया के बाहर किया जाता है । ऐसा दोषपूर्ण उत्पादन सामान्य भी हो सकता है तथा असामान्य भी । सामान्य दोषपूर्ण उत्पादन लागतों को (अर्थात जो क्रियान्वयन में अर्न्तनिहित है) लागतों में शामिल किया जाता है या तो उत्पादन आदेश के प्रति दोषपूर्ण उत्पादन के कारण हानि को कार्य करते हुए या उसको उत्पादकीय उपरिव्ययों के प्रति चार्ज करते हुए ताकि इसको सभी उत्पादों पर फैलाया जा सके । ऐसे दोषपूर्ण उत्पादन से वसूल हुआ कोई भी मूल्य उत्पादन आदेश के प्रति या उत्पादकीय उपरिव्यय खाते के प्रति क्रेडिट किया जाता है, जैसा भी मामला रहे ।

असामान्य खराबियों की लागत (अर्थात् निर्माणी प्रक्रियायें अर्न्तनिहित न होने वाले कारणों से उत्पन्न) को लागत लाभ हानि खाते के प्रति चार्ज किया जाता है । जब खराब हुआ काम कठोर विशिष्टीकरण का परिणाम होता है, तो खराब हुए काम की लागत का अच्छे उत्पादन द्वारा संविलयन कर लिया जाता है जबकि निपटान की लागत को उत्पादकीय उपरिव्ययों पर प्रभारित किया जाता है ।

दोषपूर्ण ऐसे उत्पादन पर नियंत्रण हेतु सामान्य खराबियों के लिए छूट की जानी चाहिए तथा वास्तविक खराबियों की मानक सैट से तुलना की जानी चाहिए । रिपोर्टिंग की एक व्यवस्थित प्रविधि खराबियों पर नियंत्रण में सहायता करेगी । एक ऐसी रिपोर्ट सामान्य तथा असामान्य खराबियों, उत्तरदायी विभाग, खराबियों के कारणों तथा उठाये गये सुधारात्मक कदमों, यदि कोई हो को प्रकाश में लायेगी ।

18.11 इकाई का सारांश

स्कंध प्रबंध नियंत्रण की उपर्युक्त विवेचना से आप अच्छी तरह से समझ गये होंगे कि किसी व्यावसायिक संस्था में सामग्री प्रबंध की आवश्यकता एवम् महत्व क्यों एवम् होता है । वस्तुतः संस्था की कार्यक्षमता, कार्यकुशलता एवं लाभदायकता सभी कुछ स्कन्ध प्रबंध से प्रभावित होते । स्कंध प्रबंध में सामग्री उपयोग के निर्धारण से लेकर उपयुक्त ढंग से प्राप्ति उसका सम्बन्धित विभागों में निर्गमन लेखांकन, कीमत आदि को सम्मिलित किया जाता है । इस दृष्टि से स्कंध प्रबंध काफी अनुभवी प्रबंध के हाथ में होना चाहिए । यदि सामग्री प्रबंध को कुशलता से सम्पादित कर लिया जाता है । तो आप सुनिश्चित मानिये कि संस्था लगभग सफलता की और अग्रसर हो रही होंगी ।

18.12 शब्दावली

ABC: - स्कंध प्रबंध/नियंत्रण में इसका अर्थ always better control से होता हैं । जिसका भाव यह है कि कुल स्कंध को सन्निहित निवेश के आधार पर विभिन्न मदों को ABC तीन में वर्गीकृत करना ।

याचनाएँ (Requisition):- संस्था में किसी वस्तु की मांग को व्यवस्थित रूप से लिखित में प्रस्तुत करने से होता है । इसी के अनुरूप सामग्री प्राप्त करने की क्रिया सम्पादित होती है।

सामान्य पुर्नआदेश अवधि (Lead Time):- सामग्री प्रबंध में इसका अर्थ होता है माल का आदेश देने पर पूर्ति कर्त्ता कितनी समय अवधि में सामग्री उपलब्ध करवा सकता हैं ।

बिन (Bin):- यह वह स्थान होता है जहां प्राप्त माल को रखा जाता हैं ।

प्रमाप मूल्य (Standard Price):- वह मूल्य जो पूर्व निश्चित होते हैं । इसका निर्धारण काफी सोच विचार कर तकनीकी आधार पर होता है । इसका वर्तमान बाजार मूल्य से कोई सम्बंध नही होता है ।

18.13 स्वपरख प्रश्न (Self-Questions)

1. Explain the different methods of pricing the issue of material, Give their advantages and disadvantages.
   (सामग्री निर्गमन का मूल्यांकन करने की विभिन्न विधियाँ को समझाइये । उनके गुण तथा दोष बताइये ।)
2. What are the types of wastage of material? Explain.
   सामग्री की क्षय कितने प्रकार का होता है? स्पष्ट कीजिए ।
3. How the Normal wastages and abnormal wastage in accounted for?
   सामान्य छीजत तथा असामान्य छीजत का लेखांकन किस प्रकार किया जाता है?
4. What do you mean by continuous stock taking or verification?निरन्तर सामग्री गणना अथवा सत्यापन से आप क्या समझते हैं?

5. What is meant by ABC analysis of material control?
   सामग्री नियन्त्रण की ABC विश्लेषण योजना से क्या आशय हैं?
6. Give difference between Bin card and stores ledger.
   बिन कार्ड और सामग्री खाता बही में प्रमुख अन्तर बताइए ।
7. What is Bin Card?
   बिन कार्ड क्या है?

18.14 व्यावहारिक प्रश्न

1. Daily consumption of a material is 32 to 40 units per day it takes 30 to 40 days in receipt of material after passing the order and recorder quantity is 2000 units. What will be (i) Re-order level. (ii) Minimum stock level (iii) Maximum stock level?
   यदि किसी सामग्री का उपयोग 32 से 40 इकाई प्रतिदिन है और उसे आदेश देने के पश्चात् प्राप्त करने में सामान्यता 30 से 40 दिन लगते हैं तथा पुन: आदेश मात्रा 2000 इकाइयों है, तो ज्ञात कीजिए (i) पुन-आदेश स्तर (ii) न्यूनतम स्टॉक स्तर (iii) अधिकतम स्टॉक स्तर।
   Ans. {1600 units, 340 units, 2640 units}
2. Ram Ltd. Uses annually 30,000 kgs. Of a material which cost Rs. 2 per kg. Placing each order cost Rs. 25 and the carrying cost is 15% p.a. of the average inventory. Find EOQ and the total inventory cost (including the purchases cost of materials).
   राम लि. प्रति वर्ष 30,000 किग्रा. सामग्री का प्रयोग करती है, जिसकी लागत 2 रू. प्रति किग्रा. है । यदि आदेश लागत 25 रू. है और भण्डारण लागत औसत स्कंध की 15 प्रतिशत प्रतिवर्ष है । आर्थिक आदेश मात्रा एवं कुल स्कंध लागत (सामग्री की क्रय लागत सहित) निकालिए । यदि सामग्री प्राप्ति के समय 12 दिन तथा सुरक्षा स्कंध 500 किग्रा. हो तो अधिक स्कंध, पुन: आदेश बिन्दु तथा औसत स्कंध भी ज्ञात कीजिए । एक वर्ष में 300 कार्य दिवस मानिये ।
   Ans. {2236 Units 60670 Rs., 1700, 2731, 1618}
3. Shiv T. Patel Ltd. Requires 4,000 units per year, each unit costing Rs. 20. Its order cost is Rs. 100 per order, normal lead time 30 days. Due to better transportation safety stock is not required. Working days in a year are 250. Further details are as follows : Storage cost is 20% per annum, deterioration, and obsolescence cost is 25% of storage cost p.a. find out:
   i. Economic order quantity.

ii. Re-order level.

iii. If a 3% discount is offered by supplier for purchases in a lot of 1,000 units or more, should the firm accept the proposal?

शिव टी. पटेल लि. को 20 रू. प्रति इकाई लागत वाली 4000, इकाईयों की आवश्यकता है । इसकी आदेश लागत प्रति आदेश 100 रू. हैं । सामान्य समय अन्तराल 30 दिन है । अच्छी यातायात सुविधा से सुरक्षा स्कंध की आवश्यकता नहीं हैं । वर्ष में 250 कार्य दिवस है । अतिरिक्त सूचनाएँ निम्नलिखित हैं :

संग्रहण लागत 20 प्रतिशत वार्षिक, कमी तथा अप्रचलन लागतें प्रति वर्ष संग्रहण लागतों का 25 प्रतिशत हैं । ज्ञात कीजिए-

i. आर्थिक आदेश स्तर,

ii. पुन: आदेश स्तर

iii. यदि पूर्तिकर्ता से 1,000 इकाइयाँ या अधिक के एक समूह के क्रय पर 3 प्रतिशत की छूट का प्रस्ताव आये तो क्या फर्म को यह प्रस्ताव स्वीकार करना चाहिए?

Ans. {298 units, 480 units, discount offer should be accepted}

4. From the following information, prepare the Stores Ledger account on the basis of first in first out method, last in first out method, simple average method, and weighted average method.

(निम्नलिखित सूचना से प्रथम आगमन प्रथम निर्गमन विधि के आधार पर सामग्री लेजर खाता बनाइये) । अन्तिम आगमन प्रथम निर्गमन विधि, औसत निर्गमन विधि एवम् भारित औसत विधि

Purchase	**Issue**
August, 2008	August, 2008
12 5,000 units @ Rs.12 each	14 2,000 units
13 5,000 units @ Rs.14 each	16 1,250 units
22 3,000 units @ Rs.13 each	26 2,500 units

Return from Job to Stores (उपकार्य से भण्डार को वापसी)

August 15, 500 units @ Rs. 12 each

5. A firm maintains its stores ledger on the FIFO method during the month of April, 2000 the following receipts and Issues of materials were made Record the transactions in the stores ledger charging wastage and shortage (a) as factory overhead (b) at inflated price.

(एक फर्म पहले आना-पहले जाना पद्धति पर अपनी संग्रहागार खाता बही रखती है । माह अप्रैल, 2000 के दौरान सामग्री की निम्नलिखित प्राप्तियाँ एवं निर्गमन किये गये । संग्रहागार खाता

बही में इन व्यवहारों का लेखा क्षय और कमी को (क) कारखाना उपरिव्यय और (ख) बड़े हुए मूल्य पर निर्गमन, पद्धति के आधार पर कीजिए)

2008 April	1	Opening Balance 400 kgs. @ 9 per Kg.
	3	Receipts 500 kg. @ 7 per kg.
	5	Issue 500 kgs.
	7	Receipts 400 Kgs. @ Rs. 8 per kg.
	15	Wastage (as per stock verification report) 10 kgs.
	20	Receipts 500 Kgs @ Rs. 10 per kg.
	25	Issue 850 kgs.
	26	Shortage 20 kgs.
	30	Receipts 100 Kgs. @ Rs. 12 per kg.

18.15 उपयोगी पुस्तकें

1 James C. Van Horne : Financial Management and Policy

2 I.M. Pandey : Financial Management

3 S.N. Maheshwari : management Accountancy

4 S.N. Maheshwari : Financial Management

5 S.C. Kuchhal : Financial Management

6 अग्रवाल एवम अग्रवाल : वित्तीय प्रबंध

7 एम आर अग्रवाल : वित्तीय प्रबंध

इकाई - 19 : प्राप्यों का प्रबन्ध (Management of Receivables)

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य
19.1 परिचय
19.2 प्राप्यों का आशय
19.3 परिभाषा
19.4 प्राप्यों के प्रबन्ध का अर्थ
19.5 प्राप्यों के उद्देश्य
19.6 प्राप्यों सम्बन्धी लागतें
19.7 प्राप्यों के आकार निर्धारक तत्व
19.8 अनुकूलतम साख नीति
19.9 प्राप्यों के प्रबन्ध का क्षेत्र
19.10 सारांश
19.11 शब्दावली
19.12 स्वपरख प्रश्न
19.13 व्यावहारिक प्रश्न
19.14 उपयोगी पुस्तकें

19.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

1. प्राप्यों एवं प्राप्यों के प्रबन्ध का अर्थ समझ सकें ।
2. प्राप्यों के उद्देश्य एवं प्राप्यों सम्बन्धी लागतों की जानकारी प्राप्त कर सकें ।
3. प्राप्यों के आकार निर्धारक तत्वों एवं अनुकूलतम साख नीति की जानकारी प्राप्त कर सकें।
4. प्राप्यों के प्रबन्ध क्षेत्र को उदाहरणों सहित समझ सकें ।

19.1 परिचय (Introduction)

किसी भी व्यवसाय की कुल चालू सम्पत्तियों में प्राप्यों का महत्वपूर्ण स्थान होता है, चालू सम्पत्तियों में माल भण्डार के बाद दूसरा स्थान प्राप्यों का ही होता है । उधार विक्रय जो कि आधुनिक व्यापार की बड़ी आवश्यकता है के परिणामस्वरूप ही प्राप्यों का उद्‌गम होता है । जब कोई फर्म नकद में विक्रय करता है तो भुगतान तुरन्त ही प्राप्त हो जाता है, तब कोई प्राप्यों का निर्माण नहीं होता हैं लेकिन जब कोई फर्म वस्तु या सेवा उधार विक्रय करती है तो प्राप्यों का उद्‌गम होता है । हम कह सकते हैं कि एक संस्था द्‌वारा ग्राहकों को दी गई उधार सुविधा से ही प्राप्यों-का उद्‌गम होता है । प्राप्यों का किसी भी व्यवसाय की चालू

सम्पत्तियों में बहुत महत्वपूर्ण स्थान होता हैं । अत: प्राप्यों का सही प्रबन्ध करना संस्था के लिए आवश्यक होता है।

19.2 प्राप्यों का आशय (Meaning of Receivables)

प्राप्यों से आशय किसी संस्था के अपने ग्राहकों के प्रति दावों से है । इन प्राप्यों का सृजन उधार विक्रय के परिणामस्वरूप होता है एवं इन्हें चिट्ठे में चल सम्पत्ति शीर्षक के अन्तर्गत विविध देनदार, प्राप्य विपत्र, पुस्तकीय ऋण आदि विभिन्न नामों से दिखाया जाता है ।

19.3 परिभाषा (Definition)

"प्राप्य व्यवसाय के सामान्य संचालन के दौरान माल अथवा सेवाओं की बिक्री के कारण फर्म को देय राशि का प्रतिनिधित्व करने वाले सम्पत्ति खाते होते हैं ।"

19.4 प्राप्यों प्रबन्ध का अर्थ (Meaning of Receivables Management)

प्राप्यों का उधार विक्रय से सीधा सम्बन्ध होता है । किसी भी फर्म द्वारा उधार विक्रय करके कुल विक्रय को बढ़ाकर लाभों में वृद्धि की जाती है । लेकिन उसी समय उधार विक्रय से पूँजी (funds) भी प्राप्य खातों में रूक जाती है और व्यवसाय के संचालन के लिए अतिरिक्त पूँजी की आवश्यकता होती है जो कि ब्याज के रूप में अतिरिक्त लागत एवं डूबत ऋण होने की सम्भावना को बढ़ाती है ।

अत: यह कह सकते हैं कि प्राप्यों का बढ़ना जहाँ लाभदायक भी है तो नुकसानदेह भी । ऐसी स्थिति में वित्तीय प्रबन्ध को ऐसी नीति को अपनाना चाहिए जिससे कि उधार से होने वाले लाभ उसके लिए लगने वाली लागतों से अधिक हों । अत: प्राप्यों के प्रबन्ध से आशय ऐसी प्रक्रिया से है जिससे कि प्राप्यों के फलस्वरूप फर्म के कुल लाभों में वृद्धि हो ।

19.5 प्राप्यों के उद्देश्य (Objectives of Receivables)

उधार विक्रय के परिणामस्वरूप प्राप्यों का उद्गम होता है अत: उधार विक्रय के जो उद्देश्य होते हैं वही प्राप्यों के सृजन के होते है । उधार विक्रय के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

1. विक्रय में वृद्धि (Growth in Sales)

रोकड़ विक्रय की अपेक्षा उधार विक्रय बिक्री बढ़ाने का एक महत्वपूर्ण प्रेरक है क्योंकि बहुत से क्रेता माल नकद खरीदने की स्थिति में नहीं होते हैं । यदि फर्म उधार क्रय की सुविधा देती हैं तो क्रेताओं की संख्या बढ़ेगी तथा कुल विक्रय राशि भी बढ़ेगी ।

2. लाभों में वृद्धि (Increasing Profits)

उधार विक्रय से कुल विक्रय में वृद्धि होती तथा विक्रय में वृद्धि के फलस्वरूप लाभों में भी वृद्धि होती है ।

3. प्रतिस्पर्धा का सामना (Meeting Competition)

1. " Receivables are asset accounts representing amounts awned to the firm as a result of sale of goods/ services in the ordinary course of business"– Hampton, john J.

अगर प्रतियोगी संस्थाएं अपने ग्राहकों को उधार सुविधा दे रही होती हैं तो उस संस्था को भी अपने ग्राहकों को उधार सुविधा देनी पड़ती है । अन्यथा उसे विक्रय की हानि होगी।

19.6 प्राप्यों सम्बन्धी लागतें (Cost related with receivables)

जब कोई संस्था उधार विक्रय करती है तो यह जरूरी नहीं होता है कि जितनी राशि का विक्रय है वह पूरी राशि को वसूल हो जाए, कुछ राशि डुबत भी हो जाती है । इसके अलावा उधार विक्रय के कारण संस्था को प्रशासनिक व अन्य लागतें वहन करनी पड़ती है । प्राप्यों सम्बन्धी लागतें निम्नलिखित हैं :

1. पूँजी लागतें Capital Costs)

ग्राहकों को वस्तुओं अथवा सेवाओं का उधार विक्रय करने से उन से भुगतान तुरन्त प्राप्त नहीं होता है जिससे प्राप्यों में संस्था के वित्तीय स्त्रोतों का एक बड़ा भाग अवरूद्ध हो जाता हैं लेकिन संस्था को अपनी आवश्यकताओं जैसे - कच्चा माल, कर्मचारियों को मजदूरी व वेतन आदि भुगतान करने के लिए वित्तीय साधनों की व्यवस्था अलग से करनी पड़ती है ।

अतिरिक्त वित्तीय व्यवस्था बाहर से ऋणदाताओं को ब्याज का भुगतान करके करनी पड़ती है अथवा संस्था के लाभों को रोककर जिस पर अवसर लागत (Opportunity Cost) वहन करके करनी पड़ती है ।

2. प्रशासनिक लागतें (Administrative Costs)

संस्था को प्राप्यों के लिए कई प्रशासनिक लागतें वहन करनी होती हैं यथा - ग्राहकों के प्राप्य अभिलेख तैयार करने हेतु नियुक्त कर्मचारियों का वेतन, ग्राहकों की साख स्थिति जाँच सम्बन्धी लागतें आदि ।

3. वसूली लागतें (Collection Costs)

जिन ग्राहकों को उधार विक्रय किया होता है, उनसे भुगतान वसूलने के लिए विभिन्न खर्चे करने होते हैं जैसे - प्राप्य संग्रहण हेतु रखे गए कर्मचारियों को वेतन एवं ग्राहकों को दी गई नकद छूट आदि । इनके अलावा कभी-2 दोषी ग्राहकों से राशि वसूलने के लिए कानूनी कार्यवाही भी करनी पड़ती है । अत: उसके व्यय ।

4. चूक लागतें (Defaulting Costs)

कई बार सभी सम्भव प्रयासों के बावजूद कुछ ग्राहकों से उनकी असमर्थता के कारण राशि वसूल नहीं हो पाती है अन्त में ऐसे ऋणों को यह मानकर कि उनसे राशि कभी वसूल नहीं होगी, अपलिखित कर दिया जाता है ।

19.7 प्राप्यों के आकार निर्धारक तत्व (Factors Affecting the Size of Receivables)

प्राप्यों का आकार कई तत्वों पर निर्भर करता है । कुछ महत्वपूर्ण तत्व निम्नलिखित हैं:

1. उधार विक्रय की मात्रा (Level of Sales)

प्राप्यों का आकार निर्धारण का यह सबसे महत्वपूर्ण तत्व है । प्राप्यों में निवेश का स्तर तथा उधार की मात्रा में प्रत्यक्ष धनात्मक सम्बन्ध है । अगर उधार विक्रय की मात्रा में वृद्धि होती है तो प्राप्यों का आकार भी बढ़ता है और यदि उधार विक्रय की मात्रा में कमी होती है तो प्राप्यों का आकार भी घटता है ।

उदाहरण - एक फर्म यह अनुमान लगाती हैं कि अगले वर्ष उधार विक्रय में 25% की वृद्धि होगी तो यह अनुमान लगेगा कि प्राप्यों में भी 25% की वृद्धि हो जायेगी।

2. साख नीति (Credit Policies)

साख नीति से आशय उन सभी निर्णायक बिन्दुओं से है जो उधार विक्रय को प्रभावित करते है । जैसे उधार विक्रय की कितनी मात्रा स्वीकार करनी है, उधार अवधि कितनी होगी, नकद बट्टा और कोई अन्य परिस्थिति के अनुरूप कोई विशेष शर्त ।

एक संस्था द्वारा उदार (Lenient) या कठोर (Tight) साख नीति अपनायी जा सकती है । यह देखा गया है कि कठोर नीति के बजाय उदार साख नीति अपनाने से प्राप्यों की मात्रा बढ़ जाती है ।

3. विक्रय की शर्तें (Terms of Sales)

प्राप्यों का आकार एक फर्म द्वारा दी गई उधार विक्रय की शर्तों पर भी निर्भर करता है । उधार विक्रय की कुछ महत्वपूर्ण शर्तें निम्नलिखित है :-

उधार की अवधि नकद छूट प्राप्य विपत्रों को बैंक से बट्टे पर भुनाने की सुविधा ।

यहाँ तीनों शर्तों को स्पष्ट किया जा रहा है :-

अ. उधार की अवधि (Credit Period)

उधार की अवधि से आशय उस समय से है जब तक ग्राहक अपने क्रय का भुगतान कर सकता है । यदि उधार अवधि कम है तो प्राप्यों का आकार भी कम होगा और अगर उधार अवधि है तो प्राप्यों का आकार भी बढ़ जाएगा । उदाहरण- यदि 3 माह की उधार अवधि पर विक्रय किया जाता है तथा संस्था प्रतिमाह 5 लाख रूपये का विक्रय करती है तो 3 माह के विक्रय के तुल्य यानि 15 लाख रूपये प्राप्यों में निवेश होंगे । यदि संस्था 2 माह को आधार पर माल बेचती है तो 10 लाख रूपये प्राप्यों में निवेश होंगे । अत: उधार की अवधि जितनी अधिक होगी, प्राप्यों में निवेश राशि भी उतनी ही अधिक होगी । प्राप्यों में निवेश राशि पर भी लागत है । यदि प्राप्यों में विनियोजित राशि जल्दी वसूल हो जाती है तो उसका वर्तमान मूल्य देर से वसूल होने वाली राशि के अपेक्षाकृत अधिक होता है ।

ब. नकद छूट (Cash Discount)

नकद छूट प्राय: प्राप्यों से प्राप्त भुगतान की गति को बढ़ाने के उद्देश्य से दी जाती है । अधिक छूट का लाभ उठाने के लिए ग्राहक समय से पूर्व या समय पर भुगतान कर देते है जिससे कि प्राप्यों में विनियोजित पूँजी की मात्रा कम होगी । लेकिन यदि पूँजी की लागत नकद छूट से कम हैं तो संस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा । अत: ऐसी स्थिति में छूट की नीति से बचना चाहिए ।

स.प्राप्य विपत्रों को बैंक से बट्टे पर चुनाने की सुविधा (Discounting of Bills Receivables)

प्राप्य विपत्रों को बैंक से भुनाने की सुविधा से प्राप्यों में विनियोग कम हो जाता है । इसके विपरीत देय तिथि पर इनका भुगतान प्राप्त करने की स्थिति में प्राप्यों में अधिक धन विनियोजित हो जाता है ।

4. साख विभाग की क्षमता (Capabilities of Credit Department)

प्राप्यों में विनियोग राशि पर साख विभाग की क्षमता का भी प्रभाव पड़ता है । साख विभाग अपने साख सुविधा सम्बन्धी कार्य जैसे - ग्राहकों की साख योग्यता की जाँच करना, देनदारों से राशि वसूल करना आदि में जितना अधिक कुशल होगा, देनदारों से राशि उतनी ही तीव्रता से वसूल होगी तथा ऋणों के डुबत होने की सम्भावना भी कम होगी जिससे कि प्राप्यों में विनियोजित राशि भी कम होगी ।

19.8 अनुकूलतम साख नीति (Optimum Credit Policy)

प्राप्यों की अनुकूलतम साख उस बिन्दु पर होती है जहाँ लागत और लाभ बराबर हैं, अर्थात लागत और लाभदायकता वक्र एक दूसरे को काटते है । यदि एक संस्था उदार साख नीति अपनाती है तो एक तरफ तो विक्रय बढ़ने से लाभदायकता में वृद्धि होती है लेकिन साथ ही प्राप्यों में विनियोग बढ़ने से तरलता की समस्या उत्पन्न होती है । इसकी बजाय कठोर साख नीति अपनाने से उधार विक्रय में कमी होने से लाभदायकता में कमी होती है पर संस्था की तरलता में वृद्धि हो जाती है ।

अत: अनुकूलतम साख नीति उस बिन्दु पर होती है जहाँ तरलता एवं लाभदायकता वक्र एक दूसरे को काटते है । निम्नलिखित रेखाचित्र में इसे स्पष्ट किया गया हैं -

OPTIMUM CREDIT POLICY

19.9 प्राप्यों के प्रबन्ध का क्षेत्र (Scope of Receivables Management)

उधार विक्रय के परिणामस्वरूप प्राप्यों का उद्गम होता है । प्राप्यों का प्रबन्ध साख विभाग द्वारा किया जाता है । प्राप्यों के प्रबन्ध हेतु वित्तीय प्रबन्धक यह देखता है कि अतिरिक्त साख बढ़ाने पर उससे संस्था को होने वाले लाभ लगने वाली लागत व जोखिम से अधिक हैं। प्राप्यों में निवेश को अनुकूलतम स्तर तक रखने के लिए वित्तीय प्रबन्ध द्वारा कई कार्य किये जाते है जो कि निम्नलिखित हैं :

1. उचित साख नीति का निर्धारण
2. संग्रहण प्रक्रिया का निर्धारण
3. साख आवेदकों का मूल्यांकन
4. प्राप्यों का विश्लेषण एवं नियन्त्रण

1. **उचित साख नीति का निर्धारण (Determining the Appropriate Credit Policy)** प्राप्यों के प्रबन्ध हेतु उचित साख नीति का निर्धारण करना आधारभूत आवश्यकता है । साख नीति से आशय उस नीति के निर्धारण से जिससे साख की मात्रा, अवधि एवं शर्तों का निर्धारण होता है । किसी भी संस्था में दो प्रकार की साख नीति हो सकती हैं:-

(1) उदार साख नीति (2) कठोर साख नीति

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट उदार साख नीति में क्रेता को उदार शर्तों जैसे - अधिक उधार की मात्रा, अधिक उधार अवधि पर माल का विक्रय किया जाता है । जबकि कठोर साख नीति में कठोर शर्तों यानि-ग्राहकों की पूरी जाँच पड़ताल, कम साख की मात्रा, साख की कम अवधि पर विक्रय किया जाता है ।

उदार साख नीति से विक्रय मात्रा बढ़ जाती है व फलस्वरूप लाभ भी बढ़ जाते है लेकिन साथ-2 ही तरलता की समस्या और डूबत ऋण की सम्भावना भी बढ़ जाती है । जबकि कठोर साख नीति में बिक्री व लाभ तो कम होते हैं लेकिन तरलता की समस्या और अत ऋण की सम्भावना भी कम रहती है । साख नीति में प्रमुख रूप से निम्नलिखित को शामिल किया जाता है

अ. साख कसौटियाँ (Credit Standard)

ब. साख शर्तें (Credit Terms), एवं

स. संग्रहण नीति (Collection Policy)

इनका विस्तृत वर्णन इस प्रकार है

अ. साख कसौटियाँ (Credit Standards)

साख कसौटियों से आशय उन आधारों से है जिन पर कि किसी ग्राहक को उधार की सुविधा देना निर्भर करता है । अगर ये साख कसौटियाँ उदार होती है तो संस्था का उधार विक्रय व परिणामस्वरूप लाभ दोनों बढ़ जाते हैं जबकि कठोर साख नीति से उधार विक्रय व लाभ दोनों में कमी आ जाती है ।

किसी संस्था में साख कसौटियाँ प्राय: इन 5 'C' पर निर्भर करती है - चरित्र (Character), क्षमता (Capacity), पूँजी (Capital), समपार्श्विक (Collateral) और दशा / स्थिति (Condition) ।

चरित्र (Character) से आशय क्रेता की उधार क्रय के भुगतान करने की इच्छा से है । क्षमता (Capacity) से आशय उस व्यापार की प्रबन्ध क्षमता से है । पूँजी (Capital) से आशय उसकी वित्तीय सुदृढ़ता से है । समपार्श्विक (Collateral) उस ऋण / उधार की सुविधा हेतु ग्राहक द्वारा सहायक रूप से दी गई सम्पत्ति से है

। दशा (Condition) उस व्यापार की सामान्य आर्थिक स्थिति को दर्शाती है । एक संस्था इन पाँचों 'C' के बारे मैं जानकारी आन्तरिक एवं बाह्य दोनों स्त्रोतों से प्राप्त कर सकती है । आन्तरिक स्त्रोतों के अन्तर्गत संस्था के ग्राहक के साथ पिछले अनुभव तथा स्वयं की विकसित सूचना प्रणाली आती है । बाह्य स्त्रोतों के अन्तर्गत व्यापार संघ एवं ऋण मूल्य निर्धारण संगठन (Credit Rating Organizations) को शामिल किया जाता है । अमेरिका में **डॉन एण्ड बॉड स्ट्रीट इन्हॉर पोरेटेड (Don & Brad Street Inc.) तथा स्टैण्डर्डस एण्ड पुअर्स कॉरपोरेशन (Standards & Poors Corporations)** ऐसे ही संगठन है । ये संगठन महत्त्वपूर्ण व्यावसायिक उपक्रमों के बारे में जानकारी प्रदान करते हैं । हमारे देश में अभी तक इस प्रकार का कोई संगठन नहीं है ।

उदाहरण: 1

एक संस्था अपने दो श्रेणी के ग्राहकों को उधार सुविधा देकर विक्रय वृद्धि करना चाहती है:

श्रेणी अ में ऐसे ग्राहक जिनमें 10% अदेय भुगतान की जोखिम है, तथा

श्रेणी 'ब' में ऐसे ग्राहक जिनमें 30% अदेय भुगतान की जोखिम है ।

श्रेणी अ में 40,00,000 रूपये तथा श्रेणी 'ब' में 50,00,000 रूपये विक्रय वृद्धि की सम्भावना है ।

उत्पादन की लागत तथा विक्रय के खर्च विक्रय के 60% है, जबकि संग्रहण लागतें श्रेणी 'ब' की स्थिति में विक्रय की 50% तथा श्रेणी 'ब' की स्थिति में विक्रय की 10% है । आप संस्था द्वारा दोनों श्रेणी के देनदारों को उधार की सुविधा देने के सम्बन्ध में सलाह दीजिए?

हल: (a) Extending Credit Facilities with 10% Risk of Non-Payment

	Rs.
Incremental Sales	40,00,000
Less: Loss in Collection (10%)	4,00,000
Net Sales realized	36,00,000
Less: Production and Selling Costs:	
(60% of sales) = 24,00,000	
Collection costs (5% of sales) = 2,00,000	26,00,000
Incremental Income	10,00,000

(b) Extending Credit Facilities with 30% Risks of Non-Payment

	Rs.
Incremental Sales	50,00,000
Less: Loss in Collection (30%)	15,00,000

Net Sales realized	35,00,000
Less: Production and Selling Costs:	
(60% of sales) = 30,00,000	
Collection costs (10% of sales) = 5,00,000	35,00,000
Incremental Income	Nil

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि 'अ' श्रेणी के देनदारों से संस्था को 10,00,000 रूपये की आय होगी जबकि 'ब' श्रेणी के देनदारों को उधार माल बेचने से न अतिरिक्त लाभ होता है न हानि । अत: संस्था को 'अ' श्रेणी के देनदारों को माल बेचना चाहिए ।

ब. साख शर्ते (Credit Terms)

साख शर्तों से आशय उन शर्तों से हैं जिन पर एक विक्रेता अपने ग्राहकों को उधार विक्रय करता है । साख शर्तें मुख्यत: दो हैं. (i) साख अवधि (ii) नकद छूट ।

i. साख अवधि (Credit Period)

साख अवधि में साख अवधि की वृद्धि एवं देय बट्टा दोनों शामिल किये जाते हैं । साख अवधि बढ़ाने पर विक्रय में वृद्धि होती है तथा उससे लाभों में वृद्धि होती है । लेकिन साथ ही साथ प्राप्यों में कोष भी अवरूद्ध हो जाते है । जबकि साख अवधि घटाने पर विक्रय में कमी होकर लाभों में कमी हो जाती है लेकिन प्राप्यों में विनियोग की लागत भी कम पड़ती है ।

"उचित साख अवधि निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहाँ बढ़ी हुई बिक्री पर सीमान्त लाभ बढ़े हुए प्राप्यों की लागत के एकदम बराबर होते हैं।"[2]

उदाहरण : 2

एक संस्था की 1 वर्ष की विक्रय से सम्बन्धित सूचनाएं इस प्रकार हैं :

विक्रय 1,20,000 रूपये

विक्रय मूल्य (प्रति इकाई) 10 रूपये

परिवर्तनशील लागत (प्रति इकाई) 7 रूपये

कुल लागत (प्रति इकाई) 9 रूपये

ग्राहकों को देय साख अवधि 1 माह

संस्था अब अपने ग्राहकों को उदार साख देने का विचार करते हुए साख अवधि को एक माह से बढ़ाकर 2 माह करना चाहती है । साख अवधि में ढील देने से विक्रय में वर्तमान स्तर से 25% बढ़ने की उम्मीद है ।

आप संस्था को नई साख अवधि अपनाने के विषय में सलाह दीजिए, यदि फर्म विनियोग पर 25% प्रतिफल प्राप्त करना चाहती है?

हल: Computation of New Sales

Present Sales	12000 units x Rs. 9 =	Rs. 1, 20,000
Additional Sales	3000 units x Rs. 10 =	Rs. 30,000
	Total = Rs.	1, 50,000

Computation of New Total Cost

Present Cost of Sales	12000 units x Rs. 9 =	1, 08,000
Cost of additional sales	3000 units x Rs. 7 =	Rs. 21,000
	Total =	Rs. 1, 29,000

*Only variable cost to be considered

New Average cost per unit = $\frac{\text{New total costs}}{\text{New total output}} = \frac{12900}{15000} = Rs.\ 8.60 \text{ per unit.}$

Average Investment in Receivables under New Sales Pattern

Total annual sales in units 15000 units

Cost of Sales (15,000 x Rs. 8.6) Rs. 1, 29,000

Average collection period 2 months

Amount invested in receivables $\frac{129000}{12} \times 2 = 21,500$

Additional Investment in receivables=New investment-Existing investment

= 21,500-9000* Rs.

= 12,500 Rs.

$* \frac{108000}{12} = 9000 Rs.$

Return on additional investment in receivables = $\frac{9000}{12500} = 72\%$

संस्था अपने विनियोग पर 25% का प्रत्याय चाहती है और इस नए प्रस्ताव से 72% मिलता है । अत: साख अवधि 1 माह से बढ़ाकर 2 माह कर देनी चाहिए ।

उदाहरण : 3

ABC नाम की एक संस्था अपनी वर्तमान साख नीति में ढील देना चाहती है तथा प्रस्तावित दो साख नीतियों का मूल्यांकन कर रही है । वर्तमान में संस्था की वार्षिक उधार विक्रय 5 लाख रूपये है और प्राप्य आवर्त अनुपात (Receivable Turnover Ratio) वर्ष में 4 बार है । वर्तमान में अत ऋण से हानि 15,000 रू. की है । संस्था अपने नये प्राप्यों पर 25% प्रत्याय चाहती है । संस्था की परिवर्तनशील लागत विक्रय मूल्य का 70% है ।

निम्नलिखित दी गई सूचनाओं से बताइए कि कौन सा प्रस्ताव बेहतर है?

	Present Policy	Option I	Option II
Annual credit sales			
Accounts receivable	4 times	3 times	2.4 times
Turnover rate			
Bad depts. losses			

2. "Optimal Credit period, therefore, involves locating the period where the marginal profits on increased sales are exactly offset by the cost of carrying the higher amount of accunts receivables – Weston and Brigham

ABC Corporation

Evaluation of Credit Policies

	Present Policy	Option I	Option II
Annual credit sales	Rs. 5,00,000	Rs.6,00,000	Rs.6,675,000
Accounts receivable turnover	4 times	3 times	2.4 times
Average collection period	3 months	4 months	5 months
Average level of accounts receivable	Rs. 1,25,000	Rs.2,00,000	Rs.2,81,250
Marginal increase in investment	-	52,500	56,875
In receivables less profit margins	-		
Marginal increase in sales	-	1,00,000	75,000
Profit on margin increase in sales	-	30,000	22,500
30%	-	15,000	15,000
Marginal increase in bad debts	-		
Profit on margin increase in sales less	-	15,000	7,500
Marginal bad debts losses			
Required return on marginal investment @ 25%	-	13,125	14,218.8
Surplus (loss) after required rate of return	-	1875	(6718.8)

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि Option-I में 1875 रू. की बचत है जबकि Option-II में 6718.8 रू. का नुकसान है । अत: Option-I बेहतर है ।

उदाहरण : 4

मौली स्पोर्ट्स कम्पनी जो खेल के सामान का व्यापार करती हैं, की वार्षिक बिक्री 50,000 रूपये हैं और अभी अपने ग्राहकों को 30 दिन की साख देती है । कम्पनी यह महसूस करती हैं कि साख अवधि में वृद्धि करके विक्रय को बढ़ाया जा सकता है । कम्पनी के पास निम्नलिखित प्रस्तावित पालिसियों के सम्बन्ध में सूचनाऐं उपलब्ध हैं-

वर्तमान में, औसत संग्रहण अवधि - 30 दिन हैं ।

परिवर्तनशील लागत विक्रय का 80% है ।

स्थाई लागत 6000 रूपये प्रतिवर्ष है ।

विनियोग पर प्रत्याय (कर पूर्व) 20% की उम्मीद है ।

Credit Policy	Average Collection period	Annual Sales Rs.
A	45 days	56,000
B	60 days	60,000
C	75 days	62,000
D	90 days	63,000

बताइए: (a) आपने अपने निर्णय हेतु किन मान्यताओं को माना हैं?

(b) कम्पनी को कौनसी पॉलिसी चुननी चाहिए?

हल: a. अपने निर्णय तक पहुँचने के लिए हमने निम्नलिखित मान्यताऐं ली हैं-

i. विक्रय मूल्य में कमी किये बिना ही विक्रय मात्रा में वृद्धि की गई हैं ।

ii. बढ़े हुए उत्पादन एवं विक्रय के लिए अतिरिक्त विनियोग की आवश्यकता नहीं हैं ।

iii. वर्तमान क्षमता एवं साधनों से ही उत्पादन एवं विक्रय में वृद्धि सम्भव हैं ।

Mauli Sports Co.

Evaluation of different Policies

	Present	A	B	C	D
The average collection period (days)	30	45	60	75	90
Annual sales (Rs. Thousand)	50	56	60	62	63
Cost of sales (Rs. Thousand):					
Variable cost (80% of sales)	40	44.8	48.0	49.6	50.4
Fixed cost	6	6.0	6.0	6.0	6.0
Total Cost	46	50.8	54.0	55.6	56.4
Contribution (Rs. Thousand) (Annual sales - Cost of sales)	4	5.2	6.0	6.4	6.6
Incremental Contribution (i)	-	1.2	2.0	2.4	2.6
Investment in Debtors (Rs. Thousand)	3.8	6.3	9.0	11.6	14.1
Incremental Investment in Debtors Over present level (Rs. Thousand)	-	2.5	5.2	7.8	10.3
Required Return on Investment on Account of incremental debtors X 20% (Rs. Thousand) (ii)	-	2.5	5.2	7.8	10.3
Excess of Incremental contribution under the alternative credit policies Over corresponding required return on incremental investment (i)-(ii) (Rs. Thousand)	-	0.5	1.0	1.6	2.1
	-	0.7	1.0	0.8	0.5

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि पॉलिसी B सर्वश्रेष्ठ है । अत: इसके चयन की सलाह दी जाती है ।

ii. नकद छूट (Cash discount)

नकद छूट देने के प्रभाव का भी उसी प्रकार विश्लेषण किया जा सकता हैं जिस प्रकार साख अवधि का । किसी संस्था द्वारा अपने उधार ग्राहकों को दी जाने वाली नकद छूट भी प्राप्यों में विनियोग के आधार को महत्त्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती है । वित्तीय प्रबन्ध द्वारा प्राप्यों का अनुकूलतम आकार निर्धारण हेतु नकद छूट से प्राप्त होने वाले

लाभ व लागत में तुलना करनी होती है । नकद छूट देने से तरलता बढ़ती हैं तथा अत ऋण में भी कमी होती है । अत: संस्था को तरलता के लाभ के साथ-साथ डुबत ऋण में कमी के कारण विक्रय लाभ भी होता हैं । नकद छूट से औसत संग्रहण अवधि पर भी प्रभाव पड़ता है । औसत संग्रहण अवधि में कमी होने से संस्था की ख्याति (Goodwill) में वृद्धि होती है । लेकिन दूसरी तरफ नकद छूट एक तरह से संस्था के लिए हानि है । "उचित छूट उस बिन्दु पर होती हैं जहाँ छूट की लागत उससे होने वाले फायदे एकदम बराबर होते हैं ।"[3]

उदाहरण : 5

एक फर्म की वार्षिक उधार विक्रय 1,50,000 रू. हैं । यह अपने ग्राहकों को कोई नकद छूट की सुविधा न देते हुए 2 माह की साख अवधि देते हैं । अब फर्म 2 / 10 शुद्ध 60 छूट देने का विचार कर रही हैं तथा औसत संग्रहण अवधि घटकर 1 माह की उम्मीद है । 50% ग्राहक (कीमत में) इस नई सुविधा का फायदा लेते हैं । विक्रय मूल्य प्रति इकाई 10 रूपये हैं, जबकि प्रति इकाई लागत 8.60 रूपये आती है ।

आप फर्म को नई नीति के बारे में सलाह दीजिए यदि विनियोग पर प्रत्याय 25% अपेक्षित है तथा माह 30 दिन का माना गया है ।

हल: Annual Credit Sales Rs. 1,50,000

Cash Discount allowed

$$\left[150000 \times \frac{50}{100} \times \frac{2}{100}\right] = Rs.\ 1{,}500$$

Present Investment in Receivables

$$\left[150000 \times \frac{2}{12} \times \frac{8.6}{10}\right] = Rs.\ 21{,}500$$

Expected Investment in Receivables

$$\left[150000 \times \frac{1}{12} \times \frac{8.6}{12}\right] = Rs.\ 10{,}750$$

Decrease in Investment in Receivables = Rs. 10,750

Saving in Capital Costs

$$\left[10750 \times \frac{25}{100}\right] = Rs.\ 2687.5$$

Net Savings (Rs. 2687.5 - Rs. 1500) = Rs. 1187.5

नई साख नीति से शुद्ध 1187.5 रु. की बचत होती है, अतः फर्म को इसे अपनाना चाहिए।

1. संग्रहण नीति (Collection Policy) :

संग्रहण प्रविधियों से संस्था की संग्रहण नीति का निर्धारण होता है । संग्रहण प्रविधियों में ग्राहकों से संग्रहण, दूरभाष वार्तालाप, व्यक्तिगत वार्तालाप, पत्र व्यवहार एवं कानूनी कार्यवाही आदि शामिल है । सामान्यतया संग्रहण पर किये गये व्यय व डूबत ऋण से होने वाली हानि में विपरीत

3. Optimal discount in established at the point where the cost and benefit are exactly affsetting – Weston and Bregham

सम्बन्ध पाया जाता हैं । वित्तीय प्रबन्धक को संग्रहण व्यय तथा उससे होने वाले लाभों के बीच सामंजस्य स्थापित करना होता हैं ।

2. **संग्रहण प्रक्रिया का निर्धारण (Determination of collection Procedure)** : एक व्यवस्थित संग्रहण नीति के लिए उचित संग्रहण प्रक्रिया का होना आवश्यक है । संग्रहण प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए जिससे कि संग्रहण की लागत व समय दोनों कम हो । संग्रहण प्रक्रिया में आवश्यकता से अधिक ढील अथवा कठोरता दोनों ही व्यवसाय पर विपरीत प्रभाव डालती है । अत: संग्रहण प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए जिससे समय पर उधारी वसूल हो सके तथा डुबत ऋण भी कम से कम हो ।

   एक संस्था द्वारा संग्रहण हेतु अपने पिछले अनुभव एवं आवश्यकतानुसार निम्न तरीके अपनाए जा सकते हैं :

   नकद छूट का प्रलोभन

   तकाजे के पत्र लिखकर

   संग्रहण संस्थाओं की मदद लेकर

   कानूनी कार्यवाही आदि ।

   वान हॉन के मतानुसार - "किसी संस्था की सम्पूर्ण संग्रहण नीति उसके द्वारा अपनायी गयी संग्रहण प्रक्रियाओं के संयोजन से निर्धारित होती हैं ।"

3. **साख आवेदकों का मूल्यांकन (Evaluating the Credit Applicants) :**

   साख आवेदकों के मूल्यांकन की प्रक्रिया से सम्बन्धित निम्नलिखित तीन कदम हैं:-

   अ.ग्राहकों के विषय में सूचनाऐं एकत्रित करना ।

   ब.संग्रहित सूचना से ग्राहक की ऋण लेने की क्षमता का विश्लेषण करना; तथा

   स.विश्लेषण के आधार पर निर्णय लेना ।

   अ.ग्राहकों के विषय में सूचनाऐं एकत्रित करना (Obtaining Information on the Applications) :

   ग्राहकों की -साख क्षमता सम्बन्धित सूचनाऐं विभिन्न स्त्रोतों से एकत्रित की जा सकती है । ग्राहक के सम्बन्ध में सूचनाऐं एकत्रित करना, उस पर लगी लागत व समय पर निर्भर करता है । सूचनाएं एकत्र करने में आवश्यकता से अधिक धन व्यय भी नहीं करना चाहिए, सूचना से अपेक्षित लाभ की तुलना में ही धन खर्च करना चाहिए । इसी प्रकार सूचनाएं एकत्र करने में आवश्यकता से अधिक समय भी नहीं लगाना चाहिए । ग्राहक की साख योग्यता सम्बन्धी सूचनाएँ विभिन्न साधनों में से आवश्यकतानुसार एक या अधिक का प्रयोग करके की जा सकती है । ग्राहकों की साख योग्यता के सम्बन्ध में सूचनाएं एकत्रित करने के प्रमुख स्त्रोत अग्रलिखित हैं :-

1. **वित्तीय विवरण (Financial Statements)**

   वित्तीय विवरण ग्राहकों से सूचनाएं प्राप्त करने के अच्छे साधन है । ग्राहक फर्मों से पिछले कुछ वर्षों में वित्तीय विवरणों से उनकी वित्तीय सुदृढ़ता, तरलता, ऋण क्षमता और लाभदायकता के विषय में जानकारी हो जाती हैं । लेकिन कई बार कुछ ग्राहक अपने वित्तीय विवरणों को देना नहीं चाहते हैं, इस तथ्य से यह अनुमान लगा सकते हैं कि ऐसे ग्राहकों की

आर्थिक स्थिति कमजोर है । सूचनाएँ एकत्रित करने हेतु अंकेक्षित (Audited) वित्तीय विवरणों का प्रयोग करना चाहिए ।

2. बैंक सन्दर्भ (Bank Reference)

बैंको से भी ग्राहक फर्मों की साख योग्यता सम्बन्धी सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं । कुछ बैंक तो अपने यही अलग से एक साख विभाग रखते हैं जो समय-समय पर अपने ग्राहकों का साख निरीक्षण करवाते रहते हैं । यद्यपि बैंक किसी व्यक्ति को अपने ग्राहकों के विषय में जानकारी नहीं देते हैं लेकिन संस्था अपने बैंक के माध्यम से ग्राहक के बैंक से सूचनाएं प्राप्त कर सकते हैं बैंक से ग्राहक के विषय में ग्राहक के बैंक खाते का औसत शेष, ग्राहक को दिया गया ऋण, ग्राहक के विषय में अनुभव सम्बन्धी सूचनाएं प्राप्त की जा सकती है ।

3. बाजार प्रतिवेदन (Market Reports)

कुछ व्यापारिक संस्थान विभिन्न व्यापारिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रतिवेदन छापते है । इन प्रतिवेदनों में विभिन्न व्यापारिक संस्थाओं का उस उद्योग में स्थान तथा आर्थिक स्थिति के बारे में जानकारी दी जाती है । लेकिन इन पत्र पत्रिकाओं में छपे तथ्य कई बार संस्था के विषय में भ्रामक भी हो सकते है । क्योंकि इनमें कई सूचनाओं को छिपा लिया जाता है । इसमें वह संस्था अपनी केवल अच्छी स्थिति बताती है, कमजोरियों को नहीं । जबकि दूसरी संस्था की स्थिति को कमजोर बताती है ।

4. साख मूल्यांकन संस्थाएं (Credit Rating Agencies)

साख मूल्यांकन करने वाली संस्थाएं देश के प्रमुख व्यापारिक प्रतिष्ठानों के सम्बन्ध में वित्तीय एवं प्रबन्धकीय सूचनाओं को एकत्र करके उनका विश्लेषण करती हैं यद्यपि हमारे देश में अभी तक ऐसी संस्थाओं का पूरी तरह से विकास नहीं हो पाया है । अमेरिका में 'डॉन एण्ड बॉड स्ट्रीट' एक नामी साखी मूल्यांकन संस्था हैं । साख मूल्यांकन संस्थाएं व्यापारिक प्रतिष्ठानों का विगत इतिहास, उनके प्रमुख अधिकारी, प्रतिष्ठानों का प्रमुख उद्देश्य, व्यापार की प्रकृति एवं आकार, विक्रय एवं उत्पादन, वित्तीय स्थिति, ऋण भुगतान प्रवृत्ति के बारे में विस्तृत सूचनाएं एकत्रित करती हैं ।

5. अन्य स्त्रोत (Other Sources)

बड़े-बड़े अन्य विभिन्न स्त्रोतों जैसे- वाणिज्य मण्डल (Chamber of commerce), व्यापारिक संघ (Trade Association), व्यापारिक निर्देशिकाओं (Trade Directories), आयकर व सम्पत्ति कर विवरण, रजिस्ट्रेशन, विक्रय विवरण व नगरपालिकाओं के अभिलेखों से साख सम्बन्धी सूचनाएं एकत्रित की जा सकती हैं ।

ब. संग्रहित सूचना से ग्राहक की ऋण लेने की क्षमता का विश्लेषण करना (Analyzing the Information to determine the Applicant's Credit-Worthiness):

सूचनाओं का संग्रहण करने के बाद, एक फर्म को ग्राहक की साख योग्यता का विश्लेषण करना होता हैं । अर्थात यह देखना होता है कि किसी ग्राहक विशेष को उधार की सुविधा देनी है या नहीं?

ग्राहक की क्षमता विश्लेषण में कुछ प्रमुख विचारधाराऐं (Approaches) इस प्रकार हैं :

i. पारम्परिक विचारधारा (Traditional Approach)

इस विचारधारा में ग्राहक की साख योग्यता (Credit worthiness) के आधार पर उसे उधार सुविधा देने या न देने का निर्णय लिया जाता है । इस विचारधारा में ग्राहक के व्यापार का पिछला इतिहास, उसके उधार भुगतान का तरीका व इच्छा, जो उत्पादन वह क्रय करना चाहता हैं उसकी लाभदायकता, ग्राहक की वित्तीय स्थिति आदि को देखा जाता है । इसमें मुख्य रूप से ग्राहक के रोकड बजट व वर्तमान में रोकड प्रवाह विवरणों का उपयोग किया जाता है । इस विचारधारा में ग्राहक की साख क्षमता का विश्लेषण प्राय: "Five Cs" अर्थात पूँजी (Capital) चरित्र (Character), समपार्श्विक (Collateral), क्षमता (Capacity) परिस्थितियाँ (Conditions) के आधार पर किया जाता है ।

पूँजी (Capital) : ग्राहक की 'पूँजी' मूल्यांकन से आशय उसकी फर्म की वित्तीय स्थिति का विश्लेषण करने से है । अर्थात ग्राहक फर्म कितनी वित्तीय सुदृढ़ हैं? या उसकी क्या कमियाँ हैं? फर्म की वित्तीय सुदृढ़ता जानने हेतु गहन अनुपात विश्लेषण किया जाता हैं तथा ग्राहक वित्तीय अनुपातों व उस उद्योग के वित्तीय अनुपातों की तुलना करके ऋण क्षमता का अनुमान लगाया जाता है ।

चरित्र (Character) : उधार क्रय के भुगतान हेतु उसके (ग्राहक) पास सिर्फ साधनों का होना ही आवश्यक नहीं बल्कि भुगतान चुकाने की इच्छा होना भी आवश्यक है । यही चरित्र से आशय ग्राहक की उधार चुकाने की इच्छा से है । इसमें यह विश्लेषण किया जाता हैं कि ग्राहक का अन्य व्यापारियों के साथ उधार चुकाने के सम्बन्ध में कैसा व्यवहार रहा, अर्थात वह उधार चुकाने हेतु कितना तत्पर रहा ।

समपार्श्विक (Collateral) : समपार्श्विक से आशय उन सम्पत्तियों से हैं जो ग्राहक अपने उधार हेतु जमानत या प्रतिभूति के रूप में दे सकता है । इसमें यह विश्लेषण किया जाता हैं कि ग्राहक के पास ऋण की जमानत हेतु पर्याप्त सम्पत्तियाँ हैं या नहीं । अगर ग्राहक देय तिथि तक भी उधार का भुगतान नहीं करता है तो इन सम्पत्तियों को बेचकर ऋण की वसूली की जाती है ।

क्षमता (Capacity) : क्षमता के अन्तर्गत दो बातों का विश्लेषण किया जाता है:-

1. प्रबन्ध की व्यापार चलाने की क्षमता एवं
2. ग्राहक फर्म के प्लांट की क्षमता

प्रबन्ध की व्यापार चलाने की क्षमता (योग्यता) में फर्म की सफलता या असफलता में उसका योगदान का विश्लेषण करते है जबकि प्लांट क्षमता में फर्म के प्लांट की कीमत, तकनीक का विश्लेषण करते है । दोनों ही बिन्दुओं के माध्यम से निष्कर्षत: यह पता चलता हैं कि ग्राहक की उपार्जन क्षमता कैसी हैं अर्थात वह संस्था को समय पर धन लौटाने में समर्थ हैं या नहीं?

परिस्थितियाँ (Conditions) : इससे अभिप्राय ग्राहक के व्यापार की आर्थिक स्थिति व अर्थव्यवस्था की स्थिति के विश्लेषण से हैं । अगर ग्राहक फर्म की विदेशी व देशी बाजार

में प्रतिस्पर्धा बहुत अधिक हैं तो लाभ कमाने की सम्भावना कम होती है । जिससे कि ऋण चुकाने की योग्यता भी प्रभावित होती है ।

ii. **ह्यूरिस्टक विचारधारा (Heuristic Approach)**

यह विचारधारा साख सुविधा देने वाली संस्था के वास्तविक अनुभव (Actual Experience) पर निर्भर है । इस विचारधारा के सूत्र या प्रक्रिया में ग्राहक फर्म के सम्बन्ध में प्रबन्ध के अनुभव व सहज ज्ञान (Intuition) को भार (weight) देकर ग्राहक की साख योग्यता का पता लगाते हैं । ग्राहक की साख सुविधा दी जाए या नही? अथवा कितनी साख दी जाए, इसके लिए इन बिन्दुओं को देखते हैं :

a. साख आवश्यकता (Credit Requirements) 'O'

सर्वप्रथम इस बिन्दु से ग्राहक की विक्रेता संस्था पर निर्भरता का माप करते हैं । अगर ग्राहक अपनी आवश्यकता का 25% से कम क्रय करने की सोचता हैं तो ग्राहक 0% भार देंगे । अगर ग्राहक 25 से 50% के बीच क्रय करने की सोचता हैं तो उसे 5% Allowance देंगे । अगर वह 50% से अधिक क्रय करने की सोचता हैं तो 10% Allowance देंगे (देखे टेबल 1)

b. भुगतान आदतें (Pay Habits) 'P'

ग्राहक की भुगतान आदतें इस विचारधारा का दूसरा बिन्दु हैं इसमें ग्राहक की उधार भुगतान की योग्यता व इच्छा का मापन करते हैं । छूट अवधि से पूर्व भुगतान करने पर 10% छूट अवधि में भुगतान करने पर 5% तथा आदतन देर से भुगतान करने पर - 5%

c. व्यापार का वर्ष (Year of Business) 'y'

इसमें ग्राहक की ऋण भुगतान की योग्यता का माप करते हैं अगर व्यापार को 3 वर्ष से कम हुए हो तो व्यापार की साख सीमा बढ़ाने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा । अगर 3 वर्ष से 10 वर्ष हो गए हैं तो सीमा को 5% से बढ़ाया जाता है तथा 10 वर्ष से अधिक व्यापार हो गए हैं तो 10% से बढ़ाया जाता है ।

d. लाभ सीमा (Profit Margin) 'M'

अगर लाभ 5% से कम हैं तो साख सीमा को 0% भार देते हैं, लेकिन लाभ 5% से 14% हैं तो 5% तथा 14% से अधिक लाभ होने पर 10% से भार देते हैं ।

e. चालू अनुपात (Current Ratio) 'R'

अगर चालू भुगतान 2.2 : 1 है तो यह ऋण चुकाने की योग्यता की अच्छी स्थिति को इंगित करता हैं इससे साख सीमा को 10% योगदान देंगे । अगर यह अनुपात 1.5:1 है तो यह तुलनात्मक रूप से कम अच्छी स्थिति को बताता हैं इसमें 5% भार देंगे तथा 1.5:1 से कम अनुपात होने पर साख सीमा बढ़ने में कोई योगदान नहीं होता हैं ।

f. कुल ऋण का सम्पत्ति से अनुपात (Total Debt to Asset Ratio) 'T'

यह भुगतान की योग्यता को इंगित करता हैं । अगर 'T' 30% से कम हैं तो साख सीमा में 10% भार दिया जायेगा लेकिन 'T' अगर 50% से अधिक है तो - 5% भार मिलेगा ।

g. माल भण्डार आवर्त (Inventory Turnones) 'I'

कम माल भण्डार आवर्त अनुपात कम क्षमता को दर्शाता है तथा अधिक आवर्त अनुपात अधिक क्षमता को । आवर्त के आधार पर 0% से 10% के बीच भार देकर साख सीमा ज्ञात करते हैं ।

h. गुणात्मक कारक (Qualitative Factor) 'Q'

इसमें साख प्रबन्धक स्वयं अपनी सोच के आधार पर ग्राहक को साख सुविधा देने हेतु निर्णय लेता है ।

इस विचारधारा में यह ध्यान रखना चाहिए कि इसमें निर्णय के विभिन्न कारक व उनसे प्रदान भार अंक प्रत्येक फर्म के अपने अनुभव पर निर्भर करते है । अर्थात प्रत्येक फर्म के लिए ये बिन्दु (Factors) व उनके भार अंक (Contributions) अलग-अलग हो सकते हैं ।

स. विश्लेषण के आधार पर निर्णय लेना (Decision on the Basis of Analysis)

एकत्र की गई सूचना का विश्लेषण करने के बाद यह निर्णय लिया जाता हैं कि ग्राहक विशेष को उधार क्रय की सुविधा दी जाये या नहीं । इसके लिए ग्राहक की मूल्यांकित साख योग्यता की फर्म की प्रमाप साख स्तर से तुलना की जाती है, यदि ग्राहक की मूल्यांकित साख योग्यता प्रमाप साख योग्यता से कम हैं तो ग्राहक को साख की सुविधा (उधार क्रय) नहीं दी जाती है । यही यह बताना आवश्यक है कि एक ग्राहक के विषय में वर्तमान में लिया गया निर्णय भविष्य में लागू नहीं होता है क्योंकि ग्राहक की आर्थिक स्थिति में परिवर्तन होता रहता है । अन्त में विश्लेषणकर्ता का सामान्य ज्ञान व अनुभव निर्णय लेने में विशेष महत्व रखते है ।

4. प्राप्यों का विश्लेषण एवं नियन्त्रण (Analysis and Control of Receivables)

प्राप्यों पर उचित नियन्त्रण के लिए समय-समय पर इनका विश्लेषण किया जाना आवश्यक है । प्राप्यों के विश्लेषण एवं नियन्त्रण के लिए संस्था के द्वारा उचित सूचना प्रणाली का प्रयोग होना आवश्यक हैं, अन्यथा उचित सूचना प्रणाली न होने पर ग्राहक को निर्धारित सीमा से अधिक राशियाँ अधिक अवधि के लिए उधार सुविधा दी जा सकती है ।

प्राप्यों के विश्लेषण हेतु निम्नलिखित तकनीकों का प्रयोग किया जाता है :

अ. प्राप्यों की औसत आयु की गणना (Computation of Average Age of Receivables) :

प्राप्यों के विश्लेषण हेतु देनदार आवर्त अनुपात (Debtors Turnover Ratio) तथा औसत संग्रहण अवधि (Average Collection Period) की गणना की जाती है, फिर इस अवधि की तुलना उस पूरे उद्योग की अवधि अथवा समान फर्मों की अवधि से की जाती है ।

प्राप्यों की औसत आयु की गणना की विधि को विस्तार से "अनुपात विश्लेषण" (Ratio Analysis) वाले पाठ में समझ सकते हैं ।

इन अनुपातों की सहायता से प्राप्यों के संग्रहण में प्रबन्धकीय दक्षता की जाँच की जा सकती है तथा पिछले वर्षों के अनुपातों का अध्ययन करके प्रवृत्ति का विश्लेषण किया जाता है ।

उदाहरण : 6

उधार विक्रय वर्ष 2008 के लिए	6,00,000 रू.
प्राप्य खाते शेष 01.01.2008 को	70,000 रू.
प्राप्य खाते शेष 31.12.2008 को	50,000 रू.

प्राप्यों की औसत आयु (average age) ज्ञात कीजिए ।

हल : प्राप्यों की औसत आयु (average age) निम्नलिखित में से किसी भी विधि से ज्ञात की जा सकती है ।

i. $\dfrac{\text{Months or days in the period}}{\text{Accounts receivable turnover*}}$ $\dfrac{\text{*Credit sales in the period}}{\text{Average accounts receivable}}$

Thus - Accounts receivable turnover = $\dfrac{6000000}{60000} = 10$

$\dfrac{\text{Average age of receivable}}{\text{(or Debt collection period)}} = \dfrac{12}{10} = 1.2 \text{ months}$

ii. $\dfrac{\text{Average accounts receivable}}{\text{Average monthly (or daily) credit sales}} = \dfrac{60000}{50000} = 1.2 \text{ months}$

iii. $\dfrac{\text{Average accounts receivable} \times \text{Months (or days in the period}}{\text{Sales during the period}} = \dfrac{60000 \times 12}{60000} = 1.2 \text{ months}$

प्राप्यों की औसत आयु या साख संग्रहण अवधि में वृद्धि उदार साख नीति को दर्शाती है, अगर उपरोक्त उदाहरण में साख संग्रहण अवधि 15 महीने हो तो इसका आशय है कि या तो फर्म में उदार साख नीति है या फर्म साख संग्रहण में कम कुशल है । लेकिन अगर साख संग्रहण अवधि घटकर 1 माह हो जाए तो यह फर्म की कठोर साख नीति को दर्शाती है ।

सीमाऐं -

प्राप्यों की औसत आयु विधि को सावधानी से प्रयोग में लाना चाहिए क्योंकि अगर विक्रय पैर्टन (sales pattern) में उच्चावचन (fluctuation) हैं तो परिणाम भ्रामक आ सकते है । निम्न उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायेगी :

उदाहरण : 7

शिवांश एण्ड कम्पनी का संग्रहण पैटर्न (collection pattern) इस प्रकार है-

विक्रय का 10% उसी माह में

विक्रय का 20% दूसरे माह में

विक्रय का 40% तीसरे माह में

विक्रय का 30% चौथे माह में

कम्पनी को प्रथम तिमाही की बिक्री इस प्रकार है -

माह		**I तिमाही**	**II तिमाही**	**III तिमाही**
प्रथम		15,00,000	75,000	2,25,000
द्वितीय		15,00,000	1,50,000	1,50,000
तृतीय		15,00,000	2,25,000	75,000
		4,50,000	4,50,000	4,50,000
कार्य दिवस (Working days)	90	90	90	

प्राप्यों की औसत आयु की गणना कीजिए तथा परिणाम पर अपनी टिप्पणी दीजिए ।

हल: उदाहरण में संग्रहण अवधि का पैटर्न दर्शाता है कि बकाया प्राप्यों को प्रत्येक माह 90% उसी माह की बिक्री, 70% पूर्व के माह की बिक्री तथा 30%, 2 माह के पूर्व की बिक्री के हैं ।

प्राप्यों की राशि तथा प्राप्यों की औसत आयु प्रत्येक तिमाही के अन्त में इस प्रकार है-

Statement of Account Receivables and their Average Age

Sales	1st Quarter	2nd Quarter	3rd Quarter
30% of 1st month	45,00	22,500	67,500
70% of 2nd month	1,05,000	1,05,000	1,05,000
90% of 3rd month	1,35,000	2,02,500	67,500
Total Accounts receivables	2,85,000	3,30,000	2,40,000

Average Age of Receivables:

$\frac{285000 \times 90}{450000}$	$\frac{330000 \times 90}{450000}$	$\frac{240000 \times 90}{450000}$
= 57 days	= 66 days	= 48 days

उपरोक्त से स्पष्ट है कि विक्रय पैटर्न (sales pattern) में परिवर्तन होने से तीनों तिमाहो की प्राप्यों की औसत आयु में परिवर्तन हुआ है ।

c. प्राप्यों या देनदार काल सूची (Receivables or Debtors Ageing Schedule)

अशोध्य अथवा अत ऋणों में कमी लाने के लिए तथा संग्रहण प्रक्रिया को गतिमान बनाने के लिए काल सूची बनाना अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

प्राप्य काल सूची एक निश्चित तिथि को देनदारों की समयानुसार स्थिति को दर्शाती है । यह सूची व्यापार विशेष की उसकी आवश्यकतानुसार साप्ताहिक, मासिक, अर्द्धवार्षिक या वार्षिक आधार पर तैयार की जा सकती है ।

प्राप्य काल सूची एक विवरण के रूप में बनाई जाती है तथा इसमें निम्नलिखित तथ्यों का समावेश होना चाहिए

1. सूची तैयार करने की तिथि तथा साधारण साख अवधि (normal credit term) का वर्णन ।
2. देनदारों से प्राप्य राशियों का विभाजन उचित समयान्तर से होना चाहिए ।
3. काल सूची में व्यापारिक व गैर व्यापारिक प्राप्तियों को स्पष्टत: अलग-अलग दिखाया जाना चाहिए ।
4. समय अवधि के आधार पर समस्त प्राप्यों का योग एवं विभिन्न समयावधियों के अलग-अलग प्राप्यों के योग का कुल योग से प्रतिशत किया जाना चाहिए ।
5. यदि किसी देनदार को साधारण से अधिक दिनों की उधारी की सुविधा दी गई है तो इसका काल सूची में संकेत होना चाहिए ।

प्राप्यों की काल सूची का काल्पनिक नमूना इस प्रकार है :-

Ageing Schedule of Receivables

As on Dec. 31, 2007 as on Dec. 31, 2008

Age classes (days)	Months of sales	Balance of Receivables	Percentage to Total	Balance of Receivables	Percentage to Total
1-30	December	50,000	22.7	20,700	11.9
31-60	November	1,25,000	56.8	37,100	21.4
61-90	October	24,000	10.9	92,800	53.4
91-120	September	20,000	9.1	17,650	10.2
121 & more	Earlier	1,000	0.5	5,400	3.1
	Total	2,20,000	100	1,73,700	100

19.10 सारांश (Summary)

एक संस्था द्वारा ग्राहकों को दी गई उधार सुविधा से प्राप्यों का उद्गम होता है जिसे चिट्ठे में चल सम्पत्ति शीर्षक के अन्तर्गत विविध देनदार, प्राप्य विपत्र, पुस्तकीय ऋण नाम से दिखाया जाता है । प्राप्यों से संस्था की बिक्री एवं लाभों में वृद्धि के साथ प्रतिस्पर्धा का सामना करने में सहायता मिलती है । पूँजी लागतें, प्रशासनिक लागतें, वसूली लागतें एवं चूक लागतें प्राप्यों सम्बन्धी लागतें कहलाती है ।

प्राप्यों के आकार को निर्धारित करने में उधार विक्रय की मात्रा, साख नीति, विक्रय की शर्तें तथा साख विभाग की क्षमता महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं । अनुकूलतम साख नीति उस बिन्दु पर होती है जहाँ तरलता एवं लाभदायकता वक्र एक दूसरे को काटते हैं ।

प्राप्यों के प्रबन्ध क्षेत्र में उचित साख नीति का निर्धारण, संग्रहण प्रक्रिया का निर्धारण, साख आवेदकों का मूल्यांकन तथा प्राप्यों का विश्लेषण एवं नियन्त्रण को शामिल किया जाता है।

19.11 शब्दावली (Glossary)

प्राप्य (Receivables) : विक्रय के परिणामस्वरूप किसी संस्था के अपने ग्राहकों के प्रति दावे ।

साख नीति (Credit Policy) : उधार विक्रय को प्रभावित करने वाले सभी निर्णायक बिन्दु।

उधार अवधि (Credit Period) : ग्राहक द्वारा क्रय का भुगतान करने की अवधि ।

साख कसौटी (Credit Standard) : किसी ग्राहक को उधार सुविधा देने के आधार ।

साख शर्तें (Credit Terms) : विक्रेता द्वारा ग्राहक को उधार विक्रय की शर्तें ।

समपार्श्विक (Collateral) : वे सम्पत्तियाँ जो ग्राहक अपने उधार हेतु जमानत हेतु दे सकता है ।

19.12 स्वपरख प्रश्न / अभ्यास (Self-Assessment Questions / Exercise)

1. प्राप्यों का अर्थ बताइए? प्राप्यों सम्बन्धी विभिन्न लागतों का वर्णन कीजिए ।
2. प्राप्य प्रबन्ध से आप क्या समझते हैं? उसके उद्देश्यों की व्याख्या कीजिए ।
3. साख आवेदकों का मूल्यांकन करने की प्रक्रिया समझाइए ।
4. प्राप्यों में निवेश को प्रभावित करने वाले विभिन्न घटकों का विस्तृत वर्णन कीजिए ।

19.13 व्यावहारिक प्रश्न (Practical Questions)

1. ए, बी, सी लिमिटेड का वर्तमान में 10/- प्रति इकाई विक्रय मूल्य हैं तथा 30,000 इकाइयों का विक्रय करती हैं, इसकी 6/- प्रति इकाई परिवर्तनशील लागत मूल्य हैं तथा 60,000 रू. स्थाई लागतें है । औसत संग्रहण अवधि 30 दिन है ।

   कम्पनी साख नीति में परिवर्तन करके विक्रय मात्रा में 15% वृद्धि करने का प्रस्ताव रखती है । औसत संग्रहण अवधि बढ़कर 45 दिन होने की उम्मीद है । डूबत ऋण से हानि व संग्रहणों व्ययों में कोई परिवर्तन नहीं होगा । कम्पनी विनियोग पर 15% प्रत्याय (return on investment) चाहती है ।

   कम्पनी को साख नीति में ढिलाई के विषय में सुझाव दीजिए ।

2. मौली लिमिटेड की वर्तमान में "शुद्ध 30" साख शर्तें हैं । अब फर्म बिक्री बढ़ाने के लिए '3 / 15 शुद्ध 45" साख शर्तें करना चाहती है । निम्नलिखित परिवर्तन की आशा है:

Current sales	Rs. 5,00,000
Estimated Increase in sales	10%
Estimated total sales that will avail discount offer	Rs. 1,50,000
Estimated increased investment in receivables	40,000
Estimated increased costs:	
Bad debt losses	1% of increased Sales
Production Adm. & Selling costs	74% of increased Sales
Required return on investment	10%
Cash Discount	30% of Sales

   आप यह सलाह दीजिए कि क्या साख शर्तों में परिवर्तन करना चाहिए?

3. एक संस्था में 1 दिसम्बर, 2008 को प्राप्यों की राशि रू0 1,00,000 थी । इस राशि की बिक्री इस प्रकार थी:

नवम्बर में 40000 रू.

अक्टूबर में	30000 रू.
सितम्बर में	20000 रू
शेष सितम्बर से पूर्व	

यदि फर्म द्वारा साख शर्तें "2 / 10 शुद्ध 30" हो तो साख अवधि को ध्यान में रखते हुए देनदार काल सूची बनाइए तथा संस्था के वसूली प्रयासों पर प्रकाश डालिए ।

19.14 उपयोगी पुस्तकें (Further Readings)

1. Bhall, V.K. : **Financial Management and Policy**, Anmol Publiction,New Delhi.
2. Maheshwari, S.N. **Financial Management,** Sultan Chand & Sons, New Delhi.
3. Pandey, I.M. : **Financial Management,** Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi.
4. अग्रवाल, एम. आर. **प्रबन्ध लेखांकन,** मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर ।

ISBN - 13/978-81-8496-219-2